



# समराइच्चकहा एक सास्कृतिक अध्ययन

लेखक  
डॉ० झिनरू यादव

भारती प्रकाशन  
वाराणसी-१

प्रकाशक  
भारती प्रकाशन  
बी २७/९७ दुर्गाकुण्ड रोड,  
वाराणसी-१

प्रकाशन वर्ष  
सन १९७७  
(भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त)

मुद्रक  
वर्तमान मुद्रणालय  
जवाहर नगर कामाना वाराणसी

परमपूज्यगुरुवर्याणा  
भारतीयसंस्कृतिपुरातत्त्वविषयाधिगतविशेषवैदुष्याणा  
प्रतिभावताम्, श्रीमता लल्लनजी गोपाल महाभागाना  
वरकिसलयो सादरार्पितम्  
इदं पुस्तकं प्रसूनम् ।



## प्राक्कथन

इतिहास-संरचना की अपना सीमायें और विनियोगतायें ह। इतिहासकार अतीत में प्राप्त सामग्री के माध्यम से घटनाओं एवं स्थितियों के स्वरूप का निर्धारण करता है। उसके प्रमाण ही उसकी सीमायें हैं। जिन घटनाओं और स्थितियों का विषय में सारांश न पाई ऐतिहासिक प्रमाण नष्ट नहीं बचा ह उनका बारे में इतिहास प्रायः मौन हो रहता है। इतिहासकार का कामक्षेत्र उपलब्ध प्रमाणों की सीमा से घिरा है। वह अतीत का प्राप्त प्रमाणों की आँखों से ही देखता है। किन्तु प्रमाणों का मूल्यांकन करके इतिहास संरचना करने में उसे तब तक कुछ मात्रा में कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। प्रमाण जिन रूप में उपलब्ध होते हैं इतिहासकार उन्हें उसी रूप में ग्रहण एवं भक्ति के साथ स्वीकार नहीं कर सकता। प्रमाणों के प्रति श्रद्धाभाव इतिहासकार का अवगुण माना जाता है। जो प्रमाण अतीत के अवशेष या पदार्थ के रूप में उपलब्ध होते हैं वे स्वाभाविक ही मौन होते हैं। किन्तु इतिहासकार का इसके कारण विनियोग अमरविधा नहीं होती। ये प्रमाण मुखर हो नहीं पाते किन्तु इनका सारांश अधिक व्यापक होता है। इनके विषय में यह आशा की नहीं रहती कि किसी ने विशेष उद्देश्य के प्रयास-पूर्वक एकपक्षीय उल्लेख किया है। ऐसी आशा लिखित प्रमाणों के विषय में अधिक घटित होती है। लिखित सामग्री, वह अभिलेख के रूप में हो अथवा ग्रन्थ के रूप में, इस प्रकार के शोध से ग्रसित हो सकती है।

संरचनाओं में उनके लेखकों के व्यक्तित्व और उनके उद्देश्यों की स्पष्ट छाप निखलती पड़ती है। लेखकों का व्यक्तित्व अनेक तत्वों के प्रभाव से निर्मित होता है। जाने या अनजाने ये तत्व उनकी संरचनाओं के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। जीवन और समाज पर धर्म का गहरा प्रभाव देखते हुए हम कह सकते हैं कि लेखकों का निजी धर्म उसके व्यक्तित्व के निर्माण में प्रमुख तत्वों में से रहा होगा। अनेक ग्रन्थों की रचना में लेखकों के निजी धर्म के किसी विनियोग तत्व की पुष्टि हो उद्देश्य के रूप में स्पष्ट उल्लिखित हुई है।

अतीत के किसी तथ्य के विषय में यदि विभिन्न दृष्टिकोणों से विवरण उपलब्ध है तो तुलनात्मक विवेचन के द्वारा उसके सही स्वरूप का निर्धारण किया जा सकता है। प्राचीन भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन का जो विवरण ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है वह प्रायः आत्मशिक्षण के ही प्रस्तुत

करता ह। इन मस्याओं के स्वरूप का मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक है कि इनके आलोचका के विचारा का भा अवलोकन किया जाय। कभी-कभी आदश व्यवस्था के साथ ही यथाथ को समझने के लिए भी अन्य लेखकों द्वारा दिये गये विवरण उपयोगी होते ह।

प्राचीन भारतीय साहित्य में से जन ग्रंथों की इतिहास-संरचना में उनका उचित स्थान नहीं मिल सका ह। ऐसा क्यों हुआ इसकी विवचना हम नहीं करना चाहते। जन प्रमाणा का अपना महत्त्व ह। अनेक विद्वानों ने यह स्वीकार किया ह कि जन परम्परा में अनेक तथ्य अति प्राचीन ह। ये ग्रंथ ग्रंथों से प्राप्त सामग्री के सही मूल्यांकन में तो सहायक ह हा कुछ विषयों के संबंध में तो हमें कदाचित केवल इन्हीं का सहारा है।

जैन साहित्य मुख्यतः प्राकृत एवं अपभ्रंश में ह। इन ग्रंथों के प्रामाणिक प्रवाधान एवं ऐतिहासिक मूल्यांकन की दिशा में कुछ प्रयास तो हुए ह किन्तु प्रगति की गति सतोपजनक नहीं ह। स्वाभाविक ह कि प्रारंभ में ग्राह्य-काय ग्रंथ अथवा छवक विषय के द्वारा प्रप्त सामग्री के विश्लेषण के रूप में सम्पान्ति होगा। जब इस प्रकार की सामग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हो जायगा तो उसके समग्र विवेचन और मूल्यांकन का और प्रयास किया जा सकता ह। डा० चिन्मय यादव का प्रस्तुत प्रयास इन दृष्टि में सराहनीय ह। उन्होंने इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित प्रायः प्राकृत एवं अपभ्रंश ग्रंथों की सामग्री का इतिहास-संरचना में उचित महत्त्व मिलाना हा साथ ही अपना कायग्रंथ स्वीकार किया ह।

जन प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य पूर्वमध्यकालीन इतिहास के लिए विनाप रूप में उपयोगी ह। इसमें राजस्थान गुजरात और समीपवर्ती क्षेत्रों के इतिहास और सामाजिक तथा धार्मिक जीवन की वास्तविकता के विषय में बहुमुखी सूचनाओं का भंडार निहित ह। हरिभद्रमूरि का रचना सम्राट् चक्रवर्ती का इसमें पूर्व उपयोग यथावत् ही हुआ था। पूरे ग्रंथ की सामग्री का मूल्यांकन और मागापाय विवेचन डा० यादव ने अपने प्रस्तुत ग्रंथ में उपस्थित किया ह। उन्होंने अन्य समकालीन प्रमाणा से तुलनात्मक विवेचन कर उपलब्ध तथ्यों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया ह। इसा प्रकार विमा भी तथ्यों का पूर्व इतिहास प्रस्तुत करके उन्होंने उसका उचित इतिहास-क्रम में आका ह।

हरिभद्रमूरि आठवीं शताब्दी ईसा में हुआ था। आठवीं शताब्दी ईसा में मगध का राजा था। प्राचीन काय की व्यवस्थाएँ मगधराज्य के विनाय के साथ परिवर्तन का ओर बढ़ रही थीं किन्तु मगधराज्य की व्यवस्थाएँ अपन मगध रूप में प्रगट नहीं हुई थीं। इस मणि व्यवस्था में प्राचीन और मगधराज्य की व्यवस्थाएँ

परस्पर मिली-जुली गियलाई पड़ती है। समराइच्चवहा में भामत प्रया व जा विवरण मिलने ह वे समकालीन स्थिति का परिलक्षित करते हैं। समराइच्चवहा में राजप्रामाद मन्त्रा मय-व्यवस्था दण्ड-व्यवस्था और पचकुल आदि व विषय में महत्वपूर्ण सामग्री मिलनी है। पारपरिक व-व्यवस्था व गाय ही हरिभद्रमूर्ति ने जाति-मन्त्री मन्त्रात्रीन वास्तविकता का भा अंकन किया है। विवाह की रिधि का विवरण धर्मास्त्रा में प्राप्त सन्निहित निर्देश का पूरक है और तत्कालीन सामाजिक जीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। व्यापार और उद्योग व विषय में भा प्रचुर उपयोगी उल्लेख है। सांस्कृतिक जीवन व विभिन्न पक्षा पर भा इस ग्रंथ में समुचित प्रकाश पड़ता है। हरिभद्रमूर्ति ने जन धर्म और ज्ञान व विषय में प्रामाणिक सामग्री के साथ ही समकालीन धार्मिक कृत्या और विश्वासा की ओर भा निर्देश किया है।

मुझे आशा है कि पूर्वमध्यकालीन मन्त्रा और जीवन की वास्तविकताओं का सपत्न में प्रस्तुत साध प्रबोध गहरीयक होगा। इसका प्रकाशन जन साहित्य व अध्ययन व भाग पर अग्रसर होन में डॉ० यादव के उगाह का बंधक हा ऐसी मेरी शुभकामना है।

लल्लनजी गोपाल

प्रमुख व-गकाय एवं

प्राप्तिर तथा अध्ययन प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं

पुरातन्त्र विभाग

काशी हिंदू विश्वविद्यालय।





## दो शब्द

समराइच्च कहा श्वेताम्बर जनाचार्य श्रीहरिभद्र मूरि की एक महत्वपूर्ण प्राकृत रचना है। हरिभद्र मूरि का काल आठवीं-नौवीं शताब्दी में माना जाता है। कथा का प्रमुख उद्देश्य धर्मकथा सुना कर लोगों का जन धर्म में दीक्षित कर भाक्ष की तरफ अप्रसर करना था। समराइच्च कहा में आत्म और यथाय का सधप दिखा कर अंत में आत्म की प्रतिष्ठा करायी गयी है। इस ग्रंथ में जनसाधारण से लेकर राजा महाराजाआ तक के चरित्र का विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। पूर्व मध्यकालीन प्राकृत कथाओं में समाज एवं शक्ति की विवृतिया पर प्रहार करके उनमें सुधार लाने का प्रयत्न किया गया है। इन प्राकृत कथाकारों ने लोक प्रचलित कथाओं के द्वारा लोक प्रचलित जनभाषा में अपने सदेश लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार समराइच्च कहा में भी समाज के विभिन्न वर्गों के वास्तविक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ अपने समय की भौगोलिक आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक धार्मिक आदि विभिन्न स्थितियाँ व अध्ययन का एक महत्वपूर्ण श्रोत है। इस ग्रंथ का रचनाकाल भारतीय इतिहास में सक्रांति का काल माना जाता है। वह काल से चली आ रही प्राचीन परंपराएँ ज्वरित हो गयी थी तथा नयी चेतनाएँ पुष्पित हो रही थी। इस प्रकार की स्थितियाँ का विवरण कथाकार ने अपनी कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का एक सबल प्रमाण श्रोत है।

समराइच्च कहा का अपन गांध विषय का आधार प्रदान करने की सहाय्य मुन प्रोफेसर लल्लनजी गोपाल से मिली। मैंने उनसे काफी विचार विमर्श करने के पश्चात् इस ग्रंथ का सम्पूर्ण अध्ययन करके उसकी प्रचुर सामग्रियों पर एक सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करने का निश्चय किया। सत्पश्चात् उन्हीं के निदेशन में मैंने जनवरी १९७० में पी० एच० डा० के लिए इसी विषय पर शाध काय प्रारम्भ किया।

पोपमर लल्लनजी गोपाल जी मेरे गुरु हैं उनकी पत्नी डा० धामती कृष्ण कांति गोपाल तथा डा० रघुनाथ सिंह जी (भूतपूर्व ससद सदस्य) के मानिष्य में मैंने अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य अध्ययन एवं अध्यापन ही निश्चित किया। प्रोफेसर लल्लनजी गोपाल के मधुर व्यवहार एवं विद्वत्तापूर्ण निदेशन का ही परिणाम था कि मैं अपना गांधकाय तमाम कठिनाइयों के हाते हुए भी पूरा कर

मका। उनका अपूर्व स्नेह तथा विद्वत्तापूर्ण मुद्रावा के लिए मैं उनके प्रति आजीवन आभारी रहूँगा। डा० श्रीमता कृष्ण काति गोपाल तथा डा० रघुनाथ मिह जी से मुझे समय-समय पर महत्वपूर्ण सुझाव तथा काय करने का प्रेरणा मिली मैं उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का पूरा करने में मुझे प्राचीन भारतीय इतिहास संहिता एवं पुरातत्त्व विभाग के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री सुरेशचन्द्र चिण्डियापाल से पुस्तका का पूरी पूरी सहायता प्राप्त हुई जिसके लिए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्यार्थम शाघ मस्थान के अध्यक्ष डा० माहनलाल मेहता वाराणसी संहिता विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मायकबाड ग्रन्थालयाध्यक्ष के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जहाँ से मुझे पुस्तकीय सहायता मिली।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष प्राफ़ेसर राम चरण शर्माजी का मैं हृदय से आभार हूँ जिन्होंने समर्पित सुझाव देकर इसका प्रकाशनाय अनुमति स्वीकृत किया। मैं इस पुस्तक के प्रकाशन में भारती प्रकाशन वाराणसी के तथा प्रकाश पाण्डेय के तथा उद्यमान मुद्रणालय का भी आभारी हूँ जिनकी सहायता से ही यह पुस्तक इस रूप में प्रकाशित हो सकी।

ग्रन्थ पत्र में कुछ अनुष्ठित अनजाने में रह गयीं जिनके लिए मैं पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संहिता के अध्ययन की निशा में मेरा यह अल्प प्रयास सकल है। यही मेरी ईश्वर में प्रार्थना है।

वाराणसी

मार्च २२ १९७३।

सिनकू यादव

## सकेताक्षर सूची

आदि०—आदि पुराण

इपि० इडि०—इपिग्रफिया इडिका

इडि० ऐंटी०—इडियल गेंटीक्वरी

इडि० इपि०—इडियन इपिग्र फिक्ल ग्लामराज

इडि० हिस्टा० क्वाट०—इडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली

काम०—कामनीतिसार

गौतम०—गौतम स्मृति

गौतम०—गौतम धर्मसूत्र

नीतिवाक्या०—नीतिवाक्यामृत

पराशर०—पराशर स्मृति

पृ०—पृष्ठ

बृह०—बृहस्पति स्मृति

मनु०—मनुस्मृति

यान०—यानवत्त्वय स्मृति

वणिष्ठ—वणिष्ठ स्मृति

सम० व०—समराइच्च कहा

स०—सपादक



## विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

### अध्याय १

हरिभद्रसूरि का काल निर्धारण	१
हरिभद्रसूरि का जीवन वृत्तान्त तथा रचनायें	३
समराइच्च कहा की संज्ञिका क्या वस्तु	५

### अध्याय २

भौगोलिक उल्लेख	९
द्वीप	९
जनपद	१२
नगर	१९
पत्तन	३५
बन्धरगाह	३६
अरण्य	३७
पर्वत	३९
नदियाँ	४४

### अध्याय ३

शासन व्यवस्था	४६
राजा	४६
युवराज	४९
उत्तराधिकार और राज्याभिषेक	५१
सामन्त प्रथा	५२
कुलपुत्रक	५६
मन्त्री और मन्त्रपरिषद्	५७
पुरोहित	६१
अन्य अधिकारी भाण्डागारिक, जेसवाहक	६३

वदिक धम	२८१
तपाचरण	२८२
तापस	२८४
कुल्पति	२८४
तापसी	२८५
तापम भोजन वस्त्र	२८६
जन दान	२८८
चार्वाक दान	२९५
धम कृत्य और विश्वाम-दान	३०१
कम परिणाम	३१०
परलाक	३१२
गङ्गुन	३१६
तत्र मंत्र	३१७
गुरु का महत्त्व	३२०
आनिष्ठ्य मत्कार	३२१
आधार ग्रन्थ सूची	३२३
गङ्गानुक्रमणिका	३४१



## हरिभद्र सूरि का काल निर्धारण

सम्राट्चव कहा ना गोघ प्रबन्ध का आधार बनाने में पूर्व उसका रचयिता का समय निर्धारण करना आवश्यक है। सम्राट्चव कहा और धूर्तविद्यान जानि प्राकृत कथाओं के रचयिता हरिभद्र सूरि थे जो एक जन स्वैताम्बराचार्य के नाम में प्रख्यात थे। इनका समय निर्धारण अधालितिन ढंग से किया जा सकता है।

कुवलयमाला कहा के रचयिता उद्योतन सूरि ने हरिभद्र सूरि को अपना गुरु माना है तथा उन्होंने कुवलयमाला कहा को एक सवत ७०० (७५८ ई०) में समाप्त किया था।<sup>१</sup> जिससे स्पष्ट होता है कि हरिभद्र की तिथि ७७८ ई० के पूर्व हो रही होगी।<sup>२</sup> मुनि जिन विजय ने हरिभद्र के समय निणय नामक निबन्ध में हरिभद्र द्वारा उल्लिखित आचार्यों की नामावली उनके तिथि क्रम के अनुसार इस प्रकार दी है—धर्म कालि (६०० ६५० ई०), वास्यपत्नीय के रचयिता भतहरि (६०० ६५०) कुमारिण (६२० ७०० ई०) शुभगुप्त (६४० ७०० ई०) और शान रक्षित (७०५ ७३२ ई०)।<sup>३</sup> हरिभद्र सूरि द्वारा उल्लिखित इस नामावली में स्पष्ट होता है कि हरिभद्र का समय ई० सन ७०० के बाद ही रहा होगा। अतः उद्योतन सूरि के कुवलयमाला कहा के आधार पर हरिभद्र सूरि का अन्त्युदय काल ७०० ई० से ७७८ ई० तक माना जा सकता है।

प्रो० आम्बेकर ने हरिभद्र के ऊपर शंकराचार्य का प्रभाव बतलाकर उन्हें शंकराचार्य के बाद का विद्वान माना है।<sup>४</sup> किन्तु मुनि जिन विजय ने हरिभद्र को शंकराचार्य का पूर्ववर्ती माना है। उनके अनुसार शंकराचार्य का समय ७७८ ई०

१ कुवलयमाला अनुच्छेद ६ पृ० ४—‘जो इच्छई भवविरह को न बढ़ए सुखया। समय सय सत्य गुरुणा समरमियका कहा जस्म ॥’

२ वही अनुच्छेद ४३० पृ० २८२—‘सा सिद्धतेण गुरुजुत्तो सतयेहि जस्स हरिभद्रा। बहु सत्त्व गय वित्थर पत्थारिय पयड सत्त्वथा ॥’

३ इसका सम्मेलन डा० दगदश शर्मा तथा यम० सी० मोनी ने भी किया है।  
द्विगण—शंकराचार्य—अर्ली चौहान लाइनेस्टीज पृ० २२२ तथा यम० सी० मोनी—यम० क० इटाइवान।

४ मुनि जिन विजय—हरिभद्राचार्यस्य समय निणय।

५ विगतिविगिता—प्रस्तावना।



म ८२० ई० तक स्वीकार किया जाता है और तब से बताया है कि हरिभद्र ने अपने पूर्ववर्ती सभी विद्वानों का जल्लु किया है किन्तु गङ्गाकाय का<sup>१</sup> नहीं जिसमें हरिभद्र का का<sup>२</sup> गङ्गाकाय के पूर्व निश्चित होना ज्ञात है ।

उपमितिभरपपचा कथा के रचयिता सिद्धिपि ने अपनी कथा की प्राम्ति में हरिभद्र का अपना गुण मान कर उनकी बदनामी की है ।<sup>३</sup> प्रो० आम्बर ने हरिभद्र का सिद्धिपि का साक्षात् गुरु मान कर उनका समय विष्णुसमय ८०० ई० माना है परन्तु जिन विज्ञान के अनुसार गङ्गाकाय हरिभद्र द्वारा रचित जल्लुविस्तरावृत्ति के अध्ययन में सिद्धिपि का कुवलयनामक ग्रन्थ गुरु हुआ था । इस कारण सिद्धिपि ने उनसे रचयिता का घमघोषक गुरु माना है ।<sup>४</sup>

ऊपर के विवरण का ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि जो हरिभद्र कुवलयमाला कहा है रचयिता उद्यातन मूर्ति के गुरु रहे चुके थे (जिहान ७७८ ई० में कुवलयमाला कहा की रचना का थी) वह सिद्धिपि (जिनका समय गङ्गाकी गङ्गा का प्रारम्भ का माना जाता है) के गुरु कल्पित नहीं हो सकते और न तो उन पर गङ्गाकाय का प्रभाव ही सिद्ध किया जा सकता है ।

हरिभद्र के पटङ्गानममुच्चय नामक ३० में जयन्त भट्ट का 'पापमजरी' के कुल<sup>५</sup> पद्य जय के तम प्राप्त होत है । पत्ति महेश कुमार ने जयन्त की 'पापमजरी' की रचना साल ई० मा ८०० के लगभग मानकर हरिभद्र का समय ८०० ई० के बाद का स्वीकार किया है<sup>६</sup> । किन्तु यह निधि मान लेने पर हम उन्हें उद्यातन मूर्ति का गुरु नहीं मान सकते । नमिचन्द्र नाम्ना के अनुसार समस्त हरिभद्र और जयन्त इन नामों के किमो एक ही पूर्ववर्ती रचना में उक्त पद्य का उद्घरण किया है ।<sup>७</sup>

मनीषनपचत्र के रचयिता मन्ना का निर्देश हरिभद्र ने अनन्तजय

१ गति जिन गिराय—हरिभद्रनामक मन्त्र गिराय ।

२ यथा पृ० १ ।

३ नमि चन्द्र नाम्ना—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिभाषण पृ० ८६ ।

४ 'पापमजरी' विज्ञान नगर मस्तरण पृ० १२०—'सम्पत्ति गङ्गाकाय'—निर्मल गिरिहारा । रात्रिमयल व्याजनाममन्त्रिणिय ॥ त्रिगता विष्णुनामगिरिगात विषय । युधि धर्मिचरन्ति नव प्रथम प्रथम ॥ सिद्धिपिनिचय टोका का प्रस्तावना, पृ० १२ ॥

५ नमिचन्द्र नाम्ना—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिभाषण पृ० ४६ ॥

पनाका की टोका में किया है। नेमिचन्द्र शास्त्री वं अनुसार हरिभद्र सूरि मल्लवानी के समसामयिक विद्वान थे जिसका काल ८२७ ई० न आम पास माना गया है। अतः कुवल्लभमाला कहा वं रचयिता उद्योतन सूरि वं शिष्यत्व को ध्यान में रखने हुए हरिभद्र का समय ७३० ई० से ८३० ई० तक माना है।<sup>१</sup>

अतः उपरान्त तर्का का ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि हरिभद्र सूरि ७०० ई० वं वात् में लेकर ८२७ ई० के कुछ वात् तक जावित रहे। जबकि ऊपर हरिभद्र द्वारा उल्लिखित अपने पूर्व जाचार्यों की मृची में दात रचित का काल ७०५ ई० से ७२२ ई० तक बताया गया है। अतः स्पष्ट है कि यदि गान रचित का तिथि मही है तो हरिभद्र ७०५ ई० के वात् ही हुए हाने। मुनि जिन विजय न नका जा का निर्माण ७०० स ७७० ई० तक किया है वह ७०५ ई० के वात् का ही तक मगत प्रगात होता है और हरिभद्र सूरि का मल्लवानी की समसामयिकता का ध्यान में रखते हुए उनकी तिथि ७३० ई० वं वात् से लेकर ८३० ई० के लगभग मानी जा सकती है।

## हरिभद्र सूरि का जीवन वृत्तान्त

हरिभद्रसूरि की ही रचनाया से उनके जीवन वृत्तान्त सम्बन्धी कुछ विवरण प्राप्त हाने है। आवश्यकमून टीका प्रसक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हरिभद्र श्वेताम्बर सम्प्रदाय वं विद्याधरगच्छ वं शिष्य थे। गच्छपति अष्टाय का नाम जिन भट्ट और दीक्षा गुरु का नाम जिनन्त था। इनका धर्ममाता याकिनी महत्तरा थी।<sup>२</sup> मुनिचन्द्र द्वारा रचित उपदेशपद टीका प्रगति (१८७४ ई०) जिनन्त का गणधरमाधशतक (११६८ से ११२१ ई०) प्रभाचन्द्र का प्रभावकरित (वि० सम्वत् १३३८) राजशेखर द्वारा रचित प्रत्यक्षाप एव सुमतिगणि द्वारा रचित 'गणधरमाधशतक वहु' टीका (वि० स० १२८५) आदि वं आधार पर हरिभद्र सूरि का जीवन वृत्तान्त स्पष्ट होता है। ये राजस्थान के चित्तूर (चित्तौड़) नामक स्थान में जन्म लिये थे। इनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था और अपना विद्वत्ता वं कारण ही वहाँ के राजा जीताय के राज पुराहित नियुक्त हुए थे। बाद में इन्होंने दीक्षा ग्रहण कर

१ नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परि-  
गालन पृ० ८६।

२ वही पृ० ४७॥

३ नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र सूरि के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक  
परिशासन, पृ० ४८॥

जन भ्रमण के रूप में अपना जीवन राजपूताना और गुजरात में व्यतीत किया। समराइच्च कहा का कथा में उल्लिखित जनपद एवं नगर आदि के वणन के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिमद्रमूरि ने समस्त उत्तर भारत का भी भ्रमण किया था। किन्तु उनकी रचनाओं में शिण भारत का विशेष वणन नहीं मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि हरिमद्र ने मुख्यतया उत्तरी भारत, राजपूताना और गुजरात में ही भ्रमण के रूप में भ्रमण किया होगा।

हरिमद्र मूरि के जीवन की महत्वपूर्ण घटना उनका धर्म परिवर्तन है। उनका यह प्रतिपादित है कि जिसका बचन में स्वयं ने समझा उनका निष्पत्ति हुआ। मयावत हरिमद्र मूरि एक बार एक शिण्ड हुए हाथी से बचने के लिए याकिना महत्तरा नाम की माधवी के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने उस माधवी द्वारा हरिणग चक्कीण बसवो चक्की। बसव चक्की बसवदुचवरी बसव चक्की यहाँ कह गये गाया का अध न समझने पर साध्वी ने उसका अध पूछा। साध्वी ने उन्हें गच्छ पनि आचाय जिमटट के पास भेजा और आचाय ने अध सुनकर व उन्होंने के द्वारा शिण्डित हो गये। कालान्तर में वह उन्हीं के पटटधर आचाय बन गये।

हरिमद्र मूरि ने अपने का याकिनी मूनु कहा है क्योंकि याकिना महत्तरा के हा प्रभाव से उन्होंने अपना धर्म परिवर्तित कर जन धर्म में शिण्डा ग्रहण की थी। मुख्य रूप से उन्होंने याकिनी को अपनी धर्म माता स्वीकार किया। हरिमद्र मूरि भयविरह मूरि अथवा विरहाङ्क बवि के रूप में भी जाने जाते थे जिसका उल्लेख उद्यान मूरि के शुक्लयमाला कहा तथा हरिमद्र की स्वयं की रचनाओं में आया है। हरिमद्र ने अपने ग्रंथों का अन्तिम भाग तथा दण्ड में कभी भव विरह और कभी विरहाङ्क बवि आदि का प्रयोग किया है।

हरिमद्र मूरि जिमटट आचाय के पास जल गये तो उनसे धर्म का फल पूछा। आचाय ने धर्म के दो भेद बतलाये—नस्पह (मराम) और निस्पह (निष्काम)। मरामधर्म का आचरण करने वाला स्वर्गीय सुख का भागी बनता है तथा निष्काम धर्म का आचरण करने वाला भव विरह भाग (जिस जरा मरणादि का लक्षण पना) का अनुगामी होता है। हरिमद्र ने भव विरह का ही धर्म समझ कर ग्रहण किया<sup>१</sup>। अतः शिण्डा के द्वारा नमस्कार या बचना नियम आदि पर व उनसे भव विरह करने में उद्यमवन्त होकर बह्वर आचार्या

१. शिण्डा द्वारा शिण्डित समराइच्चवहा का प्रस्तावना पृ० ८ ॥

२. शिण्डा का शिण्डा—हरिमद्र मूरि के प्रकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक शिण्डित पृ० ५० ॥

देते थे । भक्त लोग भव विरह सूरि चिन्जीवी हा कहते हुए प्रस्थान कर दते थे । इस प्रकार 'भव विरह' रूप में लोक प्रिय होने के कारण हरिभद्र ने स्वयं भव विरह गीत को ग्रहण किया और उसी नाम से कवि अथवा आचार्य कहे जाने लगे ।<sup>१</sup>

## रचनाएँ

आचार्य हरिभद्र सूरि द्वारा लिखे गये ग्रन्थों की सूची के विषय में विद्वानों में मतभेद है । अमरदेव सूरि ने पचासवें की टीका में मुनि चन्द्र ने उपदेश पत्र की टीका में और वासिदेव सूरि ने अपने स्यादवाच्य रत्नाकर में हरिभद्र का १४०० प्रकरणा का रचयिता बताया है । राजेश्वर सूरि ने अपनी अष्ट दीपिका में तथा विजय लक्ष्मी सूरि ने अपने उपदेश प्रसाद में इनको १४४४ प्रकरणा का प्रणयनकर्ता माना है ।<sup>२</sup> राजेश्वर सूरि ने अपने प्रबंध काश में इनकी रचनाओं की संख्या १४४० बतायी है ।<sup>३</sup> लेकिन अब तक के उपलब्ध ग्रन्थों की सूची देखते हुए लगभग १०० ग्रन्थों के नामों का पता लगा जा सकता है जो हरिभद्र सूरि द्वारा रचित कह जा सकते हैं । डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने हरिभद्र सूरि का रचनाओं का एक तालिका दी है<sup>४</sup> जिनमें आगम ग्रन्थों और पूर्वाचार्यों की कृतियों पर टीकाओं की संख्या १६ है । स्वरचित ग्रन्थों में टीका सहित मौलिक ग्रन्थ ७ हैं एवं टीका रहित मौलिक ग्रन्थ जिनमें समराइच्च कहा घृताख्यान पदद्वय समुच्चय आदि ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं की संख्या २७ है तथा कुछ सन्निध्य रचनायें भी हैं जिनकी संख्या ४३ है ।

## समराइच्चकहा की सप्तित कथावस्तु

समराइच्चकहा की कथा नौ भवों में कही गई है । इन नौ भवों में समरात्रिय के नौ जन्मों की कथा आई है । प्रथम भव में गुणभेद और अग्नि गमा की कथा कही गई है । अग्नि शमा अपने बान्ध्यावस्था के संस्कार और हीनत्व की भावना के कारण ही गुणभेद द्वारा पारण के दिन भूल जाने के कारण उसका ऊपर क्रुद्ध हो जाता है और जन्म-जन्मान्तर तक बन्धुत्व का भावना लेकर मृत्यु का प्राप्त होता है । परिणामतः वह अनन्त समार की ओर अग्रसर होता

१ नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र सूरि के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिचालन पृ० ४५ ॥

२ यही पृ० ५१ ॥

३ यही पृ० ५१ ॥

४ यही पृ० ५२-५४ ॥

ह। इधर गणसन पञ्चाताप की अग्नि में जलने हुए अपने सात्विक गुणा व कारण घम की आर उन्मुख होना ह। अत में तनों मर कर दूसर जन्म में पिता और पुत्र रूप में उत्पन्न होने ह। गुणमेन मिह कुमार के रूप में तथा अग्नि गर्मा जानक रूप में जन्म लेत ह जिनकी कथा दूसरे भव में बही गई ह। जानन्द अपने पिता मिह कुमार द्वारा लिये गये गाय स सतुष्ट न होकर पूवजन्म के सक्न्प व अनुमार पिता का बन्दी बना लेता ह और अन्त में मार जाता ह। तृतीय भव में अग्नि गर्मा की आत्मा जालिनी और गुणमन की आत्मा सिस्तिन के रूप में चित्रित लिये गये ह। इस भव में भी माता जालिनी अपने पत्र सिस्तिन का अपने पूज जन्म व प्रण का लभ्य बनामी ह और विषमिश्रित ऋद्धि विला कर मार डालता ह। चतुर्थ भव में वही गुणसन और अग्नि गर्मा क्रमशः धन और धनधी (पति-पत्नी) रूप में लिये गये ह और अत में धन भा धनश्री व पूवजन्म व काप का भाजन बनता ह। पंचम भव में जय और विजय की कथा बही गई ह। इस भव में विजय कुमार पूव जन्म व कुरिमत सम्कार व ही पञ्स्वरूप जय का पदग्रस स मार डालता ह। छठे भव में धर्म और लम्बा का कथा बही गई ह जो परस्पर पति और पत्नी व रूप में चित्रित किये गये ह। इस भव में भी लम्बी (पत्नी) का वस्त्र की नायना प्रचलित होना ह और धर्म का मार डालन का पदग्रस करता ह। सातम भव में सेन और विनाय की कथा बही गया ह और अत में सेन धर्मन घम का आचरण करने हुए धर्मन करता ह तथा विनाय उम पूव भव व विकार न उत्तरप्र पाप व कारण मारने का प्रयास करता ह किन्तु क्षेत्र देवता व प्रभाव न अगस्त रहता ह। आठवें भव में गुण चन्द्र और वानमतर की कथा आना ह। गुण चन्द्र अपन पूव जन्म व मन्त्रमों व प्रभाव न गुद्ध आत्मा तथा वानमतर आत्मा द्वारा उत्तरप्र विचार व पञ्स्वरु दुष्चरित्र बनता ह। इस भव में भी वानमतर गुणचन्द्र का मारन का निरन्तर प्रयास करता ह लेकिन वह गुणचन्द्र व अन्तर उत्तरप्र लवी प्रभाव व कारण अगस्त रह जाता है। अत में नवें भव में ममराइच्च और गिरिपेण का कथा बही गयी ह। ममराइच्च अपन पूव जन्मों व मन्त्रमों व प्रभाव न संगार न निवृत्त हो जाता ह और मोक्ष प्राप्त करता ह। जबकि गिरिपेण अपन पुण्याकारण व परिणाम स्वल्प ममराइच्च की व प्राप्त होता ह।

ममराइच्चवहा अपन ममरा का संस्कृति एवं सामाजिक जीवन विद्या का एक प्रमुख स्थान है। इस क्षेत्र में प्राचीन भारत व अत तथा पूव मध्यका व प्राचीन व सामाजिक आर्थिक गठननिक एवं धार्मिक मण्डलों का नया रूप मिलता ह। प्रमुख प्राचीन का न वजी आ गता भारतीय

परम्पराओं का ह्याम तथा नयी चेतना का विकास इस ग्रन्थ की विशेषता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय सामाजिक परम्पराओं का क्रमिक ह्याम तथा नये सामाजिक संगठना का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ इसका प्रमाण और विवेचन हमें सम्राट्चक्रहा में देखने की मिलता है।

इस ग्रन्थ के रचयिता श्वेताम्बर जैनाचार्य हरिभद्र सूरि हैं। बौद्ध धर्म का आचरण करने वाले तपस्वी एवं मुनिजनों के आचार एवं विचार का यत्र तत्र वर्णन करने हुए जन विचारों की विशेषता बता कर जन धर्म में लाला का प्रवृत्ति पैदा करना इस ग्रन्थ का लक्ष्य है। सम्राट्चक्रहा एक जन ग्रन्थ होने के साथ-साथ आठवीं शताब्दी के भारत की सम्प्रदायों एवं प्रचलित विचार धाराओं की सूचना का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का सूचनायें जन धर्म में प्रभावित जान पड़ता है जिसकी दृष्टि पस्तुत गोप्य प्रवचन के अध्याया में यथाचित की गयी है।

सम्राट्चक्रहा तत्कालीन समाज की आर्थिक अवस्था का एक प्रधान स्रोत है। देश के अन्तर तथा देश के बाहर के बोधा के साथ जलमार्गों द्वारा व्यापार का जितना मुविस्तत उल्लेख सम्राट्चक्रहा में मिलता है उतना अन्यत्र विरल है। उस समय के व्यापारियों के सामने स्थल एवं जल मार्गों में उत्पन्न कठिनाइयों का विस्तृत वर्णन सम्राट्चक्रहा में देखने का मिलता है। इस ग्रन्थ की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके अधिकतर पात्र व्यापार एवं वाणिज्य करने हुए मिललाये गये हैं और इन्हीं नायकों का अन्त में जन धर्म में प्रवृत्त हुआ मिललाया गया है। सम्भवतः जन धर्मवर्धनियों के मिष्टान्त में कृषि काम की प्राथमिकता न देकर व्यापार-वाणिज्य का अधिक प्रथम दिया गया है जो अहिंसावादी जन धर्म के प्रभाव के कारण प्रतिपादित जान पड़ता है।

सम्राट्चक्रहा के प्रत्येक भव का क्या शिल्प, वण्य विषय, चरित्र स्थापत्य, सस्कृति निरूपण एवं सदेग आदि विभिन्न दृष्टियों में महत्वपूर्ण है। यहाँ आग और यथाय का मध्य निहा कर अन्त में आग की प्रनिष्ठा का गयी जान पड़ती है। कुछ अन्य विचारों का न भा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि भारतीय सस्कृति एवं सभ्यता का यथाय मान प्राप्त करने के लिए प्राकृत क्या माहित्य बहुत ही उपयोगी है। जनसाधारण में लेकर राजा महागजाओं तक के चरित्र का जितने विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ प्राकृत कथाकारों ने चित्रित किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। प्रायः सभी प्राकृत कथाओं में यह

१. नमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आगवनात्मक परिशीलन पृ० ३९९।

स्पष्ट रूप से देखने का मिलता है कि व पाठका के समग्र जगत का यथाथ उपस्थित कर आम क्याण की आर प्रवृत्त करने वाला सिद्धान्त उपस्थित करते हैं।<sup>१</sup> समराइच्चवहा के हर भव में प्रायः ये सारी विगपताएँ पायी जाती हैं।

यह प्राकृत क्याण आगम काल से ही प्रारम्भ होकर षट्त्रहवीं-सालहवीं गताब्दी तक विकसित होती रही। इन प्राकृत क्याणों में समाज और व्यक्ति की विवृतियाँ पर प्रहार कर उनमें सुधार लाने का प्रयास किया गया है। प्राकृत क्या साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि क्याकारा ने लोक प्रचलित क्याओं का लोक प्रचलित जन भाषा में व्यक्त किया और उन्हें अपने धार्मिक ढाँच में ढाल कर धर्म प्रचाराय एक नया रूप दिया। विटरनिम्न ने भी प्राकृत क्या साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालने हुए—लिखा है कि जनों का क्या माहित्य वास्तव में विनाश है। साहित्य को अथ गायताओं की अपेक्षा हमें जन माधारण व जीवन की सक्रियता स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। जिस प्रकार इन क्याओं की भाषा और जनता का भाषा में अनेक साम्य है उसी प्रकार उनका वष्य विषय भी विभिन्न वर्गों के वास्तविक जीवन का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है।<sup>२</sup> उही के विचार में जन आचार्यों ने जन मामाथ के हित का ध्यान में रखते हुए प्राचीन जन आगम ग्रंथ तथा उनपर प्रारम्भिक टीकाएँ प्राकृत भाषा (मागधी और महाराष्ट्री) में लिखा जा सबमाधारण का भाषा थी।<sup>३</sup> समराइच्चवहा आठवीं-नौवीं गताब्दी का जनप्रचलित भाषा में अन्तिम एक बहुद् क्या माहित्य है जिसमें राजा महाराजाओं ने स्वयं समाज के निम्नस्तर तक का व्यक्तियाँ का महा स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें तरागात भारताय समाज में प्रचलित रानि रिवाजा रहन-सहन व ढग, सामाजिक गगठन राजनानिक आदिक एवं धार्मिक स्थिति का स्पष्ट चित्राचन किया गया है। प्राकृत क्या माहित्य में हमारा अपना विनिष्ट स्थान है जो प्राकृत क्याओं का अपूर्ण विगपताओं का महार स्वरूप जान पड़ता है।



१. ममिन्द्र शास्त्रा—हरिम व प्राकृत क्या साहित्य का आगमनामक पणिगणन पृ० २००।

२. विटरनिम्न—हिन्दु आर इस्लाम विटरपर भाग २, पृ० ६७१।

३. वहा पृ० ६७३।

## द्वितीय-अध्याय

# भौगोलिक उल्लेख

समराइच्च कहा में भारत की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत पूरव में कामरूप आसाम पश्चिम में हस्तिनापुर, दक्षिण में मौराष्ट्र और उत्तर में हिमालय तक के प्रदेश का उल्लेख है। इस सीमा के बाहर कुछ द्वीप यथा—चीन द्वीप सिंहल द्वीप रत्न द्वीप, महाकटाह आदि का उल्लेख है। विभिन्न द्वीपों और नगरों के साथ-साथ अनेक वन पर्वत और नदियों का भी उल्लेख है जिनके आधार पर हरिभद्र द्वारा उल्लिखित भारत की भौगोलिक दशा का वर्णन किया जा सकता है।

## द्वीप

समराइच्च कहा में निम्नलिखित द्वीपों का उल्लेख मिलता है।

जम्बू द्वीप<sup>१</sup>—समराइच्च कहा में जम्बू द्वीप की स्थिति आदि के बारे में विस्तृत उल्लेख नहीं है। किन्तु जन परम्परा में इस द्वीप का विशेष महत्व बताया गया है। जम्बू वक्ष के नाम के कारण ही इस द्वीप का नामकरण हुआ। इसका आकार गोल है और इसके मध्य में नाभि के समान में पर्वत स्थित है। जम्बू द्वीप का विस्तार १००००० याजन है और परिधि ३ १६२२७ योजन ३० कोस १२८ धनुष १२॥ अंगुल बताई गयी है।<sup>२</sup> इसका घनाकार क्षेत्र ७९० कराह ५६९४१५० याजन है।<sup>३</sup>

जम्बू द्वीप (एशिया) हिमवन्त (हिमालय) महाहिमवन्त, निपद्य, नील श्विम और गिरिवरी—इन पर्वतों के कारण भरत हिमवन्त, हरि विश्व रम्यक हृदयवन्त और ऐरावन्त नाम के साथ क्षत्र में विभाजित है।<sup>४</sup> भरत क्षत्र २५६६६ योजन विस्तार वाला है जो शुद्ध हिमवन्त के दक्षिण में तथा पूर्वी और पश्चिमी

१ सम० क० १, प० ७५ २ पृ० १३०, ३, पृ० १६२ ४ पृ० ३६३, ६, पृ० ५७६, ७ पृ० ६१२ ७१३ ८, प० ७३१।

२ हरिवन् पुराण जानपीठ संस्करण, ५१४५।

३ वही ५१६७।

४ जगन्नीश चन्द्र जन—जनाग्रम साहित्य में भारतीय समाज परिनिष्ठ १ पृ० ४५६।



समुद्र व बीच स्थित है। इस क्षेत्र के बीचोबीच वताव्य पवत स्थित है। गंगा मिथु आदि नदियों तथा इस वताव्य पवत व कारण यह क्षेत्र छ भागों में विभाजित है।<sup>१</sup> बिन्दु क्षेत्र पूर्व विदेह, अपर बिन्दु दक्कुर और उत्तर कु नामक चार भागों में विभक्त है। इसी प्रकार पूर्व विदेह और अपर बिन्दु अनेक विजया में विभक्त है।<sup>२</sup>

जम्बू द्वीप के बाचाबीच सुभ्र पवत है<sup>३</sup> जिसकी उचाई एक लाख याजन बतायी गयी है। यह द्वीप चारों तरफ लवण समुद्र (हिन्द महासागर) से घिरा है।<sup>४</sup>

चीन द्वीप<sup>५</sup>—समराड्चक्कहा में चीन द्वीप की भौगोलिक स्थिति का उल्लेख नहीं है। अपितु भारतीय व्यापारियों द्वारा व्यापार के निमित्त उक्त द्वीप की यात्रा का वर्णन है। तिब्बत चूर्णों में भी चीन द्वीप का उल्लेख है।<sup>६</sup> चीनी रणम के लिए यह द्वीप प्रसिद्ध था। यह वर्तमान पूर्व एशिया का मध्यवर्ती सुप्रसिद्ध एक विस्तृत देश है। पारसिक के अनुसार चीन द्वीप के अन्तर्गत तिब्बत तथा हिमालय की पूरी शृङ्खलाएँ सम्मिलित थी।<sup>७</sup> इस विस्तृत देश के पूर्व में चान सागर एक पाला सागर अर्थात् पूर्व में उक्त द्वीप पश्चिम में तिब्बत तथा उत्तर में प्रसिद्ध चान की प्राचीर (शेवाल) है।

महाकटाह द्वीप—हरिभद्र कालीन भारतीय व्यापारियों के ज्ञापन महाकटाह द्वीप का भी आया-जाया करत थे।<sup>८</sup> प्राचीन काल का ही आधुनिक केडाह नाम से जाना जाता है जो मलया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर स्थित है।<sup>९</sup>

भारत के प्रसिद्ध समराड्चक्कहा क्षेत्र की न भारतीय जनज महाकटाह की तरफ

१ जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति १।१०।

२ जगन्नाथ चन्द्र ज्ञान—जगन्नाथ गाहिर में भारतीय सम्राट् परिनिष्ठ १ पृ० ६५६।

३ या० गा० ला—हिन्दु हिन्दुस्तान पृ० ४।

४ जगन्नाथ चन्द्र ज्ञान—जगन्नाथ गाहिर में भारतीय सम्राट् परिनिष्ठ १ पृ० ६६।

गम० क० ६ पृ० ५४० ४१ ५४ ५२ ५५।

५ तिब्बत चूर्णों २ पृ० ३००।

६ भारत-पुराण गाहिर द्वारा अनुनिष्ठ-पृ० १०।

७ गम० क० ६ पृ० २५० २ पृ० ४२६ ७ पृ० ७१३।

८ अर० मो० मद्रास-मुद्रा-पृ० ५१।

प्रस्थान करने थे। बटाह द्वीप का स्थानीय नाम बडाह द्वीप था।<sup>१</sup> क्यागरि-  
त्मागर में बटाह का मध्य एवं उत्तरी-गाल द्वीप बताया गया है।<sup>२</sup> प्रसिद्ध  
कहाना 'व्यमित' में गुहामन द्वारा ताम्रलिप्ति वंशराज से बटाह द्वीप तक की  
यात्रा का उत्सव प्राप्त होता है।<sup>३</sup> यह बटाह द्वीप ही महाभट्ट द्वीप का नाम  
से प्रसिद्ध था।

रत्न द्वीप—समराट्त्व कहा में व्यापारिया व जलयान द्वय मग्न व  
निमित्त अथ द्वीपों के माय-माय रत्न द्वीप का भा जाते थे।<sup>४</sup> मभवत यह भाग  
भारत और चान व बीच एक टापू था जहाँ रत्न की प्राप्ति का सन्त प्राप्त  
होता है। तत्कालीन चीन द्वीप का प्रस्थान करने वाल भारतीय व्यापारिया के  
जलयान रत्न द्वीप में भा खने थे जो रत्न गिरि नामक पर्वत व पाग  
स्थित था।<sup>५</sup>

सिंह द्वीप—समराट्त्व कहा में व्यापारिक जलयान ताम्रलिप्ति से सिंह  
द्वीप जाते जान सिंहाई देने है।<sup>६</sup> मग्न पुराण तथा बामु पुराण में भी इस द्वीप  
का नाम आया है।<sup>७</sup> यह द्वीप भारत के दक्षिण में स्थित है और रामेश्वर तथा  
संतुर्धु नामक पर्वत तथा जलगमस्य जलमार्ग द्वारा भारत व माय मिला हुआ  
है। इन तरह व गल और द्वीप अणी व रहने पर भी उमक अन्दर से नाव  
तथा जहाज के जाने का मार्ग है।

सुवर्ण द्वीप—समराट्त्व कहा में सुवर्ण द्वीप का भी उल्लेख प्राप्त होता  
है।<sup>८</sup> इस स्वर्ण प्राप्ति का सोन समझ कर लग सुवर्ण भूमि भी कहा करने थे।  
यह द्वीप आधुनिक सुमात्रा के नाम से जाना जाता है। मलय उप-द्वीप और चान  
सागर की हिम महामागर से पक्क रखकर सुमात्रा येनग का एक समानांतर  
रेखा से आरम्भ होकर वण्टम का समांतराल रेखा तक विस्तृत है। इसका  
लंबाई ९२५ मील और चौड़ाई ९० मील व करीब है। क्यासरिमागर में भी

१ व० १० मीलकात गास्त्री—नी चोलाज, पृ० २१८।

२ आर० सी० मजूमदार—सुवर्ण द्वीप पृ० ५१।

३ वही पृ० ५१।

४ सम० व० २, पृ० १२६—त्र सगह निमित्त गया रयणीव। विटताड  
रयमग कया सजुत्ती पयटानिपशमागन्त।

५ वही ६ पृ० ५४५।

६ सम० ७० ४ पृ० २५४ ५ पृ० ३९९ ४०३ ४०७ ४२०

७ आर० सी० मजूमदार—सुवर्ण द्वीप पृ० ५१।

८ सम० व० ५ पृ० ३९७ ३९८, ६ पृ० ५४० ५४४।

भारनाय व्यापारिया के जलयान व्यापार के निमित्त सुवर्ण द्वीप को आते-जाते दिखाए गए हैं।<sup>१</sup> इस द्वीप का प्रसिद्ध नगर कालमापुर था जो व्यापारिक गामप्रिया के त्रय विक्रय का केंद्र था।<sup>२</sup> इसके साथ-साथ सुवर्ण द्वीप का उल्लेख प्राक ऐतिहासिक अरबी और चीनी लेखों एवं साहित्य में भी मिलता है।

## जनपद

द्वीप की भूमि समराइच्च कहा में कुछ अधालिखित जनपदों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनसे हमें हरिभद्रमूरि कालीन भारत की स्थिति एवं समृद्धि भाँति की जानकारी प्राप्त होती है।

अवन्ति—समराइच्च कहा में इस एक जनपद के रूप में बताया गया है।<sup>३</sup> किन्तु इसकी स्थिति आदि पर प्रकाश नहीं डाला गया है। यह प्राचीन भारत के सालह महाजनपदों में से एक था।<sup>४</sup> पौराणिक परम्परा के अनुसार इस जनपद को मध्य देश के अन्तर्गत बताया गया है।<sup>५</sup> ऐसन के अनुसार उज्जैन अथवा उज्जयिनी जो कि अवन्ति की राजधानी थी तथा सिन्धु नदी के तट पर स्थिति थी आधुनिक मध्य भारत अथवा मालिखर में स्थिति उज्जैन है।<sup>६</sup> बौद्ध साहित्य में उज्जयिनी से माहिष्मती तक के प्रदेश का अवन्ति जनपद के अन्तर्गत माना गया है।<sup>७</sup> शीघ्रनिवाय के अनुसार माहिष्मती कुछ समय तक अवन्ति की राजधानी थी।<sup>८</sup> इस जनपद में अत्यधिक अन्न पैदा होता था तथा वहाँ के लोग धनी समृद्ध एवं सुहाल थे।<sup>९</sup> जन श्रम निराचक्षुर्णों में भी अवन्ति को एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है जिसका राजधानी उज्जयिनी थी।<sup>१०</sup>

प्राचीन अवन्ति दो भागों में बँटा था उत्तरी भाग जिसकी राजधानी उज्जैन

१ आर० गी० मज्झिमगर-सुवर्ण द्वीप पृ० ३७ ६४।

२ कथा गरिमागर तरंग ५४ पंक्ति ७३।

३ मम० क० ० पृ० ५९ अन्वयाय समानता अवन्ति जनपद।

४ बा० गा० ला—हिमालयिका ज्योतिषी आप एमिपेट इटिया पृ० ५८ ३६२॥

५ मध्य पुराण प्रथम स्कन्ध पृ० ६० ६०१ ६॥

६ ऐसन—ऐमिपेट इटिया पृ० १७९॥

७ नमिपेट टास्त्रा—आरि पुराण में प्रणिपाति भाग्य पृ० ६६॥

८ शीघ्रनिवाय २ २३०॥

९ अदुत्तर निवाय ८ २५०-२५६-२६२॥

१० निवाय पूर्ण १ पृ० १ १०२॥

थी तथा जिनका भाग (जिनका अर्ध) जिनकी राजधानी माहिष्मती थी ।<sup>१</sup>  
यह जनपद वतमान माठवा का वह भाग है जिनकी राजधानी उज्जयिनी थी ।

उत्तरापथ—समराट्ज्य कहा में इसे जम्बूद्वीप व भारतवर्ष में स्थित एक विषय (जनपद) के रूप में बताया गया है<sup>२</sup> । उत्तरापथ का उल्लेख निरायचूर्णी में भी आया है<sup>३</sup> । यह पृथ्वी का उत्तरा भाग या जिनका (पृथ्वी का) वतमान नाम पिहावा है तथा जो सरस्वती नदी के तट पर स्थित है । यह वतमान मयुरा जिले का भूभाग यह है<sup>४</sup> । इस जनपद की जलवायु या ता अधिक गरम रहती थी या ता अधिक ठंड तथा घड़ा वर्षा खूब होती थी ।<sup>५</sup>

करहाटक—समराट्ज्य कहा में इसका उल्लेख एक जनपद के रूप में हुआ है ।<sup>६</sup> महाभारत में पात होता है कि पाण्डव कुमार महर्षि ने करहाटक का जीता था ।<sup>७</sup> आदि पुराण में भी इस जनपद का उल्लेख है<sup>८</sup> जिसके दक्षिण में वज्रवती तथा उत्तर में कोहना की स्थिति बताया गया है । नेमिचन्द्र नास्त्री ने इसकी पहचान सतारा जिले के कराड में की है ।<sup>९</sup>

कलिंग—समराट्ज्य कहा में भी एक विषय (जनपद) के रूप में उल्लिखित किया गया है ।<sup>१०</sup> अष्टाध्यायी में भी कलिंग जनपद का उल्लेख है<sup>११</sup> । मनावश में कलिंग और वज्रपेश के राजाओं के बीच श्वाहिक संधा का वर्णन है ।<sup>१२</sup> कलिंगराज तारवेल के हाथी गुप्ता अभिलेख से पात होता है कि उसने

- १ ज्योग्राफिकल इन्साइक्लोपीडिया आफ ऐंमियट एण्ड मेडिकल इंडिया पृ० ४०-४१ ।
- २ सम० क० ७ प० ७११—जिसे इहव जम्बुद्वीप भागहेवामे उत्तरापथे विसये—गया ।
- ३ निशीधचूर्णी १ प० २० ५२ ६७ ८९ १५४, २ प० ८२, ९५ ३ प० ७९ ४ प० २७ ।
- ४ मधनारण—एक चरल्लट्टी आफ निशीध चूर्णी प० ४०६ ।
- ५ वही, प० ४०६ ।
- ६ सम० क० ४ प० ३०८—इआ म करहाड्य विसये घन्नऊरय सतिवसमि ।
- ७ महाभारत—सभा पर्व अध्याय ३१ ।
- ८ आदि पुराण, १६।१५४ ।
- ९ नेमिचन्द्र नास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत पृ० ५१ ।
- १० सम० क० ४ प० ३१८—मा कलिंग विसये समुप्यन्तो तथा प० ३२६ ।
- ११ अष्टाध्यायी ४।१।१७० ।
- १२ बी० सी० ला—ज्योग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्य प० ४०४-९५ ।

अग एव मग्न मे जिन प्रतिमा का लाकर यहा स्थापित की थी । कर्लिंग का राजधानी कचनपुर (भुवनेश्वर) थी<sup>१</sup> । कर्निधम के अनुसार कर्लिंग जनपद की पथम राजधानी चिन्ताकोट थी जा कर्लिंग पाठम मे २० मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित थी । यह जनपद ५००० ली अथवा ८३३ मील विस्तृत था ।<sup>२</sup> कर्लिंग जनपद में तामलि नामक एक महत्वपूर्ण स्थान था जहा तीर्थकर महावीर न विहार किया था । यहा पर तामलिक नामक एक क्षत्रिय राजा था जो जन धर्म का प्रेमी था यहा एक सुन्दर जिन प्रतिमा भी विद्यमान था ।<sup>३</sup>

कामरूप—गमगाइच्चवहा में कम मात्र एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है<sup>४</sup> किन्तु इसकी स्थिति आज पर प्रमाण नही पता । कर्निधम के विचार में कामरूप असम का प्राचीन नाम है जा मध्य भारत में पुण्डरीक (पटना) के ० ० ७१ अथवा १५० मील पूर्व में स्थित था ।<sup>५</sup> समस्त यह जनपद १० ००० ली अथवा १६०० मील विस्तृत भूभाग वाला था ।<sup>६</sup> इसके उत्तर में मग्न पूर्व में नी गांग तथा नग्न जिन दक्षिण में खासी की पहाडिया और पश्चिम में गापर स्थित था<sup>७</sup> । इसकी राजधानी प्रागज्योतिषपुर थी ।<sup>८</sup> कामरूप का बृहद् भाग एक लम्बे मग्न के रूप में है जिनके निचले भाग में ब्रह्मपुत्र नदी (पूर्व में पश्चिम का तट) बहता है । इस नदी के दक्षिण बाग भाग पहाडियों के द्वारा अधिक दृढ़ हुआ है ।<sup>९</sup> इसकी पहचान आधुनिक गौहाटी से का गया है ।<sup>१०</sup> नगवधन के समय में वहा का राजा भाण्डर वमा था ।

काशी<sup>११</sup>—गमगाइच्चवहा में काशी का उल्लेख एक जगत् के रूप में हुआ

१ आज नियन्त्रि भाष्य ३०।७ ।

२ कर्निधम—कैमियट ज्यावाकी आफ इडिया पृ० ५५० ।

३ नमिचन्द्र नाम्नी—आज पुराण में प्रतिपादित भारत पृ० ५१ ।

४ मम० क० ० पृ० ००४—अजि कामरूप विमये मयउरनामापद ।

५ ज्योतिष—हूनगांग पृ० १७६ ।

६ कर्निधम—कैमियट ज्यावाकी आफ इडिया पृ० ५७२-७३ ।

७ या० गा० ला—द्विस्तान्त्रि ज्यावाका आफ कैमियट इडिया पृ० २६८ ।

८ कर्लिंग पुस्तक अध्याय २८ ।

९ या० गा० लैन्—कामरूप आगाम दिम्बिष्ट राजस्थान नाम ४ अध्याय १ ।

१० राजा आफ नै बवारस कर्निधम नामाग्न १००० पृ० २५ ।

११ मम० क० ८ पृ० ८६५—नजा य पउर पुर्णिगतिना कामिधमिधम शक्ति राया ।

ह। भारत के पवित्र स्थानों में काशी अथवा वाराणसी सबसे प्रसिद्ध था। प्राचीन भारत के षोडश जनपदों में काशी एक जनपद के रूप में उल्लिखित है।<sup>१</sup> पाणिनि की अष्टाध्यायी पतञ्जलि के भाष्य तथा भागवत पुराण में भी काशी का उल्लेख है।<sup>२</sup> वाराणसी का काशी नगरी अथवा काशीपुरी भी कहा गया है।<sup>३</sup> जातक में इस नगर को १२ याजन विस्तार वाला बताया गया है।<sup>४</sup>

काशी जनपद के उत्तर में कौशल जनपद, पूरब में मगध और पश्चिम में वत्स जनपद की सीमाएँ थीं।<sup>५</sup> काशी जनपद में ही वाराणसी के पास सारनाथ में भगवान् बुद्ध ने प्रथम धमचक्रप्रवर्तन किया था।<sup>६</sup> आग्नि पुराण से इस जनपद का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध होता है।<sup>७</sup>

कामरूप—समराट्टिष्ठ कहाँ में एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>८</sup> यह जनसूत्रा का एक प्राचीन आपस था। रामायण तथा महाभारत में भी इस जनपद का उल्लेख है।<sup>९</sup> बृहत्कल्प भाष्य से पता चलता है कि इसी जनपद में अचल गणपति का जन्म हुआ था तथा जीवन्त स्वामी की प्रतिमा भी यही विद्यमान थी।<sup>१०</sup> कासल का प्राचीन नाम विनीता था। कहा जाता है कि यहाँ के निवासियों ने विभिन्न प्रकार की कुशलता प्राप्त की थी इसी कारण विनीता का कुशल नाम से जाना जाने लगा।<sup>११</sup> यह एक स्वतन्त्र जनपद के रूप में था।

- १ मौर पुराण अध्याय ८ पंक्ति ५ कालिका पुराण ५१ ५२ ५८ ३५।
- २ अगुस्तर निकाय १ २१३ ४ २५२, २५६, २६०।
- ३ अष्टाध्यायी ४, २, ११६ महामाय २, १, १, ५० ३२, भागवत पुराण ९ २२-२३, १० ५७, ३२ १० ६६, १० १० ८४ ५५ १२ १३ १७।
- ४ स्कन्द पुराण अध्याय १ १९, २३ योगिनित्त १ २ २ ४।
- ५ जातक ४ ३७७ ६ १७०।
- ६ कैम्ब्रिज हिन्दी आफ इण्डिया १ ३१६।
- ७ दीप निशाय ३, १४१ मज्झिम निकाय, १ १७० मयुस निकाय ५, ८२०।
- ८ आग्नि पुराण १६ १५१ २९, ४७।
- ९ सम०क० ४ पृ० २८८—कोमलाह्विस्म, तथा ४ प० ३३९ कोसलाये विसयम्भि ८ प० ८२१ ८३१।
- १० जगदीशचन्द्र जन—जनागम साहित्य में भारतीय समाज प० ४६८।
- ११ रामायण २।६८।१३ महाभारत १।१३०।२३ ३।१।२।१३।
- १२ बृहत्कल्प भाष्य ५ ५८२४।
- १३ आवश्यक टीका—अन्य गिरि पृ० २१४।

भाग में विभक्त था—उत्तर कामल जिमकी राजधानी थावस्ती थी तथा दक्षिण कामल जिमका राजधानी मावेत नगरी था ।<sup>१</sup> यह बौद्धकालीन पांडम महाजनपदों में से एक था ।<sup>२</sup> यह वर्तमान फजावा जिले का भूभाग है ।

कौकण<sup>१</sup>—जमगाडख कहा में काकण राज का उत्प्रेम मात्र ह । काकण में जन श्रमणा ने विहार किया था । इस स्थ में अत्यधिक वृष्टि के कारण जन श्रमणा का शरीर रगन रा विधान था ।<sup>२</sup> यहाँ मण्डर बहुत हाते थे ।<sup>३</sup> काकण का निवासी फल फूल के बड़ गौरवान् होता थे ।<sup>४</sup> काकण पश्चिमी घाट तथा अरब सागर के बीच का भू भाग था ।<sup>५</sup> हूनमाग के अनुमार काकण द्राविड (काजावरम) में २००० ला जयवा २३० मील उत्तर-पश्चिम में स्थित था ।<sup>६</sup> यह जनपद ५००० ला जयवा ८३३ मील भू भाग में विस्तृत था ।<sup>७</sup> रघुत्रय के अनुसार गंग में इस उपरांत का कहा गया ह ।<sup>८</sup> काकण तथा कम्बुज आदि नगर इसी जनपद के अन्तर्गत थे । गन्धिमगम तत्र में काकण ने पश्चिम गौराष्ट्र और पश्चिमात्तर जामार जनपद की स्थिति मानी गयी ह ।<sup>९</sup> आदि पुराण के अनुमार यह जनपद पश्चिमा समर के तट पर तथा पश्चिमी घाट के पश्चिमी तीर पर अवस्थित था ।<sup>१०</sup> तिगायचूर्णी में भा इस जनपद का उल्लेख आया ह ।<sup>११</sup> कम्बुज के पाग टाणा जिन्हे के सापारा नामक स्थान में इसी पहचान का जा मसती ह ।

- १ ज० मा० मिश्रार—महाभारत श्री भगवद्गीता सूत्र १० ५३५ ।
- २ अमरसर निराय १।२१३ विष्णु पुराण अध्याय ४ ।
- ३ मम० व० ६ पु० ५०१ (गाय काण्डेयपुराणस्य तिस्रोऽध्यायस्य ।
- ४ आचार्यगुरुणां पु० ३६६ ।
- ५ गुरु कृताङ्गताया ३।१।१२ ।
- ६ वृत्तस्य भाग्यवति १।१२३० ।
- ७ हा० गा० मय्यार—महाभारत द्रुपद उपाध्यायी आर लैगियर लन्द मेडिकल  
निरिषा १० ११० ।
- ८ अग्निपत्र—अग्निपत्र पु० १४३ ।
- ९ वनिपत्र—लैगियर उपाध्यायी आर निरिषा पु० ६ २ ३३ ।
- १० गुरुवत् ४ ५८ (अग्निपत्र मय्यार उपाध्यायेन स्पष्टीकृतम्) ।
- ११ गति मय्यार लैग ३ २३ (वृत्तस्य भाग्यवति मय्यार लैगियर लन्द मेडिकल  
निरिषा १० ११० ।
- १२ अग्निपत्र—अग्निपत्र मे अग्निपत्र भाग्य पु० ५६ ।
- १३ अग्निपत्र—१ ५० ५२ १०० १०१ १ ४ २ पु० २९६ ।

गांधार जनपद—ममराइच्च कहा में इसकी स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बताई गयी है।<sup>१</sup> निशायचूर्णी में भी इसका उल्लेख एक जनपद के रूप में किया गया है।<sup>२</sup> शतपथ ब्राह्मण<sup>३</sup> तथा छान्दोग्य उपनिषद्<sup>४</sup> में गांधार का बराबर उल्लेख आता है। मज्झिम निकाय की अट्ठकथा में गांधार को सीमान्त जनपद कहा गया है।<sup>५</sup> अगुत्तर निकाय में इसे षोडश जनपदों में से एक बताया गया है।<sup>६</sup> पार्णिनि की अष्टाध्यायी में भी इसका उल्लेख है।<sup>७</sup> ह्वेनसांग के अनुसार यह जनपद पूरव से पश्चिम में १००० ली से अधिक तथा उत्तर से दक्षिण में ८०० ली से भी अधिक विस्तार वाला था। यह जनपद अत्यधिक उपजाऊ था। यहाँ अत्यधिक गन्ना पैदा होता था तथा यहाँ की जलवायु गम थी।<sup>८</sup> कनिधम के अनुसार गांधार जनपद की सीमा के पश्चिम में लघान तथा जलालाबाद, उत्तर में ह्वेत तथा तूनीर की पहाड़ियाँ पूरव में सिन्धु, तथा दक्षिण में कालाबाग की पहाड़ियाँ स्थित थी।<sup>९</sup> इस जनपद के अंतर्गत रावलपिण्डी तथा पेगावर स्थित था।<sup>१०</sup>

पुण्ड्र—समराइच्च कहा में इसे भी एक जनपद के रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>११</sup> इसकी राजधानी विन्ध्यगिरि के पास स्थित सतद्वार थी।<sup>१२</sup> महाभारत में भी पुण्ड्र राजाओं का नाम आया है।<sup>१३</sup> पुण्ड्रबधन का उल्लेख गुप्त

- १ सम० क० १, प० ४५—रिद्धा मये गांधार जणवपाहिंवस्स समरसेणस्स नत्तुओं, १, प० ४८—अत्थि इहेव विजये गंधारो नाम जणवधा, १, प० ५६।
- २ निशायचूर्णी, ३, पृ० १४४।
- ३ शतपथ ब्राह्मण, ११ ४, ११।
- ४ छान्दोग्य उपनिषद् ६ १४—भीता प्रेस।
- ५ मज्झिम निकाय २, प० ९८२।
- ६ अगुत्तर निकाय १, पृ० २१३ ४, प० २५२, २५६ २६०।
- ७ अष्टाध्यायी ४ १ १६८।
- ८ वाटस—जान युवानच्चाग १, १९८-९९।
- ९ कनिधम—ऐसियट ज्योग्राफी आफ इण्डिया प० ४८, मैकक्रिण्डल—ऐसियट इण्डिया ऐज डिस्क्राइव वाई टालेमी, पृ० ८१।
- १० रैप्सन—ऐसियट इण्डिया, पृ० ८१।
- ११ सम० क० ४ पृ० २७५—अत्थि च्हव भरहमि पुण्ड्रा नाम जणवधो।
- १२ जे० सी० एक्कागर—स्टडीज इन भगवती सूत्र पृ० ५३७।
- १३ महाभारत समा पर्व ७८ ०३।



काल में बुध गुप्त व दामोदर अभिलेख (४८२ ई०)<sup>१</sup> तथा दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख (५४० ई०)<sup>२</sup> में हुआ है। पुण्ड्र जनपद के अन्तर्गत ही पुण्ड्र वधन नामक नगर था जो जन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है।

वत्स—समराइच्चवहा में वत्स देश के राजा का ही उल्लेख है।<sup>३</sup> महाभारत में पता चलता है कि भीमसेन ने पूर्व दिग्विजय के समय इस जनपद को जीता था।<sup>४</sup> काशिकाप्र प्रतज्ञ के पुत्र का पालन गोगाणा में वत्सा (बछ्छों) में हुआ था जो काशिका इस जनपद को वत्स कहा जाने लगा।<sup>५</sup> काशी कोशल अवन्ति आदि जनपदों की भाँति वत्स का भी बौद्ध कालीन थोड़ा महाजनपद में गिनाया गया है। इसकी स्थिति अवन्ति के उत्तरपूर्व तथा कोशा के दक्षिण यमुना के तट में एकर इगहागाद के पश्चिम तक थी।<sup>६</sup> इस जनपद का उल्लेख अथ ब्राह्मण<sup>७</sup> जन<sup>८</sup> तथा बौद्ध<sup>९</sup> ग्रन्थों में हुआ है।

विदेह—समराइच्चवहा में हमें केवल पूर्व विदेह कहा गया है।<sup>१०</sup> विदेह निवामिनी हमने व कारण महावीर की माता त्रिाला त्रिह त्रिन्ना<sup>११</sup> (विदेह दत्ता) कही जाती थी तथा विदेह निवामिनी चेलना का पुत्र कृणिक यज्ञि विदेह पुत्र कहा जाता था।<sup>१२</sup> इसका राजधानी मिथिला थी जिसका जैन साहित्य में अत्यधिक महत्त्व है। १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ तथा २१वें तीर्थंकर ममिनाथ की चरणरज ग यह नगरा पवित्र हुई था।<sup>१३</sup> गतपथ ब्राह्मण में विदेह का उल्लेख है।<sup>१४</sup> बाल

१ डी० सी० शर्मा—गणक स्मृतिप्रणालि पृ० ३३३।

२ वहा पृ० ३६७।

३ गम० व० ६ पृ० ५०१—त्रिनाथ इमण बच्छगर गुप्तमि मित्रि विजयम्।

४ महाभारत समा पृ० ३०१०।

५ वहीं पालि पृ० ८०१७०।

६ मा० १०० ८—अथावामिनी त्रिनाथी पृ० १००।

७ एतत्त ब्राह्मण १११४।

८ उपागर १०० २ परिशिष्ट १ पृ० ७ त्रितीयपुराणी ५ पृ० ५३७।

९ अमरसिंह निराय १। २३३।

१० गम० व० ६ पृ० १७६—नि गमात्रा पुन विदेह।

११ बगमूर ५ ३००।

१२ बगमूर प्रतिलि ३ ० १० ३३५।

१३ त्रिनाथ पालि १११४ पृ० १०० ८ ५६४ ८ ५६६।

१४ एतत्त ब्राह्मण १११४ १००।

राम ने रघुवंग में भी इसका उल्लेख किया है।<sup>१</sup> इसे हा उत्तर काल में तिरभुक्क या तिरभुक्किन कहा गया है जो आधुनिक तिरहुत के नाम से प्रसिद्ध है। यह जनपद गण्डकी नदी से आधुनिक चम्पारन तक विस्तृत था<sup>२</sup> जा मगध व पूर्वोत्तर में स्थित था। सीता गढ़ी जनक पुर, सीताकुण्ड, तिरहुत का उत्तरी भाग तथा चम्पारन का पश्चिमात्तर भाग प्राचीन विन्ध के अंतर्गत था।<sup>३</sup> मिथिला शरण पाण्डेय व अनुमार प्राचीन विन्ध जनपद की सीमा व उत्तर में नेपाल की तराई पूर्व में कोशी नदी दक्षिण में बसाली जनपद (जा कि मगध के उत्तर में स्थित था) तथा पश्चिम में मगनीरा (आधुनिक गण्डक) नदी स्थित थी।<sup>४</sup>

### नगर

अयोध्या—अयोध्या<sup>५</sup> की सावेत नाम से भी जाना जाता था।<sup>६</sup> सावेत की स्थिति कोसल जनपद के अन्तर्गत थी।<sup>७</sup> इसे प्राचीन अवध भी कहा जाता था जा आधुनिक फजाबाद में चार मील की दूरी पर स्थित है।<sup>८</sup> यह रामचन्द्र तथा राजा सगर की भी राजधानी बतायी गयी है।<sup>९</sup> स्कन्द पुराण के अनुसार अयोध्या की स्थिति एक मछली के आकार जसी है<sup>१०</sup> तथा यह सरयू नदी से एक घाजल दक्षिण तथा तमसा से एक योजन उत्तर दिशा में स्थित था किन्तु वर्तमान अयोध्या सरयू नदी व तट पर ही स्थित है। आदि पुराण में अयोध्या का दो द्वीपों में स्थित बताया गया है—घातकी खण्ड और जम्बू द्वीप।<sup>११</sup>

१ रघुवंग १२ २६।

२ डा० गी० मरकार—स्टडीज इन ज्याग्राफी आफ गेंमियट एण्ड मेडिकल इंडिया, पृ० ९५।

३ नेमिचन्द्र शास्त्री—आर्य पुराण में प्रतिपादित भारत पृ० ६७।

४ यम० यम० पाण्डेय—हिस्टारिकल ज्याग्राफी एण्ड टोपोग्राफी आफ बिहार पृ० ८७ ८८।

५ यम० क० ८, पृ० ७३१—अत्यि चरित्र—अयोध्या नाम नगरी पृ० ७३६, ७३८ ७६४ ७६६ ७७४।

६ निगीय चूर्णी २ पृ० ४६६ ३ पृ० १९३।

७ यम० क० ४ पृ० ३३०—कोमगाण विमये साएण नगरे—।

८ कनिधम—गेंमियट ज्याग्राफी आफ इंडिया पृ० ३४१।

९ बी० गी० १—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ गेंमियट इंडिया पृ० ७६।

१० स्कन्द पुराण १।६४ ६६।

११ आदि पुराण ७।४१, १२।७६।

घातकी गण्व पूव भाग में पश्चिम बिन्हु के गाधिल दग की नगरी को अयोध्या कहा गया है तथा जम्बू द्वीप के अतगत भरत क्षेत्र में यह नगरी तीर्थवर्षों व साथ भरत चक्रवर्ती की जन्म भूमि बनायी गयी है । रामायण में इस नगरी की स्थिति गरगु नदी व तट पर बतायी गयी है । कनिष्क के अनुसार इस नगर का विस्तार बारह योजन अथवा १०० मील था जो लगभग २४ मील बागीचों (उपवनों) व घिरा हुआ था ।<sup>१</sup> प्राचीन काल में यह घन घाट से परिपूर्ण एक समृद्ध नगरी नगर था ।

अवलपुर—समराइच्च कहा में इसकी स्थिति उत्तरापथ में बतायी गयी है जो घन घाट में समग्र एक व्यापारिक केन्द्र था ।<sup>२</sup> इस नगर को आभीर देश में स्थित बताया जाता है ।<sup>३</sup> बाहा और वान नाम की दो नदियाँ अवलपुर के पाम व हारर बहती थी ।<sup>४</sup> यह वरार में अमरावती जिले का आधुनिक इन्चि पुर है ।<sup>५</sup>

अमरपुर—यह ब्रह्म दग की प्राचीन राजधानी थी । इसकी स्थिति एरावत नदी व पूव तट पर बतायी गयी है ।<sup>६</sup> आग्नि पुराण में इसका वर्णन इन्द्र पुरी के रूप में आया है ।<sup>७</sup> त्रिगु कुण्डो वग के राजा माधव धर्मा व गिलालेग में ब्रह्म दग का राजधानी अमरावती बताया गया है ।<sup>८</sup> इस नगर के प्राण्य ध्वसावशेषों ने पता चलता है कि यह एक सुन्दर स्थान था जिसके कारण इस अमरपुर कहा जाता था ।

आनन्दपुर—समराइच्च कहा व कथा प्रसंग में ही इसकी चर्चा आई है, किन्तु स्थिति आग्नि का कोई उल्लेख नहीं है । बी० सी० ए के अनुसार इसका

- १ कनिष्क—तैमियन् प्रोफेसरी आफ इंडिया पृ० ४५९-६० ।
- २ सम० ब० ६ पृ० ५०९ ।
- ३ प्रोफेसर् ऑफ इन्डोलॉजी ऑफ तैमियन् एण्ड मेडियन् इंडिया, पृ० ३ ।
- ४ वही पृ० ३ ।
- ५ इति० चि० १ पृ० १३-जनवरी १०३५ ।
- ६ सम० ब० पृ० १३१ ६ पृ० ५०० ।
- ७ नमिस्त गान्धी—रिमन् व प्राकृत कथा गाथिय का आलाचनात्मक परिलोचन पृ० १४ ।
- ८ आग्नि पुराण ६।२०५ ।
- ९ नमिस्त गान्धी—आग्नि पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ८३ ।
- १० सम० ब० ५ पृ० ६०० ।

आधुनिक नाम आनन्द ह जो आनन्द तालुक का प्रमुख नगर है।<sup>१</sup> कुछ विद्वान इसे उत्तर गुजरात का बड़ा नगर मानते हैं।<sup>२</sup> ह्वेनसांग के अनुसार यह नगर वल्लभी के उत्तर-पश्चिम में स्थित था।<sup>३</sup> यह नगर व्यापार, वाणिज्य का भी प्रमुख केन्द्र माना जाता था। आनन्दपुर प्राचीन अनन्तपुर के नाम से भी जाना जाता था।<sup>४</sup> आनन्दपुर अथवा उडनगर नगर नाम से विख्यात था जो गुजरात के नागर ब्राह्मणों का मूल निवास स्थान था।<sup>५</sup> यह जैन श्रमणा का भी केन्द्र था जहाँ से वे मयुरा को आते जाने रहते थे।<sup>६</sup>

उज्जयिनी<sup>७</sup>—हरिभद्र के काल में यह नगर जैन श्रमणा का प्रमुख निवास स्थान था। यह तत्कालीन भारत का समृद्धशाली नगर था जिसके बाजार माणिक्य मासी, सुवर्ण आदि से हमेशा सजे रहते थे तथा इसमें जावागमन की सुविधा के लिए चौड़ी व विस्तृत सड़कें एवं सुन्दर मार्ग थे। यह सुन्दर खाइयों एवं जलशय्या व सुशोभित था। अथ जन ग्रन्था से भी पता चलता है कि यह नगर व्यापार-वाणिज्य का प्रमुख केन्द्र था।<sup>८</sup> जीवन्त स्वामी प्रतिमा व दशन के लिए उज्जयिनी में राजा सम्प्रति के समकालीन आय सुहृति पधार थे।<sup>९</sup> यह क्षत्रिणा पय का सबसे महत्वपूर्ण नगर था जो उत्तर अक्षति (मालवा) राज्य का केन्द्र था।<sup>१०</sup> कनिष्क के अनुसार यह आधुनिक उज्जैन था जो गिरा नदी व तट पर स्थित था।<sup>११</sup> अत स्पष्ट होता है कि समराट्च कहा में

१ बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐसियट इंडिया, प० ३२५।

२ मधु सेन—ए कल्चरल स्टडी आफ निशीय चूर्णी, प० ३३९।

३ कनिष्क—ऐसियट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, प० ४१६।

४ अलिना का ताम्र पत्र अभिलेख ई० सन् ६४९ और ८५१ का।

५ ज्याग्राफिकल इनसाइक्लोपीडिया आफ ऐसियट एण्ड मेडिक्ल इंडिया पाट १, प० २१ २२।

६ निशीयचूर्णी ५, प० ४३५।

७ सम० क० ६, प० ५०१-५०३-५६९-७०-७१ ९, प० ८५८-९७९।

८ आवश्यक नियुक्ति १२७६ आवश्यक चूर्णी २, प० १५४ निशीय चूर्णी १ प० १०२, २ प० २६१, ३, प० ५९, १३१, १४५-४६।

९ वहत्कल्प भाष्य १।३२७७।

१० जगदीश चन्द्र जन—जनागम साहित्य में भारतीय समाज प० ४८०-८१।

११ कनिष्क—ऐसियट ज्योग्राफी आफ इंडिया, प० ४१२।

३० ली के बरीच में विस्तृत थी ।<sup>१</sup> यह एक पवित्र नगरी थी ।<sup>२</sup> यह गम जलनायु वाला उपजाऊ भाग था जहाँ व लाग चावल तथा गन्ना अधिक पैदा करते थे ।<sup>३</sup> भगवान् बुद्ध वहाँ टहरा करते थे तथा भगवान् महावीर ने यहाँ विहार किया था ।<sup>४</sup>

वृत्तगत्ता—जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में इस नगर की स्थिति बतायी गयी है ।<sup>५</sup> इस नगर की पहचान ठीक-ठीक नहीं की जा सकती ।

गांधार नगर—समराइच्च बहा में इस नगर की स्थिति गांधार जनपद के अंतर्गत बतायी गयी है ।<sup>६</sup> किंतु अद्यतन इसका प्रमाण नहीं मिलता है और न ही वतमान पहचान ही की जा सकती है ।

गजपुर<sup>७</sup>—समराइच्च बहा व बया प्रमग में इस नगर का उल्लेख मान्य है । आग्नि पुराण में इस नगर की स्थिति विजयाध व दक्षिण में मानी गयी है ।<sup>८</sup> गजपुर हस्तिनापुर का दूसरा नाम था जो कुछ जनपद का राजधानी थी ।<sup>९</sup> गजपुर का दूसरा नाम नागपुर भी था । वायुदेव हिण्डी में इसे ब्रह्मस्थल कहा गया है ।<sup>१०</sup>

गंध समद नगर—वनान्त पर्वत पर स्थित यह बिताधरी का एक नगर बताया गया है ।<sup>११</sup> माहानगल मेहना न इस अपर बिन्दु में स्थित गांधार जनपद का प्रधान नगर माना है ।<sup>१२</sup> नैमिषद्र गान्धी के अनुसार यह भाग्या में स्थित रहा होगा ।<sup>१३</sup>

१ बी० गी० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ ऐंतिपण्ट इंडिया पृ० ११७ ।

२ विविध तीर्थ वृत्त पृ० २३ आवश्यक पूर्णा २ १७९ ।

३ बी० गी० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ ऐंतिपण्ट इंडिया पृ० ११७ ।

४ जगन्नीय चन्द्र जन—अनामस साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४७५ ।

५ सम० क० ३ पृ० १७३ ७ पृ० ७०८ ।

६ बहो १ पृ० ४८ ५१ ।

७ बहो ७ पृ० ६१८ ।

८ नैमिषद्र गान्धी—आग्नि पुराण में प्रतिपादित भारत पृ० ८६ ।

९ जगन्नीय चन्द्र जन—अनामस साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४६९ ।

१० वायुदेव हिण्डी पृ० १६५ ।

११ सम० क० ५ पृ० ४११ ।

१२ माहानगल मेहना—आहूत प्रायश्चित्त पृ० २२२ ।

१३ नैमिषद्र गान्धी—हरिभक्त मूर्ति व अष्टम कथा साहित्य का आन्ध्रप्रदेशीय परिचालन पृ० ३५६ ।

चक्रपुर—यह नगर जम्बू द्वीप के अपर विदेह क्षेत्र में विद्यमान था।<sup>१</sup> नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार इसे आधुनिक उड़ीसा का चक्रपुर कहा जा सकता है।<sup>२</sup>

चक्रवालपुर—यह जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में विद्यमान था।<sup>३</sup> वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस वर्तमान चक्रवाल कहा है जो जिला झेलम में विद्यमान है।<sup>४</sup>

चम्पापुरी—समराइज्व कहा में इस नगरी का उल्लेख कई बार किया गया<sup>५</sup> है तथा इस समस्त गुणों का भण्डार बताया गया है। चम्पा अग दश की राजधानी थी जो पहले मालिनी के नाम से विख्यात थी।<sup>६</sup> यह चम्पा नगरी चम्पा मालिनी चम्पावती चम्पापुरी और चम्पा आदि विभिन्न नामों से जानी जाती थी। महाभारत के अनुसार यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान था।<sup>७</sup> औपपातिक सूत्र में इस नगरी को घन घाघ में परिपूर्ण बताया गया है।<sup>८</sup> चम्पा और मिथिला के बीच साठ याजन का अंतर बताया गया है।<sup>९</sup> बी० सी० ला के अनुसार यह नगर बिहार प्रदेश के वर्तमान भागलपुर से पश्चिम चार मील की दूरी पर स्थित था।<sup>१०</sup> चम्पापुरी की पहचान भागलपुर के पास वर्तमान नाथ नगर से की जा सकती है।

जयपुर—इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के अपर विदेह क्षेत्र में बतायी गयी है।<sup>११</sup> इस अपरिमित गुणा का निधान तथा पृथ्वी का तिलक स्वरूप बताया

१ सम० क० ८ पृ० ८०३।

२ नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३५६।

३ सम० क० २ प० ११० ५, पृ० ४५५, ४६३, ८, प० ७३६।

४ वासुदेव शरण अग्रवाल—पाणिनि कालीन भारत प० ८८।

५ सम० क० २, पृ० १०४, १३० ७, प० ६०५, ६१८, ६२३, ६२४ ६५२, ६७० ७१।

६ मत्स्य पुराण अध्याय ४८।

७ महाभारत, वन पर्व, ८५।१४।

८ बी० सी० ला—भम जन कतानिस्स सूत्र, प० ७३ बाम्बे ग्राच आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे १९४९।

९ जगदीश चन्द्र जन—जनामम साहित्य में भारतीय समाज, प० ५६५।

१० बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐसियाट इण्डिया पृ० २५५।

११ सम० क० २, प० ७५, १५१।

पाटला के नाम से भी जाना जाता था जो सिंधु नदी के मुहाने पर स्थित है।<sup>१</sup> यह सिंधु नदी के निचले भाग में सोचे जाने वाले प्रदेश की राजधानी थी जिसको ग्रीक में पाटलीव कहा गया है।<sup>२</sup>

पाटलिपुत्र<sup>३</sup>—इस नगर का उत्कृष्ट अथ जन ग्रंथों में भी हुआ है।<sup>४</sup> यह नगर राजगृह के पास मगध की दूसरी राजधानी थी। यह आधुनिक पटना है जो बिहार प्रदेश की राजधानी है। इस पाटलिपुत्र कुसुमपुर कुसुमध्वज पुष्प पुर तथा पुष्प मय आदि विभिन्न नामों से जाना जाता था।<sup>५</sup> पाटलिपुत्र पहले मगध जनपद का एक गाँव था जो पाटलिग्राम के नाम से जाना जाता था।<sup>६</sup> इसकी स्थिति गंगा नदी के दूसरी तरफ स्थित बाटिग्राम के सामने थी।<sup>७</sup> गौतम बुद्ध के समय मगध के दो मंत्री—सुनिष तथा वस्मकार के द्वारा यहाँ पाटलिपुत्र नामक नगर बसाया गया था।<sup>८</sup> मगस्थनीज ने पाटलिपुत्र का अच्छा वर्णन दिया है। उसके अनुसार अक्षर सार्ई में २४ फीट का दूरा पर चार-दीवाली में घिर हुए नगर में ६४ पार्क तथा ५७० मीनार विद्यमान थे।<sup>९</sup> फाहियान के समय में यहाँ के लोग धनी सम्पन्न एक सुशाल थे।<sup>१०</sup> ह्वेनसांग ने इस नगर की स्थिति गंगा के दाहिने तरफ बताया है।<sup>११</sup>

ब्रह्मपुर—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति उत्तरांचल में बताया गयी है।<sup>१२</sup> ह्वेनसांग ने ब्रह्मपुर की यात्रा की थी। उसका अनुसार ब्रह्मपुर राज्य

१ वा० सी० ला—हिस्टोरिकल ज्याग्राफी आफ गैंगलिट इंडिया प० १३७।

२ बौगल—नोट्स ऑन टाग्रेमी १ पृ० ८४।

३ सम० क० ४ प० ३३९।

४ भगवता सूत्र १४।८।५२० आवश्यक गर्णों २ पृ० १७० साधन्यव नियुक्ति १२७९।

५ मित्रार—स्टेड्डाज इन द मगधता सूत्र प० ५४५।

६ सम० मग० पाण्डेय—हिस्टोरिकल ज्याग्राफी एण्ड टाग्राफी आफ बिहार प० १३५।

७ वा० गा० ला—हिस्टोरिकल ज्याग्राफी आफ गैंगलिट इंडिया पृ० २५५।

८ पापनिषाद २/६ मुसगल रिगमिना २ पृ० ५४०।

९ मज्झिम—गैंगलिट इंडिया एण्ड हिस्टोरिकल वाई मगधनात्र एण्ड एरियन पृ० ९३।

१० प्रोग (Leprosy)—ग्रामिण प० ७३-८।

११ यात्रा—प्राय मुवांग आंग २ पृ० ८३।

१२ सम० क० ८ पृ० ८२३ \* पृ० ९५६।

४००० ली अथवा ७३१ मील में विस्तृत था ।<sup>१</sup> इसके अंतर्गत अलखनन्दा तथा कर्नागे नन्धिया के बीच का सम्पूर्ण पहाड़ी भाग रहा होगा जो आजकल गढ़वाल और कुमायूँ के नाम से प्रसिद्ध है ।<sup>२</sup>

भभा नगर—समराड्ज्व कहाँ में इसका उल्लेख एक नगर राज्य के रूप में आता है जिसकी स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गयी है ।<sup>३</sup> नेमिचन्द्र शास्त्री ने इसकी स्थिति आधुनिक आसाम में बताया है ।<sup>४</sup> किन्तु इसकी पहचान ठीक ढंग से नहीं हो पाती ।

मदनपुर—समराड्ज्व कहाँ में मदनपुर को कामरूप जनपद के अंतर्गत बतलाया गया है । यहाँ का राजा प्रद्युम्न था ।<sup>५</sup> कामरूप वर्तमान असम माना गया है जिसकी पहचान गौहाटी के आस-पास वाले भाग से की गयी है । अतः मदनपुर की स्थिति भी गौहाटी के आस-पास मानी जा सकती है ।

महासर<sup>६</sup>—इस नगर की पहचान आधुनिक बिहार के शाहाबाद जिले में आरा से ६ मील पश्चिम में वर्तमान कामसार से की जा सकती है ।<sup>७</sup>

माकन्दी<sup>८</sup>—समराड्ज्व कहाँ में उल्लिखित यह नगर दक्षिण पांचाल की राजधानी थी ।<sup>९</sup> इस नगर की स्थिति हस्तिनापुर के आस-पास रही होगी, क्योंकि महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर ने दुर्योधन से जो पांच गाव मागे थे माकन्दी उनमें से एक था ।<sup>१०</sup> यह नगर व्यापार वाणिज्य का केंद्र था ।<sup>११</sup>

१ कनिंघम—ऐंमियट यात्राफी आफ इंडिया, पृ० ४०७ ।

२ यन० यल० डे—ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ ऐंमियट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ० ४० ।

३ सम० क० ८ पृ० ८०५ ।

४ नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीला पृ० ३५८ ।

५ सम० क० ९ पृ० ९०८ ।

६ वही ६ पृ० ५०८, ५१८ ।

७ यम० यस० पाण्डेय—हिस्टारिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्राफी आफ बिहार, पृ० १५७ ।

८ सम० क० ६, पृ० ४०३ ५०० ।

९ जगदीश चन्द्र जन—अनामक साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४७० ।

१० महाभारत ५, ७२ ७६ ।

११ यम० क० ६ पृ० ५१० ।



मिथिला<sup>१</sup>—गमराइच्च कहा में उल्लिखित इस नगर का नाम रामायण तथा महाभारत में भी आया है ।<sup>२</sup> मिथिला प्राचीनकाल में विदह जनपद की राजधानी था । पुराणों में निमि के पुत्र जा जनक के नाम से विद्वत् थे, इस नगरी का निर्माता थे ।<sup>३</sup> इस आधुनिक नेपाल की मोमा के अन्तर्गत रखा जा सकता है । विविध तीर्थ बन्ध में बताया गया है कि मिथिला में अनेक बदली वन मीठ पाना की बावनियाँ कुण्ड तालाब ननियाँ आदि भोजन थे । नगरी के चारों ओरों पर चार बड़े बाजार थे तथा यहाँ का माघारण लोग भी पढ़ लिख एवं गाँवों का पढ़ित होने थे ।<sup>४</sup>

रत्नपुर—गमराइच्च वहाँ में रत्नपुर को बिन्हु क्षत्र व गधिलावती देग का एक नगर बताया गया ह ।<sup>१५</sup> नमिचन्द्र गास्त्री ने इस कोसल जनपद का एक नगर बताया ह ।<sup>१६</sup>

रघनूपुर चक्रयालपुर—यह विद्याधरों का एक नगर राज्य था जिगरी स्थिति बताइय पबत व निरुत बताया गयी ह ।<sup>१०</sup> आर्य पुराण में इसे विजयाध की लीला श्रणी का २२ वाँ नगर बताया गया ह ।<sup>११</sup> इसकी वर्तमान स्थिति भारत व पूर्वी प्रान्त पादवामा व निरुत मानो जा सकती ह ।<sup>१२</sup>

रघुवीरपुर—यह जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र का एक नाम था।<sup>१०</sup> इसकी वर्तमान स्थिति का ठाढ़ ठीक पता नहीं चलता है।

राजपुर—इम नगर की स्थिति विज्ञापन में बतायी गयी है।<sup>११</sup> यह काश्मीर  
के दक्षिण में स्थित राजौरी माता जा सकता है। कनिष्क के अनुसार राजपुर

- १ गम० व० १ पु० ७३/७१ ।
- २ रामायण १ ६/ १० ११ मन्त्रभास्वत वनपत्र २५६ ।
- ३ भागवत पुराण \* १३ १३ ।
- ४ त्रिशिष्य नीति व० पु० ३३ ।
- ५ गम० व० २ पु० १२०—इत्यत्र त्रिंशो मन्त्रिणां च विद्वत् मन्त्राणां तद्वत् ।
- ६ त्रिंशो मन्त्राणां—आदि पुराण मे प्रतिपादित भास्वत व० ०२ ।
- ७ गम० व० ३ पु० ६६३ ।
- ८ आदि पुराण १०।४६ ।
- ९ त्रिंशो मन्त्राणां—आदि पुराण मे प्रतिपादित भास्वत व० ०२ ।
- १० गम० व० २ पु० १२० ।
- ११ वरी २ व० १०३ ॥ व० ६३२ ३३ ६४२ ६६० ६६५ ६७० ।

उत्तर में पीर पाँचाल, पश्चिम में पूनच, दक्षिण में भीमवार तथा पूरब में रिहामी और अकनूर से घिरा हुआ था।<sup>१</sup>

लक्ष्मी निलय—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गयी है।<sup>२</sup> लक्ष्मी नित्रय के पास ही लक्ष्मी पर्वत विद्यमान था। किन्तु इसकी स्थिति तथा वर्तमान पहचान नहीं की जा सकती।

वधनापुर—यह नगर जम्बू द्वीप के उत्तरापथ में स्थित बताया गया है।<sup>३</sup> किन्तु अथर्व श्रमण उल्लेख नहीं है और न तो पहचान ही की जा सकती है।

वसन्तपुर<sup>४</sup>—सूय नियुक्ति में इसे मगध जनपद का एक ग्राम बताया गया है।<sup>५</sup> कुछ विद्वानों ने इसे पूर्णिया जिले में स्थित वसन्तपुर ग्राम ही माना है।<sup>६</sup>

वाराणसी<sup>७</sup>—यह काशी जनपद की राजधानी थी। वरुणा और असि दो नदियों के बीच में स्थित होने के कारण ही इसे वाराणसी कहा गया है। यह वर्तमान बनारस (वाराणसी) है जो गंगा के तट पर स्थित है। यह काशी जनपद की एक पवित्र व धार्मिक नगरी थी।<sup>८</sup> इसका वर्णन अन्य जन<sup>९</sup> बौद्ध<sup>१०</sup> तथा ब्राह्मण<sup>११</sup> ग्रन्थों में आया है। वाराणसी सातवें और बारहवें शीघकर भगवान सुपाश्व तथा भगवान पाशवनाथ का जन्मस्थान था।<sup>१२</sup> यह ब्राह्मण बौद्ध तथा जन सस्कृति का विकास क्षेत्र रहा है।

विलासपुर<sup>१३</sup>—इस नगर की स्थिति विजयाच के दक्षिण में बतायी गयी है

१ कनिष्क—एम्पियट ज्योग्राफी आफ इंडिया पृ० १४८ ८९।

२ सम० क० ३, पृ० १६८ १७२ ७३ ७४ १८४।

३ वही ७ पृ० ७११।

४ सम० क० १ पृ० ११ ३३ ८३।

५ सूय नियुक्ति २ ६ १००।

६ इन्स्टिट्यूट गजेटियर पूर्णिया १९११ पृ० १८५।

७ सम० क० ८ पृ० ८४५।

८ भगवती सूत्र १५।१।५४०।

९ निशिय चूर्णी २ पृ० ४१७ ४६६ पुनर्वन सुत १।३७ उपासकान्ता, पृ० ९०९।

१० दीप निशाय २ १४६, ३ १४१।

११ विष्णु पुराण अध्याय ३४।

१२ उवाच नियुक्ति ३८२ ३८४ १०२।

१३ सम० क० ५ पृ० ४०९ ४१२।

सम्भवत यह हिमाचल प्रन्त का विलामपुर नगर ॥ १॥ समराइच्च कहा में इसका वणन विद्याधरों के नगर के रूप में हुआ है ।<sup>१</sup>

विगासवधन<sup>२</sup>—यह नगर काम्बरी अटवी के पास स्थित था । काम्बरी अटवी की स्थिति के अनुसार यह बिहार में भागलपुर और मुंगेर के बीच में बसमान रहा होगा ।

विगासा<sup>३</sup>—यह अवन्ति जनपद के अन्तर्गत एक प्रधान एवं सम्पन्न नगरी थी । समराइच्च कहा में इस एक नगर राज्य कहा गया है ।<sup>४</sup> यह नगर आजकल का विगासा के नाम से जाना जाता है जिसे स्कन्द पुराण में विगालम बर्दीम कहा गया है ।<sup>५</sup>

विशम्भुर<sup>६</sup>—समराइच्च कहा में आये हुए इस नगर की स्थिति का ठीक ठीक पता नहीं चलता है ।

वैराट नगर<sup>७</sup>—हरिभद्र ने इसकी स्थिति आबस्ती से आगे समुद्र तट पर बताया है जो कि कात्पनिज-भा लगता है । अन्य ग्रन्थों में वैराट नगर को मत्स्य देश की राजधानी बताया गया है जो इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण में विद्यमान था ।<sup>८</sup> मत्स्य देश के राजा विराट की राजधानी होने के कारण भी इसे वैराट नगर कहा जाता था । यह आपुनिक जयपुर की एक तहसील का कन्द्र स्थान है जो श्री स १०५ मील दक्षिण पश्चिम तथा जयपुर से ४१ मील उत्तर में स्थित है ।<sup>९</sup>

गमपुर—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति उत्तरापथ में बताई गई है ।<sup>१०</sup> सम्भवत यह स्थान राजगृह और द्वारिका के मध्य में था, क्योंकि विविध

१ गम० ४० ५ पृ० ४१२ ।

२ यहा ॥ पृ० ६७३ ।

३ यही ४ पृ० २८०-३०८-३१२-३१४-३१८-३१९-३२६-३४५ ।

४ यहा ४ पृ० ३८५ ।

५ पृ० बी० पन्ना अस्त्रा-सहाज द्वा राजा पुराण पृ० १०६ ।

६ गम० ४० ७ पृ० ६६७ ६६० ६०० ।

७ यही ४ पृ० २८५ ।

८ महाभारत विराट पर्व भाग्य ब्राह्मण १ २ ९ ।

९ वा० मा० पृ०—विश्वविद्यालय प्रकाशन इण्डिया पृ० ३०२-३३ ।

१० गम० ४० ८ पृ० ७३७, ७४०, ७४२, ७५६ ।

तीर्थ रूप के अनुसार द्वारिका से श्री कृष्ण की और राजगृह से जरामध की मनाएँ युद्ध के लिए चली ये दोनों सेनाएँ जहाँ मिली वहाँ अरिष्टनेमि ने गखच्चनि की और गखपुर नगर बसाया ।<sup>१</sup>

शखवर्धन—यह नगर जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित था,<sup>२</sup> किन्तु इसकी वर्तमान स्थिति का पता नहीं चलता है ।

इक्ष्वाकिका<sup>३</sup>—इसे प्राचीन केकय जनपद की राजधानी बताया गया है । ममराइक्व कहाँ में इसे एक नगर राज्य कहा गया है ।<sup>४</sup> साम्रल्लिति से इसका व्यापार चलता था जो आबस्तो के उत्तर-पूर्व नेपाल की तराई में स्थित था ।

सावत<sup>५</sup>—यह नगर दक्षिण कासल जनपद की राजधानी था । महाभाष्य में इसका उल्लेख आया है ।<sup>६</sup> टालेमी ने इसे सागदा तथा फाहियान ने सावी कहा है ।<sup>७</sup> सावत का ही अयाध्या भी कहा गया है (स्थिति तथा पहचान के लिए दक्षिण—अयाध्या नगर) ।

सुगम नगर<sup>८</sup>—यह गुजरात प्रदेश का एक नगर था । प्राचीन काल में इसे व्यापार-वाणिज्य का केन्द्र माना जाता था जिसमें बड़े-बड़े व्यापारों निवास करते थे ।<sup>९</sup>

श्रीपुर<sup>१०</sup>—यह आधुनिक मिरपुर है जो बगधारा नदी के बायें तट पर स्थित मुजल्लिम के उत्तर पश्चिम में गजाम जिले में स्थित है ।<sup>११</sup> यह विशाखापट्टम

१ नेमिचन्द्र गाल्मी—हरिभद्र के शाक्य कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३६० ।

२ सम० क० ७, पृ० ६१२ ६७३ ।

३ वही ५, पृ० ३६५-६६-६७ ३७६ ३८८ ३९८ ४०७ ४१६-१७ ४२० ८ पृ० ८१५, ८३१ ।

४ वही ५, पृ० ३६५ ६६ ६७ ।

५ वही ४ पृ० २३१ ३३९ ।

६ महाभाष्य ३ ३ २ पृ० २४६ १ २ ३ पृ० ६०८ ।

७ लीग (Ligge)—ट्रेवेल्स आफ फाहियान, पृ० ५४ ।

८ सम० क० ४ पृ० २३४ २५७, २६८ २७०, ३६१ ।

९ वही ४ पृ० २६८ ।

१० वही ५, पृ० ३९८ ९० ।

११ इपि० इडि० ४ पृ० ११९ ।

सम्भवत यह हिमाचल प्रदेश का विलामपुर नगर ह। समराइच्च कहा में इसका वणन विद्याधरा के नगर के रूप में हुआ ह।<sup>१</sup>

विशाखवधन<sup>२</sup>—यह नगर काल्म्वरी अटवी के पास स्थित था। कादम्बरी अटवी की स्थिति के अनुसार यह बिहार में भागलपुर और मुंगेर के बीच में वतमान रहा होगा।

विशाला<sup>३</sup>—यह अवन्ति जनपद के अन्तर्गत एक प्रधान एवं सम्पन्न नगरी थी। समराइच्च कहा में इसे एक नगर राज्य कहा गया ह।<sup>४</sup> यह नगर आजकल दूरी विशाला के नाम से जाना जाता ह जिसे स्कन्द पुराण में विशालम वद्रीम कहा गया ह।<sup>५</sup>

विश्वपुर<sup>६</sup>—समराइच्च कहा में आये हुए इस नगर की स्थिति का ठीक ठीक पता नहीं चलता ह।

वैराट नगर<sup>७</sup>—हरिभद्र ने इसकी स्थिति थावस्ती से आगे समुद्र तट पर बताया ह जा कि काल्पनिक-सा लगता ह। अथ ग्रन्थों में वैराट नगर को मत्स्य देश की राजधानी बताया गया है जो इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण में विद्यमान था।<sup>८</sup> मत्स्य देश के राजा विराट की राजधानी होने के कारण भी इसे वैराट नगर कहा जाता था। यह आधुनिक जयपुर की एक तहसील का केन्द्र स्थान ह जा दिल्ली से १०५ मील दक्षिण पश्चिम तथा जयपुर से ४१ मील उत्तर में स्थित ह।<sup>९</sup>

गल्लपुर—समराइच्च कहा में इस नगर की स्थिति उत्तरापथ में बताई गई ह।<sup>१०</sup> सम्भवत यह स्थान राजगृह और द्वारिका के मध्य में था क्योंकि विविध

१ सम० क० ५ पृ० ४१२।

२ वही ॥ पृ० ६७३।

३ वही ४ पृ० २८९-३०८-३१२-३१४-३१८-३१९-३२६-३४५।

४ वही ४ पृ० २४५।

५ ए० बी० यल० अवस्थी—स्टडीज इन स्कन्द पुराण पृ० १२६।

६ सम० क० ॥ पृ० ६६७ ६६९ ६९०।

७ वही ४ पृ० २८५।

८ महाभारत विराट पर्व, गोपथ ब्राह्मण १ २ ९।

९ बी० सा० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ मध्यिस्ट इंडिया पृ० ३९२-९३।

१० सम० क० ८ पृ० ७३७ ७४०, ७४२, ७५६।

तीथ कल्प व अनुमार द्वारिका से श्री कृष्ण की और राजगृह से जरासंध की मनाएँ युद्ध के लिए चली ये दोनों सेनाएँ जहाँ मिली वहाँ अरिष्टनेमि ने गलध्वनि की और गन्धपुर नगर बसाया ।<sup>१</sup>

गलध्वनि—यह नगर जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित था<sup>२</sup> किन्तु इसकी वर्तमान स्थिति का पता नहीं चलता है ।

इक्ष्वाकु<sup>३</sup>—इसे प्राचीन ककय जनपद की राजधानी बताया गया है । ममराइज्व कहाँ से इस एक नगर राज्य कहा गया है ।<sup>४</sup> साम्रान्ति से इसका व्यापार चलता था जो थावस्ती के उत्तर-पूर्व नेपाल की तराई में स्थित था ।

साकेत<sup>५</sup>—यह नगर दक्षिण कामल जनपद की राजधानी था । महाभाष्य में इसका उल्लेख आया है ।<sup>६</sup> टालेमी ने इसे सागदा तथा फाहियान ने साबी कहा है ।<sup>७</sup> साकेत का ही अयाया भी कहा गया है (स्थिति तथा पहचान के लिए दक्षिण—अयाध्या नगर) ।

सुगम नगर<sup>८</sup>—यह गुजरात प्रदेश का एक नगर था । प्राचीन काल में इसे व्यापार-वाणिज्य का केन्द्र माना जाता था जिसमें बड़े-बड़े व्यापारी निवास करते थे ।<sup>९</sup>

श्रीपुर<sup>१०</sup>—यह आधुनिक मिरपुर है जो बगधारा नदी के बाय तट पर स्थित मुसलिगम के उत्तर पश्चिम में गजाम जिले में स्थित है ।<sup>११</sup> यह बिगाबापट्टम

१ नेमिचन्द्र शास्त्री—हरिमद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ३६० ।

२ सम० व० ७ पृ० ६१२ ६७३ ।

३ वही ५, प० ३६५-६६-६७ ३७६ ३८८ ३९८ ४०७, ४१६-१७ ४२० ८, पृ० ८१५ ८३१ ।

४ वही ५ प० ३६५-६६ ६७ ।

५ वही ४ पृ० २३१ ३३९ ।

६ महाभाष्य ३ २ पृ० २४६, १ २ ३ प० ६०८ ।

७ लांग (Lange)—टेबल्स आफ फाहियान, प० ५४ ।

८ सम० व० ४ पृ० २३४ २५७, २६८ २७० ३६१ ।

९ वही ४, प० २६८ ।

१० वही ५, प० ३९८ ९९ ।

११ इपि० इडि० ४ प० ११९ ।

जिले का सिरिपुरम भा हा सकृता ह जो नागवाली नदी से ३ मील दक्षिण में ह जिनके उत्तरी किनारे पर कलिंग का प्रसिद्ध जित्रा वारहावर्नि स्थित ह ।<sup>१</sup>

ध्रावस्ती<sup>२</sup>—इस नगर का उल्लेख अय जन ग्रंथा में भी हुआ है ।<sup>३</sup> कनिंघम ने इसे आधुनिक सहेत महेत माना ह ।<sup>४</sup> यह उत्तर कोणल की राजधानी थी ।<sup>५</sup> ध्रावस्ती बौद्ध का बद्र स्थल था ।

हस्तिनापुर—इस नगर की स्थिति जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में बतायी गया ह ।<sup>६</sup> यह प्राचीन कुर ढग का राजधानी थी । उसकी वर्तमान स्थिति मेरठ जिले के मेवाना तहसील में उताया गयी ह ।<sup>७</sup> हस्तिनापुर का उल्लेख अय जन तथा ब्राह्मण ग्रंथों<sup>८</sup> में मिलता ह । आर्ति पुराण में इस नगर का अत्यन्त समृद्ध और स्वर्ग के समान मुन्दर उल्लेख किया गया ह ।<sup>९</sup> इस नगर का कुहजागल जनपद की राजधानी बनाया गया ह । गाति कुयु अरह और मल्लिनाथ के मुन्दर एव मनाहर चत्यालय इसी नगर में विद्यमान थे तथा अम्बा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर भा यही विद्यमान था ।<sup>१०</sup> जत पौराणिक दृष्टि से इस नगर का पर्याप्त महत्त्व ह ।

क्षितिप्रतिष्ठित<sup>११</sup>—यह राजगृह का दूसरा नाम था । समराञ्ज कहा व अनुमार य नगर ऊँची प्राकार खाड्या आर्ति म सुरक्षित था तथा नगर में

- १ विष्णुधर्मार्म का वाराणस-ताम्रपत्र इपि० इटि० २१ पृ० २२ २४ ।
- २ सम० क० ८ पृ० २५७ २६९ २७१ २८३ ८४ ८५ ८६ ।
- ३ भगवता सूत्र २।१।० ०।३३।३/६ १५।१।५५६ निशीथ चूर्णी २, पृ० ६६६ ४ पृ० १०३ ।
- ४ कनिंघम-गैमिण्ट ज्योग्राफी आफ इडिया पृ० ४६९ दक्खि-वी०सा०ला—हिस्टारिक ज्योग्राफी आफ गैमिण्ट इडिया पृ० १२५ ।  
जे० मा० मिन्गार—स्टडीज इन भगवती सूत्र पृ० ५३५ ।  
जगन्ना चन्द्र जन-जनागम माहित्य में भारतय समाज, पृ० ४८५ ।
- ५ सम० क० २ पृ० १२७ १७५ ।
- ६ कनिंघम-गैमिण्ट ज्योग्राफी आफ इडिया पृ० ७०२ ।
- ७ भगवती मत्र ११।९।४१७ ११।११।४२८ १६।५।१७७ ।
- ८ रामायण २ ६/ १० माकण्ड्य पुराण अध्याय ५७ भागवत पुराण १३, ६ ।
- ९ आर्ति पुराण ८।२२३ ६३।७६ ।
- १० नमिचन्द्र गाम्वा—आर्ति पुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ०४ ।
- ११ सम० क० १ पृ० ० ४३ ० पृ० ०७० ७१ ।

माफ-मुयरे त्रिपथ चतुष्पथ आदि भाग थे। यहाँ व्यापार का भी केन्द्र था। निशीथ चूर्णी में भी इस नगर का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup> वर्तमान पटना का राजगिरि हा प्राचीन भारत का राजगृह था। जन ग्रन्थों में राजगृह को ही क्षितिप्रतिष्ठित चणकपुर शृपमपुर अथवा कुशाग्रपुर कहा गया है।<sup>२</sup>

**पत्तन**—समराइच्च कहा में हमें जनपद एवं नगरों के साथ-साथ कुछ पत्तनों के भी उल्लेख मिलते हैं। आग्निपुराण के अनुसार जा भाग समुद्र के तट पर बसा हुआ तथा वहाँ जावा द्वारा आवागमन हुआ उसे पत्तन कहते हैं।<sup>३</sup> मानसार<sup>४</sup> समरागण तथा बहनकोप के आधार पर पत्तन को एक प्रकार का बृहत बन्दर गाह माना जा सकता है जो किसी समुद्र या नदी के तट पर स्थित हो तथा जहाँ पर मृग्य रूप से वणिज लोग निवास करते हैं।

व्यवहार सूत्र के अनुसार जहाँ नौकाओं द्वारा आवागमन होता है उस पट्टन और जहाँ नौकाओं के अतिरिक्त गाडा घोडा आदि से आवागमन हुआ उसे पत्तन कहते हैं।<sup>५</sup> इस प्रकार उपरोक्त साद्यों के आधार पर हम पत्तन का १ भाग में बांट सकते हैं—जल पत्तन (पट्टन) तथा स्थल पत्तन। समराइच्च कहा में उल्लिखित पत्तन का विवरण अधोलिखित है।

**अचलपुर**—समराइच्च कहा में इसे उत्तरापथ का अष्ट यापारिक स्थान बताया गया है।<sup>६</sup> जम्बू द्वीप के उत्तरापथ में इसकी स्थिति अंतराह गयी है जा ब्रह्मपुर नगर के पास था। यह प्राचीन भारत का प्रसिद्ध यापारिक केन्द्र था जहाँ के यापारा बड़े ही समृद्ध व धनवान होते थे। विषेय जानकारी के लिए देविए—'अचलपुर एक नगर के रूप में।

**गजजनक**—समराइच्च कहा में इसी स्थिति उत्तरापथ विषय में बताया

१ निशीथ चूर्णी ३, पृ० १५० ४ पृ० २२९।

२ जगन्नीश चन्द्र जन—जनागम माहिर्य में भारतीय समाज पृ० ४६१।

३ पत्तन तत्त्वमुद्रान्त्यप्रोभिवतीयते—आग्निपुराण १६।१७२।

४ क्रय विक्रय समुक्तमधितीर समाधितम। देशांतर गतजननानाजातिभिर न्विनम। पत्ता तत्र समाख्यात वैश्यरघुनित्तु यते।—मानसार नवम अध्याय।

५ पत्तनं गकटगम्य घाग्वनाभिरव च।

नोभिरेव तु यद् गम्य पट्टनं तत्र प्रचक्षते। व्यवहार सूत्र भाग ३ पृ० १२७।

६ सम० क० ६ पृ० ५०९—धरणीवि—उत्तरावहनिलयभूय अयत्तर नामपट्टण।



गयी है।<sup>१</sup> इस पत्तन की भी स्थिति उत्तरापथ जनपद में बतायी गयी है। समयत यह मह देश में मत्स्यपुर के निकट अवस्थित था जो आधुनिक मारवाड जिले में वर्तमान है।

**गिरिस्थल**<sup>२</sup>—गुजराण के प्रसिद्ध पर्वत गिरिनार के आस-पास गिरिस्थल नामक पत्तन विद्यमान था। स्थल भागों में यहाँ का व्यापार होता था।

**ओस्थल**—जम्बू द्वीप के विजय क्षेत्र में इस नगर की स्थिति बतायी गयी है।<sup>३</sup> किन्तु अन्य इसका उल्लेख नहीं मिलता है तथा न तो ठीक ठग में इसकी पहचान ही की जा सकती है।

**गलपुर**—समराइच्च कहा में इसे उत्तरापथ विषय का एक पत्तन बताया गया है जहाँ के राजा का नाम गलापन था<sup>४</sup>। इसकी स्थिति राजगृह और द्वारिका के मध्य में बताया जा सकती है (देखिए—गलपुर नगर)।

## वन्दरगाह

आधुनिक काल की भाँति प्राचीन काल में भी व्यापार तथा आवागमन की सुविधा के लिए समुद्र के किनारे वन्दरगाह होते थे। ये वन्दरगाह बड़े जलयान तथा छोटे जहाज एवं नौकाओं के रुकने एवं वहाँ से प्रस्थान करने के केन्द्र स्थल होते थे। भारतीय तथा वदेशिक व्यापारिक जलयानों का विश्राम स्थल होने के कारण ये वन्दरगाह व्यापारिक केन्द्र भी हुए गये जहाँ से स्थल तथा जलमार्गों द्वारा व्यापार होता था। समराइच्च कहा में उल्लिखित ११ प्रसिद्ध वन्दरगाहों की जानकारी हमें अधोलिखित रूप में होती है।

**ताम्रलिप्ति**—इसका उल्लेख समराइच्च कहा में कई बार किया गया है।<sup>५</sup> पुनर्वन मुक्त में ताम्रलिप्ति का वग दण की राजधानी बताया गया है।<sup>६</sup> जगन्नी

- १ सम० क० ४ प० २७७—अथि इहव भारहवाम उत्तरावह विमय गजणय नाम पट्टण।
- २ वही ४ प० २७७—गजणय नामिणा धीरमेणम्म समीवे।
- ३ वही ३ प० १७४।
- ४ वही ८ प० ७३७—इआ य उत्तरावहे विमय मत्तउर पट्टणा मत्तापणा नाम राया।
- ५ वही १ प० ५६ ४ प० २४१-४२ ५ प० ३६७-६८-६९ ३९८ ४०७ ४१५-१६ ४२० ८ प० ५०६ ५९९ ७ प० ६५७ ६७१।
- ६ पुनर्वनमुक्त १ ३७ प० ५५।

चन्द्र जन व अनुसार ताम्रलिप्ति (तामलुक) व्यापार का केन्द्र था जहा जल और स्थल दाना मार्गों से व्यापार होता था ।<sup>१</sup> कल्प सूत्र में ताम्रलिप्ति नामक जन श्रमणों की शाखा का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि यहाँ जन श्रमणों का केन्द्र रहा होगा ।<sup>२</sup> ताम्रलिप्ति बंगाल व मिदिनापुर जिले का तामलुक है जो हुगली तथा रूपनारायण नदिया के संगम से १२ मील की दूरी पर स्थित है ।<sup>३</sup> इसकी वर्तमान स्थिति रूपनारायण नदी व पश्चिमी तट पर मानी जा सकती है । परहियान ने इसे बम्पा से ५० याजन पूरब दिशा में समुद्र के किनारे स्थित माना है<sup>४</sup> । ह्वेनसांग के अनुसार ताम्रलिप्ति में दस से अधिक बौद्ध मठ तथा लगभग एक हजार में अधिक बौद्ध भिक्षु विद्यमान थे ।<sup>५</sup> इस बन्दरगाह का उल्लेख अथ जन<sup>६</sup> बौद्ध<sup>७</sup> तथा ब्राह्मण<sup>८</sup> ग्रंथों में मिलता है ।

**बैजपन्ती**—समराइच्च वहाँ में इसकी स्थिति पूर्वी समुद्रतट पर बतायी गयी है ।<sup>९</sup> ताम्रलिप्ति की भाँति यह भी एक सुप्रसिद्ध बन्दरगाह था । बड़े-बड़े विदेशी तथा स्वदेशी व्यापारिक जलयान व्यापार के निमित्त यहाँ आते जाते रहते थे । बन्दरगाह के साथ साथ यह व्यापारिक केन्द्र भी बन गया था जहाँ भारतीय व्यापारी स्थल मार्गों से भी व्यापार के निमित्त आते जाते रहते थे । समराइच्च कहा के उल्लेख के आधार पर वजयती को वर्तमान बंगाल की खाड़ी वाला भाग कहा जा सकता है ।

### अरण्य

प्राचीन काल से ही पर्वत तथा नदिया की भाँति अरण्य का भी भौगोलिक एवं आर्थिक महत्व रहा है । विभिन्न प्रकार की भूमि तथा जलवायु व कारण ये अरण्य भाँति भाँति प्रकार की वनस्पतियों के उद्गम स्थल रहे हैं जिनका विशिष्ट आर्थिक महत्व है । समराइच्च कहा में प्रयुक्त हुए कुछ निम्नलिखित वन्य प्रशेषों का उल्लेख मिलता है ।

१ जगन्नीश चन्द्र जन—जनायम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६५-६६ ।

२ वही पृ० ४६५-६६ ।

३ कनिष्क—ऐमियट ज्याग्राफी आफ इंडिया पृ० ५७७-७८ ।

४ वही पृ० ७३२ ।

५ घाटस—आन युवाग च्वाग २ १९० ।

६ भगवती सूत्र ३।१।१३४ ।

७ कथामरित्सागर अध्याय २४ महावन ११ ३८ १९, ६ ।

८ महाभारत—भीष्म पर्व ९ ५७ रघुवन ४।३८ ।

९ मम० व० ६ पृ० ५३९ ।

कादंबरी—समराइच्च कहा में अचलपुर और भावदी व बीच इस अरण्य की स्थिति बताई गयी है।<sup>१</sup> यह एक महाटवी के रूप में थी जो समवन आधुनिक बिहार के मुंगेर जिला में स्थित रही होगी। इस आटवी में कदम्ब के वृक्षा की अधिकता थी। समवन इसी कारण इसका नाम कादम्बरी पड़ा था। कदम्ब के साथ-साथ वहाँ चंदन तथा आम्र आदि विशाल वृक्षा की अधिकता थी। सघन वृक्षा व अगली झाड़िया के बीच वपभ मृग महिष, शार्ङ्ग हस्ति, मृगगज जैसे भयंकर जानवर निवास करते थे। कादम्बरी चम्पा के निकट स्थित थी जिसके निकट कात्रो नामक एक पर्वत था तथा जहाँ भगवान् पार्श्वनाथ भ्रमण किये थे।<sup>२</sup>

चन्दनवन<sup>३</sup>—यह मलय पर्वत के पास ही स्थित था<sup>४</sup> जिसकी स्थिति मैसूर के दक्षिण और त्रावणकोर के पूर्व में बतायी गयी है। चन्दन व वृक्षा की अधिकता के कारण ही इसे चन्दनवन कहा जाता था।

दत्त रत्निका<sup>५</sup>—चम्पानगरी से तात्प्रलपित जात समय रास्ते में इसकी स्थिति बताई गयी है। समराइच्च कहा में उल्लिखित इस महाटवी की पहचान ठीक ढंग से नहीं हो पाती।

मन्दनवन<sup>६</sup>—इस अरण्य की भी स्थिति का पता नहीं चलता है। यह परम्परागत काल्पनिक नाम जान पड़ता है।

पद्मावती<sup>७</sup>—विन्ध्य पर्वत मालाया के मध्य भाग में यह अरण्य स्थित था। इस अरण्य में पहाड़ी नदियों के रूप में नून तथा महावार नदियाँ प्रवाहित होती थी।

प्रेतवन<sup>८</sup>—समराइच्च कहा में उल्लिखित इस अरण्य का नाम काल्पनिक सा लगता है।

विन्ध्याटवी<sup>९</sup>—विन्ध्य पर्वत के पास घन एवं विभिन्न प्रकार के वृक्षा से

१ सम० क० ६ पृ० ५१० ५१५ ५२९ ५३६।

२ बी० मा० ला—गम जन कनानिकल सूत्र प० १७७।

३ सम० क० ५ पृ० ४४५ ६ ५४५।

४ वही ५ पृ० ४४५ (मलय सानु)।

५ वही ७ पृ० ६५६।

६ वही ५ पृ० ४१२ ७ ६८०।

७ वही क० ८ पृ० २८५।

८ वही क० ५ पृ० ४०१।

९ वही ८ प० ७०० ८२१।

आच्छादित अटवी को विन्ध्याचल कहा गया है। आदि पुराण में इस विन्ध्याचल वन का उल्लेख है।<sup>१</sup> महावश में बताया गया है कि अशोक नगर से निकल कर स्थल मार्ग द्वारा विन्ध्याचल को पार कर एक सप्ताह में ताम्रलिप्ति पहुँचा जा सकता है।<sup>२</sup> महाभारत में भी विन्ध्याचल वन का उल्लेख मिलता है।<sup>३</sup>

**सुसुमार**—विजयाध की उत्तर श्रेणी के नगरों में विजयपुर नामक नगर के पास ही सुसुमार अरण्य स्थित था। सुसुमार गिरि की पहचान वर्तमान मिर्जापुर जिले में चुनार की पहाड़ियाँ से की गई है।<sup>४</sup> सुसुमार अरण्य में ही सुसुमार पर्वत की स्थिति बतायी गयी है अतः सिद्ध होता है कि यह अरण्य भी मिर्जापुर में चुनार के पास स्थित रहा होगा।

### पर्वत

प्रत्येक देश अथवा राज्य की सम्यक्ता एवं सस्कृति के विकास के साथ साथ वहाँ की जलवायु, ऋतु परिवर्तन तथा सुरक्षा की दृष्टि से पर्वतों का अत्यधिक महत्व रहता है। भारत की उत्तरी तथा श्रेणी सीमाओं पर पड़ी शृङ्खलाओं के साथ-साथ पर्वत मालाओं से इस देश के सांस्कृतिक स्वरूप के निर्माण में प्राचीन काल से ही प्रयोग योगदान मिला रहा है। सम्राट् चक्रवर्ती के निम्नलिखित पर्वतों का उल्लेख है।

**उदयगिरि**<sup>५</sup>—सम्राट् चक्रवर्ती के इसकी स्थिति नहीं बताई गयी है। मात्र वर्णन में नाम पात होता है। भुवनेश्वर स्टेशन से लगभग चार मील दूरी पर उदयगिरि और खडगिरि नामक दो प्राचीन पहाड़ियाँ हैं जिन्हें काटकर सुन्दर गुफाएँ बनाई गई हैं।<sup>६</sup> ये दोनों पहाड़ियाँ खारबेल के हाथी गुम्फा शिलालेख के लेखक को कुमार और कुमारी पहाड़ियाँ के रूप में पात थी।<sup>७</sup> खडगिरि पहाड़ी पुरी जिला में भुवनेश्वर से ३ मील उत्तर पश्चिम की तरफ स्थित है।<sup>८</sup> इस

१ आदि पुराण ३.०।९२।

२ महावश १९.६—हिन्दू संस्करण, हिन्दू साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

३ महाभारत—आदि पर्व २०.८।७ मभा पर्व १.०।३१ वन पर्व १०.८।६ विराटपर्व ६।१७।

४ सम० व० २ पृ० १०७ (विजये सुसुमार अरण्य सुसुमार गिरिम्ह)।

५ धाप—अर्ली हिस्ती आफ् कींगम्हो पृ० ३२।

६ सम० व० २ पृ० १३६।

७ जगदीश चन्द्र जन—जनागम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४६७।

८ वी० सी० ला—हिस्टोरिकल ज्याग्राफी आफ् ऐसियाट इंडिया पृ० १९४।

९ वही पृ० १९४।

पहाड़ी का सोन चाटियाँ ह—उदयगिरि, नीलगिरि और खण्डगिरि। खण्डगिरि की चोटी १२३ फीट ऊँची ह जब कि उदयगिरि की चोटी ११० फीट ऊँची ह। यहाँ इस पर्वत श्रेणी (उदयगिरि) के नाचे एक बण्णव कुटी ह तथा इसमें ४० गुफाएँ ह।<sup>१</sup>

गाधार पर्वत<sup>२</sup>—यह गाधार देश के अंतर्गत एक प्रसिद्ध पहाड़ी के नाम से विख्यात था। अद्यतन इसकी स्थिति का पता नहीं चलता है।

वैतादय पर्वत<sup>३</sup>—यह पर्वत छ खण्डों के मध्य में होने के कारण विजयाध के नाम से जाना जाता ह। वैतादय पर्वत की दो श्रेणियाँ ह (उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी)। इन श्रेणियों में विद्याधर नगर विद्यमान थे। नैमिचन्द्र शास्त्री ने गंध समुद्र नगर की स्थिति मालवा<sup>४</sup> में बताया ह जो समराइच्च कहा में वैतादय के पास स्थित बताया गया। अतः यह पर्वत भी मालवा में ही होना चाहिए।

मलय पर्वत<sup>५</sup>—समराइच्च कहा में उल्लिखित इस पर्वत का नाम भागवत पुराण तथा मत्स्य पुराण में भी आया ह।<sup>६</sup> वी० सी० ला के अनुसार कावरी के नीचे पश्चिमी घाट का फला हुआ दक्षिणी भाग ही मलयगिरि का पश्चिमी भाग ह जिन वर्तमान ट्रावनकोर पहाड़ी के नाम से जाना जाता ह।<sup>७</sup> वी० सी० सरकार ने भी इसकी पहचान ट्रावनकोर की पहाड़ियाँ से की ह।<sup>८</sup> चंदन की बहुत मात्रा में प्राप्ति के कारण ही इसे मलय पर्वत (मलयगिरि) कहा गया है।

मदरगिरि<sup>९</sup>—इस मदर गिरि अथवा मदराचल के नाम से जाना जाता

१ वी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐमियाट इण्डिया, पृ० १९४।

२ सम० क० १, पृ० ४९।

३ वहा ५ पृ० ८११ ४५५ ४६० ४६२, ४६३ ६ पृ० ५०० ५८१ ८२ ५९४, ५९५ ८, पृ० ७३६।

४ नैमिचन्द्र शास्त्री—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिचालन, पृ० ३५६।

५ मम० क० ५, पृ० ८३८ ४४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४४९ ४५५ ८ पृ० ८२१ ८४६।

६ भागवत पुराण ५।१९।१६ १।८।३२ ६।३।३५ १२।८।१६ मत्स्य पुराण ६१।३७ १।१२ दक्खिण—रघुवर्ग ४।४६।

७ वा० सी० ला—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐमियाट इण्डिया, पृ० २०६।

८ ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ ऐमियाट एण्ड मेडिबल इण्डिया, पृ० ७१।

९ मम० क० ३ पृ० १९८ ४ पृ० २९६।

था। पुराणा में भी इस पर्वत का उल्लेख है।<sup>१</sup> बी० सी० ला के अनुसार यह भागलपुर जिला के बका नामक तहसील में स्थित है जो भागलपुर के ३० मील दक्षिण तथा वासी के ३ मील उत्तर दिशा में वर्तमान है।<sup>२</sup> यहाँ भगवान बुद्ध की प्रतिमा तथा बौद्ध मंदिर के अवशेष मिले हैं।<sup>३</sup>

मेरु पर्वत—इसकी स्थिति जम्बू द्वीप के मध्य में बताया गया है।<sup>४</sup> माकण्डेय पुराण से पता चलता है कि इस पर्वत के पश्चिम में निपाध और परिपत्र दक्षिण में कलाश और हेमवत तथा उत्तर दिशा में शृगवन एक ऊँची स्थिति है।<sup>५</sup> इसे सिनेरु की सबसे ऊँची चोटी मानी जा सकता है जो ७, ८०० फी ऊँची है।<sup>६</sup> यह बदरिकाश्रम के करीब है तथा समभवत एरियन का मेरास पर्वत है।<sup>७</sup> इसे गन्वाल में स्थित रुद्र हिमालय माना जा सकता है जहाँ से गंगा निकलता है।<sup>८</sup> मेरु पर्वत की यही स्थिति सही जान पड़ती है।

रत्नगिरि<sup>९</sup>—समराइच्य बहा में उल्लिखित यह पर्वत गोपालपुर से चार मील उत्तर-पूर्व तथा विम्पा की एक शाखा बेलुआ नामक एक छोटे से स्रोत के किनारे स्थित है।<sup>१०</sup> भरत सिंह उपाध्याय ने इसकी स्थिति प्राचीन राजगृह के पास बताया है।<sup>११</sup> कनिंघम ने ता प्राचीन बुद्धकालीन पाण्डव पर्वत को ही रत्नगिरि में मिलाया है।<sup>१२</sup> यह पाण्डव पर्वत भी राजगृह के पास स्थित था। उपरान्त साम्या से स्पष्ट होता है कि यह पर्वत प्राचीन राजगृह के पास ही स्थित रहा होगा।

१ कालिका पुराण अध्याय १३, २३ भागवत पुराण ४ २३ २४।

२ बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ ऐंसियट इंडिया, पृ० २७९।

३ बर्ने—भागलपुर बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर पृ० १६२ ६३।

४ मम० क० ५ पृ० ४७०।

५ कूर्म पुराण, पृ० ४७८ श्लोक १४।

६ माकण्डेय पुराण वगवासा एडीशन पृ० २८०।

७ धम्मपत् १ १०७ जातक १, २०३।

८ बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ ऐंसियट इंडिया, पृ० १३१।

९ बी० सी० ला—ज्याग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म पृ० ४२।

१० मम० क० ६ पृ० ५४५ ७ पृ० ६४८।

११ बी० सी० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ ऐंसियट इंडिया पृ २२०।

१२ भरत सिंह उपाध्याय—बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० १८२।

१३ कनिंघम—ऐंसियट ज्याग्राफी आफ इंडिया पृ० ५३१।

लक्ष्मी पर्वत<sup>१</sup>—इसकी स्थिति आसाम के दक्षिण में थी जो लक्ष्मी निलय के नाम से प्रख्यात था। अतः आसाम के अन्तर्गत स्थित एक पहाड़ी क्षेत्र से इसकी पहचान की जा सकती है।

विंध्य पर्वत—आग्नि पुराण में इसे विंध्यपर्वत कहा गया है जिसके पश्चिमी छोर का पार कर भरत चक्रवर्ती ने लाट तथा मोरठ दश पर आक्रमण किया था।<sup>३</sup> प्राचीनकाल में यह पर्वत माला मध्यभारत के उत्तर-पश्चिम में विस्तृत था। पद्म पुराण तथा कालिदास के मेघदूत में भी इस पर्वत का उल्लेख आया है।<sup>४</sup> दण्डि चरित में पता चलता है कि विंध्य पर्वत से मिला हुआ विंध्यारण्य भा था जहाँ घनी एवं भयंकर जंगली बाड़ियाँ एवं वृक्ष थे जिनमें जंगली जानवरों के रहने की सुविधा थी।<sup>५</sup> ऋक्ष विंध्य और परिपत्र आदि सम्पूर्ण पर्वत श्रृणियों के नाम थे जिस आधुनिक विंध्य कहते हैं।<sup>६</sup> आधुनिक भौगोलिक वस्तुओं के अनुसार विंध्य पर्वत गुजरात से पश्चिम तथा बिहार के पूर्वी भाग में ७०० मील के विस्तृत क्षेत्र में है जिसे भरनेर तथा बँसूर आदि विभिन्न स्थानों के नाम से जाना जाता है।<sup>७</sup> यह टांगेरी का आइडोमान है जो नमन और ताप्ती नदियों का उद्गम स्त्रोत है।<sup>८</sup> प्राचीन काल में यह पर्वत औपधियों आदि का क्षेत्र था।<sup>९</sup>

निलीध्र पर्वत<sup>१</sup>—वर्णन के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि संभवतः यह पहाड़ी आसाम के दक्षिण में अवस्थित थी। इस पहाड़ी से लगा घने वृक्षा से आच्छादित एक जंगल था जिसमें सिंह, अजगर जैसा भयंकर जानवर निवास करता था।

१ सम० क० २ पृ० १२५, ३ पृ० १६० १७२।

२ वहा २ पृ० १२५ ६ प० ५०१ ७ पृ० ६७१ ८ प० ७९८ ७९९ ८०१।

३ आग्नि पुराण २९।८८।

४ पद्म पुराण—उत्तर काण्ड श्लोक ३५ ३८ मेघदूत-पूर्वमध १९।

५ दण्डि चरित प० १८।

६ ला—उपोप्राक्लिप्त एमज १०७।

७ यो० सा० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी ऑफ एशियन इंडिया पृ० ३५५।

८ टांगेरी मेनियट इण्डिया पृ० ७७।

९ सम० क० ८, प० ८०१।

१० वहा २ पृ० १२ ८ पृ० ३०७ ६ पृ० ५१६।

मुचेल<sup>१</sup> पर्वत—ममराइन्व कहा में उल्लिखित इस पर्वत की स्थिति का ठीक ठीक पता नहीं चलता है और न अग्नय इसका उल्लेख ही मिलता है।

सुसुमार गिरि<sup>२</sup>—विजयाघ की उत्तर श्रेणी के नगरों में विजयपुर एक नगर है। इस नगर के पास सुसुमार नामक एक अरण्य था और इसी अरण्य में सुसुमार नामक पर्वत विद्यमान था। बल्य जनपद के राजा उग्रायन के पुत्र राज कुमार बाधि इमा पर्वत पर रहते थे जहाँ कोकन<sup>३</sup> नामक महल बनवाया था।<sup>३</sup> बौद्ध परम्परा के अनुसार यहाँ भग्न राज्य की राजधानी थी और यह एक किले के रूप में प्रयुक्त होता था।<sup>४</sup> कुछ विद्वानों ने इस आधुनिक चुनार को पहाड़ियाँ बताया है जो मिर्जापुर जिले में स्थित है।<sup>५</sup>

हिमवत (हिमालय)<sup>६</sup>—यह जम्बू द्वीप का प्रसिद्ध पर्वत आधुनिक हिमालय है जो भारत के उत्तर में स्थित है। हिम (बर्फ) से मग्न आच्छादित रहने के कारण ही इसे हिमवत अथवा हिमाद्रय कहा जाता है। इस पर्वत का उल्लेख अथ जन<sup>७</sup> बौद्ध<sup>८</sup> ब्राह्मण ग्रन्थों तथा विद्वानों विवरणों<sup>९</sup> में मिलता है। भारत के उत्तर प्रांतों में पूर्व में लेकर पश्चिमा समुद्र तट तक धनुष का डोरी का भाति फला हुआ हिमालय पर्वत ही प्राचीन हिमवत है। इसे पर्वतराज तथा नगाधिराज कहा गया है। जन परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप का प्रथम कुलबल है जिसपर ११ कूट हैं। इसका विस्तार १०५२ १/२ मील है तथा इसकी ऊँचाई १०० माजनों तथा गहराई २५ मोजनों बताई गयी है। हिमालय तीन भागों में विभक्त है—उत्तर, मध्य और दक्षिण। उत्तर माला के बीच

१ सम० क० ४ प० ३१०।

२ कहा २ पृ० १०७ (विजये सुसुमारे रण्णे सुसुमार गिरिम्भि), १०८।

३ बी० सी० टा—हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ ऐम्पियट इंडिया, पृ० १५२।

४ मज्झिम निकाय १ ३३२८ २ ०१९७।

५ घाप—अर्ली हिस्टा आफ कौगम्बा पृ० ४२, तथा भरत सिंह उपाध्याय—युद्ध कालीन भारतीय मंगल प० ३३६।

६ मग्न० क० ६ पृ० ५०२ (हिमवन्त पत्रय भयम्भ नरिह रुग्णय)।

७ जम्बूद्वीप प्रवासि १ ९, आन्ध्रपुराण २९।६४।

८ मलालगीसर—दिवानरी आफ पाली प्रापर मेज १ १३२५।

९ क्रमवत् १०।१२१।४ अथर्ववत् १२।१।२ मारकण्डेय पुराण, ५४, २४ ५७ ५९।

१० टालेमैज ऐम्पियट इंडिया प० १९।



कलाश पवत है।<sup>१</sup> मय माग नम पवत से प्रारम्भ होती है जिसकी सबसे ऊँची चोटी २६, ६२९ फुट है। मध्य माला का दूसरा यश नेपाल, मिक्किम और भूटान राज्य के अंतर्गत है जहाँ मवदा तुपार पड़ती रहती है।

नदिया

समराइच्च कहा में निम्नलिखित नदिया के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

गंगा<sup>२</sup>—समराइच्च कहा के कथा प्रसंग में इसका उल्लेख आया है। गंगा नदी का सबप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के नदी स्तुति में मिलता है।<sup>३</sup> इसका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न नामों से हुआ है। महाभारत तथा भागवत पुराण में इसे अलखनन्दा<sup>४</sup> भागवत पुराण में एक अन्य स्थान पर धुन्वा,<sup>५</sup> रघुवश में भागीरथी तथा जाह्नवी<sup>६</sup> के रूप में वर्णित किया गया है। तत्तिरीय आरण्यक के अनुसार गंगा-जमुना के बीच रहने वाले लोग सम्माननाय समझे जाते थे।<sup>७</sup> पंच पुराण के अनुसार गंगा नदी की सात शाखाएँ थीं यथा—वितान्वा, नलिनी, मरस्वती, जम्बू नदी, सोता, गंगा और सिन्धु।<sup>८</sup> भागीरथी गंगा हिमालय से निकल कर गंगोत्री नामक स्थान में गिरती है। तत्पश्चात् हरद्वार से होते हुए उसके नीचे बुन्द गहर में दक्षिण की तरफ मुड़ती है जहाँ यह दक्षिण पूर्व की ओर बहती हुई इलाहाबाद में यमुना नदी से मिलती है। इलाहाबाद से राजमहल तक यह पूर्व दिशा का ओर बहती है और राजमहल से पश्चिम बंगाल में प्रवेश कर बंगाल का खाड़ी में गिरती है।<sup>९</sup> प्राचीन काठ में लेकर वर्तमान समय तक के भारतीय जीवन के आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक के क्षेत्र हरद्वार कानपुर प्रयाग वाराणसी तथा पटना आदि नगर गंगा के तट पर स्थित हैं।

१ मेमिचन्द्र शास्त्रा—आदि पुराण में प्रणिपाति भारत पृ० १११।

२ मम० क० २ पृ० १५६ ३ पृ० १९८ ४ पृ० २३४।

३ ऋग्वेद १०।७५।१।

४ महाभारत—आदि पर्व १७० २२ भागवत पुराण ४ ६ २४ ११, २९ ४१।

५ भागवत पुराण ३ ५ १ १० ७५ ८।

६ रघुवश ७।३६ ८।९५ १०।२६।

७ तत्तिरीय आरण्यक २।२०।

८ पंचपुराण स्वयं काण्ड अध्याय ७ श्लोक ६८।

९ यम० गण० डे०—यात्राचिन्ता दिवंगनरी पृ० ७९ दण्डि—वी० मी० ला—हिस्टारिकल ज्याग्राफी आफ गेंसियट इंडिया पृ० ८९।

सिंधु<sup>१</sup>—इसका उल्लेख बृहत् संहिता तथा अष्टाध्यायी में भी हुआ है।<sup>२</sup> पाहियान के विवरण में इसे सिंधु कहा गया है।<sup>३</sup> यह हिमालय की गल से बहती हुई उत्तरा-पश्चिमी मोमात प्रदेश में होकर पंजाब सिंध तथा अत में पश्चिमी हिंद महासागर में जाकर मिलती है।<sup>४</sup> प्राचीन ग्रीक विवरण के अनुसार सिंधु की सात सहायक नदियाँ थी यथा—हार्ड्रोटेम (रावी) अक्सिन (चनाब), हाइयेसिम (विपासा-बीज) हाइडास्पस (वितास्त-झेलम) काफीन (काबुल) पेरेनाम मेपेरवाम और सियाना।<sup>५</sup> चन्द्र का मेहरोलीस्तम्भ लेख भी सिंधु के मात मुहाने का वर्णन करता है।<sup>६</sup>

सिंधु<sup>७</sup>—यह नदी मालवा के पठार में निकल कर उज्जयिनी हाती हुई चम्बल में गिरती है। इसका दूसरा नाम विन्हाला भी है।<sup>८</sup> कालिदास के अनुसार यह एक ऐतिहासिक नदी है जिसके तट पर उज्जयिनी नामक प्रसिद्ध नगर बसा था।<sup>९</sup> वा० सी० ला के अनुसार यह खालियर राज्य की एक स्थानीय नदी है जो चम्बल (चम्बती) में जाकर गिरती है।<sup>१०</sup> स्कन्द पुराण में सिंधु और साता नामक दो नदियों के संगम को सातासंगम कहा गया है जो तीर्थ यात्रियों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान था।<sup>११</sup> जैन ग्रन्थ आवश्यक चूर्णी में भी इसका उल्लेख मिलता है।<sup>१२</sup>

शृङ्खलुका<sup>१३</sup>—इस नदी की स्थिति का ठीक-ठाक पता नहीं चलता है। सम्भवतः यह विन्हालिर से निकलने वाली बरने की भाँति कहीं छोटी नदी रही होगी।

१ सम० क० २ पृ० १४८।

२ बृहत् संहिता १४ १९ अष्टाध्यायी ४।३।३२ ३३, ४।३।९४।

३ गग (Lagge)—पाहियान प० २६।

४ बी० सी० ला—हिस्टोरिकल ज्याग्राफी आफ ऐसियाट इंडिया प० १२७।

५ जे० सी० मिक्लर—स्टडीज इन मगवती सूत्र प० ५५१ ५२।

६ चन्द्र का मेहरोली स्तम्भ—तील्वा मसमुलानि 'मिथो' दखिए—डी० सी० सरकार-मेवट इमक्रिप्सन्स प० २७५।

७ सम० क० ४ प० ३१८ १९।

८ मेघदूत—पूर्वमेघ २७ २०।

९ रघुवश—६।३ मेघदूत-पूर्व मेघ २७ २९ ३१।

१० बी० सी० ला—हिस्टोरिकल ज्याग्राफी आफ ऐसियाट इंडिया, पृ० ३/७ ८८।

११ स्कन्द पुराण अध्याय ५६।

१२ आवश्यक चूर्णी पृ० ५४४।

१३ सम० क० ६ प० ५४४, देखिए—अथ वम का भौगोलिक इतिहास प० ३९७-३९९।

## तृतीय-अध्याय शासन-व्यवस्था

### राजा

राजतन्त्र का अस्ति व वदिक माहि य मे हो जात हाता ह । वदिककाल में बहुत से परिवार (कुल) मिलकर एक विस (एक सामाजिक संगठन) और बहुत से विस मिलकर एक जन का निर्माण करते थे । कुल का अधिपति कुलपति कहा जाता था । इस प्रकार एक कुलपति अपने गुण गौरव और नेतृत्व की क्षमता के कारण विमपति<sup>१</sup> और विसपति से जनपति बन सकता था ।<sup>२</sup> धीरे धीरे कई जनपद मिलकर महाजनपद और फिर राज्य बन । राज्य का अधिपति राजा कहा जान लगा । कौटिल्य ने प्रजापान्तन के लिए राजा का हाना आवश्यक बताया है ।<sup>३</sup>

प्राचीन काल के राज्य मुख्यतः दो प्रकार के थे राजतन्त्र और गणतन्त्र । गुप्तकाल तक आने-आने प्रायः गणराज्य समाप्त हो चले थे और राजतन्त्र का ही प्रचार प्रसार एवं प्रभाव बढ़ता रहा । राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति में राजा ही सर्वोच्च होता था । वही राजतन्त्र में प्रशासन और न्याय पालिका का प्रधान होता था ।<sup>४</sup>

ममरगुप्त्व कहा में भी राजतन्त्रात्मक शासन का उल्लेख है ।<sup>५</sup> यद्यपि राजा स्वच्छाचारो होने से तथा उनका पद भी बग परम्परागत होता था फिर भी वे प्रजा के हितों का एक शुभचिन्तक होने से ।<sup>६</sup> दुष्ट एवं अत्याचारी राजाओं की निन्दा की जाती तथा उससे विरुद्ध विद्रोह भी होने से ।<sup>७</sup>

१ मकसिडि गैमियट इंडिया पृ० ३८ ।

२ पृ० पम० अलेक्जर—२ ट एण्ड मदनमोह इन गैमियट इंडिया, पृ० ७६ ।

३ अथारस ११३ (सम्मान स्वयं भूताना राजा नरपतिशासन) ।

४ जी० मा० चौधरी-गोविन्द-विश्वेश्वर आर्य शासन इंडिया पृ० जैन मोमेंट, पृ० ३३३ ।

५ मम० पृ० ६ पृ० २६० ० पृ० ८६० ६१ ०५४ ।

६ पृ० ११३ ११७ ४ पृ० ३४० ३६१ ५ पृ० ८८५ ८९ ७ पृ० ३०० ८ पृ० ८६५ ।

७ पृ० ५ पृ० ४८० ।

## राजा के गुण

प्राचीन काल में राज्य व अन्तर गान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए तथा बाह्य आक्रमणों में रक्षा के लिए राजा की आवश्यकता मानी जाती थी। राज्य अत्यधिक गौरव मूल्य तथा जिम्मेदारियाँ से युक्त था। परिणामतः राजा साधारण व्यक्तियों से भिन्न होता था। सम्राट् व कहा में आया है कि राजा को सुदृढ़ (मन कम करने वाला) तथा धर्म अधर्म की व्यवस्था रखने में मग्न रहना चाहिए। माय-माय उसे प्रजा पालन मामल मण्डल का वश में रखने वाला, दान अनायास का उपकार करने वाला तथा कीर्तिमान होना चाहिए।<sup>१</sup> हमो ग्रन्थ में उल्लिखित है कि राजा को शरणागतवत्सल तथा धर्मात्मा साधनों में रत होना चाहिए।<sup>२</sup> निगीथ भाष्य में बताया गया है कि राजा का सत्कर्मों का पालना होना चाहिए न कि बुराई का, माय-साय यदि वह धन सचय का प्रयत्न नहीं करता तो गीध नष्ट हो जाता है।<sup>३</sup> व्यवहार भाष्य से पता चलता है कि राजा का प्रजा से शर्वा भाग कर व रूप में लेना चाहिए, लोकाचार वे और राजनीति में कुशल तथा धर्म में धृढावान होना चाहिए।<sup>४</sup>

आर्त्ति पुराण में उल्लिखित है कि राजा को अपने आंतरिक गुणों (काम क्रोध मत्त ममत्त लाभ मोह आदि) का जीतकर बाह्य गुणों को भी अपने आधान करना चाहिए धर्म, अर्थ और काम का सेवन करना चाहिए राजमत्ता के मद में न आकर विषय द्वारा यथायथ माय का पालन करना चाहिए युवा वस्था, रूप, ऐश्वर्य, कुल जाति आर्त्ति गुणों का प्राप्त कर अहंकार नहीं करना चाहिए तथा अत्यय अत्यधिक विषय सेवन एवं अनान इन तीनों दुगुणों से बचना चाहिए।<sup>५</sup> सामदेव ने यशस्तिलक में राजा को सद्गुणों का अनुगामी बताते हुए कहा है कि प्रजा का भी राजा का ही अनुकरण करना चाहिए।<sup>६</sup>

अथशास्त्र में राजा के गुणों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि उसे अभिगामिक गुण (अक्षुद्र परिवार व वश्य सामन्तता, शुचित्व प्रिय वांन्ति, धार्मिकता तथा दूर दर्शिता आदि) प्रजा गुण, उत्साह गुण तथा आत्मसयत गुण (वाक्वातुय स्मरण गति बाला घोर, वीर, दूरदर्शी क्रोध सवयन की क्षमता

१ सम० क० २, प० १४२, ८, प० ७३१ ३०।

२ वही ९ पृ० ८५९।

३ निगीथ भाष्य १५ ४७९९ देखिए—आर्त्ति० ४११६३।

४ व्यवहार भाष्य १, प० १२८ अ।

५ आर्त्ति० ४११६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९।

६ यशस्तिलक ४१९५।

वाला गभीर तथा उत्तार) आदि से युक्त होना चाहिए।<sup>१</sup> यानवत्त्व स्मृति में भी राजा को उत्साही स्थूल लक्ष्य वृत्तज्ञ, धृद्धमेवी, विनययुक्त कुलोत्त सत्यवादी, पवित्र अनीधसूत्री, स्मृतिवान् प्रियवान् धार्मिक अव्यसनी, पंडित बहादुर, रहस्यवेत्ता राज्य प्रवचक आम विद्या और राजनीति में प्रवीण बताया गया है।<sup>२</sup>

इन सब अर्थ साक्ष्या में राजा के गुणों का वर्णन किया गया है जिसे समराइच्च कहा में प्राप्त सामग्रियों की पुष्टि होती है। समराइच्च कहा तथा अन्य नामों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजा सामाजिक, राजनतिक, धार्मिक आर्थिक आदि सभी शक्ति में सब गुण सम्पन्न होता था तथा वह सदैव प्रजा हित का ध्यान रखता था। वह अपने मुख की कामना न करके प्रजा के कल्याण (भीन अनाथ आदि की सहायता तथा रक्षा) तथा राज्य हित की कामना करता था। किंतु जो राजा इन सभी गुणों के विरुद्ध आचरण करके स्वैच्छाचारी हो जाते थे उनके विरुद्ध सबक बिनाह होने थे तथा उनकी भर्त्सना होती थी। फलतः उनका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता था।

### राजा महत्त्व

प्राचीन काल में राजाओं का अत्यधिक महत्त्व था। समराइच्च कहा में उसे नरपति<sup>३</sup> कहा गया है। कभीकाल राजा जयचम के अभिलेख (सन् १२२५) में भी राजा के लिए नरपति शब्द का उल्लेख किया गया है।<sup>४</sup> वे मान और विक्रम के धनी होते थे।<sup>५</sup> राजा महाराजा अतः पुर अमात्य महामामन्त मामन्त और नगरवासियों से घिर रहते थे।<sup>६</sup> तथा उनका हाग सम्मानित होता था। उनकी सेवा के लिए प्रतिहारों<sup>७</sup> तथा सुरक्षा के लिए अगस्त्य<sup>८</sup> नियुक्त

१ अर्थशास्त्र ६ १।

२ यानवत्त्व स्मृति राजधर्म प्रकरण श्लोक ३०९ ३१०।

३ गम० क० ४ पृ० ३६५, ३६८ ५ प० ४४१ ४७४ ७ पृ० ६४७ ६६९ ६९३।

४ इटि० लेटी० १५ प० ६।

५ गम० क० ७ पृ० ६०५।

६ यही ६ पृ० ५६४।

७ यही ५ प० ४८१ ४८२ ७ ६०१ ६९५ ७०१ दण्डि—यामुनेवार्ण अग्रवाल—जय चरित एवं साम्प्रतिक अध्ययन प० ४४।

८ यही ५ पृ० २६७ ८ ७७१ ७ ७०६।

रहते थे। राजाना का पालन सबत्र होता था।<sup>१</sup> राजा धर्माधी तथा काम आदि निबन्धन मपादन में रत रहते हुए प्रजा के हित का भी संपालन करता था।<sup>३</sup>

आदि पुराण से पता चलता है कि राजा का "यायपूर्वक आजोविका चराने वाले गिष्ट पुष्पों का पालन और अपराध करने वाले दुष्ट परपा का निग्रह करना चाहिए।"<sup>४</sup> प्रजाहित के लिए उसे अधिक से अधिक काम करना अभिहित है।<sup>५</sup> समराइच्च कहा में उल्लिखित राजा के पत्नी गरिमा तथा महत्व उसका कायस्थता पर आश्रित है। राजा का पत्नी अत्यधिक जिम्मेदारियाँ से परिपूर्ण होता था और जो राजा इस जिम्मेदारी का पालन अपने परिश्रम काय कुशलता आदि के अनुसार करता था उसका मन्त्र सम्मान तथा महत्व था। प्रजा सम्मान के साथ उसकी आत्मा का पालन करती थी। ऐसे नृपति का सम्मान सामन्त, महासामन्त मन्त्री पुरोहित नगरवासी तथा सम्पूर्ण अन्य अधिकारी भी करते थे। इन्हीं सब कारणों से राजा को अन्य व्यक्तियों से भिन्न बताया उन्हे श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण व्यक्ति समझा जाता था।

## युवराज

प्रशासन का सुचारुस्थित रूप से चलाने के लिए राज्य में युवराज, मन्त्री, पुरोहित सनाध्यक्ष आदि का होना आवश्यक समझा जाता था।

अभिषेक होने के पूर्व ही अवस्था का युवराज कहा गया है।<sup>१</sup> युवराज पद राजकुमार अथवा राजघराने के विश्वसनीय व्यक्ति को ही सौंपा जाता था।<sup>२</sup> वह प्रान्तीय प्रशासन का कार्यभार वहन करता था।<sup>३</sup> युवराज को ही वाम में अभिषिक्त करके राज्य की सत्ता भी सौंप दी जाती थी।<sup>४</sup>

१ मम० क० ४, पृ० २६२ ५ ३९४, ६, ५२६, ५६५, ७ पृ० ८६० ६१, ९५४।

२ वही १ पृ० १५ २, पृ० ७६, ९, ८८१।

३ वही २, पृ० ११३ ११७ ४, ३६२ ३६१ ५ ४८५ ८६ ७ ७०९ ८ ८४५।

४ आदिपुराण ४२।२०२।

५ वही ४२।१३७ १०८।

६ निम्नोक्त चूर्णों ११ ३३६३ को चूर्णों (लेख युवरायाणाणाभिसिञ्चति ताव यवरज्ज ग्रणति)।

७ मम० क० २ पृ० १४७ ५, पृ० ४८१, ४८५, ६ ५६९ ७, ६०७, ६२९ ६९५।

८ वही ६ प० ५६९।

९ वही ५ पृ० ४८५।

पुत्र का ही राजपद का भागी बताया गया है। कौटिल्य ने लिखा है कि आपत्ति काल को छोड़कर ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनाना श्रेष्ठ है।<sup>१</sup> मनु ने भी लिखा है कि ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता से सब कुछ प्राप्त करता है।<sup>२</sup> हयचरित में भी उल्लिखित है कि प्रभाकरवधन की मृत्यु के पश्चात् बड़े पुत्र राज्यवधन का राज्याभिषेक हुआ था।<sup>३</sup>

समराइच्च कहा में उल्लिखित है कि राजसत्ता प्राप्त करने के पूर्व धोषणा कराई जाती थी और महान्गन पूजा आदि के द्वारा अप्रुय उत्साह मनाया जाता था। दूसरे दिन एक बहुत बड़ा समाराह में राजा सामंत मंत्री पुरोहित तथा अन्य नागरिकों के मध्य राजा द्वारा विभिन्न नित्यों समुद्रा एक तोर्या आदि स लाये गये सुगन्धित जल से अभिसिक्त किया जाता था तथा सामंत, मंत्री, पुरोहित आदि आशीर्वाद देते थे। तत्पश्चात् उसे सिंह चम पर बठाया जाता था और राजतिलक लगा कर सप्रभुता का प्रतीक छत्र और सिंहामन प्रदान किया जाता था।<sup>४</sup> राज्याभिषेक के लिए आवश्यक सामग्री सामग्रियों में शी मछलियाँ सुगन्धित जल से भरा हुआ कनक कण्डा स्वतः पुष्प महापद्म अर्घ्य पृथ्वी पिण्ड वृषभ दधिपूज पात्र महारत्न गोरोचन सिंह चम स्वतः छत्र, मद्रासन चामर द्वार स्वच्छ मन्त्रि राज मन्त्र घाय और कुक्कुर आदि का उल्लेख है।<sup>५</sup>

वर्तिका वा में भी राज्याभिषेक के समय होने वाले राजा को सिंह चम पर बठाकर पवित्र नित्या तथा समुद्रा से लाये हुए जल से स्नान कराया जाता था। वर्तिका मन्त्रा के माय पुजारी यह स्स्कार सम्पन्न करता था राजा को गति आदि प्रदान करने वाल दवा की उपासना कराता था। तत्पश्चात् पवित्र धर्म गया का शपथ लिवाई जाती थी।<sup>६</sup> महाभारत में भी राज्याभिषेक के समय धर्म का अनुगार प्रणयन के लिए शपथ ग्रहण करने का उल्लेख है।<sup>७</sup> किन्तु समराइच्च कहा में धर्मशर्था की शपथ का उल्लेख नहीं है।

१ अथगात्र १।१७।

२ मनु० ९।१०९।

३ हयचरित पृ० २००।

४ गम० ४० ७ पृ० ७२६ नलिए—निगाव धूर्तों २ पृ० ४५० ६, पृ० १०१।

५ वहा २ पृ० १५० ' पृ० ४८३ ८४।

६ १० यम० अन्नेकर—स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन लेमियट इंडिया पृ० ७८।

७ महाभारत १२।५०।१०६ ०७ प्रतिज्ञा चाधिरास्व मनगा कमना गिरा। पान्थिप्याम्भ भीम क्रतु इयेव चामकृता।

रामायण में भा राम व अभिषेक व समय जामवत, हनुमान और अय दा यक्तिया द्वारा चार कला में समुद्र का जल ले आने का उल्लेख है। समुद्र क माथ-साथ पाँच सौ ननियों का जल लाया गया। कुल पुरोहित एवं वद मुनि वशिष्ठ ने राम और सीता का रत्न जटित सिंहासन पर बटाया। मवस पहले वशिष्ठ एवं अय मुनियों ने राम पर पवित्र एवं मुगधित जल छिड़का। तत्प दवान कुमारियों मत्रियों, सिपाहिया एवं वजिक—निगमा ने भी जल छिड़का। वशिष्ठ ने राम के सिर पर अति प्राचीन मुकुट बांधा।<sup>१</sup>

वाण ने लिखा है कि गुप्त मूहृत में कुल पुरोहित स अभिषेक सम्पन्नी सभी मगल काय कराये गये और राजा ने स्वय अपने हाथों मागलिक जल स परिपूण कला के मयपूत जल की धार छोडते हुए आनन्दपूर्वक चद्रापीड का राज्याभिषेक किया। उस अवसर पर सभी नदिया, तीर्थों आदि से जल लाया गया। साथ साथ वदिक प्रया के अनुसार सब प्रकार की औपधियाँ, फल सभा स्थाना की मिट्टी (समराइल्ल कहा में इसे पथ्वी पिण्ड कहा गया है) तथा रत्न आदि एक त्रित किये गये थे।<sup>२</sup>

अभिषेक सस्कार का उल्लेख अय ब्राह्मण<sup>३</sup> तथा जन शर्मा<sup>४</sup> में भी मिलता है।

## सामन्त

कुछ विचारका के अनुसार राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रवृत्तिया के कारण राज्य व्यवस्था का सामन्तवाणी ढांचा मौर्योत्तर काल और विशेषकर गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ।<sup>५</sup> छठवी शताब्दी में विजित जागीरदारों का सामन्त व रूप में व्यवहृत किया जाने लगा।<sup>६</sup> कौटिल्य अथशास्त्र में भी इन पडामी जागीरदारों की

१ देखिए—रामायण—मुद्र काण्ड।

२ वामुनेवशरण अग्रवाल—बादम्बरी एवं सांस्कृतिक अध्ययन प० १२५।

३ महाभारत—शांति पर्व ४०।९ १३ विष्णु धर्मोत्तर २।१८।२४ अग्नि पुराण—अध्याय २१८ हृषिकर्षित प० १०३।

४ जम्बू द्वीप प्रगति ३।६८ आवश्यक चूर्णी, प० २०५, निधीय चूर्णी, २ प० ४६२ ६३ ३ प० १०१ उत्तराध्ययन टीका, ८, प० २४०, नात धम कथा १ म० २८ आदि पुराण ११।३९ ४५, १६।१९६ २१५ १६। २२५ २३३ २३।६०।

५ आर० एस० शर्मा—भारताय सामन्तवाद, पृ० २।

६ वही पृ० २४ २५।



स्वतंत्र सत्ता का प्रमाण मिलता है।<sup>१</sup> मौर्यकाल के पश्चात् इसका प्रयोग पड़ोसी भूमि व औचित्य के लिए किया जाने लगा<sup>२</sup> न कि जागीरदार के रूप में।<sup>३</sup>

पाँचवीं शताब्दी में सामंत शब्द का प्रयोग दक्षिण भारत में भूस्वामी के अर्थ में किया जाने लगा क्योंकि शातिवर्धन (ई० सन ४५-७०) के पल्लव अभिलेख में सामंत कुत्तमानया का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>४</sup> उसी शताब्दी के अन्तिम काल में दक्षिणी और पश्चिमी भारत के दानपत्रों में सामंत का उल्लेख जागीरदार (भूस्वामी) के अर्थ में प्राप्त होता है।<sup>५</sup> उत्तर भारत में सबसे प्रथम हमका प्रयोग उसी अर्थ में बगाल अभिलेख और मौखरी शासक अनन्तवर्धन के बरानर पहाड़ी गुफा अभिलेख में उल्लिखित है जिसमें उनके पिता को सामन्त कुत्तमाननी (भूस्वामियों में सर्वश्रेष्ठ) कहा गया है।<sup>६</sup> दूसरे यशोधरवर्धन (ई० सन ५२५-५३५) के मदसौर स्तम्भ लेख में भी सामंत का उल्लेख पाया जाता है जिसमें वह समस्त उत्तर भारत के सामंतों का अपने आधीन करने का दावा करता है।<sup>७</sup>

सम्राट्त्व कहा में सामंतवर्गीय प्रथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सामन्त लोग राजा महाराजाओं के आधीन शासन करते थे। वे कर दाता नृपति के रूप में जाने जाते थे तथा राजा महाराजाओं का सम्मान करते थे।<sup>८</sup> सामन्तों के पास अपनी निजा सनाएव दुग रहता था।<sup>९</sup> फिर भी वे स्वतंत्र शासक की भाँना के विच्छिन्न काय नहीं करते थे। बाकाटका के सामन्त नारायण महाराज और गजुप्प

- १ अथगास्त्र १ ६।
- २ मनु० ८ २८६-९ याज्ञ० २ १५२ ३।
- ३ बी० यन० दत्ता-हिन्दू ला आफ इनहेरिटेंस, पृ० २७।
- ४ राजगुला पाण्डेय-हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स न० २०, १३।
- ५ लॉलन जा गापाल—सामन्त—इदम धरिण सिमनीकिंग इन तैमियट इडिया—जनल आफ द रवायल एगियाटिक सासायटी अफर १०६३ में।
- ६ बापम इन्सक्रिप्शनम् इडिबैरम ३ न० ४९ १८।
- ७ गजुप्प इन्सक्रिप्शनम् पृ० ३९४ पक्ति ५।
- ८ सम० ब० २ पृ० १४७ ५ पृ० ३६५ ३८३ ४८१ ८२, ४८५, ४८७ ७ पृ० ६३३ ६३५ ६०४ ८ ८४१ ९ ७३६, ७६१ ६२, ७६६ ९७३ ९७६ ७७८।
- ९ बहा ३ पृ० ७२६।
- १० बही २ पृ० १४७-४८।

महाराज वयगुप्त के सामंत रदट, और कदम्बा के सामंत मानुशक्ति को अपने ही राज्य के कुछ ग्रामों की मालगुजारी दान करते समय अपने सम्राटों की अनुमति लेनी पड़ती थी।<sup>१</sup> राष्ट्रकूट शासक गाविन्द तृतीय का सामंत बुधवर्ष न भी एक ग्राम दान करने के लिए अपने सम्राट से आज्ञा माँगी थी।<sup>२</sup> राष्ट्रकूट नृपति ध्रुव के सामंत शकरगण ने भी ग्राम दान की आज्ञा माँगी थी।<sup>३</sup> इसी प्रकार परमार नरेश जयवर्मा के आदेश से उसके सामंत गगदव ने भूमि दान किया था।<sup>४</sup>

सामंत नृपति युद्ध-काल में गनु पर विजय पाने की लालसा से अपने सम्राटों को सफल की सहायता भी करते थे।<sup>५</sup> अन्य साक्ष्यों से भी पता चलता है कि सामंत लोग अपने सम्राटों की भौतिक मदद करते थे।<sup>६</sup> दक्षिण कर्नाटक का नर्गसिंह चालुक्य (११५ ई०) अपने सम्राट की ओर से प्रतिहार सम्राट महीपाल के विरुद्ध युद्ध-प्रात में जाकर लड़ा था।<sup>७</sup>

कभी-कभी सामंत नृपति स्वतंत्र नामक बनने के लिए अपने स्वामी सम्राट के विरुद्ध विद्रोह भी कर देते थे जिम्का दमन करने के लिए स्वामी-नृपति सैन्य शक्ति का महाराज लेते थे।<sup>८</sup> विद्रोही सामन्तों को पराजित हो जाने पर बड़ी अपमानजनक शान्ति संहार करनी पड़ती थी।<sup>९</sup> कभी-कभी उनसे विजेता के अश्वशान्ति हस्तिशाला आदि में दंड स्वरूप छोट, मिलवाई जाती थी।<sup>१०</sup>

केन्द्राय सत्ता कमजोर पड़ने पर सामंत-नृपति स्वतंत्र भा हो जाते थे। यथा गुजरात प्रतिहार साम्राज्य की अवनति पर उसका अनेक सामन्तों ने महाराजा धिराज परमेश्वर आदि उपाधिया धारण कर ली थी।<sup>११</sup>

१ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली ६ पृ० ५२ इडियन ऐंटीक्वरी ६ पृ० ३१ ३२।

२ इडि० ऐंटीक्वरी १२ पृ० १५।

३ इपि० इडि० ९, पृ० १९५।

४ वहा ९, पृ० १२० ३।

५ वही १२ पृ० १०१।

६ अल्तेकर—राष्ट्रकूटों का इतिहास, पृ० २६५।

७ सम० क० १ पृ० २७ २ १४७, १५३ १४ ८ पृ० ७७१ ७२।

८ कुमारपाल प्रवच, पृ० ४२।

९ इपि० इडि० १८ पृ० २४८।

१० वही १ पृ० १९३ ३ पृ० २६१ ७।

समराइच्च कहा में महासामता का भी उल्लेख है जो स्वतंत्र सम्राटों के समान ही बंधन वाले अनेक सामंतों के अधिपति तथा सम्राट के अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति होते थे।<sup>१</sup> महामामता के स्वतंत्र राजाओं से वैवाहिक सम्बंध भी होने थे।<sup>२</sup> उनके अधिकार में उनकी निजी सेना दुर्ग तथा कोष आदि होते थे।<sup>३</sup> अतः वह स्वतंत्र सम्राट का निकटस्थ विश्वसनीय और लगभग उन्हीं की तरह सम्पन्न समझा जाता था। हूण के दरबार में अनेक महामामत और राजा उपस्थित थे इनकी तीन श्रेणियाँ थी—एक नवु महामामत जो जीत लिये गये थे। दूसरी श्रेणी में वे राजा आने थे जो सम्राट के प्रताप से अनुगत होकर वहाँ आये थे। तीसरी श्रेणी के वे नृपति थे जो सम्राट के अनुग्रहवश आकृष्ट हुए थे।<sup>४</sup> अपराजितपुच्छा ग्रन्थ के अनुसार लघु सामंत की आय ५ सहस्र सामंत की दस सहस्र महामामत अथवा सामंत मुख्य की आय बीस सहस्रकर्पापण होनी चाहिए।<sup>५</sup> अपराजितपुच्छा में यह भी उल्लिखित है कि महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण करने वाले सम्राट के दरबार में चार मण्डल, बारह माण्डलिक सोलह महामामत वत्तास सामंत एक सौ साठ लघु सामंत तथा चार सौ चतुरांगिक (चौरागी) उपाधिधारी होने चाहिए।<sup>६</sup> इन सभी उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि समराइच्च कहा में उल्लिखित सामन्त महामामत सम्राटों के अधीन कर दाता नृपति के रूप में दामन करते थे जिनमें महामामन्त का पद सामन्तों से ऊँचा होता था।

### कुलपुत्रक

सम्बन्धित गणन पद्धति के अनुसार राजा महाराजाओं के आधीन गामता का तरह कुलपुत्रक का होता था। ये लोग भी राजाओं को युद्ध के अवसरों पर सैनिक सहायता देने थे।<sup>७</sup> कुलपुत्रक का राजा महाराजाओं के यहाँ बग ही सम्मान होता था। ये कुलपुत्रक दान में अथवा अभिमान घनी दमालू दूर

१ गम० क० २ पृ० ७९ स ८३ ५ ४७२।

२ वही २ पृ० ७९ स ८३।

३ वही २ पृ० ७९ स ८३।

४ अप्रवाज-हूणचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन पृ० ४३।

५ अपराजितपुच्छा ८२ ५ १० पृ० २०३।

६ बग ७८ २२ ३४ पृ० १०६।

७ गम० क० १ पृ० २९ २ १५३ ३ १७२ ५ ३८७-८८ ३८० ०० ०१ ६  
६५ ७ ६६० ८ ७७३।

८ वही ७ पृ० ६६०।

तथा गरणागत रक्षक होते थे ।<sup>१</sup> अपने गुण तथा पराक्रम के कारण ये लोग काफी सम्मानित सम्पत्ते जाते थे । हृष चरित में भी एक स्थान पर उल्लिखित है कि अभिजात राजपुत्रों के द्वारा भेजे गये पीतल-जटित (कुप्य युक्त) वाहना में कुलीन कुलपुत्रा की स्त्रिया जा रही थी ।<sup>२</sup> दक्षिण के वाकाटक रेखा में राज सदेश वाहका को कुलपुत्र (कुलान उच्च कुल का) कहा गया है ।<sup>३</sup> पल्लव लखों में इन्हें महाप्रान्त (मन्त्री) का सदेशवाहक बताया गया है ।<sup>४</sup> आभाम से प्राप्त एक लेख में इन श्रेणी का एक अधिकारी बड़े गव से कहता है कि मैं भवडा राजाजा का वहन कर चुका हूँ ।<sup>५</sup>

सम्राट्त्वं कहा तथा अन्य साक्ष्या स स्पष्ट होता है कि ये कुलपुत्रक राज परिवार से संबंधित उच्च कुल के होते थे जो अपने मान-सम्मान व धनी तथा पराक्रमी होते थे । इनका कार्य युद्ध काल में सैनिक सहायता व साथ-साथ सदेश पहुँचाना भी था ।

## मन्त्रि और मन्त्रिपरिषद्

कौटिल्य ने राज्य के सात अंग-स्वामी, अमात्य जनपद, दुग्ध, काय, दण्ड और मित्र गिनाया है ।<sup>६</sup> मानसोल्लास में भी स्वामी अमात्य, सुहृद, कोप, राष्ट्र, दुग्ध एवं बल को सप्तांग बताया गया है ।<sup>७</sup> प्रशासनिक कार्यों में राजा की मदद के लिए मन्त्रिपरिषद् का गठन किया जाता था जिसमें एक से अधिक मन्त्री होते थे ।<sup>८</sup> राजा प्रत्येक कार्य करने के पूर्व अपने मन्त्रियों से सलाह लेता था ।<sup>९</sup> महाभारत में एक स्थान पर बताया गया है कि राजा उसी प्रकार मन्त्रियों पर निर्भर रहता है जिस जीव जन्तु वादला पर ग्राह्यण बंदों पर और स्त्रिया अपन पति पर ।<sup>१०</sup> मनु के अनुसार भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न कार्यों के विशेषज्ञ होते हैं

१ सम० क० ५ प० ३८७ ।

२ अग्रवाल—हृषचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन प० १४१ ।

३ इपिग्रफिया इंडि० २२ प० १६७ ।

४ इंडि० ऐंटी० ५ प० १५५ ।

५ इपि० इंडि० ११, पृ० १०६ ।

६ अर्थशास्त्र ६, १ ।

७ मानमोल्लास अनुक्रमणिका, प्लाक २० ।

८ सम० क० २, पृ० १५०-५१ ।

९ सम० व० २, पृ० १५१ ।

१० महाभारत—उद्योगपर्व ३७-३८ ।

ता अकेले राजा हर काम को दक्षतापूर्वक नहीं कर सकता। परिणामतः उम राज्य तथा स्वयं को बर्बादी से बचाने के लिए मंत्रिया का सहयोग लेना चाहिए।<sup>१</sup>

मन्त्री गण भी राजा के प्रति स्वामिभक्ति की भावना से काम करते थे।<sup>२</sup> वे नीति और बुद्धि में कुशल होने।<sup>३</sup> परामर्श तथा अन्य प्रकार के प्रशासनिक कार्यों में सहयोग के साथ-साथ 'याय वाय भी देखते थे।<sup>४</sup> कौटिल्य के अनुसार मन्त्रा को स्वदेशी उच्च कुल का कला में परिपक्व दूरदर्शी बुद्धिमान तेज यादशस्त वाला धीर चतुर उत्साही सच्चरित्र शक्तिमान बहादुर और अच्छे स्वास्थ्य वाला, स्वतंत्र विचार का तथा घृणा तथा शत्रु भाव रहित होना चाहिए।<sup>५</sup> अन्य ब्राह्मण<sup>६</sup> तथा जन<sup>७</sup> ग्रन्थों में भी मंत्रिया को साम धाम दण और मैत्री नीति में कुशल नीतिशास्त्र में पण्डित गवेषण आदि में चतुर कुलीन श्रुति सम्पन्न पवित्र अनुरागी धीर वीर निरोग, प्रगल्भ वाम्सी प्राप्त, राग-द्वेष रहित मलय मध महात्मा दृष्ट चित्त वाला निरामय प्रजा प्रिय आश्रिणा से युक्त होना आवश्यक बताया गया है। यद्यपि राज्य के सभी कार्यों के प्रति अंतिम जिम्मेदारी राजा की हाता थी फिर भी वह मंत्रियों को सलाह मानता था।<sup>८</sup> मंत्रियों का यह सब श्रेष्ठ कर्तव्य था कि राजा का सही मार्ग दिखा कर राज्य कार्यों से बचाये।<sup>९</sup> कथा सरित्सागर में उल्लिखित है कि मन्त्री का राजा के प्रति स्वामिभक्त तथा जनता का शुभेच्छु होना चाहिए।<sup>१०</sup> राजा भी मंत्रिया का सम्मान

१ मनु० ७।५३ विनोयनाम्नहायेन किनु राज्य महात्म्यम् ।

२ मम० क० १ पृ० ४०४ ३३५ ।

३ वही २ पृ० १५१ ।

४ वही ४ पृ० २५७ ५८ ५९, २६२ ।

५ अथशास्त्र १९ टिप्पण—महाभारत १२ वाँ पर्व अध्याय ८३ कामन्द्य नीतिशार, २५-३१ ।

६ महाभारत १२ अध्याय ८३ कामन्द्य नीतिशार ४।२५ ३१ ।

७ व्यवहार माधव १ पृ० १३१-अश्वानुधम कथा १ पृ० ३, आश्रिपुराण, ५।७ मानमात्म्यम् २।२।५२ १० ।

८ अथशास्त्र ११५ टिप्पण—बृहत्कल्पमाध्य १ पृ० ११३ ।

९ वही ११५ टिप्पण—कामन्द्य० IV ४१४ ।

१० कथामणिशार १।७।६ ।

करता था ।<sup>१</sup> वह मंत्रियों का अपना हृदय समझता था ।<sup>२</sup> राज्या में धर्म एवं अर्थ की समृद्धि आदि मंत्रियों की काय पटुता पर निर्भर रहती थी ।<sup>३</sup> मौखरी प्रशासन में मन्त्रिपरिषद् का प्रशासनिक अधिकार प्राप्त था क्योंकि जब अंतिम राजा सत्तान रहित मर गया तो मन्त्रिपरिषद् ने ही मौखरी प्रशासन हथबधन का मौफा था ।<sup>४</sup> अतः समराइच्च कहा के उल्लेखानुसार यह स्पष्ट होता है कि मन्त्री राजा की ही भांति मन्वगुण सम्पन्न होते थे तथा राजा राज्य तथा जनहित की भावना में काय करने थे । मन्त्रिपरिषद् को ही प्राचीन प्रशासनिक गाडी की धुरी समझना चाहिए ।

समराइच्च कहा में यद्यपि परिषद् में मंत्रियों की काइ निश्चित सख्या नहीं दी गया ह फिर भी राजस्वरधार में एक महामन्त्रा<sup>५</sup> तथा अन्य साधारण मन्त्री हाने<sup>६</sup> थे । महाभारत में मंत्रियों की सख्या आठ बताया गयी है ।<sup>७</sup> मनु के अनुसार मन्त्रिपरिषद् में मंत्रिया की सख्या सात या आठ हानी चाहिए ।<sup>८</sup> मनु<sup>९</sup> और कौटिल्य<sup>१०</sup> इस बात पर सहमत ह कि राज्य की आवश्यकतानुसार मंत्रियों की सख्या निश्चित की जानी चाहिए । यशस्तिलक में राजा का एक ही मन्त्री पर पूण रूप से निर्भर न होने की बात कही गयी है जिससे स्पष्ट हाता ह कि मंत्रियों की सख्या अवश्य हो अधिक रही होगी ।<sup>११</sup>

- १ इपि० इडि० ९, पृ० २५४-परवल नृपते मुद्घिन वन्द्य प्रधान, देखिए—  
इडि० ऐंटीक्वरी १४, पृ० ७-या जिहवा पृथ्वीशम्य याराणा दक्षिण कर ।
- २ जनल आफ दी बाभ्व ब्राच आफ रवायल एशियाटिक सासायटी १५, पृ० ५ ।
- ३ इडियन ऐंटीक्वरी ७ पृ० ४१ ।
- ४ वात्स आन युवान ज्वाग १ पृ० ३४३ ।
- ५ मम० क० २ पृ० १४५, २ २९५ ।
- ६ वही १ पृ० २१, ६८ ४ २५७ ५८ ५९, २७२, २८३, २९५ ६ ५९८ ६३० ३१, ६९२ ६९४, ७०७ ८ ८३२, ८४४ ।
- ७ महाभारत १२ ८५, अष्टाना मन्त्रिणा मध्ये मन्त्र राजापधारयत् ।
- ८ मनु ७।५४—सचिवान् सप्त चाष्टौ वा कृर्वीत सुपरीणितान्—, देखिए—  
मानमालास २।२।५७ ।
- ९ मनु० ७।६१ ।
- १० अयगात्र १ १५ यथा सामय्यमिति कौटिल्य ।
- ११ व० व० हडावी—यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० १०१ ।

समराइच्च कहा में मंत्री<sup>१</sup>, महामंत्री<sup>२</sup>, अमात्य<sup>३</sup>, प्रधान अमात्य<sup>४</sup> और सचिव<sup>५</sup> तथा प्रधान सचिव<sup>६</sup> का उल्लेख है। रामायण में कही मंत्री को सचिव बताया गया है<sup>७</sup> तथा कही इन दोनों में भेद बतलाया गया है।<sup>८</sup> पश्चिमी भारत के शक प्रशासकों ने मति सचिव (मंत्री) तथा कम सचिव (विभागीय मंत्री) की सहायता से प्रशासन काय किया था।<sup>९</sup> अथशास्त्र में सभी मंत्रियों का समुक्त रूप से अमात्य कहा गया है।<sup>१०</sup> किन्तु एक अर्थ स्थान पर कौटिल्य ने मंत्रियों का निर्वाचित अमात्या के बीच में से धरने का संकल्प किया<sup>११</sup> है जो कि मंत्री और अमात्या के बीच अंतर का सातक है। मनु ने प्रधान मंत्री को ही अमात्य कहा है।<sup>१२</sup>

उपरोक्त भेद प्रमेद का अलावा समराइच्च कहा की भाँति निम्नीय घूर्णों में भी अमात्य<sup>१३</sup> सचिव<sup>१४</sup>, मंत्री<sup>१५</sup> तथा महामंत्री<sup>१६</sup> का उल्लेख मिलता है किन्तु इनमें भेद नहीं बताया गया है। किन्तु वसाह के अनुसार सभी अमात्य जो सचिव

१ सम० क० १, पृ० २१ ६८ ८ २५७ ५८ ५९ २७२ २८३ २९५ ६, ५९८, ६३० ३१ ६९२, ६९४ ७०७ ८ ८३२ ८४४ देखिए—उपासक दशा २, परिशिष्ट पृ० ५६ अथशास्त्र १ ६।

२ वही २ पृ० १४५, १५१ ८ २९५ इण्डियन ऐंटीक्वरी ६ पृ० २४ तथा १८ पृ० २३८।

३ वही २ पृ० १४६ ३ १९६ ४ २७३ ७४ ७ ६३१-३२ ३३, ८ ८३७ ९ ८९७ ९८ ९३५, ९७८ देखिए—निम्नीय घूर्णों ४ पृ० २८२ १ पृ० १६४ आर्षियालाजिरल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट १९५३ ५४, पृ० १०७ महामास १२।८५।७-८ अथशास्त्र १ १५।

४ वही ७, पृ० ६९३ ९४ ९५ देखिए—निम्नीय घूर्णों २ पृ० ४४९ इपि० इण्डि०—११ पृ० ३०८।

५ सम० क० ३ पृ० १६२ ९ ८८१।

६ वही ९ पृ० ८८२।

७ रामायण २।११२।७।

८ वही १।७।३ तथा १।८।४।

९ मन्त्रासन प्रथम का जूनागढ़ अभि० इपि० इण्डि० ८ पृ० ४२।

१० अथशास्त्र १ १५।

११ वही १ पृ० ८।

१२ मनु० ७।६५।

१३ निम्नीय घूर्णों १ पृ० १६४ ४ पृ० २८१।

१४ वही १ पृ० १२७।

१५ वही १ पृ० १२७।

१६ वही ३ पृ० ५७।

कहे जाते थे, मंत्री नहीं थे।<sup>१</sup> मध्यकालीन अभिलेखों<sup>२</sup> में अमात्य को सचिव से भिन्न सूचित किया गया है और उन्हें माल तथा कर विभाग का मंत्री बताया गया है। निशिय चूर्णी में एक स्थान पर सचिव को मंत्री बताया गया है<sup>३</sup> तथा एक स्थान पर सुबुद्धि नामक व्यक्ति को जिया सत्तु नामक राजा का अमात्य और मंत्री दोनों बताया गया है।<sup>४</sup> विभिन्न चालुक्य अभिलेखा में महामंत्री को महा मात्य के रूप में चित्रित किया गया है।<sup>५</sup> अत स्पष्ट होता है कि कायक्षेत्र के अनुसार समराड्छ्व कहा में उल्लिखित मंत्री, अमात्य तथा सचिव आदि मंत्री गण के लिए तथा महामंत्री प्रधान अमात्य तथा प्रधान सचिव आदि प्रधान मंत्री के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

### पुरोहित

प्रचामन के कार्यों में प्रधान मंत्री प्रधान अमात्य की भाँति राज पुरोहित का पत्र भी बड़ा सम्मानजनक था।<sup>६</sup> समराड्छ्व कहा में उल्लिखित है कि पुरोहित को सकलजना में सम्मानित, धर्मशास्त्र का पंडित, लोक व्यवहार में कुशल नातिवान, वाम्नी अल्पारम्भपरिग्रह वाला तथा तत्र-भत्र आदि का चेत्ता होना चाहिए।<sup>७</sup> अथ शास्त्र के अनुसार पुरोहित को शास्त्र प्रतिपादित विद्याओं से युक्त उन्नत कुल शीश्वान, पंडितगर्ववेदभाता ज्योतिषशास्त्र गवृन्तशास्त्र तथा

- १ वसाक आर० जी०—मिनिस्टम इन ऐंसियट इण्डिया - इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली, वालूम १, पृ० ५२३-२४ (वसाक के अनुसार अमात्य और सचिव शब्द का अर्थ 'सहायक' अथवा साथी से है किंतु मंत्री का अर्थ 'मंत्र (गुप्त-सलाह) अथवा राजनीतिक सलाह से है।), अमर कोष ८०४५ से पता चलता है कि एक 'अमात्य' जो कि राज्य का 'अधिसचिव' अथवा 'मति सचिव (सलाह देने वाला मंत्री) है, मंत्री कहा जायगा और मंत्रियों के अलावा सभी 'अमात्य' कम सचिव थे।
- २ ए० यस० अन्वेकर—राष्ट्रकुत्र एण्ड दियर टाइम्स पृ० ८१।
- ३ निशिय चूर्णी २ पृ० २६७—अमल्वा मंत्री।
- ४ वही ३ पृ० १५०।
- ५ ए० यस० अन्वेकर—स्टेट गवर्नमेंट इन ऐंसियट इण्डिया पृ० १२५।
- ६ सम० क० १ पृ० २१ ३८, ४८, ६ ५९५ ६०१, ७ ६३८, ९ ८९५, देखिए—आदि० ३७ १७५।
- ७ वही १ पृ० १०।
- ८ अथशास्त्र १ ९।



स्थान तक पहुँचाने के लिए लेख वाहक<sup>१</sup> को नियुक्ति होती थी। यह सचार वाहक का कार्य करता था। हथ चरित में लेख वाहक को लेख हारक कहा गया है जो लेख (पत्र) पहुँचाने का कार्य करता था। इसके सिर पर नीली पट्टा माला की तरह बँधी रहती थी जिम्मे भीतर लेख रखकर प्रेषित करता था।<sup>२</sup> राज तरंगिणी में इसका उल्लेख लेख हारक<sup>३</sup> के रूप में हुआ है।

### राज प्रासाद

प्राचीन काल में राजा महाराजाओं के आवास के लिए सुन्दर एवं आकर्षक राजप्रासाद<sup>४</sup> निर्मित होते थे। अमरकव की व्याख्या प्रशस्ति टीका में देवा के निवास स्थान का प्रासाद और राजाका के निवास स्थान को भवन कहा गया है।<sup>५</sup> प्राचीन जन धर्मों में आठतल वाले प्रासादों का उल्लेख है। ये प्रासाद सुन्दर गिर्दर युक्त तथा ध्वजा पताका छत्र और मालाओं से सुशोभित तथा मणि मुक्ता जड़ित पत्र वाले होते थे।<sup>६</sup> याज्ञिक में त्रिभुवन तिरुत्त प्रासाद का उल्लेख है जो स्वतः पापान (सममर) से निर्मित था। शिखर पर स्वर्ण बेलन लगाये गये थे। अन्तमय तन्त्रा वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणों के कारण राज भवन बुबेरपुरी की तरह लग रहा था।<sup>७</sup> आशि पुराण में भी सवतामद्र प्रासाद तथा वज्रत भवन का उल्लेख है।<sup>८</sup> धाणमद्र के काम्बरी में महा प्रासाद का उल्लेख है।<sup>९</sup> समराइच्च कहा में सवतोमद्र प्रासाद तथा विमान छत्र प्रासाद का विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

### सवतोमद्र प्रासाद

यह प्रासाद राजा के गभी प्रकाश की मुख-मुखिधात्रा से परिपूर्ण होता था।<sup>१०</sup> इसमें तोरण तथा वज्र मालाएँ लटक रही थीं सुषपित दवत और आकर्षक

१ गम० ४० ४, पृ० ३६१ ६२ ६ प० ५३३ ८ ८१४।

२ वामुदेवचरण अथवाल—हथचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ८० तथा पृ० १८०।

३ राजतरंगिणी ६। ३१९।

४ अमरकव व्याख्या प्रशस्ति टीका ५७ प० २२८ (चक्र दाग अनु०)।

५ गान्धर्व तथा १ प० २० उत्तराध्ययन मूल १०१४ उत्तराध्ययन टीका १३, पृ० १८०।

६ याज्ञिक पृ० ३४२ ४३ ४४।

७ आशि ३७। ४६ ४७।

८ काम्बरी पृ० ५८।

९ गम० ४० १ पृ० ४३।

पुष्प मालाएँ इससे सौन्दर्य को निरंतर वृद्धि करती थी।<sup>१</sup> आदि पुराण में भी सवताभद्र प्रासाद का उल्लेख आया है जो चक्रवर्ती राजा का आवास था। इसमें दण्ड्यमान रत्ना से भूषित तोरण लगे थे।<sup>२</sup> मानसार में भी सवतोभद्र का दण्डक स्वस्तिक मौलिक चतुर्मुख आदि की भाँति एक अथ प्रकार का प्रामाण्य बताया गया है।<sup>३</sup> यह विरोपतया सप्तमाठ (सात भवना की पत्ति) कहा गया है।<sup>४</sup> विमान छन्दक प्रासाद

राजा अपनी सुख-सुविधा के विचार से राजधानी के बाहर भी सुन्दर एवं आकर्षक विमान छन्दक नामक राजप्रासाद का निर्माण कराते थे।<sup>५</sup> यह महान् वर्षा ऋतु की शांति को धारण करने वाला था। इसकी अलंकारिता का विस्तृत वर्णन समराङ्ग कहाँ में किया गया है।<sup>६</sup> इसमें स्वर्ण अटित स्तम्भ तथा सुन्दर गलियाँ तथा द्वार बने थे। राजप्रस्थानीय मूल में भा सुयाभ द्वय के विमान प्रामाण्य का वर्णन किया गया है। यह प्रामाण्य चारों तरफ प्राकार से घेष्टित था।<sup>७</sup> इसका चारों तरफ द्वार बने थे जो ईशान्य वषट्म नरतुरण (मनुष्य के सिर वाला घाँडा) मगर विहग, सप किन्नर, रुह (हरिण) शरभ चमर कुजर वनज्जता और पद्मस्तता की आकृतियाँ बनी थी।<sup>८</sup> मानसार में विमान को हरम अलाय अभिस्नाक प्रामाण्य भवन क्षेत्र मन्दिर आयतन वैश्या गृह आवाम छाया धमन वाम गण आगार मन्त्र आदि का पर्याय बताया बताया गया है।<sup>९</sup>

### भवनदीर्घिका

भवनाद्यान में लेकर अठ पुर तक एक छोटी सी नहर रहती थी। इसकी लवाई के कारण ही इसे भवन दीर्घिका कहा जाता था। दीर्घिका के मध्य में गन्धाक में पूज कीडा वापियाँ बनी रहती थी। इसमें कमल खिले रहते थे हम कीडा किया करते थे तथा राजा और गनिया भी इस भवन दीर्घिका में

१ सम० क० १ प० ४३।

२ आ० ३७।१४६।

३ पी० के० आचार्य—आर्किटेक्चर आफ मानसार प० ३७३।

४ वही प० २७६।

५ सम० क० १, प० १५।

६ वही १, प० १५।

७ जगन्नीश चन्द्र जन—जन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ३३१ ३२।

८ वही पृ० ३३१ ३२।

९ पी० के० आचार्य—आर्किटेक्चर आफ मानसार प० २२९।

ज्ञान करती थी।<sup>१</sup> यगन्तिलक में भी भवन दीधिका का उल्लेख आया है जिसका तलभाग मरकतमणि का बना हुआ था<sup>२</sup>। दीवालें स्फटिकमणि<sup>३</sup> में, मीढियाँ स्वर्ण<sup>४</sup> से तथा तट श्रृङ्खला मुक्ताफल<sup>५</sup> से निर्मित थे। जल को वही हाथी, वही मकर इत्यादि के मुँह से झरता हुआ ढिखलाया गया था<sup>६</sup>। जलतरंगों पर फूल का शिखार था<sup>७</sup> तथा किवाड़ों पर चन्दन का लेप था<sup>८</sup>। बीच में पुष्करिणी बनाई गया थी (जल का शोक कर) जिसमें कमल खिले थे<sup>९</sup>। आगे सुगन्धित जल पुनः रूप उनाया गया था जिसमें कस्तूरी और केसर से सुवासित शीतल जल भरा हुआ था।<sup>१०</sup> नृत्यरुचात जल का मृणाल की तरह पतली धारा का रूप में बहल लिया गया था<sup>११</sup>। अंत में यह दीधिका प्रमद वन में पहुँचती ढिखायी गयी है जहाँ विविध प्रकार के कोमल पत्तों और पुष्पा से पल्लव और प्रसून गन्ध उनायी गयी थी<sup>१२</sup>। हृषिकेश<sup>१३</sup> तथा काम्बरी<sup>१४</sup> में भवन दीधिका का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। बालिगाम ने भी भवन दीधिका का वर्णन किया है<sup>१५</sup>। इन साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि भवन दीधिका राजमहल निर्माण कला की एक विशेषता थी।

## वाह्याली

राजप्रासाद के बाहर राजपुत्रा के द्वारा घोड़ों पर सवार होकर भ्रमण

- १ मम० व० १ पृ० ८२ ५ प० ४७२।
- २ यगन्तिलक पृ० ३८ पृ० (मरकत मणि विनिर्मित मूलामु)।
- ३ वही पृ० ३८।
- ४ वही पृ० ३८ (बाबनापविनमापान परपरामु)।
- ५ वही पृ० ३८ (मुक्ताफलपुष्पिण वेगल पयतामु)।
- ६ वही पृ० ३९ (वर्मिणर मयमुष्पमानवारिभरिताभागामु)।
- ७ वही पृ० ३९।
- ८ वही पृ० ३९।
- ९ वही पृ० ३९।
- १० वही पृ० ३९।
- ११ वही पृ० ३९।
- १२ वही पृ० ३९ (विविध पल्लव प्रभूत वृक्षामधिरामु)।
- १३ वागुत्तराज अष्टका—हृषिकेश एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २०६।
- १४ अष्टका—काम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ३०१ ३२।
- १५ रघुवंश १६ १३ श्लोक—आदि० ८ २२।

करने के स्थान की बाह्याली कहा जाता था।<sup>१</sup> मगारजनाय राजकुमार घाडे पर सवार होकर बाह्याली में ब्रीडा करते थे। निगीथ चूर्णी<sup>२</sup> में भी घाडा का शिक्षा देने के स्थान को बाह्याली बताया गया है। मानमोत्ताम में बाजि बाह्याली तथा गज बाह्याली का उल्लेख है। बाह्याली की भूमि कोवड, पापाण तथा गकु से हीन तथा न अधिक मुलायम और न अधिक कठार हाती थी<sup>३</sup>। दा द्वारों से युक्त उत्तर णिगा की ओर दशन मडप बनाया जाता था। बाह्याली का निर्माण हा जाने पर तथा गृहवारकों के निवेदन करने पर हयाध्यक्ष का हुला कर राजा घोड़े को बाह्याली में लाने की आज्ञा देता था<sup>४</sup>। गज बाह्याली में गजा का ब्रीडा हाती थी। यह बाह्याली १०० घनुप के बराबर लम्बी तथा ६० घनुप के बराबर चौड़ी थी। वह भूमि मिट्टी पत्थर कण्टकान्ति से शून्य, ममतल और चिकनी हाती थी तथा वह पूव दिशा की ओर ऊंची होती थी। उनमें दो विशाल द्वार हाते थे। उनके आगे दो विशाल तारण पूव णिगा की ओर मुख करके बनाए जाने थे<sup>५</sup>। बाह्याली के दक्षिणी मध्य भाग में ऊँचा एवं सुन्दर आलोक मन्दिर बनवाया जाता था। वह अत्यन्त ऊँचा हाता था और उसके चारों ओर गहरी खाइ होती थी। उस परिखा पर फल्क द्वारा सीढ़ियां म पूण भाग बनवाया जाता था। इस प्रकार का गृह बनवाने से गज उस मन्दिर तक पहुँच सकते थे। इसी प्रकार दक्षिण भाग के समाप ही कुछ पीछे परिखा से पूण, ऊँचा चित्रा से पूण भित्ति वाला, सुरम्भ, विशाल आठ स्तम्भों से पूण, स्थूल हाविया के वनस्थल के बराबर पूर्वी द्वार के समीप उत्तर दिशा की ओर एक अन्य मडप बनवाया जाता था<sup>६</sup>। गज बाह्याली की भूमि तीन भागों में विभाजित था—द्विप भूमि नृप भूमि तथा परिकर भूमि<sup>७</sup>।

### आस्थानिक मण्डप (ममा मडप)

समराइक्ष्व कहा में आस्थानिक मडप अथवा ममा मडप का भी उल्लेख

- १ स० क० १ प० १६।
- २ निगीथ चूर्णी ९ २३ २४।
- ३ मानमोत्ताम ४ ४ ६६२ ६३।
- ४ वही ४ ४ ६६६।
- ५ वही ४ ३ ५१५ १७।
- ६ वही ४, ३ ५१८ २१।
- ७ वही ४, ३ ५२३
- ८ वही ४ ३ ५४७।

किया गया है।<sup>१</sup> यहाँ राजकुमार अपने समयस्का के साथ बैठकर उचित समय में मनाविना किया करते थे।<sup>२</sup> समय में राजा अपने प्रधान अमात्य, सामन तथा प्रधान जनपदों के साथ बैठकर विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान करता था।<sup>३</sup> समस्याओं के समाधान के पश्चात् सभा का विसर्जन किया जाता था। यग्नस्तिलक में भी आस्थान मंडप का उल्लेख किया गया है जिसमें राजा बैठकर राज्य काय देखते थे।<sup>४</sup> यग्नस्तिलक में आस्थान मंडप की माज-यज्जा अथवा गोभा का विस्तृत वर्णन किया गया है।<sup>५</sup>

हपचरित में उल्लिखित है कि राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् हप वर्धन ने बाहरी आस्थान मंडप में मनाविधि मिहना तथा गजाधिपति स्वर्गुप्त में परामर्श किया था।<sup>६</sup> काण्वरी में भी चन्दापीड की गिरिजय का निश्चय आस्थान मंडप में ही किया गया था।<sup>७</sup> आदिपुराण में आस्थानिका का उल्लेख किया गया है जहाँ राजा रानियों सहित बैठकर संगीत नृत्य अभिनय आदि का आस्वादन करता था। मामत तथा श्रेष्ठ धर्म के व्यक्ति भी दान के लिए उपस्थित रहते थे।<sup>८</sup>

हपचरित में दो आस्थान मंडपों का उल्लेख है पहला बाह्य आस्थान मंडप तथा दूसरा राजकुल के भीतर धवलबृह के पास था जिसे मुक्ता आस्थान मंडप कहा जाता था। वासुदेवगण अथवाल में आस्थान मंडप की तुलना मुगल कालीन राजमहल से की है। बाह्य आस्थान मंडप का दरबार आम और भुक्ता आस्थान मंडप का दरबार स्वाम कहा है।<sup>९</sup> बाह्य आस्थान मंडप में राजा महाराजा सभा का काम देखते तथा मंत्री मनाविधि आदि में विचार

१ मम० क० १ ४५ ४ २९१ २९५ ९६-३०१ ३०८ ५ ४८१ ४८२, ८ ७४९ ७५२ ।

२ वहा ८ ७४१ ।

३ वही ४ ५० २४१ ७ ५० ६२० ९ ५० ०७३ ।

४ यग्नस्तिलक ५० ३७२ (मवेधामायमिणामितरव्यवहारविधामिणा च कार्यणिपदम ।

५ वही ५० ३६७ म २७३ तक ।

६ वासुदेव गण अथवाल—हपचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन परिशिष्ट १ पृ० २०० ।

७ काण्वरी ५० ११२ ।

८ आ० ४६।२०० ।

९ अथवाल—हपचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन परिशिष्ट १ पृ० २०० ।

विमर्श करते थे तथा भुक्त। आस्थान मंडप में भोजन के पश्चात् सम्राट अपने अंतरंग मित्रा और परिवार व साथ बैठकर विचार विमर्श तथा मनोविनोद आदि भी किया करते थे। किन्तु सम्राट्त्वं वहाँ में एक ही प्रकार के आस्थानिका मंडप का उल्लेख है जिसे ममा मंडप अथवा मुगल काल का दरबारे आम कहा जा सकता है।

## अन्त पुर

राजाओं के यहां रानिया के निवास स्थान को अन्त पुर कहा जाता था।<sup>१</sup> अन्त पुर राजप्रासाद का एक विशाल एवं रमणीय भाग होता था। राजाओं का भी शयन कक्ष अन्त पुर में ही होता था। अन्त पुर में एक प्रधान महिषी अथवा महान्देवी<sup>२</sup> तथा अन्य रानिया होती थी। सम्राट्त्वं कहा में अन्त पुर की बनावट एवं भाज-भज्जा का उल्लेख है। वहाँ चाद्री की श्वेत चादनी से मणि और रत्ना के मङ्गल शीप से युक्त सयन वस्त्र, फल पर बिखरे हुए सुगन्धित पुष्प, निमल मणियों की कात्ति पर किया हुआ कस्तूरी का लप उज्ज्वल और विचित्र वस्त्रा के बनाए हुए बितान श्रेष्ठ मृगाया के लाल वण के गद्दा से बिछे हुए पलग श्रेष्ठ स्वर्ण से बनाये गये मनोहर पात्र, लटकती हुयी सुन्दर और सुगन्धित मालाएँ स्वर्ण घटा से निकलता हुआ सुगन्धित धूप का धुआँ, चटुल हस्त और पारावत पत्निया का सुन्दर क्रीडा कपूर मिश्रित ताम्बूल की प्रसरित सुगन्ध चिन्किया पर रसी हुई सुगन्धित विलेपन मामूरी तथा सुगन्धित बालूनी से भर हुए सुन्दर स्वर्ण के प्याल अपनी अनुपम शोभा बिखरते रहते थे।<sup>३</sup>

अन्त पुर का भवना की दाबालें मणि जटित होने का कारण उस पर लोगों का प्रतिबिम्ब झलकते रहते थे। उत्तुङ्ग तारण स्तम्भा पर झलकती हुई शालमजि काएँ सुन्दर गवाक्ष तथा बन्कियाँ बनी जाती थी।<sup>४</sup> एक अन्य स्थान पर अन्त पुर का शयन कक्ष की अलंकारिता का वर्णन किया गया है।<sup>५</sup>

१ मम० क० १ ९ ४० ४ ३०९ ३२१ ३३६ ३३८, ५ ३६४  
६ ५७१, ७ ६९१, ८ ७५६—दक्षिण उत्तराध्यायन टीका १८  
पृ० २३२ अ अथशास्त्र १, २० रामायण २।१०।१२।

२ वही १, प० ९ ८, प० ७५६।

३ वही ४, २९१ ९२।

४ वही ६, पृ० ५४८ ४९।

५ वही ९ पृ० ९०१, तुलना के लिए दक्षिण—वासुदेवगण अग्रवाल—  
हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन प० ३६७-६८ ६९।

अन्तपुर में निवास करने वाली रानियों के मनारजनाय अलग स नाट्यशालाओं तथा चित्रशालाओं का निर्माण किया जाता था जहाँ स्त्रिया द्वारा वाद्य नृत्य संगीत आदि का आयोजन किया जाता था।<sup>१</sup> वधन मासखजानक में अन्तपुर की सोलह मौ नतकियों का उल्लेख है।<sup>२</sup> कादम्बरी में अन्तपुर का उल्लेख है<sup>३</sup> जो राजप्रासाद का आभ्यन्तर कक्ष होता था। वहाँ रानियों की परिचर्या के लिए गणसंगसियाँ हाती थी।<sup>४</sup> औपपातिक सूत्र में दीवारिक<sup>५</sup> (द्वारपाल) का उल्लेख आया है जो अन्तपुर के द्वार पर बैठकर उसकी रक्षवाली करता था।

अत स्पष्ट होता है कि राजाका का अन्तपुर मुख्यवस्थित एक सुन्दरतम होता था।

### राजपरिचर प्रतिहारी

राजमहल में सेवा काम के लिए राजपरिचर नियुक्त रहते थे। इन राजपरिचरों में प्रतिहारी भी एक होता था।<sup>६</sup> समवत यह पहरा देने वाला कमचारी होता था।<sup>७</sup> यह राजा के आस्थानिका महल में भी प्रवेश करता था।<sup>८</sup> प्रहरी के साथ साथ यह सूचना देने का भी कार्य करता था तथा पुत्र जन्मात्मक आदि पर इस पारितोषिक प्रणन किया जाता था।<sup>९</sup> समराइच्च कहा में महाप्रतिहारी<sup>१०</sup> का भी उल्लेख है जो राजप्रासाद तथा अन्तपुर में परिचर्या का कार्य करता था।

हपचरित के उल्लेख से भी पता चलता है कि प्रतिहारी राजसी ठाट-बाट

१ गम० क० ४ पृ० ३००।

२ वधनमासखजानक १२० प० ४०।

३ कादम्बरी पृ० ५९।

४ वहा पृ० १० ९२ १०१।

५ औपपातिक सूत्र ९ पृ० २५।

६ गम० क० १ २२ ३१ ३२ २ १५१ ४ २६६ ६७ ३४४ ५ ४७२, ४८१ ८२ ६ ५६५, ७ ६३१ ६७० ६०१ ६९५ ७०९ ८ ७३९ ४० ७१० ५४ १५ ९ ८६० ८८१ ८०२, ९३ ९११ मेनिग—मगवती गून् ११ ११ ४३० में बाह्य प्रतिहारी।

७ वग ७ ६७० (प्रतिहारीका परिहारण)।

८ वहाँ ८ ४८१ ८२।

९ वग ७ ७००।

१० वग ४ २६८ ७ ६०७।

और दरवारी प्रबन्ध की रीढ़ थे । प्रतिहारा व ऊपर महाप्रतिहारी और उन महाप्रतिहारी के मुखियाका शौचार्थ कहा जाता था ।<sup>१</sup> प्रतिहार प्राचीन काल में सामन्त, महासामन्त घाडलिक, राजा, महाराजा, महाराजाधिराज चक्रवर्ती, सम्राट आदि विभिन्न कोटि के राजाओं के भिन्न भिन्न प्रकार के मुकुट और पट्ट पहचान कर यथायाग्य सम्मान देते थे ।<sup>२</sup> राजाओं के सम्मुख दूता और मिलने वाला का पेश करने का काम प्रतिहारी या महाप्रतिहारी का था ।<sup>३</sup> नासिक अभिलेख में प्रतिहार शब्द का उल्लेख है ।<sup>४</sup> यथा शोलादित्य व जसोर अभिलेख<sup>५</sup> (कलमी सवत ३५७) तथा वणनिक व बनारस अभिलेख<sup>६</sup> (ई० सन् १०६२) में भी महाप्रतिहारी का उल्लेख है । मजूमदार व अनुसार प्रतिहार और महाप्रतिहार प्राचीन अधिकारी होने के साथ-साथ राजप्रासाद व बागों के भी अध्यक्ष होते थे ।<sup>७</sup> किन्तु दशरथ शर्मा ने प्रतिहार का शाब्दिक अर्थ द्वारपाल न लगाया है जिसका काम राजा के मिलने वाले लोगों को राजा के सामने प्रस्तुत करना था ।<sup>८</sup>

## चारक

ममराइच कहा में अथ कर्मचारियों की भाँति चारक<sup>९</sup> का भी उल्लेख किया गया है । ये चार गुप्तचर थे जो घोर डाकुआ तथा राज्य के अन्दर अथ सभी प्रकार के रहस्यों का पता लगा कर उसकी सूचना राजा को देते थे । चारक कम कूटनीति का मुख्य अंग था । कौटिल्य ने गुप्तचरों का राजा की आँखें माना है । धनु सेना की मुख्य बातों का पता लगाने के लिए भी गुप्तचर काम में लिए जाते थे ।<sup>१०</sup> ये लोग शत्रु सेना में भर्ती होकर उनकी सब बातों का पता लगाते रहते थे । कूलवालय ऋषि की सहायता से राजा कूणिक वैशाली के

१ बामुनेवशरण अग्रवाल—हयचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ४४ ।

२ मानसार अ० ४९, १२ २६ ।

३ अरतकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पृ० १४४ ।

४ इपि० इडि० ८ पृ० ७३ ।

५ वही २२ पृ० ११७ ।

६ वही २ पृ० ३०९ ।

७ मजूमदार—चालुक्याज आफ गुजरात, पृ० २२९ ।

८ दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ० २०० ।

९ स० क० ४, पृ० २७१ ७२ सो चैव में राया सवमेय कारवेइति कुविआ एसो । नैयाविद्या इमे चारये ।

१० अथशास्त्र १, ११ ।



स्तूप को नष्ट कराकर राजा चेटक का पराजित करने में सफल हुआ था।<sup>१</sup> य गुप्तचर कुछ चल विद्याधियों के रूप में कुछ व्यापारियों के वेष में तथा कुछ तपस्वियों के वेष में रहकर अपना अपना काय गुप्त रूप से करते थे।<sup>२</sup> एक गुप्तचर का दूसरे गुप्तचर प्रायः मालूम नहीं रहते थे। जब एक गुप्तचर की रिपोर्ट दूसरे गुप्तचर की रिपोर्ट से पुष्ट हो जाती थी तो सरकार द्वारा कारवाई का जाती थी।<sup>३</sup> कर्णाटक व कलचुरि शासन में पाँच अधिकारी नियुक्त रहते थे जो 'याय राजद्रोहिया और उपद्रविया का पता लगाते थे। इन्हें पाँच ज्ञानद्रिय कहा गया है।<sup>४</sup> मगस्तिलक में गुप्तचरों को राजा का दूसरा नेत्र कहा गया है।<sup>५</sup>

### सैन्य व्यवस्था

आंतरिक विद्रोह की गति तथा बाह्य आक्रमण से राज्य की सुरक्षा के लिए मना की उचित व्यवस्था थी। अथगाम्त्र में सैन्य बल का वर्णन कहा गया है।<sup>६</sup> राजा महाराजाओं व पाम चतुरगिणी सेना की उचित व्यवस्था थी।<sup>७</sup> चतुरगिणी मना व अतगत रथ-हस्ति-गज और पत्तति सनिक होते थे। मना का सर्वोच्च अधिकारी राजा स्वयं हाता था और उसके नीचे सनापति,<sup>८</sup> महानायक,<sup>९</sup> और महायुद्धपति,<sup>१०</sup> नामक सैनिक अधिकारी होते थे। बाण न बलाघिट्ट<sup>११</sup> (याहिनी पति—जिसमें ८१ हाथी ८१ रथ २४३ घोड़े तथा ४०५ पत्त हात थे जो आधुनिक बटालियन जमी सना होती था) महामलाधि

१ आवश्यक पूर्ण २ पृ० १७४ दक्षिण—उत्तराध्ययन टीका २, पृ० ४७, अथगाम्त्र २: ३७ ५४ १५।

२ अन्नकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पृ० १४१।

३ वहा पृ० १४२।

४ इन्द्रियिया वणाटिका भाग ७ गिकारपुर सवत १०२ और १२३।

५ मगस्तिलक ३: १७३।

६ अथगाम्त्र ६: १।

७ मम० ब० १ पृ० २७ ३ पृ० १९८ २२७ दक्षिण—पत्रजलि महाभाष्य १: १७२ पृ० ४४७।

८ वहा ७ पृ० ६०८।

९ वहा ८ पृ० ८३८।

१० वही ९ पृ० ८०८ १००।

११ अथगाम्त्र—हयवर्णि एव मासृतिक अध्ययन पृ० १४३ अथगाम्त्र बाण्यरा एव मासृतिक अध्ययन पृ० ३१६ ३०५।

कृत<sup>१</sup> और सबम बड़े सचिव अधिकारी का महासचिवविग्रहिक<sup>२</sup> बताया है। गुप्त काल में राज्य विभाग के अध्यक्ष को महाबलिपितृ<sup>३</sup> तथा यादव राज्य में महाप्रचण्डनायक कहा जाता था।<sup>४</sup>

## सेना के अंग

### पदाति सैनिक

चतुरगिणी सेना के अंतर्गत पदाति सैनिक होते थे।<sup>५</sup> ये सैनिक पैदल हाथ चल कर रणभूमि में शक्ति, गन्ना, सलवार और ढाल से युद्ध करते थे।<sup>६</sup> पदाति सेना का अध्यक्ष सेनापति कहलाता था जो सेना में व्यवस्था तथा अनुशासन बनाये रखता था।<sup>७</sup>

मानसाल्लास में पदाति सेना के ६ भेद बताये गये हैं, यथा—मौल, भृत्य मित्र, श्रेणी, आटविक तथा अमित्र।<sup>८</sup> रामायण<sup>९</sup> में मौल, भृत्य, मित्र और अटवी इन चार प्रकार की सेनाओं का तथा महाभारत<sup>१०</sup> में मौल, भृत्य, अटवी और श्रेणी शब्द का उल्लेख है। वंशक्रम में आयी हुई सेना पैतृक अथवा मौल कहलाती थी धन दकर एकत्र की गयी सत्ता भृत्य मंत्री भाव से एकत्र की गयी सेना मित्र निश्चित समय पर महायत्ना देने वाली सेना को श्रेणी, पवत एवं अरण्य प्रान्तों में रहने वाले शिपाय मिल्ल सावर आदि से संगठित की गयी सेना का आटविक एवं शत्रु सेना से आक्रांत हाकर भागे हुए गनिम यदि शत्रु भाव स्वीकार कर लें तो उनके द्वारा संगठित की गयी सेना अमित्र कहलाती थी।<sup>११</sup>

- १ अग्रवाल—आत्मवरा एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २१४, २२०।
- २ अग्रवाल—हृषचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२८ २०९।
- ३ इपि० इण्डिया १०, पृ० ७१।
- ४ इण्डि० एटी० १२, पृ० १२०।
- ५ सम० क० ७ ७०३ ७०५ ८ ७९८ ९९ तुलना के लिए देखिए—  
क० क० हड्डीकी—यशस्विलक एण्ड इण्डियन करचर, पृ० ०३।
- ६ औपपातिक सूत्र ३१ पृ० १३२ विशाख सूत्र २, पृ० १३।
- ७ औपपातिक सूत्र २९।
- ८ मानसाल्लास २, ६ ५५६ (मौल भृत्य तथा मित्र अथवा आटविक वल्लभ) अमित्रपर पष्ठ सप्तम नापलभ्यते।
- ९ रामायण—युद्ध काण्ड, १७।२२।
- १० महाभारत—आश्रम वापिक पर्व ७।७।
- ११ नमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत पृ० ३६८।

किंतु समराइच्च कहा में पदाति सना के भेत् का उल्लेख नहीं है जबकि अय प्रयोगों में इसके भेत्-प्रभेत् आदि का उल्लेख है।

## अश्व सेना

अश्वसेना चतुरगिणी सना का एक विशिष्ट अंग होता था।<sup>१</sup> अश्व सनिक बड़े ही चुस्त तथा फुर्तीले होते थे।<sup>२</sup> अश्व सेना का प्रधान अधिकारी महाश्वपति कहलाता था।<sup>३</sup> अश्व सेना के प्रधान अधिकारी का अश्वपति (भटाश्वपति और महाश्वपति) भी कहा जाता था।<sup>४</sup> आगे बारहवीं गताष्टी के गृहद्वार रात्रि में भी करीब-करीब यहाँ मनिव अधिकारी थे।<sup>५</sup> अश्वपति और रथाधिपति के आधीन अश्वशालाधिकारी भी होते थे जिन्हें चाहुमान बाल में राजस्थान में माहणीय कहा जाता था।<sup>६</sup> महाभारत में अश्वा को दीर्घ गतिवाला तथा उत्साहा बनाने के लिए युद्ध के समय मदिरापान कराये जाने का उल्लेख है।<sup>७</sup> नकुलान्वगास्त्र में बताया गया है कि जिस प्रकार चंद्रमा से हान रात्रि और पति के हीन पतिव्रता सुशामित नहीं होती उसी प्रकार अश्वा से हीन सना भी सुशामित नहीं होती।<sup>८</sup> घोड़ों का बंधन भा पहनाया जाता मुह पर आभरण लगाया जाता और उनका कटिभाग चामरदण्ड से अलंकृत किया जाता था।<sup>९</sup> आग्निपुराण में बम्बाज, मैघव आरट्टज बनायुज बाह्यीक ततिल गाधार और वाप्य आदि जाति के अश्वा का युद्ध के लिए उपयोगी बताया है।<sup>१०</sup>

१ मम० क० ७ ६९८९० ७०३ ७०५ ८ ८३४ ९, ८९८९० ९७३  
दक्षिण अश्ववाल—हृषिकेश एव सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ३९४०४१  
४२ हडाकी—याम्बिक एण्ड इण्डियन क्वॉर पृ० ९३।

२ देविए—अश्वगात्र १० ८।

३ मम० क० ० ७७३।

४ अश्विनीजिह्वार्गवे आप इण्डिया एनुअल रिपोर्ट—१९०३ ४ पृ० १०७।

५ अन्नकर—प्राचीन भारतीय गान पदति, पृ० १४५।

६ इपि० इण्डिया ११ पृ० २०।

७ महाभारत द्रोण पर्व ११२।५।४ ५।

८ नकुलान्वगास्त्र १ १४ (चन्द्रहाना ययारात्रि पनि हीना पतिव्रता। हय हीना तथा मना विस्तीर्णाणि न कामग)।

९ विवाहगूत्र २ पृ० १५ औरपात्रि गूत्र ३१ पृ० १३२।

१० आग्नि० ३०।१०७।

## हस्तिसेना

चतुरगिणी सेना के अतः गत हस्ति सेना का भी युद्ध क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्व था ।<sup>१</sup> हस्ति का युद्ध के प्रयाण के समय ध्वज-चामर और छत्र से सजाया जाता था ।<sup>२</sup> हस्ति सेना से शत्रु-सेना को रौंदने का काम लिया जाता था ।<sup>३</sup> इसका प्रधान महाहस्तिपक हाता था ।<sup>४</sup> कहीं-कहीं हस्ति सेना के अधिकारी को हस्त्याध्यक्ष (गुप्तकाल में महापीलुपति) कहा जाता था ।<sup>५</sup> कौटिल्य ने शत्रुआ पर विजय प्राप्त करने के लिए हस्तिसेना के प्रधान यागदान की प्रशंसा की है ।<sup>६</sup> हाथिया का युद्ध के लिए प्रशिक्षित भी किया जाता था । नीतिवाक्यामृत में सोमश्व ने लिखा है कि अशिक्षित हाथी केवल घन और प्राणा का नाश करने वाला होता है ।<sup>७</sup>

हस्ति का सेना का प्रधान अंग माना जाता था । किले का द्वार तोड़ने के लिए हाथिया का उपयोग होता था ।<sup>८</sup> राजा महाराजा तथा योद्धा लोग उसकी पीठ पर सवार होकर युद्ध करते थे और मौर्यकाल तथा मुगलकाल में हाथियों का उपयोग किले का फाटक तोड़ने के लिए किया जाता था ।<sup>९</sup> कौटिल्य<sup>१०</sup> की भाँति बाह्यमान 'गासक' तथा उनका सलाहकारों को यह विश्वास था कि राजा की विजय तथा शत्रुसेना का विनष्टीकरण हस्ति सेना पर ही निर्भर करता है । हड्डीकी के अनुसार यशस्तिलक में उल्लिखित हस्ति सेना खतरे के समय किले की भी काम करती थी ।<sup>११</sup>

- १ सम० क० ७ ६९८ ९९, ७०३, ७०५ ९ ८९८ ९९ देखिए अग्रवाल—  
हृषिकेश एक सांस्कृतिक अध्ययन प० ३९ ४० ४१ ४२ १२९-३०  
देखिए—हड्डीकी—यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर प० ९३ ।
- २ सम० क० १, २८ तुलना के लिए देखिए—निशीथ चूर्णी—११।३८१५ का  
चूर्णी ११।३८१६ की चूर्णी ।
- ३ सम० क० ७, ७०३ ।
- ४ वही ७ ७०३ ।
- ५ अर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया ऐनुअल रिपोर्ट १९०३ ४ प० १०७ ।
- ६ अथशास्त्र २।२ ।
- ७ नीति वाक्यामृत बलममुद्देय, प० २०८ (अशिक्षा हस्तिन फवलमय  
प्राणहरा) ।
- ८ महाभारत—सभाषव ६१ १७ ।
- ९ दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डायनेस्टीज, प० २१४ ।
- १० अथशास्त्र २ २ ७ ११, १०, ४ ।
- ११ व० व० हड्डीकी—यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, प० १११

## रथसना

तत्कालीन समय व्यवस्था में रथ सना चतुरभिणी सना का एक विधिष्ठ अंग थी।<sup>१</sup> राजा तथा अन्य विधिष्ठ लोग रथा पर बैठते थे।<sup>२</sup> रथा में श्वेत पताकाएँ एवं घटियाँ बाँधी जाती थी।<sup>३</sup> रथी लोग युद्ध क्षेत्र में धनुष-बाण तथा शत्रु पक्ष पर प्रहार करने के लिए बाणा की वर्षा करते थे।<sup>४</sup> अन्य ब्राह्मण<sup>५</sup> तथा जन-ग्रन्था<sup>६</sup> से भी पता चलता है कि रथा को युद्ध क्षेत्र में ले जाने के पूर्व छत्र ध्वजा पताका घण्टे सारण नदिषाप और क्षुद्र घटिकाआ स अलंकृत किया जाता था। इन रथा पर साने की सुन्दर चित्रकारी बना रहती थी। रथ भा कई प्रकार के होते थे। संग्राम रथ कटी प्रमाण परक्रमय ब्रह्मिणा से सजाया जाता था जब कि मानरथ पर यह ब्रह्मिका नहीं होती थी।<sup>७</sup> कौटिल्य ने देवरथ, पुष्परथ, संग्रामिकरथ, पारयाणिकरथ, परपुराभिगामिक रथ एवं वैमानिक रथ आदि का वर्णन किया है।<sup>८</sup> रथ मेना व प्रधान अधिकारी का रथाधिपति कहा जाता था।<sup>९</sup> रथा का उपयोग आग चलकर सना की तुलना में अधिकतर अलंकरण सामग्री के रूप में किया जाने लगा।<sup>१०</sup> डा० शानितार<sup>११</sup> अन्तेकर<sup>१२</sup> और चन्द्रवर्ती<sup>१३</sup> आदि विद्वानों का मत है कि आठरी सनाग्नी से युद्ध व निमित्त रथा का प्रयोग बन्द हो गया था। मानमात्रागम में रथ का युद्ध का अनिवार्य अंग

१. सम० क० १ ८० ७ ६९८ ९० १०२ ७०३ ७०५ तुलना व लिए—  
दण्डिण—हृडाकी—यगस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर पृ० ०३।

२. वही १ २८।

३. वही ७ ७०५।

४. वही ७ ७०२ १०३।

५. रामायण ६ २२ १३ महामारत उद्याग पथ ९४ १०।

६. औपरातिक सूत्र ३१ पृ० १३२ आबन्धक चूर्णी पृ० १८८  
बह्म कल्पभाष्य पीठिका २१६ आनि० २६।७७।

७. अनुशास द्वारा टीका पृ० १४६।

८. अथगात्र २ ३५।

९. आर्यशास्त्रिक सर्वे आर्य इण्डिया अनुअल रिपॉर् १००३ ८  
पृ० १०७।

१०. पृथ्वीराज विजय १० १९।

११. शानितार—यार इन ऐमिडन्ट इण्डिया पृ० १६६।

१२. अन्तेकर—राजकुमार एण्ड निर टाइम्स पृ० २४८।

१३. श्री आर्य आर्य यार इन ऐमिडन्ट इण्डिया पृ० २६।

नहीं बताया गया है और न तो किसी मुसलमान लेखक अथवा भारतीय लेखक ने ही इसका उल्लेख किया है, किन्तु युक्तिकपतह, और राजनीति रत्नावर में इसका उल्लेख है।<sup>१</sup> निष्कपत जाठवी शताब्दी में रथा का प्रयोग कम हो गया था और धीरे धीरे आगे चलकर तो बिल्कुल बर्तमा हो गया।

### मैनिक प्रयाण और युद्ध

युद्ध के लिए सैनिक प्रयाण करने के पूर्व ज्योतिषी व राज पुरोहित द्वारा शुभ मुहूर्त का निर्धारण किया जाता था।<sup>२</sup> प्रस्थान करते समय राजा ध्येष्ठ रथ पर बैठता और उसके सामने जल में भरा हुआ स्वर्ण कलश रखा जाता था। माग्निक तूय (तुन्ही) बजाये जाते तथा बन्नेजन विजय के लिए मंगल पाठ करते थे।<sup>३</sup> अग्निपुराण में भी युद्ध क्षेत्र में गन्धु पत्र पर विजय प्राप्त करने के लिए समय मंत्र और औषध का महिमा का वर्णन किया गया है।<sup>४</sup>

वैदिक काल में पुरोहित राजा के साथ युद्ध क्षेत्र में भी जाता था और वहाँ विजय के लिए मंत्र याग पूजा आदि धार्मिक कृत्य करता था।<sup>५</sup> सैनिक प्रयाण के समय प्रयाणनन्ती<sup>६</sup> प्रयाण पन्हु<sup>७</sup> तथा भेगी<sup>८</sup> आदि बजाए जाते थे तथा सेना अत्यधिक सह्य<sup>९</sup> पहल के साथ आगे बढ़ती थी।<sup>१०</sup>

युद्ध भूमि में पहुँच कर मन्त्रप्रथम दूत भेजकर गन्धु नृपति से साम और भेन नीति का महारा लिया जाता था।<sup>१०</sup> गन्धु पत्र द्वारा उम नीति का उल्लंघन करने पर युद्ध प्रारम्भ किया जाता था। ममराइन्व कहा में विद्याधर राजाआ

- १ बी० पी० मजूमदार—मोमिया एकानामिक हिस्ट्री आफ नार्थ इंडिया पृ० ५३।
- २ सम० क० १ पृ० २८२९, देखिए—नेमिचन्द्र शास्त्री—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत प० ३७८।
- ३ सम० क० १ पृ० २७२८ ५ ४६५ ४६९, ७ ६९८ ९९।
- ४ अग्निपुराण पृ० २६३ २६७ तक श्लोक १ से २३ तक।
- ५ ऋग्वेद २।३३।
- ६ अग्रवाल—वादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २७० २७२।
- ७ वही प० ११७ १२६ २०७, २१०।
- ८ वही ११७ १२६।
- ९ अग्रवाल—हयचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन प० १४३ १४४ १४५।
- १० सम० क० ५ ४५८, ७ ७०० ७०१, देखिए—आवश्यक चूर्णी २ पृ० १७३ पातघम कथा ८ प० १११ १२।

द्वारा पद्म-यूह बनाकर युद्ध करने का उल्लेख है।<sup>१</sup> औपपातिक सूत्र में चक्रयूह, दंडयूह और मुचिब्यूह का उल्लेख है।<sup>२</sup> समराइच्च कहा में प्राप्त विवरणों में पता चलता है कि सैनिक तलवार, भाला, गदा, मुद्गर और धनुष-बाण से युद्ध किया करते थे।<sup>३</sup> इसी ग्रंथ में मल्ल युद्ध का भी उल्लेख है।<sup>४</sup> यह भी यादगार है कि योद्धा हथियार रखकर लड़ा जाता था।

## दुर्ग

समराइच्च कहा में दुर्ग के बाह्य आक्रमण के समय सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>५</sup> दुर्ग के सबसे बड़े अधिकारी का काट्टपाल कहा जाता था।<sup>६</sup> समराइच्च कहा में उल्लिखित किले की जानकारी एवं उनका उपयोग का महत्व वैदिक काल से ही प्राप्त होता है। जिमब अंतर्गत नगर, धन सम्पत्ति तथा जावन की सुरक्षा की दृष्टि से नगर का पथर की शीवाला से घेर कर रखा जाता था।<sup>७</sup> ऋग्वेद में उल्लिखित है कि शम्बर नामक दस्यु जो कि आयों का गुरु था वे पाण्डवों के 'नियानव' अथवा सौ<sup>१०</sup> किले थे। जानक से भी पता चलता है कि बशाली नगर निहरी शीवाला में घिरा था जिममें दरवाजे तथा निगरानी के लिए मीनार बने थे।<sup>११</sup> इसी प्रकार मिथिला नगर<sup>१२</sup> तथा पाटली नगर<sup>१३</sup> की विस्तारशील प्रमाण प्राप्त होते हैं।

१ सम० ब० ५ ४६० ४६५ ६६ ६७।

२ औपपातिक सूत्र ४० पृ० १८६ तथा देगिए-प्रदन व्याकरण ३ पृ० ४४।

३ सम० ब० ५ ४६४ ४६६।

४ बहा ५ पृ० ६६०।

५ वही ८ पृ० ७७२ देगिए-पतंजलि महाभाष्य ३ २ ८८ पृ० २१७।

६ वही ५ पृ० ४७२ तुलना के लिए देगिए-इपि० इण्डिया १, १५४ में गुप्तकाय का काट्टपाल नामक वंशीय क्षत्रियों का उल्लेख है।  
अथवा—हथियार रखकर मास्तृतिक अध्ययन पृ० ३९ अस्तेकर-प्राधान्य भारतमाय गगन पद्धति पृ० १०५।

७ धर्मशास्त्र—आर्य आर्य बार इन तैमियर इण्डिया पृ० १२७।

८ ऋग्वेद १ १३० ७।

९ वही ७ १९ ६।

१० वही ७ १४ ६।

११ भाव—जानक ३ ३१६।

१२ वही ६ ३०।

१३ वही ३ २।

चौथी गनाङ्की ई० पू० में सभी राज्य की राजधानियाँ में सुरक्षा की दृष्टि से किलेबन्दी की गई थी।<sup>१</sup> उस समय नगरो को दोवालों से सुरक्षित रखा जाता था और दोवाला के भीतर दरवाजों और मीनारों से युक्त किलेबन्दी की जाती थी।<sup>२</sup>

कौटिल्य ने दुर्ग को राज्य के प्रमुख सप्तागा में से एक माना है जिस का प मित्र और मेना में अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था।<sup>३</sup> किले के अभाव में राजा का काप गनु के हाथ में गया हुआ समझना चाहिए। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्गों की व्यवस्था बतलाई है—ओल्क (जल) पर्वत (पहाड़ी) घावन (रेगिस्तानी) तथा वन दुर्ग। चारों ओर नदियों से घिरा हुआ बीच में टापू के समान अथवा बड़े-बड़े गहरे तांगवा से घिरा हुआ मध्य स्थल प्रदेश यह दो प्रकार का ओल्क दुर्ग कहलाता है। इसी प्रकार बड़े-बड़े पर्वतों से घिरा हुआ अथवा स्वाभाविक गुफाओं के रूप में बना हुआ पर्वत दुर्ग जल तथा घास आदि में रहित अथवा सब्जियाँ ऊपर में बना हुआ घावन दुर्ग और चांग आर दल्ल अथवा कटिहार झाड़ियाँ से घिरा हुआ वनदुर्ग नाम दिया गया है।<sup>४</sup>

मौर्य काल के पश्चात् हजारों वर्षों तक किसी बड़े आक्रमण के न होने के कारण किलेबन्दी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।<sup>५</sup> चीनी यात्री और मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णन में भी निष्कर्ष निकलता है कि मुगल काल तथा इसके पश्चात् भी किलेबन्दी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।<sup>६</sup>

मुस्लिम इतिहासकारों ने दुर्गों के महत्व का ध्यान में रखते हुए इस बात को स्वीकार किया है कि सुल्तान महमूद राजमिर्ग और लाहौर के दुर्गों की अजेयता के कारण काश्मीर विजय की यात्रा न बना सका।<sup>७</sup>

मुस्लिम आक्रमण के समय भारत में बहुत से दुर्ग विद्यमान थे यथा—मध्य भारत में कालिंजर ग्वालियर अजयगढ़ और भनिपागढ़ राजपुताना में चित्तौड़

१ चक्रवर्ती—आट आफ वार इन ऐसियट इंडिया ५० १३१।

२ मकब्रिण्ड—इंडिया एण्ड इट्स इन्वेज़न बाई अलेक्जेंडर, ५० १४५ ४६, २८८।

३ अथर्वाक्ष ६, १।

४ वही २ ३।

५ चक्रवर्ती—आट आफ वार इन ऐसियट इंडिया, ५० १३८।

६ वही ५० १३८।

७ सचाऊ १, २०८।



गर् रणथम्बीर और मदीर (प्राचीन कम्ब मदीर),<sup>१</sup> पञ्जाब में—भीरा (भाटिया) और काप्रा (नगर कोट भीम नगर) काश्मीर में लोहार काट्ट बनमाल और मिरह गिला आदि दुग ।

पूर्व मध्यकाल में दुगों का काफी महत्व था । इन दुगों के कारण आक्रमणकारी का विजय प्राप्त करने में बाधा उपस्थित होती थी । घेरा लम्बे समय तक चलाना पड़ता था तथा उम राज्य अथवा नगर का विजित करने में काफी समय लग जाता था ।<sup>२</sup> तराइन के प्रथम युद्ध (११९१ ई०) के पश्चात् पृथ्वीराज का अध्ययन में राजपूताना सरहिन्द के किले का घेरा डाल दिया किन्तु दुग की रक्षा करने वालों सेना का गतों पर हथियार डालने में तरह माह का समय लग गया ।<sup>३</sup> इस प्रकार समराइच्च कहा में उल्लिखित दुग का महत्व का स्पष्टाकरण प्राचीन तथा पूर्व मध्यकालीन प्रमाणों से होता है जो कि सुरक्षा की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक समझा जाता था ।

### अस्त्र शस्त्र

समराइच्च कहा में कुछ अस्त्र शस्त्रों का उल्लेख है जो प्राचीन मनुष्य के प्रधान आयुध थे ।

छुरिका<sup>४</sup>—यह कटार की भाँति छोटी एवं तेज भाक तथा धार वाला आयुध था । इसमें चपरे से तथा करीब से प्रहार किया जाता था ।

मण्डलाप्र<sup>५</sup>—यह एक प्रकार का तलवार थी जिसका अधभाग मण्डलाकार (गात्र) होता था ।

बारबालि<sup>६</sup>—आधुनिक करीला या तलवार से शायद ही होता था । यन्त्रित रूप में इस की उपर बना गया है ।<sup>७</sup>

सद्वर्ग<sup>८</sup>—तलवार का दूसरा नाम ।

१ इति० गिड०—९ पृ० २८ १ पृ० १३ ।

२ गिड०—इल्लियट १ १४७ ।

३ बर्ती २ २९६ ।

४ गम० पृ० ७ पृ० ४१ ६४० ७१४ १५ ।

५ बर्ती ६ पृ० ५३३ ६०१ ७ ६४१ ६६० ६५९ ६६० ७७८ ।

६ बर्ती ७ पृ० ६४१ ।

७ यन्त्रित पृ० ४४ ५५७ ।

८ गम० पृ० ६ ५०० ० ०६१ गिड०—यन्त्रित पृ० १४७ उत्त० गम० पृ० १०६ ।

धनुष-बाण<sup>१</sup>—यह प्राचीन काल का प्रधान आयुध था। रामायण तथा महाभारत काल में बाण विद्या की युद्ध कला का श्रेष्ठ अंग समझा जाता था।

शूल<sup>२</sup>—यह भाले के आकार का तेज और नुकीला होता था। सभ्यत शूल से ही शूली बना है जिग पर लटका कर अपराधी को मृत्यु दंड दिया जाता था।

त्रिशूल<sup>३</sup>—इसके अग्रभाग पर शूल के समान ही तीन तीक्ष्ण धार होती थी।

परशु<sup>४</sup>—करसा जो तेज तथा वीध घाव करने वाला होता था।

बटार<sup>५</sup>—यह छुरिका से बड़ी तथा तलवार से छोटी तीक्ष्ण धार तथा नोक वाली होती थी।

शक्ति<sup>६</sup>—भाले के समान तीक्ष्ण हथियार था।

चक्र<sup>७</sup>—तेज किस्म के लाहे में निर्मित पहिए की तरह गोल आकार का होता था।

अस्ति<sup>८</sup>—एक प्रकार की छोटी तलवार। यशस्तिलक में अस्ति धेनुका<sup>९</sup>

१ मम० १०५ ४४५ ४६, ६ ५०५ ५१३ ५३२ ७ ६६७ ६८, ८ ८०१ ८०२ ९ पु० ९७२, देखिए—श्रुतिपुराण ४।१७५ ४४।१८९ (अग्नि बाण) ३७।१६२ (अमोघ बाण) यशस्तिलक पु० १९० श्लोक ४६५ पु० ६२ तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २ पु० १२४ अ में नाग बाण घामस बाण पद्म बाण बाह्वि बाण महापुष्प प्राण और महामधिर बाण का उल्लेख है।

२ वही ६ पु० ५३१।

३ मम० क० ६, ५३०, ९ ९६५ देखिए—यशस्तिलक पु० ५६०।

४ वही ५ ४४५ ४६, देखिए—यशस्तिलक, पु० ५५६।

५ वही ६ ५०५ देखिए—यशस्तिलक पु० ४६७।

६ वही ५ ४६८ ६९ ९ ९६५ देखिए—यशस्तिलक पु० ५६२।

महाभारत आदि पर्व ३०।४९ रघुवंग १२।७७।

७ वही ६ पु० ४६८ ९ ९६५ आदि० ६।१०३, १५।२०८ ४४।१८०, यशस्तिलक, पु० ३९० ५५८।

८ वही ९ ९६५, देखिए—आदि० ३७।८८, ९।४१, १०।५६, ५।२५०, १५।२० तथा ४४।११०।

९ यशस्तिलक पु० ५६१।

कुमारसम्भव<sup>१</sup> तथा मेघदूत<sup>२</sup> में अश्विनिका और रामायण<sup>३</sup> में अश्विनिघा नाम दिया गया है ।

गदा<sup>४</sup>—इसे मुल्तर भी कहा जाता है । महामारत व भीम गदा युद्ध में निपुण थे ।

## न्याय व्यवस्था

सम्राट्त्व कहा के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि न्यायपालिका का प्रमुख अधिकारी राजा स्वयं होता था । प्रारम्भ में मुकदमों की जांच मंत्री अथवा अन्य अधिकारी करते थे और तत्पश्चात् मुकदमों राजा को सौंपे जाने थे ।<sup>५</sup> राजा भी न्यायपालिका के अधिकारियों की सलाह से निगय देता था ।<sup>६</sup> कभी-कभी नगर के प्रमुख व्यक्ति मिलकर किसी घाद विवाद सम्बन्धी मामलों पर निगय देते थे और निगय उभय पक्ष को मान्य होता था ।<sup>७</sup> राजाज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाले का कठोर दण्ड दिया जाता था ।<sup>८</sup> अपराध करने वाली स्त्रियों का तथा राजद्रोही पुत्र का दण्डनिर्वासन की सजा दी जाती थी ।<sup>९</sup> तत्कालीन धार्मिक परम्परा के अनुसार स्त्रियाँ अवध्य माने जाती थी । अतः उन्हें मृत्यु दण्ड की जगह देण्ड निर्वासन की सजा ही दी जाने का विधान था ।<sup>१०</sup> राजा महाराजा न्यायप्रिय होने थे । न्याय में भेदभाव नहीं किया जाता था । वही सर्वोच्च न्यायधिकारी था तथा अपन सामने उपस्थित किए गए अभियोग का अधीनस्थ न्यायालयों के निगय व विरुद्ध अपाल सुनता था ।<sup>११</sup> राजा यथा समय स्वयं न्याय करता था । अधिक न्याय व कारण प्राद्विवारक या प्रधान न्यायधीश<sup>१२</sup> उसका

१ कुमारसम्भव ४।६३ ।

२ मेघदूत ८।४७ ।

३ रामायण—मुल्तर बाण ४।२०—गति वृत्तायुषाश्चवपट्टि क्षामनिपारिण ।

४ गम० न० ५ ४६७ ४६९ दण्डिए—आदि० ४६।१४३ यणारतार १।१५—मज्झिमसिंघ गन्था म सुयोधनोह ।

५ यहा ४ २५० अंगिर—मनुस्मृति ८।४७ ।

६ यहा ६ ५ १ ।

७ यहा ६ ८९८ ।

८ यहा ७ पु० ६८२ ।

९ यहा २ ११५ ४ २८६ ७ ६४३ ।

१० यहा ५ ३६२ ६ ५६० ६१ ।

११ अन्तर—प्राचीन भारतीय गणन पद्धति पु० १५० ।

१२ यहा प० १५० ।

काम सभालते थे। राजद्रोह का अपराध गुस्तर था।<sup>१</sup> सप्त प्रकृति यथा राजा, यमात्य आदि के प्रति शत्रु भाव रखना भी महान् अपराध था और उसके लिए जीवित अग्नि में जलाने का विधान था। मनु ने राजाका का उल्लंघन करने वालों का तथा चोरी करने वालों को एक ही थोपी का अपराधी माना है।<sup>२</sup> बादी तथा उसकी सूचना के बिना ही चरा से प्राप्त सूचना के आधार पर राजा अपराधी को दण्ड देता था।<sup>३</sup> सम्राट्त्वं महा में स्त्री का अवध्य बताकर उसे राज्य से निर्वासित करने का उल्लेख है किन्तु याज्ञवल्क्य ने गम्भीरता की एव पुष्प को मारने वाली स्त्रियाँ को मृत्यु दण्ड, तरु का भागी बताया है।<sup>४</sup> मकहानन और कीथ के अनुसार मौर्य काल में भी कठोर दण्ड की व्यवस्था थी।<sup>५</sup>

### दण्ड व्यवस्था चोरी

हरिभद्र कालीन भारतीय शासन पद्धति के अन्तर्गत दण्ड व्यवस्था कठोर थी। साधारण से साधारण अपराध पर कठोर दण्ड दिया जाता था। सम्राट्त्वं कहाँ में घमशास्त्रा के अनुसार पुष्प धातक तथा परद्रव्यापहारी को उसके जीते ही आँख, नाक, कान हाथ तथा पाँव काट कर अग्न में दे दिया जाता था।<sup>६</sup> मौर्यकाल में कठोर दण्ड व्यवस्था थी।<sup>७</sup> पाटलिपुत्र के अनुसार उत्तर भारत में मृत्यु दण्ड नहीं था। चोल और हय के शासन काल में ऐसे दण्ड की कमी थी।<sup>८</sup> चोरी होने पर राजा द्वारा नगर भर में यह कह कर घोषणा करायी जाती थी कि यदि किसी के घर में चोरी का सामान मिलेगा तो उसे शारीरिक दण्ड दिया जायगा तथा उसका सारा धन भी छीन लिया जायेगा।<sup>९</sup> नगर भर में चोरा का पता लगाया जाता था और अपराध सिद्ध होने पर अभियुक्त को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। अपराधी के शरीर में तृण तथा कालिय पोट कर हिम

१ बहस्प० १७।१६।

२ मनु० ९।२७५।

३ हरिहरनाथ त्रिपाठी—प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका पृ० २१५।

४ याज्ञ० २।२६८।

५ वेदिक इंडेक्स वालूम १ पृ० ५५।

६ मम० क० २ पृ० ११७ ४ ३२६ २७।

७ वेदिक इंडेक्स वालूम १ पृ० ५५।

८ हरिहरनाथ त्रिपाठी—प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका पृ० २४६।

९ मम० क० २ १११।

डिम की आवाज के साथ यह घोषणा करते हुए नगर भर में घुमाया जाता था कि इस व्यक्ति का अपने कृत्यों के अनुसार दण्ड दिया जा रहा है। अतः यदि दूसरा व्यक्ति भी ऐसा अपराध करेगा तो उसे भी इसी प्रकार का कठोर दण्ड दिया जायेगा और सत्यज्ञान उस चाण्डाल द्वारा क्षमागान भूमि पर ले जा कर मृत्यु दण्ड दिया जाता था।<sup>१</sup> अभियुक्त को नगर भर में वाद्य के साथ घोषणा पूर्वक घुमाने का तात्पर्य लोगों को अपराध न करने के लिए भयभीत करना था ताकि नगर अथवा राज्य में अपराधों की कमी हो।

मैथ लगाकर चोरी करने वाला का अपराध सिद्ध होने पर राजाशा द्वारा अपराधी का गूली पर लटका कर मृत्यु दण्ड दिया जाता था।<sup>२</sup> छल-कपट तथा धूतता करने वाला को भी मृत्यु दण्ड दिया जाता था।<sup>३</sup> आचाराग पूर्णों से पता चलता है कि चोरी करने वाले को कोड़े लगवाये जाते थे अथवा विष्टा भक्षण कराया जाता था।<sup>४</sup> आणि पुराणवार के अनुसार अपराध सिद्ध होने पर अभियुक्त का मूर्तिका भक्षण विष्टा भक्षण मस्त्रों द्वारा मुक्के तथा सबस्व हरण आदि प्रकार का दण्ड दिया जाता था।<sup>५</sup>

वैदिक काल में भी चोरी का अपराध माना गया है।<sup>६</sup> ताम्र एवं वस्त्र आणि के चोरों को 'तयुग' कहा गया है।<sup>७</sup> चोरी का अपराधी को राजा के सामन उपस्थित किया जाता था तथा उनपर चोर के चिह्न लगाने का उल्लेख है।<sup>८</sup> स्मृतियों में चोरों का पता लगाने के विविध प्रकार बताए गये हैं यथा—जो व्यक्ति अपने निवास स्थान का पता नहीं बनाता, सदहूषण दुष्टि से दम्भता हो अनुरित स्थान पर रहता है, पूर्व कम से अपराधी हो जाति आणि छियाता हो जुआ गुरा और गुल्लरी का सम्पर्क में रहता हो, स्वर बदल कर बात करता हो अपिच लज्ज करता है पर आय के सात का पता न हो, कोई हुई वस्तु या

१ गम० ब० ४ २५० ६० २७२ ५ ३६७ ६ ५०३ २४ ५०७-८ ५९७-८ ० ०७७ ।

२ बहा ३ १४ २१० ७ ६६० ३१६ ।

३ गही ६ ५६०-६१ ।

४ आचाराग पूर्णों २ पृ० ६५ दनिग—पर्वजति महामाध्य ५, १, ६६ ६५ ६६ ।

५ मा० ४६।२०० ०० ।

६ कर्म ४।२/१५ ५।१५ ।

७ गही १०।४।६ ४।३/१५ ६।१२।१ ।

८ बहा १।२४।१६ १५ ७।८६।१, ५।७०।० १।२४।१२ १३ ।

पुराना माल बेचने वाला हा दूसरे के घर के पास वय बन्द कर रहता हा, उसे चोर समझना चाहिए ।<sup>१</sup> स्मृतिया में चोरी करने वाला को कठार दंड का भागी बताया गया ह । बहुमल्य रत्नों की चोरी के लिए मनु ने मृत्यु दण्ड का विधान बताया ह ।<sup>२</sup> संध ल्यावर चोरी करने वाला को शूली की सजा न्ये जाने का निर्देश ह ।<sup>३</sup> मनुस्मृति में एक अय स्थान पर राजकोष एवं मंदिर की वस्तु अश्व रथ, गज आदि की चोरी करने वाले का मृत्यु दंड का भागी बताया गया है ।<sup>४</sup> स्मृतिया में चार के काय में सहायता पहुँचाने वाले को भी चार के समान दंड दिये जाने का उल्लेख ह ।<sup>५</sup>

### पुलिस विभाग—दण्डपाशिक

पुलिस विभाग का प्रमुख अधिकारी दण्डपाशिक कहलाता था ।<sup>१</sup> इसकी नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी । वह सतततापूर्वक अपराध का निरीक्षण करता था और तत्पश्चात् समुचित दण्ड देता था ।<sup>२</sup> मुकाम में दण्डपाशिक के दान मन्निमडल में ले जाए जाते थे और तत्पश्चात् राजा उस पर अंतिम नियम देता था ।<sup>३</sup> दण्डपाशिक (चोरों को पकड़ने का फल धारण करने वाला) का उल्लेख पाल, परमार, तथा प्रतिहार अभिलेखों में भी प्राप्त होता ह ।<sup>४</sup> यह पुलिस विभाग का एक अधिकारी था जो विभिन्न भागा में नियुक्त रहते थे । दण्डपाशिक दंड भोगिन के समान था जिसे पुलिस मजिस्ट्रेट कहा जा सकता ह ।<sup>५</sup>

१ याज्ञ० २।२६६ ६८ नारद० परिशिष्ट ९।१२ ।

२ मनु० ८।३२३ ।

३ वही ९।२७६ ।

४ वही ९।२१० ।

५ मनु० ९।२७१ याज्ञ० २।२८६ ।

६ सम० क० ४ ३५८ ५९ ६० ६ ५०८ ५२० ५२३ ७ ७१४, ७१५ ७१६, ७१८ ८, ८४७ ४८, ९ ९५७, देखिए—इडि० हिस्टो० क्वाट० दिसम्बर १९६०, पृ० २६६ ।

७ वही ६, ५९७ ९८ ९९, देखिए—डी० सी० सरकार—इंडियन इपिट्रै फिकल ग्लसरीज, प० ८१ ।

८ वही ८ ८४९ ५० ।

९ हिस्ट्री आफ बंगाल भाग १, प० २८५ इपि० इण्डि० १९, पृ० ७३, ९ प० ६ देखिए—सिधी जन ग्रंथ माला, १, पृ० ७७ तथा डी० सी० सरकार—इण्डि० इपि०, पृ० ७६ ।

१० इपि० इण्डि० १३, प० ३३९ ।

सम्राट्चक्रहा में कालदण्डपाणिक<sup>१</sup> का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सम्भवतः यह दण्डपाणिक में उच्च अधिकारी होता था जो गभीर मुकदमा का निगरानी कर अभियुक्त का मृत्यु दण्ड देता था।

अयगास्त्र<sup>२</sup> तथा काममूत्र<sup>३</sup> में नगर के प्रमुख अधिकारी को नागरक कहा गया है। कुछ समालोचकों ने नागरक का व्याख्या दण्डपाणिक के समान की है।<sup>४</sup> सम्राट्चक्रहा में उल्लिखित दण्डपाणिक और कालदण्डपाणिक तथा अन्य उपरोक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि दण्डपाणिक पुलिस विभाग का प्रमुख अधिकारी था जो चार ठाकुरों का पता लगा कर उनका दंडित भी करता था। अतः वह 'यामिक' जीव व पदचात दण्ड भी देने का काम करता था।

पुलिस विभाग का दूसरा कर्मचारी प्राहरिक<sup>५</sup> कहलाता था जो नगरों तथा गांवों में चार ठाकुरों में सुरक्षा रखने में सहायता करता था। ये प्रहरा (पहरा नवा) पुलिस कर्मचारी होते थे। काम्बरी में भी प्राहरिक<sup>६</sup> यामिक<sup>७</sup> और यामिक लोह<sup>८</sup> (पहरा व सिपाही) का उल्लेख है। यहाँ ये याम अर्थात् रात्रि के समय नगर आदि में सुरक्षा की दृष्टि से पहरा देने व कारण यामिक और यामिक लाव बहे गये हैं।

सम्राट्चक्रहा में अ य पुलिस कर्मचारी यथा नगर रक्षक<sup>९</sup> तथा आरक्षक<sup>१०</sup> आदि का भी उल्लेख है। दण्डपाणिक व अनुसार राज्य की आर स गांवों की सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए रक्षक नियुक्त किए जाने थे।<sup>११</sup> किन्तु यहाँ सम्राट्चक्रहा में केवल नगर रक्षक का ही उल्लेख है। नगर

१ सम० क० ३ २१२ ४ ३२१।  
 २ अयगास्त्र २ ३६।  
 ३ काममूत्र पंति ५९।  
 ४ डी० सी० गम्हार—इण्डि० इति० ग्लोगरीज प० २००।  
 ५ सम० क० ८ ८२५।  
 ६ अयगास्त्र—काम्बरी एवं गोमृत्ति अध्ययन प० २६७ २७०।  
 ७ काम्बरी १४१११ २१७।२२।  
 ८ वस २६।२७०।  
 ९ सम० क० ८ पृ० २७० (तथा आउगाह्य तापरस तापरसिया)  
 ५ ३८७।  
 १० वही २ १५५ ६ ४ ३२६ ७ ४१७ ६ ५०० ५१०, ५२२ ५०७।  
 ११ दण्डपाणिक—अर्थात् चौकाने का पता पृ० २००।

रक्षक समवत नगर की रक्षा के लिए पुलिस अथवा सनिका का एक जया नियुक्त रहता था। आरक्षक का तात्पर्य सुरक्षा सनिक से है जो नगर और गावों में शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने में सहायता करते थे। आरक्षकों को आधुनिक पी० ए० सी० की श्रेणी में रखा जा सकता है जो केवल आन्तरिक सुरक्षा के ही काम आते थे।

### ग्राम तथा नगर शासन 'पंचकुल'

समराट्च कहा में 'पंचकुल' का उल्लेख हुआ है जो पांच न्यायिक अधिकारियों की एक समिति होती थी। समराट्च कहा में उल्लिखित पंचकुल आधुनिक ग्राम पंचायत की भांति पाँच अधिकारियों की एक न्यायिक समिति होती थी। इनका निर्वाचन धन और कुल के आधार पर होता था।<sup>१</sup> अतः स्पष्ट होता है कि पंचकुल के ये सदस्य धनी, सम्पन्न एवं कुलीन होते थे।

कोटिल्य के अनुसार राजा का चाहिए कि प्रत्येक अधिकरण (विभाग) में बहुत से मुख्या (प्रमुख अधिकारी) की नियुक्ति करे जो न्यायिक जाँच करे, किन्तु उन्हें स्थायी नहीं रहने दिया जाय।<sup>२</sup> मौर्य काल में अथवा भी इसका संकेत प्राप्त होता है क्योंकि मेगस्थनीज ने नगर तथा सनिक प्रबंध के लिए पाँच सदस्यों की समिति का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> गुप्त काल में भी पांच सदस्यों की ग्राम समिति को 'पञ्चमण्डली' कहा जाता था।<sup>४</sup> इससे पता चलता है कि पांच व्यक्तियों का यह षाड बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है।

गुजरात में विद्यालदेव के पोरबन्दर नामक अभिलेख से पता चलता है कि पंचकुल को सौराष्ट्र का प्रशासक नियुक्त किया गया था।<sup>५</sup> आठवीं शताब्दी के अंत में हुड (प्राचीन उदमण्डपुर) के सारदा अभिलेख में पंचकुल का उल्लेख है।<sup>६</sup> गुजरात में प्रतिहार नरेश के सियादोनी अभिलेख में पंचकुल का पांच बार उल्लेख आया है।<sup>७</sup> विक्रम संवत् १३०६ के चाहमान अभिलेख तथा विक्रम संवत्

१ सम० नं० ४, २७० ७१ ६, ५६० ६१।

२ नितीय चूर्णी २, पृ० १०१।

३ अथशास्त्र २।९।

४ मज्झिमनिकाय—मेगस्थनीज प्रगमेट XXVIV पृ० ८६ ८८।

५ अल्लेखर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १७७।

६ पूना ओरियंटल २।२२५।

७ इपि० इडि० २२, पृ० ९७।

८ वही १, पृ० १७३।

९ वही ११, पृ० ५७।



१३३६ के भीमनाल अभिलेख<sup>१</sup> में पंचकुल का उल्लेख हुआ है और गेर्ना अभिलेखों से पता चलता है कि पंचकुल राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे। १३४५ के चौहान अभिलेख<sup>२</sup> में भी पंचकुल का उल्लेख है जिन्हें दूसरे स्थान पर ग्राम पंचकुल<sup>३</sup> कहा गया है। एक अन्य अभिलेख में पंचकुल का महामात्य के साथ उद्धृत किया गया है।<sup>४</sup> सौराष्ट्र के राजा सन ८३९ के एक अभिलेख में पंचकुलिक का उल्लेख है जो सम्भवतः पंचकुल के पाँच सदस्यों की समिति में से एक था।<sup>५</sup> इसी प्रकार सधामगुप्त के एक अभिलेख में महापंचकुलिक<sup>६</sup> का उल्लेख है जो एक उच्च अधिकारी जान पड़ता है। गुप्त सम्राटों के दामोदर प्लेट में प्रथम कुलिक का उल्लेख है।<sup>७</sup> यहाँ मजूमदार ने भी पंचकुल को पाँच सभ्यों का एक बाँट माना है जिसमें से प्रत्येक का पंचकुलिक और उनका मुख्य-अधिकारी का महापंचकुलिक बताया है।<sup>८</sup>

सम्राट्पञ्चवहा में पंचकुल को राजा के साथ बैठकर मुक्तियों की निगरानी तथा उनका (पंचकुल) परामर्श से राजा द्वारा उचित निणय देने का उल्लेख है।<sup>९</sup> हर्षवर्धन ने भी पता चलता है कि प्रत्येक गाँव में पंचकुल सभा पाँच अधिकारी गाँव के करण या कार्यार्थक के व्यवहार (न्याय और राजराज) चलाने थे।<sup>१०</sup> प्रबंध चिन्तामणि तथा अन्य ब्याख्या में भी पंचकुल का उल्लेख है।<sup>११</sup>

ऊपर के अभिलेखीय तथा साहित्यिक साधनों से पता चलता है कि पंचकुल का निर्वाचन राजा द्वारा किया जाता था जो गाँव तथा नगर के मुक्तियों की रक्षा के लिये कर राजा, मन्त्र तथा अन्य अधिकारियों के परामर्श से निणय भी देने थे। राजपूताना में १२७७ ई० के भीमनाल अभिलेख में पंचकुल के सदस्यों द्वारा

१ ग्राम्य मज्जटियर ३, ४८०, नं० १२।

२ इति० इति० ११ पृ० ५८।

३ महा ११ पृ० ५०।

४ नाहर—जैन दम्पातिनाम् २४८—महामात्य प्रभुति पंचकुल।

५ इति० पेट्री० १२ पृ० १०३ १८।

६ जाल आर श्री विहार गण्ड उदागा रिमभ मामावती ५ ५८८।

७ इति० इति० १५, ११३ १४५।

८ पृ० ५० मज्जिमसार—बालुस्यार आर गुजरात पृ० २३०।

९ मन० ब० ६ ५६० ११।

१० बालुस्यारण अध्ययन—हर्षवर्धन एक मोम्सत्रिअध्वर्य ५० २०३।

११ गिन्धा जैन सम्प्रदाय १ पृ० १२ ५७ ८७।

एक दान दिये जाने का बणन है।<sup>१</sup> साक्ष्यों के आधार पर यह प्रकट होता है कि पचकुल मंत्री और गवर्नर से सम्बंधित थे तथा कभी-कभी नगर के अधीश्वर का भी चाज लेते थे, किन्तु अथ विद्वानों के अनुसार उनसे (पचकुल) काय किसी निश्चित सीमा (नगर-गाँव अथवा मंत्री) तक सीमित न थे।<sup>२</sup>

## कारणिक

पचकुल की भाँति सम्राट्त्व कहाँ में अपराध की 'यायिक' जाँच करते हुए 'कारणिक'<sup>३</sup> का उल्लेख किया गया है। अथ प्राचीन जन ग्रन्थों में 'यायाधीश' के लिए 'कारणिक' अथवा रूप यक्ष (पालि में रूप दन्) शब्द का प्रयोग हुआ है।<sup>४</sup> रूप यक्ष को माठर के नीतिशास्त्र और कौटिल्य की दण्डनीति में कुशल होना तथा निगय देते समय निष्पन्न रहना बताया गया है।<sup>५</sup> 'उत्तराध्ययन'<sup>६</sup> टीका में उल्लिखित है कि करकण्डु और किसी ब्राह्मण में एक वान के डण्डे को लेकर झगडा हो गया। दोनों 'कारणिक' के पास गये। वान करकण्डु के दमस्तान में उगा था, इसलिए उसे दे लिया गया। बृहत्कल्प भाष्य<sup>७</sup> में भी उल्लिखित है कि अपराधी को राजकुल के 'कारणिक' के पास ले जाया जाता और अपराध सिद्ध होने पर घोषणापूर्वक दण्डित किया जाता था। सोमन्व ने वर्णों (कारणिक) के पाँच प्रकार के काय एवं अधिकार गिनाया है यथा—(१) अदायक (राज की आय को एकत्र करने वाला) (२) निग्रहक (लेखा-आखा का काय करने वाला) (३) प्रतिग्रहक (सील का अध्ययन) (४) नीति ग्राहक (विस्त विभाग का काय), (५) राज्याध्यक्ष (इन चारों का अध्ययन)।<sup>८</sup> कर्णाटक के कलचुरि शासन में पाँच

१ अल्लकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १७८।

२ ए० व० मजूमदार—चालुक्य राज आफ गुजरात पृ० २४०।

३ सम० क० ४ पृ० २७१। नीया पचकुल समीप पुच्छिया पचउलिएहि 'केया सुभे ति। तहि भणिय—सावत्थीओ। कारणिएहि भणिय—कहि गमित्तह ति। तहि भणिय सुसम्भ नयर। कारणिएहि भणिय किनिमित्त ति—कारणिएहि भणिय-आत्ये तुम्हाण किंचि दविणजाय।

४ जगदीशचन्द्र जैन—जनागम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ६४।

५ पंचहारभाष्य १ भाग ३, पृ० १३२।

६ उत्तराध्ययन टीका ९, पृ० २३४।

७ बृहत्कल्पभाष्य १। ९००, ९०४५।

८ जी० सी० चौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नादन इण्डिया फ्राम जन सोसैज पृ० ३६२।

अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। इन्हें 'करणम' कहते थे। इनका कार्य यह देखना था कि सावजनिक धन का दुस्प्रमाण न हो। 'पाय' की व्यवस्था ठीक हो तथा राजद्रोहियों और उपद्रवियों को समुचित दंड मिले।<sup>१</sup>

समराइच्च वहा में उल्लिखित कारणिक का प्रमुख कार्य राज्य की आय-व्यय आदि का लम्बा-जोषा ताला था ही इसके साथ-साथ वह 'रायिक जांच' का भी कार्य करता था जमा कि ऊपर के साम्या द्वारा पृष्ठ होता है।



## चतुर्थ अध्याय सामाजिक स्थिति

### वर्ण एवं जाति-व्यवस्था

प्राचीन भारतीय समाज विभिन्न प्रकार के वर्णों एवं जातियों में विभाजित था। समाज का यह विभाजन सामाजिक (वश परंपरा तथा रीति रिवाजों के कारण), आर्थिक (आजीविका की दृष्टि से) राजनतिक, धार्मिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का परिणाम था। घम शास्त्रों के आधार पर जाति व्यवस्था के कुछ विशिष्ट गुण बताये गये हैं और इन्हीं गुणों के कारण एक जाति दूसरी जाति से भिन्न आचरण करती हुई पायी गयी है। वे गुण हैं—वश परम्परा, जाति के भीतर ही विवाह करना एवं एक ही गोत्र में या कुछ विनिष्ट सम्बन्धियों में विवाह न करना भोजन सम्बन्धी वजना, व्यवसाय (आजीविका के आधार पर जाति व्यवस्था), जाति श्रेणियाँ यथा कुछ उच्चतम और कुछ निम्नतम<sup>१</sup> आदि। जाति व्यवस्था की विशेषताओं पर आधुनिक समाजशास्त्र के विद्वानों के भी विचार घमशास्त्रीय विवेचन से कुछ भिन्न-जुलते हैं। उनके अनुसार जाति कुटुम्बों का यह समूह है जिनका अपना एक निजी नाम है जिसकी सदस्यता पैतृकता के आधार पर निर्धारित होती है, जिसके भीतर ही कुटुम्ब विवाह करते हैं और जिसका या तो अपना निजी पेशा होता है अथवा जो अपना उद्भव किसी पौराणिक देवता या पुरुष से बताते हैं।<sup>२</sup> काणे ने वर्ण और जाति में अन्तर बताते हुए लिखा है कि वर्ण की धारणा वश, संस्कृति चरित्र (स्वभाव) एवं व्यवसाय पर मूलतः आधारित है जबकि जाति व्यवस्था जन्म एवं आनुवंशिकता पर बल देती है और बिना कृतव्यों का विश्लेषण किये केवल विशेषाधिकारों पर ही आधारित है।<sup>३</sup> अतः मौलिक रूप में वर्ण और जाति के अर्थ में अन्तर दिखाई देता है।

हरिभद्र कालीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक जातियाँ निवास करती थीं। उनके रहन-सहन एवं आधार विचार का स्तर भिन्न था। यह विभिन्नता

१ पी० बी० काणे—घमशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० १०९।

२ राजेश्वर प्रसाद अग्रवाल—समाज शास्त्र, पृ० २०१—छदमीनारायण अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा, सन १९५६ ई०।

३ पी० बी० काणे—घमशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ११९।

सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनतिक एवं भौगोलिक स्थितियाँ के प्रभाव स्वरूप था। सम्राट् चक्रवर्ति में आय एवं अनाय जातियों का उल्लेख है। आय जातियों के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र ये चार वर्ण गिनाए गये हैं, शूद्र की कई शाखाएँ थीं यथा—चाण्डाल, दाम्बलिक, रजक, चमकार, शत्रुनिह और मधुआ आदि और अनाय व अन्तर्गत शक, यवन, धवर्क्याय, मुण्डाड और गौड आदि जातियों का नाम गिनाया गया है।<sup>१</sup> इस आय और अनाय जातियों में भेद माना जाता था। जिन जातियों के रहन-सहन का स्तर धर्म एवं उच्च आचार विचार से प्रभावित था और जो विवेक से कार्य करते थे उन्हें आय कहा जाता था। विन्तु इससे विपरीत जिन्हें धर्म-धर्म एवं आचार विचार का पान नहीं था तथा जो विवेक से कार्य नहीं करते थे उन्हें अनाय (स्लेच्छ) कहा जाता था।

आय जाति व अन्तर्गत शत्रुनिह का उल्लेख दिया गया है। इन चारों वर्णों की उत्पत्ति हमें ऋग्वेद व पुरुष सूक्त में दण्डन का मिलती है। जिसमें उल्लिखित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की उत्पत्ति क्रम से विराट् पुरुष (परम पुरुष) व मूय बाहुओं जोषा और परों से हुई।<sup>२</sup> अथ ब्राह्मण ग्रन्थ में भी शत्रुनिह का उल्लेख है।<sup>३</sup> जन ग्रन्थ निम्नानुसार शूद्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय वश्य एवं शूद्र इन चार वर्णों का उल्लेख है।<sup>४</sup> आदि पुराण में उल्लिखित है कि ब्रह्मा गस्तार में ब्राह्मण, गन्धर्धारण में क्षत्रिय, त्राय पूष धमाजन ग वश्य और नील वृत्ति में शूद्र की उत्पत्ति हुई।<sup>५</sup> इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि आदि ब्रह्मा ऋषभ देव ने तीन वर्णों की स्थापना की थी। शस्त्र धारण कर आजीविता चलाने वाले क्षत्रिय, सेती व्यापार एवं पशु पालन आदि के द्वारा आजीविता चलाने वाले वैश्य तथा अन्य लोगों की सेवा दृष्ट्या करने वाले शूद्र कहलाये। शूद्रों की भी दो श्रेणियाँ थी—बार और अकार। चौथी आदि शूद्र बार और उग्र भिन्न अकार कहे गये। बार शूद्र भी स्पर्श और अस्पृश्य

१ साम० ४०.४ पृ० ३४८।

२ ऋग्वेद १०.१९२।१२।

३ महाभारत १.१४।११ महाभारत-भाति पृष्ठ १८/१६ १८ अनु० १।३।

४ निम्नानुसार पृ० ६१३—जहा धर्मन जाति कुल्यु गतिगु गण्य कुल्यु, भातिगता वदम-गुण्यु वि।

५ आदि ० ३/१४-६९।

भेद से दो प्रकार के थे। जो समाज व बाहर रहते थे उन्हें अस्पृश्य और जो समाज के अन्दर थे उन्हें स्पर्श्य कहा जाता था, यथा नार्ई, सुवर्णकार आदि<sup>१</sup>। आदि पुराण के आधार पर कुछ विचारकों का मत है कि भरत ने अपने पिता ऋषभदेव द्वारा उपदिष्ट धर्म व प्रचाराय क्षत्रिय, वश्य एवं शूद्रों में से वृत्ति भेद के आधार पर चौथे वर्ण अर्थात् ब्राह्मण की स्थापना की और उन्हें ब्रह्मसूत्र से अलङ्कृत किया। उन्होंने जन धर्म एवं जन-समाज में सभी वर्गों के लिए अलग अलग क्रिया-कलाप निश्चित किये। यहा जन धर्म एवं जन समाज में म्लेक्ष तत्व को सम्मिलित होने की अनुमति थी<sup>२</sup>। यद्यपि सम्राट्त्वं कहा में आय एवं अनाय का भेद बताया गया है फिर भी जन धर्म में प्रविष्ट होने की दृष्ट सभी को थी। जन दृष्टि में तो वर्ण भेद वृत्ति भेद के अनुसार था।

सम्राट्त्वं कहा में आय और अनाय जातियाँ के साथ-साथ विध्यादि पवतीय क्षेत्रों में निवास करने वाली यक्ष,<sup>३</sup> नाग,<sup>४</sup> किन्नर,<sup>५</sup> विद्याधर<sup>६</sup> तथा गन्धर्व<sup>७</sup> आदि जातियाँ का उल्लेख पाया गया है। ये लोग तत्र-भत्र की सिद्धि करते हुए अपना जीवन यापन करते थे।

## ब्राह्मण

वर्णिक काल से ही ब्राह्मणों को सभी वर्णों में श्रेष्ठ बताया गया है। हरिभद्र के समय में ब्राह्मणों की यह श्रेष्ठता बनी रही।<sup>८</sup> वे पठन-पाठन के साथ यज्ञ एवं आग्नि उत्तम कार्य में रत रहते थे।<sup>९</sup> राजन्तरवारों में भी उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त था तथा वे राजाओं के सचिव आदि श्रेष्ठ पदों को सुशोभित करते थे।<sup>१०</sup> अत्येष्टि क्रियाओं के बाद मृतक आत्मा की शान्ति के लिए ब्राह्मणों को

१ आदि० १६।१८४ ८६।

२ त्विगा—जन ण्डीवरेरी वालूम ३ न० १ में दी जन क्रानालाजो, पृ० २९।

३ सम० क० ८, पृ० ८२१ ८२५, ८३१।

४ वही ५ पृ० ४५१।

५ वही ५ पृ० ४४८ ४५३ ५४५५ ४६३ ४६८।

६ वही ६, पृ० ५४५ ५४८, ८, पृ० ७५५।

७ सम० क० ८ पृ० ८२७ ९ पृ० ८९२।

८ वही २ पृ० १२१ ५, पृ० २७७, २८०, ६ पृ० ३९५ ४७८ ४८० ४८७ ० पृ० ९७८।

९ वही ३ पृ० १६२ १६३।

घर बुलाकर भोजन कराया जाता था ।<sup>१</sup> विनिष्ट ब्राह्मणों को दान देने की भी प्रथा थी ।<sup>२</sup>

स्मृतियों में ब्राह्मणों की जाति व्यवस्था की गिंसा माना जाता था । शत्रिय उनकी आज्ञा का पालन करते थे तथा गूढ़ उनकी सेवा करता था ।<sup>३</sup> मनु के अनुसार ब्राह्मण को किसी भी प्रकार का शारीरिक दण्ड अथवा मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सकता था ।<sup>४</sup> मनु ने लिखा है कि यदि कोई ब्राह्मण अपने परम्परागत व्यवसाय का पालन करते हुए—अपनी आजीविका कमान में असमय हो तो वह शत्रियों पर आश्रित रह सकता है ।<sup>५</sup> ब्राह्मण ब्रह्मिक तथा पौराणिक विद्या का जाना हाते थे । साथ ही वे नियमित दैनिक क्रियाओं का अनुष्ठान करते, आहुति देते तथा एक गृहस्थ ब्राह्मण के लिए निर्धारित सभी कार्य करते थे ।<sup>६</sup> कम पढ़े लिखे ब्राह्मण स्थितिर गान (मन्त्राच्चारण) तथा मन्दिरों पर पूजा आदि का द्वारा अपनी आजीविका चलाते थे ।<sup>७</sup> जिनमेन ने आशिपुराण में तपाचरण करने वाले तथा शास्त्रों का पाठा का ब्राह्मण वर्ण वाला माना है किन्तु जो इन दोनों से रहित है उस जाति ब्राह्मण माना है ।<sup>८</sup> अतः ब्राह्मण का मुख्य कार्य तप, यज्ञ, एवं वेद शास्त्र का अध्ययन अध्यापन ही था ।

यगस्मिन्त्व में ब्राह्मणों का कई नामों से सम्बोधित किया गया है यथा— ब्राह्मण,<sup>९</sup> द्विज<sup>१०</sup> विप्र<sup>११</sup> भूदेव<sup>१२</sup> शत्रिय<sup>१३</sup> ब्राह्म<sup>१४</sup> उपाध्याय<sup>१५</sup> भौहृतिर<sup>१६</sup>

१ गम० ४० ४ पु० १४५ १५१ तुलना का शिष्ट स्थित—यगस्मिन्त्व  
पु० ८८ मुक्त्य का आढामन्त्रितम्भ्य ।

२ यगस्मिन्त्व पु० ८५७ स्थिति गान—द्विज यगयम्भ ।

३ परात्तर स्मृति ८।३ ।

४ मनु १।३८ ।

५ मनु० १०।८१ ।

६ ह्यवर्गित १ पु० ८६ दण्डित—मन्त्रीय वर्गितम् ४ पु० १३० ।

७ श्लाघनी अर्थ १ पु० १२ ।

८ आशि० ३।१४२ ।

९ यगस्मिन्त्व पु० ११६ ११८ १२६—उत्तर गण्ड ।

१० वही पु० १० १०५ १०८ उत्तर गण्ड ।

११ वही पु० ४५७ ।

१२ वही पु० ८८ उत्तर गण्ड ।

१३ वही पु० १०३ उत्तर गण्ड ।

१४ वही पु० १३ उत्तर गण्ड ।

१५ वही पु० १०१ उत्तर गण्ड ।

१६ वही पु० ३१६ पूर गण्ड १४० उत्तर गण्ड ।

देवभोगी,<sup>१</sup> तथा पुरोहित<sup>२</sup>। इन उल्लेखों से ब्राह्मण के महत्त्व एवं समाज में उनकी उत्कृष्ट स्थिति का पता चलता है। इतिहास के अनुसार ब्राह्मण बहुत ही सम्माननीय जाति थी और उन्हें देवता कह कर आदर दिया जाता था।<sup>३</sup> अलवरनी के अनुसार ब्राह्मण मानव जाति में सबसे उत्तम समझे जाते थे और अन्य वर्णों की तरह वह राजा की सेवा आदि के लिए बाध्य नहीं थे।<sup>४</sup> कश्मीर के राजा चन्द्रपीड के समय में (७१३-७२० ई०) एक हत्यारे ब्राह्मण की जाति की विधिगुप्ता के ही कारण किसी भी प्रकार का शारीरिक दण्ड नहीं दिया गया था।<sup>५</sup> प्राचीन काल में तपे लोहे से दागना तथा देश से निर्वासित कर दना ही ब्राह्मणों के लिए सबसे बड़ा दण्ड था।<sup>६</sup>

सम्राट् च्व कहा के इस उल्लेख की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से भी हो जाती है कि ब्राह्मण राजाभा के यहाँ सचिव आदि विशिष्ट पदों को भी सुशोभित करते थे। गग गोत्रीय ब्राह्मण तथा उनके वंशज मन्त्री के रूप में घमपाल तथा उसके उत्तराधिकारी देवपाल के दरबार में रहते थे।<sup>७</sup> कादम्बरी के उल्लेख से पता चलता है कि कुमारपाल<sup>८</sup> तथा शुक्रनास<sup>९</sup> जा कि क्रमशः गूढक और तारापीड के मन्त्री थे ब्राह्मण थे। मन्त्री एवं सचिव के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण शासक भी हुए हैं जो स्वभावतः मेनानो रह चुके थे, यथा—शुग, सातवाहन, वाकाटक, कान्भव एवं गुहिल वंशीय।

### क्षत्रिय

सम्राट् च्व कहा में क्षत्रिया को आय जाति की श्रेणी में ही गिनाया गया है।<sup>१०</sup> यद्यपि सम्राट् च्व कहा में क्षत्रियों की सामाजिक स्थिति तथा उनके दाय एवं व्यवसाय का पता नहीं चलता है फिर भी अत्र इनकी स्थिति आदि के

१ यशस्तिलक पृ० १४० उत्तर खण्ड।

२ वही पृ० ३१६ पृ० ख०, पृ० ३४५ उत्तर खण्ड।

३ तत्वाकुसू, पृ० २४ और पृ० १८२।

४ मचाऊ—अलवरनीज इण्डिया २ पृ० १४९।

५ राजतरंगिणी ४, ९६।

६ पी० वी० वाजे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० १४१।

७ राजतरंगिणी ४ १३७।

८ कान्भवरी पृ० २६।

९ वही पृ० ११४।

१० राम० व० ४ पृ० ३४८।



व्यापार पर हम वैश्यों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। स्थानीय व्यापारी, कारवाँ व्यापारी समुद्र पार तक व्यापार करने वाले तथा उद्योग पति,<sup>१</sup> किन्तु सम्राट्चक्रवर्ती में हम सायबाहू का ही कारवाँ बनाकर दंग व अन्दर तथा यथेष्ट लाभ न पाकर दंग व बाहर समुद्र पार तक व्यापार करते हुए पाने हैं।

### स्थानीय व्यापारी (वणिज)

सम्राट्चक्रवर्ती में वणिज का उल्लेख किया गया है जो गाँवों की हज़ारों में तथा छोटे छोटे नहरों में व्यापार करते थे।<sup>२</sup> ये स्थानीय व्यापारी बड़े जा सरत हैं जो तत्कालीन भारत में स्थानीय लोग की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का क्रय विक्रय कर यथेष्ट लाभ प्राप्त करते थे। यहाँ उनकी आजीविका का प्रधान स्रोत था। प्रतिहार अभिलेख में बड़ा नामक एक व्यवसायी का उल्लेख है जो विभिन्न स्थानों से व्यापार व वाण्य सामग्रियों का क्रय करता था।<sup>३</sup>

### सायबाहू

व्यापार में दूसरा वर्ग सायबाहू का था। ये लोग गाँव (कारवाँ) बनाकर व्यापार के लिए दंग के अन्दर दूरस्थ प्रदेशों का आया-जाया करते थे।<sup>४</sup> गाँव बनाकर व्यापार करने के कारण ही इन्हें सायबाहू बना जाने लगा। गाँव का गामिनि अथवा व्यापारियों की टोली और बाहू का अर्थ वहन करने वाला अर्थात् नेता (गुजरा) से लगाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि सायबाहू गाँव (कारवाँ) का नेता होता था। गीत गीत व गीतों में यह गीत मन्त्रपूजक से उक्त गीत।<sup>५</sup> व्यापार में गमनित गीत प्राप्त करने के लिए य गीत जयन्ता गीत मन्त्रपूजक व गीतों में भी जाया करते थे।<sup>६</sup> य गीत हा घना गमनित गीत गीत गीत गीत

१ वाण्य उद्योग गामिनि गिनिज बहागा और गाँव वणिज  
पृ० ७१।

२ गम० १०६ पृ० ७६/ ७/७ ६ पृ० ७७३ ५९०।

३ गि० वणि० ७० पृ० ५६।

४ गम० ५०६ पृ० ५०३।

५ गी० २ पृ० १०६ १०५ ११० ११ १० १ १६ ११६ १३१८ १०१  
१२२ १२६ १३० २ पृ० १६/ १०२ ॥ २३३ २४० १५० ९०  
७, पृ० ६ ८।

६ गी० ५ पृ० ८०६ ८०६ ४ २ ८०६ ४०६ ६ गम० ४००  
५०६ ५०० ५०६ ५०० १०० १४५ ५०० ५०६ ६१५०८, ७ गम०  
६१० ६२४।



करते थे। समाज में इनका थप्टी (सेठ) का सम्मान सूचक पदवी प्राप्त थी।<sup>१</sup> व्यापारिक वृत्ति के होने हुए भा ये लोग धार्मिक प्रवृत्ति के होते थे।<sup>२</sup> वगाड में मिनी मुद्राशा य पना चगता ह रि गुप्त बाग में निगम गठ साधवाह तथा कृत्रिमा की गयुन मडली हाती थी जिसका उल्लेख ऊपर साधवाह व सदन में किया गया ह। समराइच्चवहा<sup>३</sup> की ही भाँति कुमार गुप्त प्रथम ने गामागपुर साधपत्र में नगर थप्टि का उल्लेख ह।<sup>४</sup> त्रिग व्यापारिक सस्या था मुगिया (मठ) कहा जा सकता ह।

गूढ़

भारतीय गामाजिव संगठन में चौथा वण गूढ़ का था। समराइच्चवहा में इन्हें आम जातिया में चौथी तथा निम्न थप्टी का बताया गया ह।<sup>५</sup> ऋग्वेद में इनकी उत्पत्ति विराट पुत्र्य व पर मे बताया गई है।<sup>६</sup> पुत्रा को ब्राह्मण, दानव और वरुणों का मेवन माना जाता रहा ह। मनुस्मृति व उल्लेख से पता चलता ह कि गूढ़ों के सार क्रिया मस्तर दिना यन्त्रि मन्त्रों के हो सकते ह।<sup>७</sup> गृहस्य आश्रम के अनिरिक्त जन्मे त्रिगी क्रूर आश्रम की आगा मरी की जा सकती।<sup>८</sup>

जैन ग्रंथ आदि पुराण में भी गूढ़ों की अथ वरुणों का मेवन बताया गया ह।<sup>९</sup> यगस्तिष्ण में गूढ़ और छाटा जातियों व ऋषि क्षु अर्यज तथा पामर गूढ़ आय ह। अन्धजा का स्वग वज्रतीय माना जाता था तथा पामर की मतान उच्च बाय व पाग नहीं माना जाती था।<sup>१०</sup> अस्वरणी व अनुगार गमात्र में गूढ़ों की स्थिति अच्छा नहीं था तथा य वगमयन नहीं कर सकते थे।<sup>११</sup>

सम्राट्त्वं कहा में इसे गूदा व कई भेद गिनाए गए हैं। यथा—चाण्डाल, दोम्बलिक, रजक, चमकार, गार्कुनिक और मलुजा।<sup>१</sup> सम्भवतः यह पेशे के अनुसार आजीविका कमाने वाली गूदा की कई शाखाएँ थी जिनका विवेचन अधोलिखित ढंग से किया जा सकता है।

### चाण्डाल

सम्राट्त्वं कहा में इसे गूदा का एक शाखा बताया गया है। हरिभद्र सूरि ने चाण्डाल का उल्लेख कई बार किया है।<sup>२</sup> ये लोग समाज में अन्य वर्णों की अपेक्षा हेय दृष्टि से देखे जाते थे तथा इनका आवास भी पथक होता था। इनका कार्य अभियागियों को फाँसी देना, वधस्थल पर ले जाकर तलवार से मौत व घाट उतारना आदि था।

ऋग्वेद में चमम्न (लाल या चमड़ा खाघने वाले) शब्द का उल्लेख है।<sup>३</sup> छान्दोग्य उपनिषद् में चाण्डाल का अन्य तीन वर्णों से निम्न माना गया है।<sup>४</sup> गौतम ने लिखा है कि चाण्डाल ब्राह्मणी ने गूदा द्वारा उत्पन्न सत्तान है। अतः वह प्रतिलामा में अत्यन्त गौहृत प्रतिलाम है।<sup>५</sup> आपस्तम्ब ने लिखा है कि चाण्डालस्पर्श पर वस्त्र व सहित स्नान करना चाहिए। चाण्डाल सम्भाषण पर ब्राह्मण से बात कर लेना चाहिए, चाण्डाल स्नान पर मूय, चन्द्र या तारा का दण्ड लेना चाहिए।<sup>६</sup> मनु ने बबल आध, भेद चाण्डाल एवं श्वपच का गाँव के बाहर तथा अत्यावसायो का कर्मगान में रहने को कहा है।<sup>७</sup> अतः स्पष्ट होता है कि स्मृतियों में भी चाण्डाल को हेय दृष्टि से रखा गया है।

फाहियान<sup>८</sup> तथा इत्सिंग<sup>९</sup> के अनुसार चाण्डाल समाज से बहिष्कृत जाति

१ सम० क ४ पृ० ३४८।

२ वही १ पृ० ५४ ३ पृ० १८३ ४ पृ० २६१ ६२ २६६ ६७ ३२१, ३४८ ६ पृ० ५०८ ९ ५४८, ८ पृ० ८२९ ३०।

३ ऋग्वेद ८।५।३८।

४ छान्दोग्य उपनिषद् ५।१०।७।

५ गौतम० ४।१५ २३।

६ आपस्तम्ब धर्म सूत्र २।१।२।८ ९—'यथा चाण्डालाः पृथग्निः सभाषाया दग्निः च आपस्तम्बः प्रायश्चित्तम्। अवशाहनमयामुपस्थानं सभाषाया ब्राह्मण सम्भाषण दग्निः ज्यातिषा दग्निम्।

७ मनु० १०।३६ ५१।

८ लेगे (Legge)—ट्रबेल् आफ फाहियान पृ० ४३।

९ तबाकुमू पृ० १३९।

थी। ये लोग नगर बाजार आदि में प्रवृत्त करने समय लकड़ा या डंडा बजाने हुए चलते थे जिससे लोग सजग हो जायें और उनका स्पर्श न करने रहें। सामान्य न तो बाण्डाल का स्पर्श हो जाने पर मन्त्र जाप करने का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> बाणभट्ट ने भी चाण्डाल तथा मातंग का स्पर्श वर्जित बताया है।<sup>२</sup> वे अन्धे गिकारी होते थे। गरीब पीत, सफेद बल का मवारी करते तथा अपने स्वताश्रय को जीव बलि देने थे।<sup>३</sup>

उपरान्त साम्यों व आचार्य पर कहा जा सकता है कि हरिभद्र भूषि व काण्व में भी चाण्डाल निम्नतर जाति की श्रेणी में गिना जाते थे। उनकी सामाजिक स्थिति यही हो सकती थी तथा उनका श्रम भी निरुद्ध था।

### रजक

समराइच्चरहा में रजक का भी उल्लेख मिलता है कि हरिभद्र भूषि व काण्व में भी रजक का उल्लेख मिलता है।<sup>४</sup> ब्यास स्मृति में रजक का उल्लेख अन्त्यज जातियों में से एक माना गया है।<sup>५</sup> वैशम्पायन स्मृत्युक्त के अनुसार यह पुत्र्यम एव श्राद्धग स्त्री की गतान्त है।<sup>६</sup> महाभाष्य में इस उल्लेख कहा गया है।<sup>७</sup> याज्ञिक स्मृति में रजक की स्त्रियों का उल्लेख किया गया है तथा उनका वस्त्र कपड़ा का साफ करना बताया गया है।<sup>८</sup> आदिपुराण में रजक का उल्लेख मिलता है।<sup>९</sup> इनका मुख्य कार्य वस्त्र प्रणालन था। मेधा की दृष्टि में इनका अधिक उपासित था किन्तु उनकी सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी।

### माली (मालाकार)

समराइच्चरहा में माला का उल्लेख मिलता है।<sup>१०</sup> इनका मुख्य कार्य

१ याज्ञिक स्मृति १०. २८१ उक्त०।

२ ब्यास स्मृति १०. २४।

३ बह्वि १०. ५९१-२।

४ सम० ब० ४ पु० २८८।

५ बह्वि १०. ५१. ५२।

६ ब्यास स्मृति ११. २। १।

७ ब्यास स्मृति १०. १०।

८ ब्यास स्मृति १०. २५४।

९ आदिपुराण १५. ८५।

१० सम० ब० ४ पु० २३८।

फुलवारी की दग भाल करना तथा माला बनाना था। व्यास स्मृति में भी मालाकार का उल्लेख है।<sup>१</sup> अभिधानरत्नमाला में इसे गूद्रा की एक शाखा कहा गया है।<sup>२</sup> यशस्तिलक में मालाकर का फुलवारी एवं वागीचे को सजाने वाला तथा कूच चुनने वाला बताया गया है।<sup>३</sup> आदिपुराण के अनुसार मालाकार मागलिक अवसर पर पुण्य मागों गेय कर लाता था।<sup>४</sup> वाग-वागीचे तथा फुलवारा का देख भाल करना उसे सजाना एवं मालाओं का क्रय विक्रय करना इनका मुख्य कार्य था।

### नापित (नार्ड)

समरादण्ड कहा में नापित (नार्ड) का भी गूद्रा व अन्तर्गत माना गया है।<sup>५</sup> ये उच्च वर्णों व बाल तथा नाबून काटने और शिवाहादि मागलिक अवसर पर स्नान आदि करान का कार्य करते थे।<sup>६</sup> तत्तिरीय ब्राह्मण में भी इसका नाम आता है।<sup>७</sup> यशस्तिलक में भी नापित का उल्लेख है।<sup>८</sup> आदिपुराण में नापित का काम क्षू की श्रेणी में रखा गया है। ये लोगों के बाल बनाने, स्नान करान तथा अलङ्कृत करने का कार्य करते थे।<sup>९</sup>

### चमकार

समरादण्ड कहा में चमकार का भी गूद्रा की एक शाखा कहा गया है।<sup>१०</sup> चमक का कार्य करने व कारण ही उन्हें चमकार कहा जाता था। विष्णु धर्मसूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र तथा पराशर स्मृति में इसका उल्लेख है।<sup>११</sup> मनु ने इसे चर्मावकर्ता माना है।<sup>१२</sup> यशस्तिलक में चमकार व साथ उसके एक उपकरण

११

१ व्यास स्मृति १।१० ११।

२ अभिधानरत्नमाग २, पक्ति ५८६ ९२।

३ यशस्तिलक, पृ० ३९३।

४ आदिपुराण—प्रथम खण्ड, पृ० २६२।

५ सम० क० ४, पृ० ३४८।

६ वही २ पृ० ९३ ९४।

७ तत्तिरीय ब्राह्मण ३।४।१।

८ यशस्तिलक, पृ० २४१।

९ आदि पुराण प्रथम खण्ड पृ० ३६२।

१० सम० क० ४ पृ० ३४८।

११ विष्णु धर्मसूत्र ५।१।८, आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।३२ पराशर० ६।४४।

१२ मनु० ४।२।१८।

(काशी) का लूना।<sup>१</sup> इनके प्रारंभ की वारण ही इन्हें जनाय जाति की श्रेणी में गिना जाता था। समराद्वय रंग में गवरा द्वारा गण्डिका की उपासना करने का उल्लेख है।<sup>२</sup> दवा का प्रयोजन कर मनानुसृत पत्र की प्राप्ति के लिए ये पगुरलि तथा नरबलि भी दत्त थे। इन गहरों में कुछ वस्त्र भी हात में जा प्राकृतिक उपचार द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों का उन्मूलन भी किया करते थे।<sup>३</sup>

### किरात

गवरा की भाँति किरात भी एक जंगली जाति था।<sup>४</sup> इनका जीवन बहुत कुछ गहरों जमा जाना था। ये जंगल में रहते पत्र फूल छात मत्स्य पतन तथा धनुष बाण धारण करते थे। कर्मराम ने इस गृह की एक उपासना माना है।<sup>५</sup> मनु ने किरात का गृह की स्थिति की प्राप्ति काव्य माना है।<sup>६</sup> ब्रह्म साहित्य में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>७</sup> महाभारत के अनुशासन पर्व में भी किरात का उल्लेख बताया गया है।<sup>८</sup> समराद्वय कहा की भाँति अमरनाथ में भी किरात गवरा और पुष्प का मूल जाति की उपासना कहा गया है।<sup>९</sup> अभिषाररत्नमाला में किरात का एक उल्लेख एक जंगली जाति का बताया गया है।<sup>१०</sup> किरातानुगीत में गिर अजुन का परीक्षा के लिए किरात रूप में उपस्थित हात है जिसमें उनका स्वल्प का वर्णन करते हुए भार्गव ने लिखा है कि उनकी वन रात्रि फूल वाला जमात्रा के अग्रभाग में बंधा था। कर्मा मोरणा न मुतामिक व ओर ओगा में लाजिमा था। गोन पर हरि पद की स्त्री मेड़ी रमाणे गिरा हुई था जिन्हें उल्लेख के कारण बहने हुए पगाने में

- १ सम० ४० २ पृ० १२० ६ प० ५११ ७ पृ० ६५६ ५७ ६६१ ६२ ८ पृ० ७९८।
- २ पृ० ६ पृ० ५२९।
- ३ पृ० ६ प० १८० (आत्र भा कुछ जंगली जातियों का प्रकार के उपचार के लिए गाथा एवं गहरों में जाकर घूमती हैं)।
- ४ पृ० १, पृ० ५५।
- ५ कर्मरामसमृति १११० ११।
- ६ मनु० १०।६२ ६६।
- ७ अमरनाथ १०।१।१६ तत्तिराप काव्य १।४।११।
- ८ महाभारत—अनुशासन पर ३५।१७-१८।
- ९ कर्म—पमराम का अग्रभाग भाग—१, पृ० १२०।
- १० अभिषाररत्नमाला २।१०८।

वीच-वीच में काट दिया था और हाथ में बाण सन्ति विशाल धनुष था।<sup>१</sup> यहाँ किरात ने स्वरूप का भी स्पष्टीकरण हो जाता है। यशस्तिलक में किरात का निकारी के रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>२</sup>

शक

सम्राट्त्व कहाँ में गंधी को अनाथ जानि की श्रणी में गिनाया गया है।<sup>३</sup> इन्हें प्लेस भी कहा जाता था क्योंकि यहाँ लागू हो क्रूरकर्मों एवं उद्दण्ड स्वभाव के हात थे। शक शासन मध्यगंगा का मीथियन जानि के लिए प्रयुक्त हुआ है। भारत में इनका प्रवेश पहली गतांगी ईसा पूर्व में हुआ था किन्तु कदाचित् इनमें पूर्व भी भारतीयों को स्नाना मान था। शास्त्रमन्त्री वगैरे अभिलाषा में भी शक जातियों के उल्लेख हैं।<sup>४</sup> इससे प्रतीत होता है कि बहुत पहले ही कुछ शक इरान के समीप आकर बस गये थे। मनु ने इन्हें मन्त्र क्षत्रिय माना है और कहा कि वस्त्र सस्कारों के न करन ॥ तथा ब्राह्मणों के सम्बन्ध में दूर रहन के कारण ये शकों की श्रणी में आ गये।<sup>५</sup> महाभारत में गंधी का उल्लेख कई बार आया है।<sup>६</sup> अष्टाध्यायी में भी कम्बोजाणि गण में शक का उल्लेख है।<sup>७</sup>

यवन

सम्राट्त्व कहाँ में यवना का अनाथ जानि का कहा गया है।<sup>८</sup> मनु ने इन्हें गूण की स्थिति में पतित क्षत्रिय माना है।<sup>९</sup> गौतम के अनुसार यह गूढ पुरुष गय क्षत्रिय नारी से उत्पन्न प्रतिलोम जानि है।<sup>१०</sup> महाभारत में भी यवनों को अनाथों के साथ उल्लिखित किया गया है।<sup>११</sup> अष्टाध्यायी में भी यवना का

१ किराताजुनायक १२।४० ४१ ४२ ४३ ।

२ यशस्तिलक पृ० २२० ।

३ सम० पृ० ४ पृ० ३४८ ।

४ मनु० १०।४३ ४४ ।

५ महाभारत—सभापर्व ३२।१६ १७ उद्योग पर्व ४।१५ १९।२१ १६०। १०३ भीष्मपर्व २०।१३ द्राण पर्व १२।१।१३ ।

६ अष्टाध्यायी ४।१।१७५ ।

७ सम० पृ० ४ पृ० ३४८ ।

८ मनु० १०।४३ ४४ ।

९ गौतम ४।१७ ।

१० महाभारत सभापर्व ३२।१६ १७ या पर्व २५।४।१८ उद्योग पर्व १७।२१ भीष्मपर्व २०।१३ द्राण पर्व ९३।४२ शान्ति पर्व ६५।१३ ।



उल्लेख है।<sup>१</sup> मूलतः यवन शब्द ग्रीक लोगों के लिए प्रयुक्त होता था। इसकी उत्पत्ति आयोनियन से है। इस प्रकार प्राग्भूम में यह आयोनिया के ग्रीक लोगों का सूचक था किंतु बाद में गमस्त ग्रीक जाति के लिए प्रयुक्त होन लगा।<sup>२</sup> जगत्सर्व विद्वित है कि निबन्ध में सर्वप्रथम भारत में ग्राम जाति का राजनीतिक अधिवार स्थापित किया था किंतु भारत में ग्रीक राज्य की स्थापना वस्तुतः के इच्छाशक्त राजाओं ने की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कालांतर में जब प्राकलाया की स्मृति गेव न रहा यवन शब्द निदानी मात्र के लिए रह गया।

### यवनराज्य

इन्हें भी अनाग जाति के अंतर्गत गिनाया गया है। महाभारत में भी यवनों का शत्रु यवन गजर आदि अनाया की श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>३</sup> महाभारत में यवनों का सवाण-यात्रा का बड़ा है।<sup>४</sup> अतः स्पष्ट होता है कि यवन तत्कालीन समाज में निम्न श्रेणी की उन्नत जाति समझा जाता था, जो आतार विचार में भारतीय आय जातियों से कुछ भिन्न थी।

### मुद्राङ्क

गमराइकर बटा में इन्हें भी अनाग जाति का बताया गया है।<sup>५</sup> गमुगुत की प्रयाग प्रगति में भी शत्रुपुत्र दाही दाहानुताहा-वार मुरक की उल्लेख है। कुछ विद्वानों की राय में गजर-मुद्रा श्रेणी में जाति का नाम जान पड़ता है जिसका तात्पर्य कुषाण उपनिधारी राजा या भिन्न किसी राजा अथवा राज्य से है। उनका मत भी यही है कि यह परिवर्तन भारत के शत्रु होने जो शत्रु के नाम से प्रसिद्ध है।<sup>६</sup> परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि मुद्राङ्क शत्रु है जिसका अर्थ स्वामी होता है और इस उपनिध का प्रयोग पहलू दाहा ने तत्कालीन कुषाणों ने किया।<sup>७</sup> स्त्रोत्रोनों से मुद्राङ्क की

१ अष्टाध्यायी ४।१।५९।

२ जा० गन० दात्री—हर्निमस दा गेगिपट इतिहास पृ० २४९।

३ गम० क० ४ पृ० ३४८।

४ महाभारत समाख्य—३७।१६ १७ वन पर्व २५।१।८ शौन पर्व १०१। १३ तात्पर्यमा पर्व ३५।१७ दाहि पर्व ६५।१३।

५ महाभारत—मनु० १०।४।

६ गम० क० ४ पृ० ३४८।

७ परमेश्वरी लाल गुप्त—गुप्त साम्राज्य पृ० २६८।

८ बटा पृ० २६९।

कुपाण कहा है, विन्सन ने उन्हें हूणों की जाति बताया है और उसकी पहचान टोलेमी कथित मुरण्डाइ से की है। सिरवन लेवी ने उन्हें गव अथवा कुपाण बताने का प्रयत्न किया है। परमेश्वरी लाल गुप्त ने बताया है कि ईरा की प्रारम्भिक शताब्दियों में गंगा के काँटे पर मुहण्डों का एक शक्तिशाली राज्य था जो गुप्त साम्राज्य की सीमा से बहुत दूर न रहा होगा।<sup>१</sup> इन सभी उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि समराज्य कहा में उल्लिखित मुहण्ड एक प्रियेसी जाति थी जिसे हर्म्मिद्र ने आर्येतर होने के कारण अनाथ जाति का बताया है।

## गोड

समराज्य कहा में उन्हें शक मुहण्ड की जाति अनाथ जाति की श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>२</sup> यह तत्कालीन ममाज में एक निम्नकाँटी की जाति ममची जाती थी जो नमदा तथा कृष्णा नदी के मध्यवर्ती विन्ध्य प्रदेश में निवास करती थी।<sup>३</sup>

## आश्रम व्यवस्था

यद्यपि समराज्य कहा में प्राचीन परम्परागत आश्रम व्यवस्था का क्रमिक चित्र प्रतिबिम्बित नहीं होता फिर भी मानव जीवन के क्रमिक विनाश का दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि लोगों का जीवन चार अवस्थाओं में विभाजित था। आश्रम व्यवस्था जीवन के क्रमिक विकास की सीढ़ी थी जिस प्राचीन भारतीय मनापियों ने व्यक्ति को उसके चरम लक्ष्य तक पहुँचाने का एक प्रमुख साधन माना था। कुछ विचारकों के अनुसार यह व्यवस्था प्राचीन हिन्दुओं के पन्थित जीवन का प्राथमिक शिक्षा केन्द्र एवं अनुगमन की आधारशिला है।<sup>४</sup> आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को चार अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ता था जिसे हम प्रशिक्षण की चार श्रेणी मान सकते हैं।<sup>५</sup> यह आश्रम व्यवस्था हर व्यक्ति का उसके अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए जीवन यात्रा में विधामस्यल का कार्य करती है।<sup>६</sup> जीवन विकास की यात्रा में विधामस्यल का कार्य करने वाले इन आश्रमों की संख्या चार है—ब्रह्मचर्य

१ परमेश्वरी लाल गुप्त—गुप्त साम्राज्य पृ० २७०।

२ मम० क० ४, पृ० ३४८।

३ आपटे—संस्कृत हिन्दी का।

४ प्रभू—हिन्दू सामल आगनाइजेन पृ० ७८।

५ वही पृ० ७८।

६ वही पृ० ८३।

गृहस्य दानप्रम्य और मन्त्रम । वणिष्ठ स्मृति में इन चारों आयमों को दानप्रम्य, दानप्रम्य और परिव्राजक कहा गया है ।<sup>१</sup>

ममरास्त्वकहा में इन चारों अवस्थाओं का वर्णन उल्लेख नहीं है किन्तु भी कथा प्रम्य व आधार पर हम जानने को चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—कुमारवस्था<sup>२</sup> गृहस्थाश्रम<sup>३</sup> तथा धर्मण<sup>४</sup> अर्थात् दानप्रम्य और मन्त्रम आयम । धर्मण धर्म में पत्नी के साथ प्रवृत्ति ग्रहण करना<sup>५</sup> दानप्रम्य तथा अन्न में वस्त्र प्राप्त या प्राप्ति के लिए प्रयत्न में तब माग नियम तदम का विधान मन्त्रम आयम का प्रतीक है । यजुर्वेद में दानप्रम्य का नियमन का काय योन्याख्या को धनपात्रन का काय तथा बुद्ध्याख्या का नियमन का काय माना गया है ।<sup>६</sup> आदि पुराण में ब्रह्मचारी गृहस्थ दानप्रम्य तथा भिक्षा य चार आयम जीवन में उत्तमोत्तम अधिक विगुडि प्राप्त होने पर प्रशिक्षित होने गये हैं ।<sup>७</sup> गम्भयन पुराण चतुष्टय (धर्म अथ काम और माग) का वर्णन है इन चारों आयमों का आधार माना गया है ।

### ब्रह्मचर्य

ममरास्त्वकहा में जीवन की प्रथम अवस्था अर्थात् कुमारवस्था में विद्या दाना प्राप्त करने का उल्लेख है ।<sup>८</sup> ब्रह्म का जन्म व पश्चात् ब्रह्म गार्हपत्य, विद्या गान्धर्व आदि की विद्या दा जाती थी । विद्या ग्रहण कर विवाह व पश्चात् कुमारवस्था का त्याग कर वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था ।<sup>९</sup> मनु ने कुमारवस्था व जीवन का प्रथम माग ब्रह्मचर्य आयम है जिसमें अग्नि गुग्गुलु में २२ अक्षरों का वर्णन है ।<sup>१०</sup> आयुष्मन् धर्मगुरु में भी गुग्गुलु में वर्णन का

१. वणिष्ठ ७।१ (मन्त्रम आयमों दानप्रम्य गृहस्थाश्रम परिव्राजक ) ।

२. मनु १०।६ पं १०१ / पं १०४ ।

३. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

४. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ । ५. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ । ६. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

७. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

८. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

९. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

१०. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

११. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

१२. मनु १०।११ पं १०१ / पं १०४ ।

उल्लेख है।<sup>१</sup> गौतम ने चार आश्रमा में ब्रह्मचर्य आश्रम का उल्लेख किया है।<sup>२</sup> यशस्तिलक के अनुसार गुरु और गुरुकुल विद्याध्ययन की धुरी थे।<sup>३</sup> आदिपुराण में ब्रह्मचारी को भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करने का उल्लेख है। उसके लिए तिर के बाल का मुण्डन कराना भी आवश्यक बताया गया है जिसमें मन, वचन और काया पवित्र रहे। अल्वरन्नी के अनुसार ब्रह्मचारी भिक्षा मागता तथा उसे लेकर गुरु के सामने रखता था।<sup>४</sup> आठवीं शताब्दी में माजदून के दानपत्र में वासुदेव नामक ब्रह्मचारी का उल्लेख है।<sup>५</sup>

सम्राट्त्वं कहा में मान कौमारावस्था का ही उल्लेख है। जिसमें घर पर ही रह कर विद्याध्ययन करने का विधान था। यह काल प्रशिक्षण का काल था जिसमें हर व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गिम्मा गिम्मा ग्रहण करना आवश्यक समझा जाता था। किन्तु ब्रह्मचारी घर से दूर आश्रम में गुरु व पाम ही रह कर गुरु की सेवा करते हुए शिक्षा ग्रहण करता था।

### गृहस्थ आश्रम

कौमारावस्था के बाद विवाह सम्कार सम्पन्न होने पर व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।<sup>६</sup> गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट व्यक्ति को गृहपति कहा गया है।<sup>७</sup> मनु के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन के दूसरे भाग में विवाह करके गृहस्थ हो जाता है और सन्तानोत्पत्ति करके पूर्वजों के ऋण में तथा यज्ञ आदि करके देवा के ऋण से मुक्ति पाता है।<sup>८</sup> आपस्तम्ब धर्म सूत्र तथा बणिष्ठ धर्म सूत्र में भी गृहस्थ आश्रम का उल्लेख है।<sup>९</sup> गौतम ने भी चार आश्रम में गृहस्थ आश्रम

१ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।९।२।१।

२ गौतम ३।२।

३ यशस्तिलक पृ० ४३२ (न पुनरायु स्थित्या इवानुपासित गुरुकुलम्यमलन वत्योऽपि सरस्वत्य)।

४ मत्वाऊ २ पृ० १३१।

५ एपि० एण्डि० ५ पृ० २१२।

६ सम० क० ८ पृ० ८०७।

७ बन्नी ३ पृ० १७१ १८१ ५, पृ० ४४० ८ पृ० ८०६।

८ मनु० ४।१ ५।१६०।

९ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।९।२।१ बणिष्ठ धर्मसूत्र ७।१२।

का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> मनु<sup>२</sup> बणिष्ठ<sup>३</sup> दण्ड<sup>४</sup> तथा विष्णु धर्मसूत्र<sup>५</sup> आदि ने गृह्याधम का मर्यादित आधम माना है।

यामिनिल्ल व उल्लेख ॥ पता चलता है कि बापावस्था या विद्याध्ययन के पश्चात् गाथा गीता किया जाता था तथा विधिवत् गृहस्थाधम में प्रवेश किया जाता था।<sup>६</sup> आदिपुराण से पता चलता है कि विवाह हो जाने पर गृहस्थ अतिथि गत्वार दान पूजा परापरार आदि कार्यों का उत्तम पूषक सम्पन्न करता था।<sup>७</sup>

भारतीय परिवर्तना में गृहस्थ आधम का समाप्त होना का एक मापन माना गया है। गृहस्थाधम पर ही अन्य तानों आधम का अस्तित्व निर्भर है।<sup>८</sup> वानप्रस्थ

ममराइल्ल कहा में गृहस्थाधम की मांगारिना से ऊपर पर पत्नी के साथ गुरु व गोप प्रभ्या ग्रहण करने का उल्लेख है।<sup>९</sup> पत्नी के साथ प्रभ्या ग्रहण कर धर्म धर्म का धर्म इस बात का सूचक है कि हस्तिभूमि के काल में भी वानप्रस्थाधम का प्रभाव था। वहीं-वही ता गृहस्थाधम का धर्मत्व ग हीन ममराइल्ल दान अर्पण भी (धर्म ग विष्णु हार) प्रशस्त है।<sup>१०</sup>

माध्वतिल धर्मसूत्र तथा बणिष्ठ धर्मसूत्र में वानप्रस्थ आधम का उल्लेख है।<sup>११</sup> मनुस्मृति व अनुगार धर्म आन गिर पर मर दान तथा गत्वार पर शुष्मि दान नर उग वानप्रस्थ हो जाना चाहिए।<sup>१२</sup> मनु ने वानप्रस्थी को मागून दानि एव दान करने का विधान स्थापित है।<sup>१३</sup> जन दण्ड आदिपुराण में भी

१ गीतग० २।७।

२ मनु० ६।१०/ १३।३३-४०।

३ बणिष्ठ धर्मसूत्र १।१८-१९

४ दण्ड स्मृति २। ६।

५ विष्णु धर्मसूत्र १।३०।

६ यामिनिल्ल ४० २०३।

७ आदिपुराण ३/१३४३ ३६।

८ मनु—विष्णु धर्मसूत्र आदिपुराण ४० ११।

९ मनु० ४० १ पृ० १५ २ पृ० १३० ३० ४ पृ० १०१।

१० दण्ड ४ पृ० ३० ६ पृ० १६३ १८ ११ १६ ३ पृ० ११८ १३०।

११ आदिपुराण ३-पृ० २। १३४। ३ बणिष्ठ धर्मसूत्र ३।१२।

१२ मनु० ६।१०।

१३ दण्ड ४।१२।

वानप्रस्थ आश्रम को जीवन की उत्तरोत्तर शुद्धि के लिए आवश्यक बताया गया है। जिसमें घर छोड़कर खुरख एव ऐल्क व्रतों द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धि की जाती थी।<sup>१</sup> व्रत नियम समय आदि के द्वारा आत्ममाधना के योग्य बनाना ही वानप्रस्थ आश्रम की उपादेयता थी।

## सन्यास

धर्मशास्त्रीय परम्परा के अनुसार वानप्रस्थ के पश्चात् सन्यास आश्रम ग्रहण करने का विधान है जिसमें व्यक्ति पत्नी को भी त्याग कर एकांत स्थान में तप, यज्ञ, हवन-पूजन आदि विधान द्वारा मोक्ष प्राप्ति का यत्न करता है। समराङ्ग कहा में जैनाचार के आधार पर श्रमण धर्म का पालन करने का विधान बताया गया है।<sup>२</sup> इस श्रमणाचार का सन्यास आश्रम से जोड़ा जा सकता है जिसमें व्यक्ति श्रमण धर्म का पालन करते हुए जीवन के अन्तिम चरण में केवल ज्ञान (मोक्ष) प्राप्त करने का यत्न करता था।

मनुस्मृति में चारों आश्रमों का उल्लेख है जिसमें चौथे आश्रम का सन्यास कहा गया है।<sup>३</sup> बृहस्पति धर्मसूत्र में चौथे और अन्तिम आश्रम को 'परिव्राजक' कहा गया है।<sup>४</sup> जन घन आदि पुराण में चतुर्थ आश्रम को भिक्षुक नाम दिया गया है।<sup>५</sup> इसमें मुनि दीक्षा सम्पन्न की जाती थी और सासारिक बन्धनों के साथ कम बन्धन को तोड़ने के लिए पूरा समय का पालन किया जाता था। यग्यस्तिक के अनुसार बृद्धावस्था में समस्त परिग्रह का त्याग कर सन्यास लेना आत्म था।<sup>६</sup> इस आश्रम में शत्रुर्ष पुरुषार्थ (मोक्ष) की साधना करना आवश्यक बताया गया है।<sup>७</sup> महाशिव गुप्त के साम्प्रत अभिलेख में उल्लिखित है कि सन्यासियों के रहने एवं ठहरने का कोई निश्चित स्थान नहीं था।<sup>८</sup>

हरिमद्रूर के काल में सन्यास आश्रम को जीवन के अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन माना गया है। समराङ्ग कहा में उल्लिखित श्रमण आचार्य की तुलना स्मृतिकालीन सन्यासियों से की जा सकती है। यद्यपि इन दोनों

१ आदि पुराण ३९।१५२।

२ सम० क० ६ प० ५६७ ५६८, ७ प० ६२९।

३ मनु० ६।९६।

४ बृहस्पति धर्मसूत्र ७।१२।

५ आदिपुराण ३९।१५२।

६ यग्यस्तिक ५०।१९८।

७ वही पृ० २८४।

८ थारियटल कॉन्फरेन्स, बनारस ३, पृ० ५९६।

की दैनिक धर्या में अन्तर है फिर भी दोनों का लक्ष्य एक ही ॥ अर्थात् मान प्रात करना ।

संस्कार

संस्कार (सम-क-धर्म) गुरु का अधि मुगुम्भृत करना अर्थात् पुरीत कृत्यों द्वारा (गुरु और मन की) शुद्धि करना है ।<sup>१</sup> डा० राजवली पाण्डेय व अनुसार संस्कार गुरु का अधिक उपयुक्त धर्याय अर्थात् जीवा के मुक्तार्थ है जिसका अध धार्मिक विधि विधान अर्थात् कृत्य में है जो आंतरिक तथा आन्तरिक मोक्ष का वाहक तथा लक्ष्य प्रतीक माना जाना है और जिसका व्यवहार प्राण्य प्राण गुणार वाचान पाश्चात्य तथा समन ब्यालिक वर वपतिष्मा, मन्त्रुति (वन्धुमेन) पूजास्ति वत (पीनाम्न) अम्बुज्जन (गुरुम्भीम-ज्वान), आर्चना तथा विवाह व स-कृत्यों व लिंग करते हैं ।<sup>२</sup> संस्कार उग कहने है जिसका हान म बाई गाय या व्यक्ति किसी काय व योग्य हो जाना है ।<sup>३</sup> तत्रार्थात्क व अनुसार संस्कार व क्रियायें तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करनी हैं । यह योग्यता १ प्रकार की होती है प्राय मानव में उत्पन्न योग्यता तथा उक्तान गुणों में उत्पन्न योग्यता ।<sup>४</sup> डा० राजवली पाण्डेय ने संस्कार व संस्कार पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि संस्कार मानव जीवन व परिणाम और शुद्धि में महामय होने हैं । व्यक्तिव व विभाग में योग्यता करते हैं तथा मनुष्य व गरीर का परित्र करते हैं । इतना ही नहीं बल्कि वे मनुष्य का समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक महारा बांग्माओं का गति प्रदान करते हैं और उग जन्मिताओं तथा समस्तार्थों व समार व मुक्ति लिलाने हैं ।<sup>५</sup> अत्र व्यक्ति व विभाग व लिंग पर आपसपर माना गया है । संस्कार भाग दत्त का कार्य करते हैं जो आयु व यज्ञ व गाय गाय व्यक्ति व जावन की लक्ष निर्दिष्ट लिंग की ओर हो जाने हैं ।

समराहन्वहा का में प्राय संस्कार का उल्लेख है—ब्रह्मास्त्र<sup>६</sup> (जाय वम) गामवर्ण<sup>७</sup> विद्या संस्कार<sup>८</sup> तथा अर्थात् विद्या ।<sup>९</sup> मनुष्या में संस्कार का

१ प्रा —संस्कार १ गाय १० १० १ ।

२ गुरुत्वा पाण्डेय—सिद्ध संस्कार १० १३ ।

३ पा० पा० बाय—धर्म साधन का विभाग भाग १ १० १३६ ।

४ यज्ञ १० १३० ।

५ गुरुत्वा पाण्डेय—सिद्ध संस्कार १० १५१ ।

६ गम० व० ३ १० १५५ ।

७ यज्ञ १ १० ४० ३ १० ६०६ ६०३ / १० ७३४ ।

८ यज्ञ २ १० ०३ १०१ ३ १० ६३३ ६०१ / १० ७६५ १ १० ००१ ।

९ यज्ञ २ १० १३१ ३० ४, १० २६० ६ १० ५१३ ३ १० ७११ ।

सकृदा भिन्न भिन्न दा गयो है। गौतम ने चालीस सस्कारों का वर्णन किया है जिनमें गर्भाधान पुसवन सोम तान्नयन, जातकम, नामकरण अन्नप्राशन, चौल उपनयन आदि मुख्य हैं।<sup>१</sup> व्यास ने गर्भाधान से अत्येष्टि<sup>२</sup> तक १६ सस्कार गिनाए हैं—गर्भाधान पुसवन सोमन्त, जातकम नमस्करण अन्नप्राशन चौल, मोञ्जी (उपनयन) व्रत (चार), गोदान, समावर्तन विवाह एवं अत्येष्टि।<sup>३</sup> आदि पुराण में सस्कार का तीन वर्गों में विभक्त किया गया है यथा—गर्भान्वय-क्रिया शीक्षान्वय क्रिया तथा क्रियान्वय क्रिया।<sup>४</sup> वासुदेव उपाध्याय ने शिला लेखा के आधार पर उच्च वम के लोगों में चार प्रकार के सस्कारों का प्रचलन बताया है ये हैं जातकम (जमोत्सव) नामकरण, विवाह तथा श्राद्ध सस्कार।<sup>५</sup>

**जातकम**

ममराष्ट्रव कहा में पुत्र जमोत्सव का उल्लेख है। किन्तु उसकी विधि आदि का विवरण नहीं दिया गया है। पुत्र जन्म के समय नाना प्रकार की वधाइयाँ तथा दान आदि वितरित किये जाते थे और नृत्य-गान आदि के साथ पत्र का जमाम्बुदय मनाया जाता था।<sup>६</sup> तत्तिरीय संहिता में उल्लिखित है कि जब किसी का पुत्र उत्पन्न हो तो उसे १२ विभिन्न पात्रों में पकी हुई राटी की बलि ब्रह्मानन्द को देनी चाहिए। बह पुत्र जिसके लिए यह कर्म किया जाता था पवित्र गौरव तथा धन धान्य से परिपूर्ण होता है।<sup>७</sup> बृहदारण्यक उपनिषद् में जातकम सस्कार का ६ भागों में बाटा गया है—(१) दही एवं धृत का मंत्रों के साथ होम, (२) बच्चे के दाहिने कान में 'आक' शब्द को तीन बार कहना, (३) सुनहले चम्पक या शलाका से बच्चे को दही मधु एवं धृत चटाना, (४) बच्चे का एक गुप्त नाम देना (५) बच्चे को मा के स्तन पर रखना, (६) माता को मंत्रों द्वारा सम्बोधित करना।<sup>८</sup> जातकम का उल्लेख अन्य स्मृतियों में भी किया गया है।<sup>९</sup>

१ गौतम० ८।१४ २४।

२ व्यासस्मृति १।१४ १५।

३ दशिन—पी०वी० कण्ठे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १ पृ० १७८।

४ आदिपुराण ३।८।४७ २।८।५२।

५ वासुदेव उपाध्याय—श्रीमती रिलिजस कंडीशन आफ नदन इंडिया पृ० १४०।

६ मम० ३, पृ० १८५।

७ तत्तिरीय संहिता २।२।५।३४।

८ बृहदारण्यक उपनिषद् ६।४।२४ २८।

९ व्यास स्मृति १।१४ १५ गौतम० ८।१४।



## नामकरण

समराज्यचर्या में जातकर्म के पश्चात् नाना प्रकार की गुणिया एवं उमरों के माप जन्म व एक मास पश्चात् पुत्र का नामकरण संस्कार सम्पन्न किये जाने का उल्लेख है।<sup>१</sup> कभी-कभी गर्भवस्था में माता के द्वारा दोगे गए स्वप्न व आघात पर<sup>२</sup> या कभी गुरुजनों द्वारा नामकरण करने की बात कही गयी है<sup>३</sup>। किन्तु यही समराज्यचर्या में नामकरण के समय के विधि विधान का उल्लेख नहीं है। जनपद शास्त्र में जन्म व निम्न नाम रखने की व्यवस्था है।<sup>४</sup> मनुस्मृति में दण्ड या दण्डवत् निम्न अवस्था का<sup>५</sup> गुम विधि नामकरण व निम्न ठीक मानी गई है।<sup>६</sup> मानवग्य ने जन्म के पारहवें दिन नामकरण की व्यवस्था की है।<sup>७</sup> गृह्य-साल धर्मार्थ राजा जयचन्द्र व एक जन-पद में पुत्र के नामकरण का उल्लेख है।<sup>८</sup> वागुत्तर उपाध्याय व अनुभार अभिलेखों के आधार पर यह संस्कार पुत्र जन्म के उन्नीस दिन पश्चात् सम्पन्न किया जाता था।<sup>९</sup> इस प्रकार धर्म शास्त्रों तथा पूज्य मध्ययुग में नामकरण की विधि आदि पर मनभेद स्पष्ट पड़ता है।

योगाधन चारुतर नामिल एवं महाभाष्य आदि के अनुसार बच्चे का नाम रित्ता व रित्ता पूवज का होना चाहिए।<sup>१०</sup> मनु व अनुभार सभी वर्णों के नाम गुमगुप्त गतिशायर एवं गतिशायर होना चाहिए।<sup>११</sup> धर्मशास्त्रकारों व अनुभार गौ<sup>१२</sup> में रखने का रणवर माता अपने पति के नाम से बढती है। कुछ लोगों व मत में माता ही मुख्य नाम देती है और पति की भूमि का काम व यत्न में छिटा कर मान की लेखना में था गणेशायाम लिखने व पश्चात् बच्चे के पार नाम रित्तानी है यथा—गुरु देवता मास नाम व्यावहारिक नाम तथा

१ सम० १०० १० १० १० ३ १० ०६ ३ / १० ३३६।

२ यथा २, १० ३३ ० १० ८६२।

३ बह्म / १० ८०६।

४ जनपद शास्त्र ६।१।३।०।

५ मनु० २।३०।

६ मानवग्य स्मृति १।१२।

७ इतिवत् पटावत् ३ / १० १२० ३४।

८ वागुत्तर उपाध्याय—१। गतिमा गतिशय व दण्ड म न इतिवत् १० १६२।

९ पा०।।० वद—धर्मशास्त्र का इतिवत् भाग १ १० १० / १।

१० मनु० १। १३२।

नम्रत्र नाम । अतः यहाँ माता द्वारा नामकरण का संकेत प्राप्त होता है । किन्तु सम्राट्त्वं कहाँ में गुरुजनों द्वारा नाम रक्खने की बात कही गयी है ।<sup>१</sup>

## विवाह संस्कार

अथ संस्कारा न साय-साय विवाह संस्कार को भी पवित्र कम माना जाता था । सम्राट्त्वं कहाँ में विवाह को यन् स्वरूप बताया गया है ।<sup>२</sup> विवाह की पवित्रता तथा पति-पत्नी के आदश एवं स्थायी संबंध के लिए दान, पूजा-हवन एवं पाणिग्रहण आदि क्रिया विधि का यथावत सम्पादन किया जाता था ।<sup>३</sup> गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने लिए विवाह संस्कार ही आवश्यक कृत्य माना जाता था । सम्राट्त्वं कहाँ में विवाह का उद्देश्य कुशल गृहस्थ बनकर लाक्षणिक का पालन करना कुशल सतति पैदा करना परोपकार तथा कुल परम्परागत कार्यों को क्रियान्वित करना आदि बताया गया है ।<sup>४</sup>

ऋग्वेद में विवाह का उद्देश्य गृहस्थ होकर देवा के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानात्पत्ति करना था ।<sup>५</sup> शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है कि पत्नी-पति की अर्धांगिनी है इसलिए जब तक वह विवाह नहीं करता, तब तक पूरा नहीं है ।<sup>६</sup> मनुस्मृति के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि पत्नी पर पुत्रात्पत्ति धार्मिक कृत्य, सेवा सर्वोत्तम आनन्द अपने तथा अपने पूर्वजना के लिए स्वयं की प्राप्ति निभार रहती है ।<sup>७</sup> अतः स्पष्ट है कि गृहस्थ जीवन के लिए वे ब्राह्मण तथा स्मृतियों में भी विवाह का आवश्यक कृत्य माना गया है । स्मृतियों में अग्नि, दक्ष और द्विज का साक्षी देकर घर-कन्या का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न किये जाने का विधान है ।<sup>८</sup>

गृहस्थाश्रम अथ आश्रमों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है । और उक्त गृहस्थ आश्रम में प्रवेश पाने के लिए विवाह अत्यंत आवश्यक माना जाता था जिसे एक पवित्र संस्कार बताया गया है ।

१ पी०वी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० २०१ ।

२ सम० क० ७, प० ६३५ ९, प० ९०१ ।

३ वही २ प० ९३ सपृ० १०१, ४, प० ३३९ ४०, ७ प० ६३३-३४ ३५  
८ पृ० ८६५ ६६ ६७, ९, प० ८९९ १०१ ।

४ सम० क० ९ प० ८९५ ।

५ ऋग्वेद १०।८५।३६ ५।३।२ ५।२।८।३ ।

६ शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१० ।

७ मनुस्मृति ९।२८ दक्षिण—याज्ञवल्क्य स्मृति १।७८ ।

८ व्यास स्मृति २।२ वर्णिष्ठ स्मृति १।२ गृह्यस्मृति ४।१ ।

## मृतक संस्कार

अंतिम संस्कार मृतक संस्कार था। श्मशान भूमि पर मृतक के गव दाह के साथ अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की जाती थी।<sup>१</sup> समराइच्च कहा में एक अन्य स्थान पर मृतक आत्मा की गति के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराया जान तथा दान हवन आदि नियुक्त कृत्या के साथ अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न किये जाने का उल्लेख है।<sup>२</sup> मृतकों के सुख एवं उसकी आत्मा की शान्ति के लिए औघवदहिक क्रिया भी सम्पन्न की जाती थी जिसमें काला अगस्त्य लवण, चंदन तथा काष्ठ आदि से मत्कार किया जाता था और गान वितरित किया जाता था।<sup>३</sup> स्मृतियाँ में भी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न किये जाने का उल्लेख है।<sup>४</sup> पूर्व मध्य कालीन अभिलेखा में मृतक संस्कार के अन्तर्गत श्राद्ध क्रिया का उल्लेख है।<sup>५</sup> यह श्राद्ध क्रिया मृतकों के भावी कल्याण के लिए प्रतिवर्ष मनाया जाता था।<sup>६</sup> हिन्दुओं की अन्त्येष्टि क्रिया का अंतिम भाग पिण्डदान है। इस पिण्ड दान के समय प्राचीन काल में मृतक की आत्मा की गति के लिए ब्राह्मणों का भोजन तथा दान दिया जाता था।<sup>७</sup>

## विवाह

समराइच्च कहा में कुशल गृहस्थ जीवन के लिए विवाह को एक आवश्यक एवं पवित्र कृत्य माना गया है जिसके महत्व एवं उपयागिता का उल्लेख संस्कारों के अंगों में किया गया है। यही घर-बन्या के विवाह के पूर्व निम्नलिखित योग्यताओं को आवश्यक बताया गया है।

## यय और रूप योवन

समराइच्च कहा में विवाह के पूर्व घर-बन्या के निर्वाचन में समान रूप और समान आयु का होना आवश्यक बताया गया है।<sup>८</sup> पति-पत्नी के भावी प्रेम के लिए समान आयु और समान रूप का होना वांछनीय है क्योंकि पति-पत्नी के प्रेम के अभाव में गृहस्थ जीवन में सहयोग की भावना नहीं पनप सकती। यही

१ गम० ब० २ पृ० १२९ ३० ४ प० २६०।

२ यही ६ पृ० ५८३ ७ पृ० ७११।

३ यही ४ पृ० ३१०।

४ मनुस्मृति २।१६ याज्ञवल्क्य स्मृति १।१०।

५ इति० इति० २ पृ० ३१०—गमप्रथमया श्राद्ध विधाय।

६ यही ४ पृ० १०५ १२८—सम्पन्नरिक् पावणि श्राद्ध।

७ राजवली पाण्ड्य—हिन्दू संस्कार पृ० ३५६।

८ गम० ब० ४, पृ० २३५।

अनमेल विवाह से बचने के लिए हरिभद्र ने ममान वय का आवश्यक बताया है। पति-पत्नी व आपसी सहयोग व बिना लोक धम का पालन सम्भव नहीं है। स्मृतियाँ में उल्लिखित है कि कन्या को वर से अवस्था में छोटी हानी चाहिए।<sup>१</sup> मनु एवं याज्ञवल्क्य ने बताया है कि विवाह के लिए कन्या को शुभ लक्षणों वाली होनी चाहिए और उनके अनुसार शुभ-लक्षण ११ प्रकार के होने चाहिए बाह्य (शारीरिक लक्षण) एवं आन्तरिक।<sup>२</sup> हिन्दू धर्मशास्त्रों में कन्या के युवा होने के पूर्व ही विवाह कर देना उचित बताया गया है। स्मृतियों में कन्या के रजस्वला हो जाने के पूर्व ही उसका विवाह न करने वाले अभिभावकों को अत्यन्त पाप का भागी माना गया है।<sup>३</sup> भवभूति ने भी उत्तर राम चरितम् में कन्या व अल्पायु में ही विवाह किये जाने का सकेत किया है।<sup>४</sup> जन प्रथम आग्नि पुराण में वय और वय यौवन विवाह निर्वाचन के लिए प्रथम गुण स्वीकार किये गये हैं।<sup>५</sup> साम-देव ने यशस्तिलक में वारह वय की कन्या और सोल्ह वय के युवक को विवाह के योग्य बताया है।<sup>६</sup> अलवरनी ने भी लिखा है कि हिन्दू लोग वारह वय से अधिक आयु की कन्या से विवाह करना उचित नहीं मानते थे।<sup>७</sup>

## विभव

सम्राट् च कहा में विवाह द्वारा दो परिवारों के बीच सम्बन्ध के लिए समान विभव अर्थात् वभव (धन सम्पत्ति) को आवश्यक बताया गया है।<sup>८</sup> महाभारत में भी विवाह के समय वर-कन्या के लिए बराबर धन (वभव) तथा विद्या पर विशेष बल दिया गया है।<sup>९</sup> भारद्वाज गृह्यसूत्र में कन्या के विवाह के समय धन, सौन्दर्य बुद्धि एवं कुल इन त्रार बातों को देखना आवश्यक बताया गया है।<sup>१०</sup> यम ने वर के लिए कुल, शक्ति, वपु (शरीर) यश, विद्या धन एवं सनायता (सम्बन्धी एवं मित्र लोग का आलवन) इन सात गुणों को गिनाया

१ गौतम० ४।१ वशिष्ठ० ८।१ याज्ञवल्क्य स्मृति १।५२।

२ मनु० ३।४ याज्ञवल्क्य० १।५२।

३ पराशर स्मृति २।७, गण्ड स्मृति १।५।८।

४ उत्तरराम चरितम् १।२०।

५ आग्निपुराण १।५।६९ तथा ६३४।

६ यशस्तिलक पृ० ३१७।

७ संचाऊ २ पृ० १३१।

८ सम० क० ४ पृ० २३५।

९ महाभारत आदि पर्व १३।११० उद्योग पर्व ३३।११७।

१० भारद्वाज गृह्यसूत्र १।११।

लेने पर क्या तीन वष<sup>१</sup> या तीन मास<sup>२</sup> जोह वर स्वयंवर का वरण कर मांगती ह। यागवल्क्य के अनुसार पितृहीन तथा अभिभावक हीन कन्या स्वयं योग्य वर का वरण कर सकती ह।<sup>३</sup> सम्राट्चक्रवर्ति की ही भीति यशस्तिलक में भा उल्लिखित ह कि स्वयंवर मंडप में जन समुदाय उपस्थित होता था तथा क्या हाथ में वरमाला लिए मंडप में प्रवेश करती और अपनी शक्ति व अनुसार विमा योग्य व्यक्ति के गले में जयमाला डाल देती थी।<sup>४</sup> इस प्रकार पति व निवाचन व पश्चान शुभ मुहूर्त में विवाह सत्कार सम्पन्न किया जाता था। इस प्रथा के अनुसार क्या का अपने भावी पति व चयन की पूर्ण स्वतंत्रता थी। उपरोक्त उल्लेख से स्पष्ट होता है कि स्वयंवर प्रथा का प्रचलन अधिकतर राजघराना में ही था। स्वयंवर व आयोजन का पूरा उत्तरदायित्व क्या का वालों पर ही होता था।

## प्रेम विवाह

सम्राट्चक्रवर्ति में प्रेम विवाह का भा उल्लेख प्राप्त होना ह। क्या और पुरुष द्वारा परस्पर अवलोकन मात्र से ही रूप गुण यौवन आदि व प्रति आकर्षण व प्रेम श्रोत प्रवाहित हो जाता था। परिणामतः यही प्रेम धीरे धीरे वृद्धिगत होकर विवाह व रूप में परिणत हो जाता था।<sup>५</sup> महाभारत में अर्जुन और सुभद्रा व प्रेम विवाह का उल्लेख ह।<sup>६</sup> मनुस्मृति में वर और क्या की परस्पर सम्मति से जा प्रेम की भावना के उद्बोध का प्रतिफल हो तथा सम्भाषण जिसका उद्देश्य हो, उस विवाह को शाधव विवाह कहा गया ह।<sup>७</sup> काम्बरी में भी काम्बरी और चन्द्रापीड का विवाह प्रेम विवाह का ही प्रतिफल ह।<sup>८</sup> प्रेम विवाह के आधार पर पति-पत्नी के जीवन में परस्पर प्रेम, सहाय एवं सहकारिता आदि की भावना बढ़ती ह।

- १ वीषायन धर्मसूत्र ४।१।१३ मनु० ९।००।
- २ गौतम० १८।१००, विष्णु धर्मसूत्र २५।४० ८१।
- ३ यागवल्क्य स्मृति, १।६४।
- ४ यशस्तिलक पृ० ७९ ४७८, ३५८ उक्त० दक्षिण—दो ऐज आर दम्पती रियल वन्लोज पृ० ३७६।
- ५ गम० क० द्वितीय एवं सप्तम भव की क्या तथा ९, पृ० ८९५।
- ६ महाभारत—आदि पर्व २।१।२२।
- ७ मनु० ३।२७-३४।
- ८ काम्बरी पृ० ४१३, दक्षिण—उपनिषद्भयवचन क्या पृ० २५३।

## परिवार द्वारा विवाह

सम्राट्त्व कहा में वरान्वेषण की प्रथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>१</sup> विवाह के योग्य हो जाने पर बच्चा के माता पिता द्वारा उसका योग्य रूप तथा कलाओं आदि में निपुण वर की राज की जाती थी। बच्चा के योग्य वर की प्राप्ति हान पर गुम लग्न मुहूर्त में विवाह क्रिया सम्पन्न की जाती थी। वरान्वेषण काय में धात्री और पुराहित का काय महत्वपूर्ण था। मनुस्मृति में ब्राह्म विवाह की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि जिस विवाह में बहुमूल्य अलंकारों और परिधानों से सुसज्जित, रत्नों से भूषित बच्चा पंडित एवं सुचरित्रवान् व्यक्ति को निमंत्रित कर (पिता द्वारा) दी जाती है उस ब्राह्म विवाह कहते हैं।<sup>२</sup> यशस्तिलक में भी उल्लिखित है कि वरान्वेषण क्रिया में धात्री और पुराहित का काय महत्व का होना था।<sup>३</sup> अतः स्पष्ट है कि प्राचीन काल में परिवार द्वारा वरान्वेषण करके गुम लग्न मुहूर्त में ही विवाह क्रिया सम्पन्न की जाती थी उन्हीं ही ब्राह्म विवाह के अंतर्गत मान सकते हैं। इन सम्राट्त्व कहा में यन स्वरूप कहा गया है।

## विवाह विधि

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विवाह क्रिया का एक पवित्र संस्कार माना गया है। गृह्य आश्रम की सफल भूमिका निभाने के लिए हर व्यक्ति का विवाह सूत्र में बधना परम आवश्यक समझा जाता था। सम्राट्त्व कहा में तो विवाह क्रिया का यन क्रिया का भी महत्व दिया गया है।<sup>४</sup> हरिभद्र ने सम्राट्त्व कहा में विवाह विधि का सागपांग वर्णन किया है<sup>५</sup> जिसका विस्लेषण हम अधोलिखित ढंग से कर सकते हैं।

## दान क्रिया

सम्राट्त्व कहा में विवाह के अवसर पर सागलिक ब्राह्म, नृत्य आदि के साथ याचका का दान दिये जाने का उल्लेख है। शाखायन धर्मसूत्र में ब्राह्मणों के लिए एक गाम, राजा महाराजा के विवाह में एक ग्राम, बन्धु के विवाह में एक

१ सम० क० ७ पृ० ७१९।

२ मनु० ३।२७ ३८।

३ यशस्तिलक पृ० ३५० ५१ उक्त०।

४ सम० क० ७ पृ० ६३५, ९, पृ० ९०१।

५ वही पृ० ९३ १०१, ४ पृ० ३३९ ४० ७ पृ० ६३३ ३५ तक, ८ पृ० ७६५ ६७, तथा ९ पृ० ८९९ ९०१।

घाघे का दक्षिणा दान देना उचित बताया गया।<sup>१</sup> वीधायन धर्मसूत्र में बवल एक गाय दान देने की बात कही गयी है।<sup>२</sup> अतः विवाह के समय दान देने की प्रवृत्ति धर्म शास्त्रों में भी देखने को मिलती है। आग्निपुराण में भी विवाह के अवसर पर दान क्रिया का उल्लेख है।<sup>३</sup>

### शुभ दिन निर्धारण

ज्यातिपिया द्वारा विवाह क्रिया सम्पन्न करने के लिए शुभ दिन का निर्धारण किया जाता था। ह्यचरित में भी विवाह के लिए शुभ मुहूर्त निर्धारित करने का उल्लेख है।<sup>४</sup>

### वर-वधू का अंग प्रसाधन

विवाह क्रिया सम्पन्न होने के पूर्व वर-वधू को मुगधित पत्थरों का लेप किया जाता था। तत्पश्चात् काल-वस्त्र पहने हुए युवतियों द्वारा दूध-कुंठ से अक्षत आग्नि छिड़का जाता था। मानव धर्मसूत्र में वर-वधू के परिधान एवं सज्जन का उल्लेख है।<sup>५</sup> शास्त्रायन धर्मसूत्र में वर-वधू के लिए उमटन लगाने का उल्लेख है।<sup>६</sup> आग्नि पुराण में उल्लिखित है कि वर-वधू उज्ज्वल सूर्य एवं रंगी वस्त्र धारण करते थे। परिधाय धारण करने के पश्चात् उन्हें प्रसाधन गृह में ले जा कर धलट्टत किया जाता था।<sup>७</sup>

### भजन क्रिया

वर-वधू को विवाह मंडप में ले जाने के पूर्व सुवर्ण कलशों में भर मुगधित जल से स्नान कराया जाता था। आग्निपुराण में उल्लिखित है कि वर-वधू को आंगन में बैठाया जाता था तत्पश्चात् विधि विधान जानने वाले लोग कलशों में भरे पवित्र जल से वर-वधू का अभिषेक करते थे। उस समय दास ध्वनि की जाती थी तथा मंगल वाद्य बजाए जाते थे।<sup>८</sup>

१ शास्त्रायन धर्मसूत्र १।१।१३ १७।

२ वीधायन धर्मसूत्र १।४।३८।

३ आग्निपुराण ७।२६८-७०।

४ ह्यचरित ४ पु० १४५।

५ मानव धर्मसूत्र १।१।४६।

६ शास्त्रायन धर्मसूत्र १।१।५।

७ आग्निपुराण ७।२२२ २३३।

८ वही ७।२२२ २३३।

## पुरोहित द्वारा पुष्पक्षेपण

पाणिग्रहण के पूर्व पुरोहित द्वारा सौभाग्य वृद्धि के लिए स्वस्ति क्रिया के पश्चात् मांगलिक पुष्पक्षेपण किया जाता था। आदिपुराण में भी उल्लिखित है कि पुरोहित के द्वारा पुष्पक्षेपण के साथ-साथ अभिषेक संस्कार किया जाता था। तदनन्तर वारामनाएँ, कुल्बधुएँ और समस्त नगरवासी जन वर-वधू को आशीर्वाद देकर पुष्प एवं अक्षतों का क्षेपण करते थे।<sup>१</sup>

## नख-छेदन

समराइच्च कहा में अथ कमों के साथ-साथ नाई द्वारा नहेंछू कम भी सम्पन्न करने का उल्लेख है।

## वधू अलकरण

विवाह मंडप में जाने से पूर्व वधू को नाना प्रकार के अंग प्रसाधन सामग्रियों तथा अलकरणों द्वारा अलंकृत किया जाता था। पैरा में लालारस (महावर), अघर रजित करना, नेत्रों में अजन, मस्तक पर तिलक, स्तन युगल पर पत्र लेखन, केश प्रसाधन परों में नूपुर अंगुलियों में मुद्रिका, नितम्बों पर मणि-मेखला बाहु माला स्तनों पर पद्मपराग मणि जटित वस्त्र, मुक्ताहार, कर्णाभूषण और मस्तक पर चूड़ा मणि आदि प्रसाधना तथा अलकरणों द्वारा वधू का अलंकृत करने का उल्लेख है। शाखायन धर्मसूत्र में वधू के हाथ में कानन बांधने का उल्लेख है।<sup>२</sup> आदिपुराण में भी उल्लिखित है कि वधू को प्रसाधन गृह में ले जाकर विवाह भगल के योग्य उत्तम आभूषणों से अलंकृत किया जाता था। ललाट पर चचन-शुक्रुम का तिलक लगाया जाता था वक्षस्थल पर श्वेत लेप गले में मुक्ता के हार, कंशा में पुष्पमालाएँ, कानों में कर्णाभूषण तथा कमर में छुद्र घटिकाओं से जटिल करघनी आदि आभूषणा से अलंकृत किया जाता था।<sup>३</sup>

## वर अलकरण

समराइच्च कहा में वधू के साथ-साथ वर को भी नाना प्रकार के अलकरणों से अलंकृत किये जाने का उल्लेख है।

## मंडपकरण

विवाह क्रिया का सम्पन्न मंडप में किया जाता था। समराइच्च कहा में

१ आशि पु० ७।२२२ २३३।

२ शाखायन धर्मसूत्र १।१२।६-८।

३ आशिपुराण ७।२२२ २३३।



विवाह मंडप को मणिमुक्ता आदि से सजाये जाने का उल्लेख है। धर्मशास्त्र में भी मंडपकरण का उल्लेख है। पारस्कर गृह्यसूत्र में उल्लिखित है कि विवाह, चोल उपनयन पेशान्त एवं भीमान्त आदि घर व बाहर मंडप में करना चाहिए।<sup>१</sup> आतिथ्यपुराण में भी मंडपकरण का सागापाग वर्णन मिलता है। मंडप का निर्माण बहुमूल्य पत्थरों द्वारा किया जाता था। मातलिव द्रव्यों के साथ मोंदय वषक पत्थरों का भी उपयोग किया जाता था। विवाह मंडप के स्तम्भ स्वर्ण मणि मुक्ताओं से रचित हान थे और उनमें नाच रत्नों से आभारमान बड़े-बड़े कुम्भ लग रहते थे। उस मंडप की दीवारें स्तम्भ की बनी होती थी जिममें लंगा के प्रतिरिम्ब झलकते थे। मंडप की भूमि नीचे रत्नों से घनायी जाती थी और उस पर पुष्प बिखरे रहने थे। मंडप के भीतर मोतियों की मालाएँ लटकती रहती थी तथा मध्य में बने घनायी जाती थी। उस बनी को अपने धमन के अनुसार पायाण मूर्तिका या मणियों आदि से निर्मित किया जाता था। उस मंडप के पश्चिम भाग में घुना से पुन हूए स्वतः गिराव दाभित होने थे। मंडप के सभी ओर एक छाटी-नी बन्का बनी होती थी जो कटिमूत्र के समान होती थी। मण्डप का गोपुर द्वार उन्नत रहता था और गोपुर को अनेक प्रकार से सजाया जाता था।<sup>२</sup> मंडपकरण की यह अलकरण विधि सम्भवतः राजाओं एवं महाराजाओं के सामर्थ्य से अनुसार ही संभव थी।

### लग्न निर्धारण

विवाह मंडप में प्रवेश करने तथा विवाह की विधि विधि संपादित करने के लिए यज्ञाग्निकिया द्वारा शुभ मूर्त निर्धारित किया जाता था।

### घर-यात्रा

परात का जनबोध से विवाह मंडप के लिए प्रस्थान करने का घर यात्रा कहा गया है। घर के मंडप में पहुँचने पर विज्ञानिकियों द्वारा स्वागत किया जाता था। राजवंशी पाण्डेय के अनुसार घर के पहुँचने पर यहाँ गीत तथा मंगल पट्टिका हुआ स्त्रिया का एक स्तम्भ स्वागत के लिए उपस्थित रहता था।<sup>३</sup>

### भुवुटि भग्न त्रिया

ममराञ्चक का में उल्लिखित अन्य विधि के साथ-साथ रामया अंगूठिया से बंधे मुक्ता माला द्वारा मोह स्पष्ट कराने का भी उल्लेख है।

१ पारस्कर गृह्यसूत्र १।४।

२ आतिथ्य पृ० ७।२२ २३३।

३ राजवंशी पाण्डेय—हिंदू संस्कार पृ० २८६।

## परस्पर वदनावलोकन

वर-वधू का परस्पर मुख दृष्ट्यावलोकन क्रिया भी सम्पन्न की जाती थी। वीधायन धर्मसूत्र में भी वर-वधू द्वारा परस्पर अवलोकन क्रिया का उल्लेख है।<sup>१</sup> आश्वलायन गृह्यसूत्र-परिशिष्ट व अनुसार सवप्रथम वर एवं वधू के बीच में एक घस्त्र रखा जाना चाहिए और ज्यातिपघटिका के अनुसार हटा लिया जाना चाहिए तब वर-वधू का एक दूसरे का देखना चाहिए।<sup>२</sup>

## उत्तरीय प्रतिबन्धन

विवाह मंडप में विवाह क्रिया का सम्पादन वर-वधू के परस्पर गठबन्धन के साथ किया जाता था। इस क्रिया में वर-वधू के उत्तरीय व एक एक छोर को बांधा जाता था। ह्यचरित में भी उत्तरीय प्रतिबन्धन द्वारा वर-वधू का बंधो की भाँवर करने का उल्लेख है।<sup>३</sup> यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

## पाणिग्रहण

वर-वधू का मन्त्रोच्चारण के साथ पाणिग्रहण होता था। ऋग्वेद में भी पाणिग्रहण क्रिया व सम्पादन में बताया गया है कि मैं तुम्हारा हाथ मुझ के लिए ग्रहण करता हूँ।<sup>४</sup> काणे ने विवाह सकार को तीन भागों में बाँटा है। उनके अनुसार कुछ कृत्य प्रारम्भिक कहे जा सकते हैं उनके उपरांत कुछ ऐसे कृत्य हैं जिन्हें हम सस्कार का सार तत्त्व कह सकते हैं यथा—पाणिग्रहण, हाम अग्नि प्रक्षिणा एवं समपत्नी तथा कुछ कृत्य ऐसे हैं जो उक्त मुख्य कृत्यों के प्रतिफल मात्र हैं यथा ध्रुव-तारा, अरुन्ती आदि का दर्शन।<sup>५</sup> इस प्रकार पाणिग्रहण विवाह सस्कार का आवश्यक अंग है। आदि पुराण में उल्लिखित है कि वर-वधू को जल से पवित्र किया जाता था और मन्त्रोच्चारण के साथ मंगलाशक्त छान जाते थे। तत्पश्चात् पाणिग्रहण क्रिया सम्पन्न की जाती थी।<sup>६</sup> आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार नया के साथ वर अग्नि एवं बल्श की दाहिनी ओर से तीन बार प्रक्षिणा करेगा और कहेगा—“य अम (यह) हूँ, तुम सा (वह) हो, तुम सा हो और मैं अम, हूँ मैं स्वर्ग हूँ तुम पृथ्वी हो मैं साम हूँ तुम

१ काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग २ पृ० ३०४।

२ वही भाग १ पृ० ३०४।

३ ह्यचरित ४ पृ० १४७।

४ ऋग्वेद १०।८५।३६।

५ पो० बी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ३०२।

६ आदिपुराण—७।२४६ २५०।

शुद्ध है। हम दोनों विवाह कर लें। हम संतान उत्पन्न करें। एक दूसरे को प्यारे, चमकीले एवं दूसरे की ओर झुके हुए हम लागू हो वध तक जीयें।<sup>१</sup> पाणिग्रहण के समय आज भी वर-वधू एक दूसरे के गाय सुमध्याघ बनाए रखने के लिए गाय ग्रहण करते हैं।

### वरातिया का स्वागत

वधू पक्ष वाले घर पक्ष में आये हुए वरातियों के स्वागत में सुगंधित पुष्प मालाएँ सुगंधित तिलोपा वपुर् मिश्रित ताम्बूल वस्त्र एवं आभूषण आदि का वितरण करने थे। आदि पुराण में विवाहात्मक में सम्मिलित होने वाला का दान मान एवं सम्भाषण द्वारा यथोचित आनन्द रिये जाने का उल्लेख है।<sup>२</sup>

### हवन विधि

विवाह महोत्सव के बीच बनी हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित की जाती थी और उम्र अग्निकुण्ड में धूप घृत चीनी आदि पदार्थों की मंत्र सहित हवन क्रिया सम्पन्न की जाती थी। विवाह सस्कार के समय हवन क्रिया का प्रचलन अति प्राचीन है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में उल्लिखित है कि अग्नि के परिधिम चक्की तथा उत्तर-पूर्य पानी का घड़ा रख कर वर का हस्त करना चाहिए।<sup>३</sup> बाजे ने हवन क्रिया का विवाह सस्कार का सारतत्त्व कहा है।<sup>४</sup> हय परिव्रित में भी विवाह सस्कार के समय भवाच्चरण द्वारा हवन कुण्ड में आहुति देने का उल्लेख है।<sup>५</sup>

### भाँवर क्रिया

सम्राट्त्व कहा में पाणिग्रहण के पश्चात् वर-वधू द्वारा परस्पर उत्तरीय के एक-एक छोर के मध्य-घन के साथ अग्नि कुण्ड की परिधिम रिये जाने का उल्लेख है। यहाँ यह परिधिम चार-बार करायी गयी है। यहाँ सम्राट्त्व कहा में प्रथम भाँवर के समय वधू के पिता द्वारा वर का दण्डना-स्वरूप तो स्वयं वर का दण्ड है। दूसरी भाँवर में वर के पिता द्वारा वधू के लिए हार कुण्डल वस्त्रना नुदित्तगार बंगन आदि, तीसरी भाँवर के समय पानी के घाल तम्तरी आदि वस्त्र तथा चौथा भाँवर के समय वधूमुख वस्त्र आदि

१ आश्वलायन गृह्यसूत्र १।३।३ १।८ ।

२ आदि पुराण ७।२६८ ३० ।

३ आश्वलायन गृह्यसूत्र १।३।३ १।८ ।

४ काण्ड—प्रथम भाँवर का इतिहास भाग १ पृ० ३०२ ।

५ हय परिव्रित ८ पृ० १४७ ।

वधू के पिता द्वारा वर पक्ष को दक्षिणा स्वरूप दिये जाने का उल्लेख है। घमशास्त्र में वर-वधू द्वारा अग्नि एवं वरुण की प्रदक्षिणा करने का उल्लेख है,<sup>१</sup> किन्तु दक्षिणा आदि देने का उल्लेख नहीं है। मालती माधव तथा कपूरमजरी में भी हवन क्रिया के पश्चात् वर-वधू द्वारा विवाह वेणी की परिक्रमा किये जाने का उल्लेख है।<sup>२</sup> उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिमद्र के काल में दहेज प्रथा का भा प्रचलन हो चुका था जिसमें भाँवर के समय वर पक्ष के लग वधू का अलंकरण आदि तथा वधू पक्ष वाले वर के लिए विविध प्रकार की सामग्रियाँ तथा सोना चाँदी आदि धन-सम्पत्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा स्वरूप प्रदान करते थे।

## नारी

प्राचीन भारतीय समाज की भित्ति पर नारी जीवन के अनेक चित्र देखने का मिलता है। वैदिक काल से ही स्त्रियों ने पुरुषों की सहयोगिनी के रूप में सामाजिक उत्थान में बराबर योगदान दिया है। वैदिक काल में स्त्रियाँ ने भी ऋचायें बनायी, वे पढ़े तथा पतियों के साथ धार्मिक कृत्य किये। अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने दो पर्वों की रचना की थी।<sup>३</sup> अपाला नाम की एक अन्य दाशनिक स्त्री का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>४</sup> वैदिक काल में स्त्रियाँ पुरुषों के समान शिक्षित होती थी तथा वे पुरुषों के साथ बाद विवाद में बराबर भाग लेती थी।<sup>५</sup> काणे के अनुसार उत्तर कालीन युग की तुलना में उनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी।<sup>६</sup> वैदिक काल से लेकर हरिमद्र के काल तक आते-आते हम नारी जीवन का एक विकसित रूप देखते हैं। ममराइन्च कहाँ में यदि दुष्टशीला नारी की निन्दा की गयी है तो मन्वरित्र नारी की प्रशंसा भी की गयी है। हम सुधाहार तुल्य बताया गया है<sup>७</sup> जिससे तत्कालीन समाज में नारी बग के गौरव का पता चलता है। एक अन्य स्थान पर नारी को प्रजापति कला की चरमोत्कृष्ट पण्डभूमि, लावण्य की उत्पत्ति तथा विगुद्ध शीलवाली<sup>८</sup> कहा गया

१ पी० वी० काणे—घमशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ३०४।

२ मालती माधव अंक ६ कपूर मजरी अंक ४।

३ ऋग्वेद १।१७९।१२।

४ वही ८।८०।९१।

५ प्रभु—हिंदू सोशल आगनाइजेशन पृ० २५८।

६ पी० वी० काणे—घमशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ३२४।

७ सम० क० ९ पृ० ९२२।

८ वही ८, पृ० ७३१।

है। दूसर स्थान पर नारी की प्रणामा में उसे मरल स्वभाव वाली स्थिर स्नेहालु अनगराजधाना तथा 'अमरूप कल्प वृदा' के समान स्वीकार कर गौरव प्रधा किया गया है। महाभारत में भी नारी को पूज्य बताया गया है और कहा गया है कि जहाँ स्त्रिया का सत्कार होता है वहीं हर प्रकार की सम्पन्नता गुलम रहती है लेकिन जहाँ इतना अन्याय होता है वहीं सारे प्रयास अफलित होते हैं।<sup>१</sup> बौधायन धर्मसूत्र एवं स्मृतिया में भी स्त्रियों की प्रणामा की गया है।<sup>२</sup> कामसूत्र में तो स्त्रिया को पुण्या व समान माना गया है।<sup>३</sup> यग्यस्मिन्त में भी दुर्ध्वग्नि वाले स्त्रिया की जहाँ निंदा करके उन्हें निरस्तृत किया गया है वहीं उनकी प्रणामा में बताया गया है कि स्त्री के बिना गसार व गार काम व्यर्थ है घर जगल के समान है और जिंदगी बेकार है।<sup>४</sup>

नारी तरलालन समाज में भोग विलास की मामूली नहीं समझी जाती थी बल्कि उसका भी अपना 'वर्तिव था तथा उसे भी स्वतंत्र रूप से विकसित एवं पल्लवित होने की पूर्ण सुविधायें प्राप्त थी। वह जीवन में पुरुष की मह्यामिनी बनती थी दासी नहीं। हरिभद्र व काल में हमें नारी जीवन व विभिन्न रूपा यथा—कन्या रूप, पत्नी रूप माता रिधवा दासी वरदा तथा साध्वी रूप का पता चलता है।

कन्या

भारतीय समाज में कन्या जन्म से ही लालन-पालन के माय आनर की पात्र रही है। हरिभद्र के काल में यद्यपि पुत्र की अपेक्षा पुत्रा व जन्म व व्यवसाय पर माना पिता का उनकी चुनी नहीं जाती थी क्योंकि पुत्री तब न्या (धरातर) के रूप में समझा जाती थी किन्तु भी कन्या के प्रति माता पिता के हृदय में अपूर्व प्रेम की भावना विद्यमाना था।<sup>५</sup> परिवार में उसका वाग्वन पोषण घड़े ही सुखसम्वित् रंग से होता था जिससे लिए चायी निपुण रहती थी।<sup>६</sup>

१ गम० क० ७ पृ० १२३।

२ महाभारत—अनुागा पर्व ४६।१।

३ बौधायन धर्मसूत्र २।२।६ ६४ मनु० १।७५ ६२ शतपथब्र० १।७१ ७४ ७८।

४ कामसूत्र ३।२ (कुसुम गणमार्गाद्विपाणि)।

५ यग्यस्मिन्त पृ० १२० (यामत्रयन जयता रिपय प्रयाग यामत्रयन भगवानि वनापगा।। यामत्रयन हन् गगनि आविर्त च)।

६ गम० क० ७ पृ० ६३२ १, २ ३११ ३ \* \* पृ० १०४।

७ वर्ग ५ पृ० ३३१।

आदिपुराण में भी पता चलता है कि कन्या और पुत्र में कोई अन्तर नहीं था। दोनों के सम्कार समान रूप में सम्पन्न कर कन्या की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।<sup>१</sup> आदिपुराण में कन्या जन्म को अभिशाप नहीं माना गया है।<sup>२</sup> बाल्यावस्था से ही कन्या का नूपुर आदि विभिन्न अलंकारों से अलंकृत किया जाता था।<sup>३</sup> समराङ्ग कहता है कि कन्या की शिक्षा दोषों पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि रूप वस्त्र तथा विद्या आदि कन्या के गुण माने जाते थे।<sup>४</sup> इन्हीं गुणों में युक्त कन्या विवाह के योग्य मानी जाती थी। चित्रकर्म के साथ-साथ उच्च काव्य आदि साहित्य की भी शिक्षा दी जाती थी।<sup>५</sup> समराङ्ग कहता है कि माता पिता अपनी कन्या का कला विद्या आदि से सुशिक्षित करने का भरपूर प्रयास करते थे।<sup>६</sup>

नारी शिक्षा के प्रमाण हमें वैदिक काल से ही मिलते हैं। अथर्ववेद की पत्नी लोपा मुद्रा तथा अपाला एवं इन्द्राणा आदि सुशिक्षित एवं विदुषी स्त्रियाँ इसके प्रमाण हैं। इससे पता चलता है कि वैदिक काल में भी स्त्रियों की बाल्यावस्था से पुरुषों के समान सुशिक्षित एवं सुसज्जित करने का प्रयास किया जाता था। आदिपुराण में भी विद्या की महत्ता बताने हुए कन्या का विद्या ग्रहण करने की प्रेरणा दी गयी है।<sup>७</sup> अथर्ववेद ग्रन्थों में भी मण्डूक्य, वाच, नृष्य आदि ऋषियों में नारी वन की प्रवीणता का सबेरे इस ज्ञान को स्पष्ट करता है कि कन्या को उच्च विषयों की शिक्षा दी जाती थी। समराङ्ग कहता है कि रत्नावली में भी कन्या द्वारा चित्र-पट पर चित्र अंकित करने का उल्लेख है।<sup>८</sup> कपूरमजरी तथा विद्याभार भजिका की नायिकाएँ अपने प्रिय का पद रचना तथा पद लेख द्वारा समाचार भजती थीं।<sup>९</sup> अशिक्षित स्त्रियों में अशिक्षता एवं कुमांग प्रवृत्ति का प्रमाण मिलता

१ आदिपुराण २।७०।

२ वहाँ ६।८३।

३ सम० क० ८ पृ० ७४४।

४ वहाँ ८ पृ० ७३८ ३९।

५ वही २ पृ० ८७ ८/ ८ पृ० ७१९।

६ सम० क० ८ पृ० ७५०—अज्ञा में धूयाये चित्तवन्म चउरतण।

७ आदिपुराण १६।८ विद्यावान् पन्था लोके सम्पन्नि याति कोटिद। नारी च तन्वती घत्त स्त्री सपेग्निम पन्थ।

८ प्रिय दशिका प० १६ ह्य चरित ४ पृ० १४० वाचस्पति प० ३२४।

९ रत्नावली अथ २ पृ० ३०।

१० कपूर मजरी अथ ३ पृ० २४ विद्याभार भजिका अथ १ पृ० ६८ अथ ३, पृ० १६६।

है जिममें स्पष्ट होता है कि लोगा में इस भावना का लेकर जिना के प्रति विरोध झुकाव था। जिनिज तथा गुमस्ट्रुट स्त्रियाँ सग अपने कुन एव मर्यादा का ध्यान रख कर आत्मवन्द्याण के भाग पर बढ़ती रहती थी। अत एव सफल गृहणी बनने के लिए क्या का सभी प्रकार की जिना दी जाती थी।

रूप, वस्त्र एवं विना आदि में युक्त क्याएँ युवायस्या को प्राप्त हान पर विवाह योग्य समझी जाती थी।<sup>१</sup> स्वच्छा से अपने भावी पति का वरण कर सकना थी।<sup>२</sup> नायाधम्मजहा एव जातक क्या में भी स्वयम्बर का उत्तम प्राप्त होता है जिममें क्या को अपने पति का चयन करने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी।<sup>३</sup>

यद्यपि तत्कालीन समाज के लोगा में क्या के प्रति स्नेह पूरा भावना थी फिर भी युवायस्या का प्राप्त मोन्दय युक्त क्या के अग्रहरण का भी उत्तम मिलता है।<sup>४</sup> सम्भवत एगी भावना राजपराना में थी। समान रूप कुल तथा अनुराग वाली क्याओं का अग्रहरण अनिवार्य माना जाता था।<sup>५</sup>

## भार्या

विवाह के पदचान ही यद्यु गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर गृहणीय प्राप्त करती थी। समराइन्ववहा में भार्या को गृहणी नामक सग में सम्बोधित किया गया है।<sup>६</sup> यह घर-गृहस्थी की गच्छानो समझी जाती थी तथा अपने पति की जीवन मणिनी तथा मलाह्वार समझी जाती थी।<sup>७</sup> घर में प्रवेश करते ही साग-भगुर बहू का सम्मान करते थे तथा पति उम जीवन साथी के रूप में ग्रहण करता था। अत पति-पत्नी के बीच महकारिता पूरा भावना के वास्तव्य परती का मिश्रयन समझा जाता था।<sup>८</sup> अन्तर्मृति में उल्लिखित है कि एव वत्तमाला पना पर गृहस्थी की वद्व रिट्ट हानी है क्योंकि उमी की सहायता ग पग्वार

१ गम० क० ० पृ० ०२२।

२ वहा ३ पृ० १८५ ७ पृ० ६७३ ७१ ८ पृ० ३ ३-३/।

३ वही ७ पृ ६३० ८ पृ० ३५७ ० पृ० ८०४।

४ नायाधम्मजहा १।१६।१२२ १२५, आनक ५ १०६।

५ गम० क० ६ पृ० ५०१ ८, पृ० ७४३।

६ वही ५ पृ० ३७३।

७ गम० क० ४ पृ० ३५८ ५, पृ० ३८८ ६ पृ० ५६६ ५६६, ३ पृ० ६८६ ९ पृ० ०१३।

८ मषाऊ १ पृ० १८१।

९ गम० क० ० पृ० ००५।

के लोग त्रिवय (धर्म, अर्थ और काम) का सम्पादन कर पाते हैं।<sup>१</sup> दाम्पत्य जीवन की सुन्दरता के लिए पति का अतिक्रमण न करना पत्नी के लिए अति आवश्यक समझा जाता था।<sup>२</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पति-पत्नी को धार्मिक कृत्या में समान माना गया है।<sup>३</sup> मनुस्मृति में भी पति और पत्नी का एक माना गया है।<sup>४</sup> एक आदर्श पत्नी बनने के लिए समान कुल रूप विभव और स्वभाव आदि का ध्यान रखा जाता था।<sup>५</sup> पत्नी के लिए समराइच्च वहा में विविध नाम प्रयुक्त हुए हैं यथा—भार्या<sup>६</sup> वल्ग्वी<sup>७</sup> तथा गृहणी आदि। वही-कही उसे देवी नामक मर्यादित शब्द से सम्बोधित किया गया है।<sup>८</sup> इससे स्पष्ट होता है कि परिवार में पत्नी की प्रतिष्ठा थी। घर में उसका सम्मान होता था तथा सास-नसुर वधू के हर प्रकार के काट को दूर करने का प्रयत्न करते थे।<sup>९</sup> सास, वधू को उसकी इच्छा के अनुसार पति के साथ बाहर जाने की आज्ञा भी देती थी।<sup>१०</sup> आदि पुराण से भी पता चलता है कि विवाहित स्त्री का घूमने फिरने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।<sup>११</sup> अतः स्पष्ट होता है कि पत्नी के रूप में नागरी जीवन बाधित नहीं था। वह अपने मनोकूल मर्यादित ढंग में आचरण करने में स्वतन्त्र थी।

पति पत्नी का सग्रे वडा प्रतिपालक माना जाता था। वह उसके सुख सुविधा एवं सुरक्षा आदि का दायित्व वहन करता था।<sup>१२</sup> पत्नी के प्रति उसका अपूर्व प्रेम था। वह उनका वियाग में दुखी होता था तथा उसे प्राप्त करने का हर सम्भव प्रयास भी करता था।<sup>१३</sup> यहाँ तक कि पत्नी पति के लिए सुधाहार

१ द्धम स्मृति देखिए अध्याय ४।

२ अगुत्तर निकाय ३:१७।

३ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।६।१३।१६।१८।

४ मनुस्मृति ९।४५।

५ सम० क० ६, पृ० ४९५।

६ वही ४ प० ३४५ ५, पृ० ३६४, ४११ १२, ४४० ४७४ ६, प० ४९५, ५११ ५५६ ५७९, ७ पृ० ६१२ ९, पृ० ९२५।

७ वही ९, पृ० ९२०।

८ वही ५ पृ० ४४५।

९ सम० क० ७ प० ६२३, ८, पृ० ८१४।

१० वही ४ प० २४१।

११ आदि पुराण ४।७६।

१२ सम० क० ६ पृ० ५५० ९ पृ० ९२१।

१३ वही ५, प० ४५४ ५५ ६, पृ० ५४६।



तुल्य बही गयी है<sup>१</sup>। अतः वह महामाभिनी तथा महारितापूज आवरण व साय-साय अपने गरल स्वभाव, स्थिर स्नेह विगुह नीच अपूष मौल्य तथा घम स्त्री कल्प कृष्ण के समान पति के हृदय को सदा विषमिता करती रहती थी<sup>२</sup> पत्नी पति के हित में अपना गवस्व अपण करने का तयार रहता थी<sup>३</sup> वह पति का अपना देवता समझ कर उस अना करती था<sup>४</sup> तथा बिना उस भोजन कराये स्वयं अन्न नहीं ग्रहण करती थी<sup>५</sup> यहाँ तक कि एक आदम पत्नी पति का अलावा दूसरे पुरुष की मन में भी कल्पना नहीं करती थी और पति से विलग हो जाने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना श्रेयस्कर समझती थी<sup>६</sup> समराइन्व कहा में एक स्थान पर एक स्त्री द्वारा अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी त्रिगत आत्मा की प्राप्ति के लिए शीपक जला कर पूजा करने का उल्लेख है<sup>७</sup> एक अथ स्याम पर एक स्त्री अपने पति की मृत्यु का समाचार पाने ही अपना पतिव्रत घम निभाने के लिए अग्नि में जलकर भस्म हो जाने की व्रत हो जाती है<sup>८</sup>

श्रुतवे में भी पति-पत्नी का सुन्दर सम्बन्धों की चर्चा है। एक स्थान पर पत्नी का गाय पूजा का याग्य अग्नि की पूजा करने का उल्लेख है<sup>९</sup> एक अथ स्थान पर पति एक पत्नी का एक मन का हाकर अच्छे मित्र की भाँति धार्मिक कृत्य करने का उल्लेख है<sup>१०</sup> याज्ञवल्क्य गृह्यसूत्र में विधान है कि पति का अनुपस्थिति में पत्नी घर का अग्नि का पूजा कर और उस अग्नि का युग जान पर उपश्रम कर<sup>११</sup> रामायण में राम ने भी यज्ञ करते समय माता की मूर्ति बनवाकर अपने पास रखा था<sup>१२</sup> धर्मशास्त्रों में भी पत्नी का सवप्रमुख वस्तु

१ सम० ब० १ पु० १२२।

२ वहा ३ पु० १६२ ८ पु० ७३१।

३ वही २ पु० १४३।

४ वहा ७ पु० ६७१ ६७८-७०।

५ वहा २ पु० १२३।

६ सम० ब० ७ पु० ६६२।

७ वही ॥ पु० १२२।

८ वहा ४ पु० २७६ ६ पु० ५०५ ८ पु० ८०६ ८२१।

९ श्रुतवे १।७२।५।

१० वहा ५।३।२।

११ याज्ञवल्क्य गृह्यसूत्र १।१।१।

१२ रामायण ७।१।१।

पति की आना मानना एवं उसे देवता की भाँति सम्मान देना बताया गया है।<sup>१</sup> महाभारत में तो पत्नी का पति से दूर रहना बुरा कहा गया है।<sup>२</sup> एक अन्य स्थान पर द्रौपदा व द्वारा अपने पति के अनुसार ही आचरण करने की बात कही गयी है।<sup>३</sup> आदि पुराण व उल्लेख में स्पष्ट होता है कि पति से ही स्त्री की आत्मा नहीं थी वरन् पति भी स्त्री से धामित होता था।<sup>४</sup> अतः स्पष्ट होता है कि हरिभद्र के काल में भी पति-पत्नी का जीवन परस्पर सहयोग एवं सञ्वालों पर अवलम्बित था।

ममराइच्च कहा में भार्या के रूप में स्त्रियों को पति व साथ मात्र साम समुर तथा गुम्जना व सम्मान करने की बात कही गयी है।<sup>५</sup> उसका दायित्व पूरा कर्त्तव्य घर मृहस्थी तब सोमित न हाकर पूरे समाज में भी था। पति कुल में पत्नी के रूप में प्रवेश करने व उपरांत ही नागी परिवार एवं समाज के प्रति अपने दायित्व का उचित रूप से निर्वाह करती थी। अतः वैदिक एवं आगम कालीन समाज में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की दृष्टि से पत्नी का विशिष्ट स्थान था।<sup>६</sup>

ममराइच्च कहा में पतिव्रता एवं आत्मा स्त्रिया व अलावा कुछ दुष्टशीला पत्निया के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनके स्वभाव से ऊँच कर पति उह त्याग कर दूसरा विवाह सम्पन्न कर लेते थे।<sup>७</sup> इस प्रकार की पत्निया अपने जीवित पति का त्याग कर देती थी<sup>८</sup> तथा उन्हें छत्र व पट में भार डालने का प्रयास करती थी।<sup>९</sup> ऐसी दुष्टशीला स्त्रियों की निंदा करते हुए उन्हें मायावी विषधर विषलता विद्युत की तरह नष्ट प्रेम वाली उका अनाम, व्याधि मूर्छा, अरज्जुपाग तथा बिना हेतु की मृत्यु कहा गया है।<sup>१०</sup> यहाँ तक कि ऐसी दुष्ट आचरण वाली पत्निया का सति का नाग करने वाली तथा कुल में कलक

१ पा० वी० काणे धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ३१८।

२ महाभारत, आर्ति पर्व ७४।१२।

३ वही वन पर्व २३३।७ १४।

४ आदिपुराण ६।५९ (स तथा वचनवत्त्वेन सुरागोऽलकृतो नृप)।

५ सम० क० ८ पृ० ८१४ ९ पृ० ९१७।

६ कोमल चन्द्र जन—बौद्ध एवं जन आगमों में नारी जीवन पृ० ८८।

७ सम० व० ६ पृ० ५२६ २७ ७ पृ० ६२१ २२ २३।

८ वही ४ पृ० ३०५।

९ वही ६ पृ० ५२६ २७।

१० सम० क० ३ पृ० २२५, ४ पृ० २९४ ९५ ५ ३०४।६ पृ० ५२७।

लगाने वाला कह कर निन्दित किया गया है।<sup>१</sup> दुष्ट गान्ग स्त्रिया के उन्मेष  
वदिक काल में भी प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि नारी का मन  
दुःखमयी है।<sup>२</sup> एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि स्त्रियों के साथ कोई  
मित्रता नहीं उनके हृदय में छिपे के हृदय है।<sup>३</sup> शतपथ ब्राह्मण के अनुसार स्त्री  
शूद्र, वृत्ता एवं बौद्ध में असत्य विराजमान रहता है।<sup>४</sup> महाभारत में स्त्रियों  
को अनूठ (झूठा) कहा गया है।<sup>५</sup> एक अन्य स्थान पर उन्हें विष, मष एवं  
अग्नि कह कर निन्दित किया गया है।<sup>६</sup> रामायण में उन्हें धम ध्रष्ट चंचल,  
क्रूर एवं विरक्ति उत्पन्न करने वाली कहा गया है।<sup>७</sup> मनु में भी ऐसी स्त्रियों  
का कामिनी, चष- प्रेमहीन पतिद्राही, परपुरुष प्रेमी आदि कह कर निन्दा की  
है।<sup>८</sup> गौतम<sup>९</sup> एवं मनु<sup>१०</sup> दोनों स्मृतिकारों ने दुष्टगोला स्त्रियों की निन्दा करते  
हुए उन्हें दण्ड का भागी बताया है। आश्विपुराण में स्त्रियों का स्वभाव का  
विद्वेषण करते हुए दुष्टगोला स्त्रियों का स्वभावतः चंचल कपटी क्राधी और  
मायाचारिणी बताया गया है। वाचना के आगम में आदर एवम् स्त्रियों धर्म का  
भी परित्याग कर देती हैं।<sup>११</sup> यजुस्तिलक में तो यहाँ तक उल्लेख है कि अग्नि  
घान्त हो जाय विष अमृत बन जाय राक्षसियों का यज्ञ में कर लिया जाय  
क्रूर जन्तुओं को भी वन में कर लिया जाय पत्थर भा मृदु हो जाय किन्तु  
स्त्रियों वक्र स्वभाव को नहीं छोड़ती।<sup>१२</sup> आगे कहा गया है कि ऐसी दुष्टगोला  
स्त्रियों का निगिन करना ठाक बने हा है जसे माँप का दूध दिलाना।<sup>१३</sup> किन्तु

१ गम० क० ६ पु० ५२६ २७ ७ पु० ६१६ १७ ।

२ ऋग्वेद ८।३३।१६ ।

३ यहा १०।५।१५ ।

४ शतपथ ब्राह्मण १।१।१।३१ ।

५ महाभारत, अनुगमन पर्व १९।६ ।

६ यही ३८।१२ ।

७ रामायण अरण्य काण्ड ४५।२० ३० ।

८ मनु० ९।१४ १५ ।

९ गौतम० २।१।४ ।

१० मनु० ८।३७१ ।

११ आश्विपुराण ४३।१०० ११३ ।

१२ यजुस्तिलक पु० ५३ ६३ उत्त० ।

१३ यज्ञ पु० ३५२ उत्त० (दण्ड-गृहस्थात्मन एवं पात्रि स्त्रिय विन्ध्यो मनु  
क कराति । अथेन य पापयने मुत्रगा त्म कुतम्य्य मुत्रग-गनि) ।

तत्कालीन समाज में ऐमी दुष्टशील स्त्रियाँ अपवाद स्वरूप थीं। अधिकतर सादृश से पता चलता है कि पतिव्रत धर्म परायण एवं आदर्श स्त्रियों की प्रशंसा की गयी है। इन स्त्रियों को परिवार एवं समाज में आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

## माता

भारतीय संस्कृति में माता रूप नारी का आन्तर को दृष्टि से दर्शा जाता है। नारी जीवन की सायकता माता रूप में ही निहित रही है। सम्राट् चक्रवर्ति कहा में माता को जननी कह कर सम्मानित किया गया है।<sup>१</sup> एक अन्य स्थान पर पुत्र द्वारा माता की वन्दना का उल्लेख है।<sup>२</sup> बर्दिक तथा उत्तर बर्दिक काल में माता ही एक ऐसी पात्र थी जिस सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक आदि सभी दृष्टियाँ से महत्त्व दिया जाता था।<sup>३</sup> राम ने अपनी मोतली माता की आत्मा मानकर जंगल चले जाने का निश्चय किया और अवधि पूरा होने पर ही पुन अयोध्या लौट।<sup>४</sup> धर्मशास्त्रों में पिता गुरु की अपक्षा से गुना अधिक आदरणीय बताया गया है, किन्तु माता पिता से भी हजारों गुना अधिक आदरणीय समझी गयी है।<sup>५</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उल्लिखित है कि पुत्र का चाहिए कि वह अपनी माता की सदा सेवा करे चाहे वह जाति ध्युन ही क्या न हो, क्योंकि वह उसने लिए अत्यधिक कष्ट सहन करती है।<sup>६</sup>

अन्य उपमितिभक्तप्रपञ्चा कथा में बताया गया है कि परिवार में माता का स्थान पिता से उच्च था क्योंकि परिस्थितियों के बशाभूत होकर पिता दुष्ट हो सकता है लेकिन माता किसी भी परिस्थितियों में रह कर सन्तान की सेवा सुधूपी करती रहती है।<sup>७</sup> आदि पुराण में माता की वन्दना के सन्दर्भ में उसे तीना लोका की कल्याणकारिणी माता मंगल करने वाली महादेवी, पुण्यवती और यशस्विनी कहा गया है।<sup>८</sup>

१ सम० व० ४ प० ३४५, ६ पृ० ५६४।

२ वही ४ प० २९६ ९७।

३ कोमल चन्द्र जन—बौद्ध एवं जन आगमों में नारी जीवन, प० ११२।

४ रामायण ६।१३।३८।

५ मनु० २।१४५ यज्ञवल्क्य० १।३५ गौतम० ६।५१।

६ आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१०।२८।९।

७ उपमितिभक्तप्रपञ्चा कथा पृ० १५३।

८ आदि पुराण १।३।३०।

माना, गन्ध पुष्प आभूषण एवं रंगीन परिधान का प्रयोग छोड़ देना चाहिए, पीतल बाने के बरतन में भाजन नहीं करना चाहिए दो बार भाजन करना, अजन आति लगाना त्याग देना चाहिए, उसे स्वेत वस्त्र धारण करना चाहिए इन्द्रिया एव ब्राध का दराना चाहिए, घोषाघडी में दूर रहना चाहिए प्रमाण एवं निष्ठा से मुक्त होना चाहिए, पवित्र एवं सज्जनरूप वाली होना चाहिए सदा हरि की पूजा करनी चाहिए, रात्रि में पृथ्वी पर कुत्ता की चटाई पर गमन करना चाहिए तथा सत्संगति में रूपा रहना चाहिए ।<sup>१</sup>

बाणों के अनुसार हिन्दू विधवा की स्थिति अत्यन्त ग्रावणीय थी । उसका माग्य किसी भी स्थिति में स्पष्टताय नहीं माना जा सकता था । वह अमंगल मूखक था और बिम्बा भी उन्नाव में भाग नहीं ले सकती थी ।<sup>२</sup> कभी-कभी विधवा स्त्रियाँ जीवन यापन के तीन उपायों (पति की सम्पत्ति, जातिदुल्लेख का सरक्षण तथा पर पुरुष का ग्रहण) का भ्रम अपना कर भिगुनी बन जाती थीं तथा भिगुनी गम की परिष्ठ भिगुनी के सरक्षण में अपना जीवन बिताती थी ।<sup>३</sup> उच्चवर्गीय स्त्रियाँ अधिकतर पति की मृत्यु पर विता में ही जल कर मर जाना श्रमभर समझती थीं किन्तु कुछ स्त्रियाँ तो अपने घरों में ही रहकर गफेद वस्त्र पहनती, अलवार आदि की अलग रत्न दती तथा तप, व्रत आदि धारण करती थी ।<sup>४</sup> आतिपुराण के एक आख्यान में भी पता चलता है कि विधवा स्त्रियों का अनाथ एवं बलहान समझा जाता था ।<sup>५</sup> अतः स्पष्ट होता है कि विधवा स्त्रियाँ अपनी प्रतिष्ठा की कठिनाइयों के कारण ही या तो विता में जल कर सती हो जाती थीं अथवा भक्ति भजन में लीन हो जाती थी ।

साध्वी

हरिभद्र के काव्य में नारायण का माता रूप की प्रतिष्ठा साध्वी रूप में अवर्णित पूजनीय था । समराइच्चकटा में कुछ स्त्रियों द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण कर धार्मिक क्षेत्र में अनुरक्त होने का उल्लेख है ।<sup>६</sup> कुछ तो वात्स्यायन्या से ही भक्ति-पूजा आदि में लान हो जाती थी जिन्हें तापस्य कथा कहा गया ।<sup>७</sup> एही साध्वी

१ बुद्धहारीत स्मृति ११।२०५ २१० ।

२ पी० बी० बाण—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ३३१ ३२ ।

३ कामल चन्द्र जैन—बौद्ध एवं जैन आगमों में नारी जीवन पृ० १२५ ।

४ ह्यपरिच ५ पृ० १७१, वात्स्यायनी पृ० ४२ ।

५ आतिपुराण ४३।८ ।

६ गम० क० ३, पृ० १८२ ।

७ बही ५ पृ० ४०७-८ ४१८ ।

स्त्रियाँ तपाभूमि में रहती, बल्कल धारण करती<sup>१</sup> तथा पानी पीने के लिए कमण्डलु लिए रहती थी।<sup>२</sup> अतः समाज का हर व्यक्ति उनकी धमनिष्ठा पर पूजा, बचना के साथ उन्हें सत्कार प्रदान करता था।<sup>३</sup> नारियों में धार्मिक भावना के प्रादुर्भाव के उत्प्रेष आदि काल से ही प्राप्त होते हैं। धदिव का<sup>४</sup> में नारी की धार्मिक प्रवृत्ति में किसी प्रकार की हीनता नहीं थी। उस समय वह प्रत्येक धार्मिक कार्य में पुरुष को महयाग प्रदान करती थी।<sup>५</sup> जन एव बौद्ध आगमों से भी पता चलता है कि नारियाँ को न केवल गृहस्थाश्रम में पुरुषों के समान धर्माचरण करने का अधिकार था, अपितु भिक्षुणी बनने में भी कालांतर में उन पर सघ की ओर से किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।<sup>६</sup>

सम्राट्त्वं कहाँ में श्रमण धर्म का पालन करने वाली माध्वी स्त्रियों के सघ का उत्प्रेष है और उस सघ को प्रधान गणिनी होती थी।<sup>७</sup> गणिनी के साथ ही आत्म कल्याण के लिए श्रमण व्रता का पालन करती हुई अनेक साध्वी स्त्रियाँ भी रहा करती थी। ये गणिनी यथोचित कल्प विहार भी करती थी तथा लोगों को शिक्षा-दीक्षा देकर प्रवर्जित किया करती थी। परिणामतः समाज के प्रत्येक लोग श्रद्धा एवं भक्ति से उनकी पूजा-वन्दना किया करते थे।<sup>८</sup> समस्त प्राणिमात्र के कल्याणाय हर प्रकार का त्याग करने के कारण ही साध्वी स्त्रियों का अत्यधिक सम्मान की दृष्टि में देखा जाता था।

### वैश्या

हरिभद्र के काल में वैश्यावृत्ति का भी प्रचलन था जो उनकी (वैश्याओं की) जीविका का एक मात्र साधन था। सम्राट्त्वं कहाँ में एक स्थान पर उल्लिखित है कि धन ही वैश्याओं का पति है।<sup>९</sup> इसी ग्रन्थ में अन्य कई स्थानों पर वैश्या का उल्लेख आया है।<sup>१०</sup> वैश्यावृत्ति का प्रमाण वैदिक काल में प्राप्त होता

१ सम० क० ५ पृ० ४०७-८।

२ वही ५ प० ४१४।

३ वही २ प० १०४५ ४ प० ३४४, ५ प० ४१८, ४२३ ४२६ ७, ५० ६८५।

४ कोमलचन्द्र जन—जन और बौद्ध आगमों में नारी जीवन प० २२७।

५ वही, प० १८३।

६ सम० क० २ प० १०४ ७ प० ६१३।

७ सम० क० २, पृ० १०४, ७ प० ६१३।

८ सम० क० २ पृ० १५०, (वैसित्थियाहिययं पिब अत्य बल्लह)।

९ वही १, पृ० ५३ २ पृ० ९२ ७, पृ० ६३४।

ह। ऋग्वेद में मन्त्रगण विद्युत के साथ उसी प्रकार संयुक्त माने गये हैं जिग प्रकार युवती वेश्या से पुरुष लीम संयुक्त होते हैं।<sup>१</sup> मनुस्मृति में ब्राह्मणों को राजा के साथ भोजन करना वर्जित बनाया गया है।<sup>२</sup> एक अर्थ स्थान पर धृतराष्ट्र वेश्याओं का दण्डित करने के लिए राजा को प्रेरित किया गया है।<sup>३</sup> महाभारत में भी वेश्यावृत्ति का उल्लेख कई स्थान पर किया गया है।<sup>४</sup> वासव्यायन व नाममूत्र में उल्लिखित है कि वेश्याएँ सभी प्रकार की कलाएँ सीखती थीं तथा राजाओं की तरफ से उन्हें सम्मान मिलता था।<sup>५</sup> वाणभट्ट ने भी वेश्याओं का उल्लेख किया है कि हर्षवर्धन के राज-संगार में रत्न बरता थी।<sup>६</sup> लण्डो के शकुन्तला चरित में भी वेश्याओं का उल्लेख है।<sup>७</sup>

सम्राट्त्वर्द्धना में वेश्या से भिन्न वाराणसा नाम का उल्लेख है जो मन्त्र महाभारत तथा विवाह आदि उत्सवों पर नृत्य गान आदि कर जन समूह का आनन्दवर्धन करती थी।<sup>८</sup> विवाह के शुभ अवसर पर ये ही वाराणसा घर का श्रुगाण करती थी।<sup>९</sup> आग्निपुराण में वाराणसा और वेश्या का एक दूसरे से पूषक बताया गया है। इन वाराणसाओं का वेश्या की अपेक्षा उच्चतर स्थान प्राप्त था। विवाह के समय राज्याभिषेक के अवसर पर वाराणसाओं का सम्मेलन होता था।<sup>१०</sup> वह मंगलमय गीत गाती तथा लय तान युक्त गव्य भावपूर्ण नृत्य भी करती थी। आग्निपुराण में ये वाराणसा नृत्य-गान के अनिश्चित अर्थ बोझें बांध करती हुई नदी सिंहास पत्नी। ये धार्मिक तथा गान्धर्व अथवा गव्य हा मुलाई जाती थी।<sup>११</sup> अतः स्पष्ट होता है कि वाराणसा वेश्याओं की तुलना में शुभ सूचक माना जाती थी।

१ ऋग्वेद १।१६७।४।

२ मनुस्मृति ८।२००।

३ महाभारत २।२५०।

४ महाभारत आश्विनी ११।१३० उपाग पत्र ३०।३८ वन पत्र २००।३७।

५ नाममूत्र १।३।

६ हर्षचरित २ पृ० ७१ दण्डि सांख्यिक १७२।

७ शकुन्तला चरित २, पृ० ६६ ६८।

८ गम० व० १ पृ० ५२ २ पृ० ३०८ ४ पृ० ३३० ६० ७, पृ० ६४।

९ महाभारत २ पृ० ५६।

१० आग्निपुराण ७।२८ ८८।

११ वी० १७।८ ८६।

## दासी

सम्राट्त्वं कहा में नारी के दासी रूप का भी उल्लेख है।<sup>१</sup> नारी का यह परिचर्या कम उनकी निधनता का प्रतिफल था। निधनता से प्रेरित होकर वे धनिका के यहाँ उनकी सेवा-सुश्रूषा कर अपना जीवन यापन करती थी। कुछ नसिया ता कुछ परम्परागत हानों जिन्हें धनी-सम्पन्न परिवारों में सम्मान प्राप्त होता था तथा विवाह एवं पुत्र जन्मोत्सव में उन्हें पुरस्कार भी प्राप्त होता था।<sup>२</sup> कुछ दासिया विवाह के पश्चात् बहू के साथ उनकी परिचर्या के लिए आती थी। राम प्रथा का प्रचलन अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। ऋग्वेद के कई मन्त्रों से दामत्व की झलक मिलती है।<sup>३</sup> उपनिषदों में भी दासिया का उल्लेख है।<sup>४</sup> जन एवं बौद्ध आगमा में भी सम्पन्न परिवारों द्वारा दाम-नसिया रखने का पता चलता है। दासी परिवार की ऐसी सबिका थी जिसके जीवन की मायकता स्वामी की आमाओं के पालन में थी।<sup>५</sup>

सम्राट्त्वं कहा में दासी के तीन रूपों का उल्लेख प्राप्त होता है—दासी,<sup>६</sup> चेटी<sup>७</sup> और धानी रूप।<sup>८</sup> दासी सम्पन्न परिवारों में व्यक्तिगत परिचर्या के साथ साथ घर गृहस्थी के कार्यों को सेवा भाव से करती थी। ये दासिया कुल परम्परागत भी होती थी। यहां तक कि कन्या के विवाह हो जाने पर उसने पति के घर भी सेवा कार्य के लिए जाती थी।

परिचारिका के रूप में नारी का चेटी रूप नारी तथा धानी दानों का सम्मिलित रूप था। ये चेटीया धानी का भाग वाप करती थी तथा परिवार के

१ सम० क० १ प० ३३ २ प० ७९ ८९, १४६ ३ प० १७६ ८ प० २० ३१२, ५ प० ३७३ ३८४, ८ प० ७३३।

२ बहा २ पृ० ७७ ४ प० २३६ ५ पृ ४७१ ६ प० ४९५, ० पृ० ९६०।

३ ऋग्वेद ८।५।३८, ८।१९।३६ ८।५६।३।

४ कथापिपद् १।१।२५ छात्राय्य उपनिषद् ७।२४।२।

५ कोमल चंद्र जन-जन और बौद्ध आगमा में नारी जीवन पृ० १३४।

६ सम० क० २, पृ० १४७ ५ प० ३७१।

७ बही १ प० ३३, २ प० ७० ८७ ८ प० २५४ ३५७ ५, पृ० ३७३ ८ पृ० ७३३ ७६०।

८ बहा १ प० ५४, २ ७७ ८० १४६, ३ प० १७६, ४ प० २३६ ५ पृ० ४७ १८ पृ० ४९५ ० पृ० ९०४, ५ ८०।



अप्य लोगों की सेवा मुखरूप करती हुई आगन्तुकों का स्वागत भी करती थी। पुत्र जन्म की खुशी में इन्हें पुरस्कार प्रदान किया जाता था।

घात्री की नियुक्ति परिवार में मतान व कालन-पात्रन के लिए की जाती थी। ये बच्चा की देख रखा उनका पालन-पोषण खेल-कूद मिष्ठाना तथा वस्त्र आभूषण आदि पहनाने का काम करती थी। इसका स्तर दासिया से उच्च होता था। आगम बालीन सम्राज में पाँच प्रकार की गमियाँ रखने की प्रथा थी। दूध पिलाने वाली वस्त्र एवं अलंकार आदि पहनाने वाली स्नात कराने वाली ब्राह्म कराने वाली तथा बच्चा का गाल में लेकर गिराने वाली।<sup>१</sup> आदि पुराण में भी घात्री व बालों का पाँच भाग में बाँटा गया है यथा—मंजन मण्डन स्तंभ सस्कार तथा ब्राह्मन।<sup>२</sup> घात्री द्वारा गिणुओं को स्नान कराने की क्रिया का मजन वस्त्राभूषण पहनाने की क्रिया का मण्डन दुग्ध पिलाने को (जिसमें स्तन पान भी सम्मिलित है) स्तंभ, तेल मन्त्र नेत्र में अंजन तथा शरीर में उबटन लगाने की क्रिया का सस्कार तथा मनोरंजन व लिए विविध प्रकार के खेल गिणान की क्रिया का ब्राह्मन काम के अंतर्गत माना जाता था। आदिपुराण में कुछ घात्री माना एवं गमियों के रूप में भी उल्लिखित है। श्रीमती की पण्डिता घात्री हूँगी धनी में जाती है।<sup>३</sup>

ये परिचारिकाएँ अधिातर घर के अंदर अर्थात् अंतपुर में सेवा मुखरूप करती हुई अंतपुर की म्रिया व मुख-दुग्ध में सद्गामिनी जाती थी। वहीं-वही था उनका सम्पूर्ण मिश्रित भी होने से।



१ कामल काम जा—वीरू एवं जन आगमों में गारी जीवन पृ० १४४।

२ आदि पुराण १४।१६५ (घात्रिया नियोजित-पात्रन रूप कात्रन गान्धर्व। मंजन मन्त्र स्तंभ सस्कार ब्राह्मन-पण्डित व।

३ वगी ९।११४ १२५।

## पाँचवा-अध्याय

### शिक्षा एवं कला

प्राचीन भारत में चरित्र निर्माण प्रतिभांगाली व्यक्तित्व, सस्कृति की रक्षा तथा सामाजिक एवं धार्मिक कल्याण का सम्पन्न करने के लिए शिक्षा का समाज का अनिवार्य अंग माना जाता था।<sup>१</sup> समराइच्चकहा में शिक्षा को व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक बताया गया है। राजकुमार को किशोरा वस्था में ही लेखाचार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आचार्य को सौंप दिया जाता था।<sup>२</sup> ये लोग राजकुमारोचित कलाओं को सीखते थे।<sup>३</sup> काव्य रचना<sup>४</sup> तथा चित्रकला<sup>५</sup> के साथ-साथ वे, श्रुत आदि का भी ज्ञान प्राप्त करते थे।<sup>६</sup> समराइच्चकहा के विवरणों से पता चलता है कि गुरुप्रदत्त शिक्षा के साथ लोग स्वाध्याय पर भी बल देने थे।<sup>७</sup> इस प्रकार ये राजकुमार अपने परिश्रम एवं अभ्यास के द्वारा समस्त शास्त्र एवं कलाओं में प्रवीण हो जाते थे।<sup>८</sup> समराइच्चकहा के उद्धरणों से पता चलता है कि शिक्षा का प्रचार मुख्यतया धनी सम्पन्न एवं राजघराने के लोग में ही अधिक था। गरीब लोग इसका लाभ कम उठा पाते थे।

हरिभद्र सूरि ने समराइच्चकहा में तत्कालीन समाज में प्रचलित शिक्षा का विषय के सन्दर्भ में ८९ प्रकार की कलाओं का उल्लेख किया है। हरिभद्र सूरि की भाँति अन्य बौद्ध एवं जैन सूत्रों, यथा गता धमकथा, समवायाग, औपपातिक सूत्र राजप्रश्नाय सूत्र एवं कुवलयमालाकहा आदि में ७२ प्रकार की कलाओं का

१ ए० एस० अल्तेकर—एजुकेशन इन ऐसियाट इण्डिया, पृ० ३२६।

२ सम० क० २ पृ० १२८ (समण्विया य लेहापरियस्म)।

३ वही ४, पृ० ३६५ ७ पृ० ६०९।

४ वही ८ पृ० ७५७।

५ वही ८, पृ० ७६०—‘उवणीया से कुमार लिहिया चित्तवट्टिया।’

६ वही ३ पृ० २२६।

७ वही ५, पृ० ४८०।

८ वही ९, पृ० ८६३—‘मयल सत्थ कला सपत्ति सुदर पत्ता कुमार भाव।’

उल्लेख आया है।<sup>१</sup> बौद्ध एवं जन सूत्रों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, कामसूत्र एवं कादम्बरी आदि ब्राह्मण ग्रंथों में ६४ प्रकार की कलाओं का विवरण प्राप्त होना है।<sup>२</sup> जन सूत्र में उल्लिखित कलाओं की महत्ता पर प्रकाश डालने हुए हीरालाल जन न बताया है कि जन घम में गृहस्थ घम की व्यवस्थाओं द्वारा उन सर प्रवृत्तियों को यथाचित स्थान दिया गया है जिनके द्वारा मनुष्य मध्य एवं पिष्ट घनत्व अपनी अपने कुटुम्बों की तथा समाज एवं राज का सेवा करता हुआ जीवन बना सके।<sup>३</sup> प्राचीनतम जन आगमा में बालका का उनके शिक्षण काल में लिखा एक कलाओं का विभाग पर जोर दिया गया है। यहाँ गृहस्थों के लिए जो षट्कम बताए गये हैं उनमें अग्नि, मणि, कृषि, विद्या, वाणिज्य के साथ-साथ विद्या का भी विशेष उल्लेख है।<sup>४</sup>

समराइच्चवहा के आठवें भव में जिन ८० कलाओं एवं विद्याओं का उल्लेख आया है<sup>५</sup> उसका क्रम विवरण इस प्रकार न दिया जा सकता है—

लेख—मुद्रा एवं स्पष्ट लिपि द्वारा अपने भावा एवं विचारों का ब्यक्तिकरण करना मनुष्य करता लेखन कला के अन्तर्गत आता है। इस कला के अन्तर्गत हाथों का ध्यान दिया गया है—लिपि और लेख विषय। अथ सूत्रों के अध्ययन में ब्राह्मी और मराठी आदि १८ प्रकार की लिपियाँ प्राप्त होना है।<sup>६</sup> प्राचीन काल में लेख का आधार पत्र, बरतल, काष्ठ, ताला, ताम्र, रजत

१ नाताघमकथा १ पृ० २१ समवायंग पृ० ७७ अ ओपपातिक सूत्र ६ पृ० १८६ राजप्रणीय सूत्र २११ जम्बुद्वीप प्रशस्ति टीका २, पृ० १३६  
लेख—अमृत्य चरमन—मोमल लाइफ इन जैन लिटरेचर—बालकता लिखू, माघ १९३३ पृ० ३६४ डा० सी० एस गुप्त—जैन लिटरेचर आफ मज्जिमन पृ० ७४ लिखावट पृ० ५८ १०० ३०१, ललित विस्तार पृ० १५६।

२ रामायण १/०/१ भागवतपुराण १०/४५/२६ महाभाष्य १/१/१७, कादम्बरी पृ० २३१ ३२ श्रीमद्वा मन्वन्त मारीज वाराणसी १०९१ दशकुमारवलि २/२१।

३ हीरालाल जैन—प्राचीन भारतीय मन्वन्त में जैन घम का योगदान पृ० २४४।

४ बहा, पृ० २८६।

५ गम० ब० ८, पृ० ७३४-३९।

६ ब्राह्मी-मराठी जैन—जैनमन्वन्त गादिप में भारतीय समाज, पृ० ३०१।

आदि बताये गये हैं और उनपर उत्कीर्णकर, सीकर चुनकर, भेदकर, जलाकर, ठप्पा लगाकर अम्बरा का अंकन किया जाता था।<sup>१</sup> कामसूत्र में ६४ कलाओं के अन्तर्गत आलेख का भी उल्लेख आया है।<sup>२</sup> जैन ग्रन्थ समवायाग एव कुबलय-माला आदि में भी इस कला का उल्लेख आया है।

गणित—ज्यातिष ज्ञान के लिए गणना के उद्देश्य से अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत में गणितशास्त्र का विशेष महत्त्व था। कल्प-सूत्र से पता होता है कि भगवान् महावीर ने गणित एवं ज्यातिष में निपुणता प्राप्त की थी।<sup>३</sup> जैन सूत्रों से पता चलता है कि ऋषभदेव ने अपना पुत्र सुन्दरी का गणित की शिक्षा दी थी।<sup>४</sup> छान्दाग्य उपनिषद् में वेद, पुराण, धाकरण आदि के साथ-साथ राशि विद्या का उल्लेख आया है जिसका तात्पर्य गणित विद्या से लगाया जा सकता है।<sup>५</sup> इसी प्रकार समवायाग एव कुबलयमाला में भी गणित को शिक्षा के विषय के रूप में गिनाया गया है।

आलेख—समराङ्गचक्र में उल्लिखित आलेख्य कला के अन्तर्गत धूलि चित्र, सान्ध्य चित्र और रस चित्र आदि आते थे।

नाट्य—मनोरञ्जन एव कला की दृष्टि में इस विषय को अनिवाद्य माना जाता था। इस कला के अन्तर्गत नाटक लिखने एवं उसका अभिनय को लिया जा सकता है। इसमें सुर ताल आदि की गति के अनुसार अनेक प्रकार की गिनती भी की जाती थी। नाट्य, नृत्य, गीत, वाद्य, स्वरगत, पुष्करगत, समताल आदि का प्राचीन काल में संगीत कला के अन्तर्गत माना जाता था। नाट्य, वाद्य गद्य और अभिनय के भेद से संगीत का चार प्रकार का बताया गया है। इसमें बीजा, ताल, लय और वादित्त को मुख्य माना गया है।<sup>६</sup> राजप्रश्नीय सूत्र में ३२ प्रकार की नाट्यविधियों का उल्लेख है।<sup>७</sup> मुक्तार्जुन के अनुसार वात्स्यायन के कामसूत्र में अभिनय के सन्दर्भ में नपथ्य प्रयोग और नाटका-

१ हीरालाल जैन—प्राचीन भारतीय सभ्यता में जन धर्म का योगदान, पृ० २८६ ८७।

२ कामसूत्र १/३ १६

३ कल्पसूत्र १/१०।

४ आवश्यक चूर्णो, पृ० १५६।

५ छान्दाग्य उपनिषद् ७/१।

६ स्थानाग सूत्र ४, पृ० २७१।

७ राजप्रश्नीय—टीका पृ० १३६।

व्यायिका का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> कुवलयमालाकहा में आये ७२ प्रकार की कलाओं में तथा वाणभट्ट की कादम्बरी में चन्द्रापीड द्वारा विभिन्न प्रकार की विद्याओं एवं कलाओं में पारंगत होने का सम्म में नाट्य शास्त्र का भी उल्लेख आया है।<sup>२</sup>

गीत—नाट्यकला के अतिरिक्त समराइच्चकहा में गान कला का भी उल्लेख है। तत्कालीन समाज में बौद्धिक उत्थान एवं मनाविनाश के उद्देश्य से संगीत कला का अत्यधिक महत्त्व था। गीत में स्वर ताल और लय का प्राधान्य माना जाता था। अन्य प्रकार की विद्याओं एवं कलाओं का गाय-साध गतपथ ब्राह्मण तथा छादाम्य उपनिषद् में नृत्य गान एवं वाद्य कला का भी उल्लेख आया है।<sup>३</sup> अतः यह कला अत्यधिक प्राचीन काल से चला आ रहा थी। इसी प्रकार काम मूत्र समवायांग एवं कादम्बरी आदि ग्रन्थों में भी गान, वाद्य एवं नृत्य आदि कलाओं का उल्लेख आया है जो तत्कालीन समाज में गिता का एक प्रमुख विषय माना जाता था।<sup>४</sup>

वाद्य—दम भा संगीत कला का एक अंग माना जाता था। बन्धु बाल में ही इसकी परम्परा देखा जाती है। राजप्रसीद सूत्र में वाद्य कला का अन्तर्गत दम श्रुत भेरी पटह आदि ४९ प्रकार के वाद्यों का उल्लेख है किन्तु कुछ छोटा व विचार से पाठानुसार इनका संख्या ५० मानी गया है।<sup>५</sup> कादम्बरी में भी वाद्य कला का अन्तर्गत बीणा बांसुरी मृदंग काना मंजीर तूती आदि वाद्य कलाओं का उल्लेख आया है।<sup>६</sup>

स्वरगत—दम अन्तर्गत स्वर विभाग की गिता में जानी थी। जी सूत्रों में पट्ट, कृष्ण, गोपार, मध्यम, परम सैवत और निरा आदि छह स्वरों का उल्लेख है।<sup>७</sup> समवायांग सूत्र में भी ७२ कलाओं का अन्तर्गत स्वरगत, पुष्करगण और ममता आदि कलाओं का उल्लेख आया है।<sup>८</sup>

१ आर० व० मन्त्री—तत्कालीन इन मैमिपट इतिहास, पृ० ३५६।

२ कादम्बरी पृ० ३१३०, कुवलयमाला वहा २२, ११०।

३ नारायण ब्राह्मण २०/१, शांतिपत्र उपनिषद् ७, १।

४ कामसूत्र १/३ १९ समवायांग पृ० ७३ अ कादम्बरी पृ० २११-१२।

५ त्रैलोक्यसंग्रह—त्रैलोक्य संग्रह में भाग्याय समाज, पृ० २३१।

६ कादम्बरी, पृ० २३१ ३०।

७ व्याससंग्रह सूत्र ७, पृ० ३३२ अनुसंग्रह पृ० ११७।

८ समवायांग सूत्र पृ० ७३ अ।

पुष्करगत—वाँसुरी और भेरी आदि का अनेक प्रकार में बजाने की कला को पुष्करगत कला के रूप में लिया जाता था ।

द्युत—जुआ खेलने की कला को द्युतकला माना जाता था । यह मनोरंजन का एक साधन समझा जाता था । द्युत कला के अंतर्गत द्युत जनवाद आदि कलाओं का ज्ञान कराया जाता था । ऋग्वेद में अश्व और पाश क्रीडा का उल्लेख है<sup>१</sup> । यहा अश्व और पाश का तात्पर्य द्युत क्रीडा में ही है । महाभारत में तो कौरव और पाण्डवों के बीच हुए द्युत क्रीडा के फलस्वरूप ही पाण्डवा का निर्वासित जीवन बिताना पड़ा<sup>२</sup> । वात्स्यायन कामसूत्र में इसे ६४ कलाओं के अंतर्गत गिनाया गया है<sup>३</sup> ।

जनवाद—मनुष्य के शरीर रहन-सहन, बातचीत, खान-पान तथा हाव-भाव आदि के द्वारा उसका परीक्षण करना जनवाद की शिक्षा के अंतर्गत आता था । समवायाग में भी इस ७२ कलाओं में गिनाया गया है<sup>४</sup> ।

होरा—जात शास्त्र अर्थात् जन्म पत्री का निर्माण और फलादेश इस शिक्षा के अंतर्गत आते थे । कुवलयमाला में इस ७२ कलाओं में गिनाया गया है<sup>५</sup> ।

काय—काव्य रचना तथा पुरातन काव्यों का अध्ययन आदि काय विषय के अंतर्गत आते थे । काय कला का कला एवं शिक्षा का प्रमुख विषय माना गया है<sup>६</sup> ।

वश्मातिक्रम<sup>७</sup>—इस विषय के अंतर्गत भूमि सम्बन्धी अध्ययन सम्मिलित था । किस भूमि में कौन सी वस्तु उगायी जा सकती है । खाद मिट्टी तथा धीज आदि की पद्याथ जानकारी इस विषय में सम्मिलित थी । सम्भवतः यह कृषि विज्ञान के विषय के रूप में था ।

१ ऋग्वेद १०/३४/८ ।

२ महाभारत—शांति पर्व ।

३ कामसूत्र १/३ १६, तुलना के लिए देखिए—कालम्बरा पृ० २३१ ३१ दशकुमार चरित पृ० ६६ कुवलयमाला कहा २२/१ १०, समवायाग पृ० ७७ अ आदि ।

४ समवायाग पृ० ७७ अ ।

५ कुवलयमाला कहा २२/१ १० ।

६ देखिये—कादम्बरी पृ० २३१ ३२ कामसूत्र १/३ १६ कायसमस्यापूरणम्, समवायाग, पृ० ७७ अ, कुवलयमाला कहा २२/१-१० ।

७ देखिए—समवायाग पृ० ७७ अ ।

अष्टावय (अष्टपद)—अर्थात् अष्टावय अथवा सम्पत्ति सम्बन्धी बातों का ज्ञान ।<sup>१</sup> समवायांग सूत्र तथा प्रश्न व्याकरण में भी इसका उल्लेख आया है ।<sup>२</sup>

अन्न विधि—भाजन बनाने और भाज्य पदार्थ सम्बन्धी सभी बातों का ज्ञान इस कला व अन्तर्गत आता था । स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्न विधि पानविधि, रायन-विधि आदि का उल्लेख विविध जन सूत्रों में आया है ।<sup>३</sup>

पान विधि—पय पान सम्बन्धी सभी बातों की जानकारी इस विषय व अन्तर्गत था ।

गयन-विधि—गयन अर्थात् गायन सम्बन्धी सभी बातों का ज्ञान इसमें सम्मिलित था । कुवलयमाला कहाँ में गयन विधि व साय साय आसन विधि का भी उल्लेख है ।<sup>४</sup>

आर्या—यह एक प्रकार का छन्द था जिसके विविध रूपों की जानकारी की जाती थी । काम्यकला व अन्तर्गत आर्या ग्रहलिका, मागधिका आदि का ज्ञान बताया जाने का उल्लेख है ।<sup>५</sup>

ग्रहलिका—पहेली बुझने एवं बुझाने की कला ।

मागधिका—इसके अन्तर्गत मागधो भाषा और साहित्य का ज्ञान कराया जाता था ।

गाथा<sup>६</sup>—छन्द अथवा श्लोक रचना सम्बन्धी कला का ज्ञान गाथा के अन्तर्गत आता था । यन्त्रि काण्ड में भी गाथा का उल्लेख प्राप्त होता है । ऋग्वेद में गाथापति<sup>७</sup>, गायित्री तथा ऋजुगाथा<sup>८</sup> आदि का उल्लेख आया है ।

१ पादप्र गृह महर्णवा, पृ० २७ ।

२ समवायांग पृ० ७७ अ प्रश्न व्याकरण १/४—आगमोन्म गमिति धम्बई १९१० ।

३ जगन्नीय चन्द्र जन—जैनागम साहित्य में भारतीय न्याय, पृ० २९७ ।

४ कुवलयमाला कहाँ २२/१० दणिए—कामसूत्र १/१ १९—रायन रचनम् ।

५ समवायांग, पृ० ७७ अ ।

६ कामसूत्र १/३ १६ ।

७ समवायांग पृ० ७७ अ ।

८ ऋग्वेद १/४३/४ ।

९ यही १/७/१ ।

१० यही ५, ८४/५ ।

गीति—गीति काव्यों की रचना और उनका अध्ययन करना ।

श्लोक<sup>१</sup>—साहित्य के अतगत पद्य श्लोक की रचना तथा उसकी जानकारी करना था ।

मधुसित्य (मधुसिक्व)<sup>२</sup>—मधु तथा भोम आदि बनाने की कला सम्मिलित थी ।

गद्यनुक्ति (गद्यपुक्ति)<sup>३</sup>—इत्र केशर तथा वस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों की पहचान करना तथा उनके गुण-दोषों की जानकारी रखना इस कला के अतगत था ।

आभरणविधि<sup>४</sup>—वस्त्र तथा आभूषण निर्माण एवं धारण करने की कला इसमें सम्मिलित थी ।

तद्व्यप्रीति वचन<sup>५</sup>—तद्व्य व्यक्तियों से मित्रवत् व्यवहार एवं प्रसन्न करने का कला को तद्व्यप्रीतिकम कहते थे ।

स्त्री लक्षण—स्त्रियों की जाति तथा उनके गुण दोषों की पहचान इस कला के अतगत थी । जन सूत्रों में विविध प्रकार के लक्षणों और चिह्नों आदि के नाम बताये जाने का उल्लेख आया है जिसके अतगत स्त्री, पुरुष, हय गज, गो, मेघ कुक्कुट, चक्र, छत्र दण्ड अक्षि, मणि काकिनी आदि क लक्षणा का ज्ञान कराना था ।<sup>५</sup>

पुरुष लक्षण—पुरुष वर्गों की जाति और उनके गुण दोष की विशिष्ट जानकारी रखना इस कला का विषय था ।

हय लक्षण—धाड़ों की जाति एवं उनके अच्छे बुर लक्षणों की जानकारी करना था ।

गज लक्षण—हाथियों की जाति तथा उनके शुभ अशुभ लक्षणा की जानकारी रखना था ।

गो लक्षण—गायों की जाति तथा उनकी अच्छी-बुरी नस्लों की जानकारी थी ।

मेघ लक्षण—अच्छे तथा खराब मेघ (भेंद) की पहचान एवं परीक्षण करने की कला ।

१ तुलना के लिए—मेघनिर्णय समवायाग पृ० ७७ अ ।

२ देखिए—वही, पृ० ७७ अ ।

३ वही पृ० ७७ अ, कुवलयमाला कहा २२/१ १०, कामसूत्र १/३ १६ ।

४ तुलना के लिए देखिए—समवायाग पृ० ७७ अ ।

५ जगदीश चन्द्र जन—जन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० २९७ ।



**कुक्कुट लक्षण**—कुक्कुट अर्थात् मुर्गों की पहचान एवं उमरे गुभाशुम लक्षणा की जानकारी प्राप्त करना था ।

**चक्र लक्षण**—चक्र परीक्षण और चक्र सम्बन्धी शुभ अशुभ ज्ञान प्राप्त करना था ।

**क्षत्र लक्षण**—क्षत्र सम्बन्धी शुभाशुम की विशेष जानकारी रखना ।

**दण्ड लक्षण**—दण्ड सम्बन्धी लक्षणों की विशिष्ट जानकारी रखना ।

**असि लक्षण**—तलवार चलाने की कला तथा उसकी परीक्षा सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी प्राप्त करना ।

**मणि लक्षण**—मणि मुक्ता रत्न आदि की विशिष्ट जानकारी प्राप्त करना इस कला के अन्तर्गत था ।

**वाकिनी लक्षण**—प्राकृत छन्द महाणव म वाकिनी का अर्थ कौड़ी और सिक्कों से लगाया गया है ।<sup>१</sup> यहाँ वाकिनी लक्षण का तात्पर्य कौड़ी अथवा रत्न विनोद का जानकारी से है ।

**चम लक्षण**—चम की परीक्षा तथा चम सम्बन्धी अर्थ प्रकार की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना चम लक्षण के अन्तर्गत था ।

**चन्द्र चरित**—चन्द्रमा की गति तथा तद्विषयक अर्थ प्रकार की जानकारी प्राप्त करना । सम्भवतः यह ज्योतिष विद्या का एक अंग था । चन्द्र सूर्य राहु ग्रह चरित आदि ज्योतिष विद्या के अन्तर्गत आता था । जनाचार्यों ने गणित तथा ज्योतिष विद्या में आवश्यक जनक प्रगति की थी । आगमग्रन्थों में चन्द्रप्रगति और सूर्यप्रगति का महत्वपूर्ण ध्यान प्राप्त होता है<sup>२</sup> । माय साय यहाँ सूर्य के उदय अस्त आज तथा चन्द्र-सूर्य के आकार परिभ्रमण आदि नक्षत्रा के गति, सीमा तथा सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र एवं तारा की गति का उल्लेख है ।<sup>३</sup>

**सूर्य चरित**—सूर्य की गति गमन पथ तथा उस विषय सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना सूर्य चरित का विषय था ।

**राहु चरित**—राहु ग्रह सम्बन्धी सभी प्रकार का जानकारी राहु चरित के अन्तर्गत था ।

**ग्रह चरित**—सम्पूर्ण ग्रहा के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना ग्रह चरित कहा जाता था । बाणभट्ट ने कादम्बरी में ग्रह-नक्षत्र नियम तथा ज्योतिष विद्या का विभिन्न कलाओं के साथ-साथ गिनाया है ।<sup>४</sup>

१ देविण—पाइअ मह महणवा ।

२ जगन्नी चन्द्र जन—जनागम साहित्य में भारतीय ममात्र, पृ० ३०६ ।

३ विटर नित्स—हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरचर भाग २, पृ० ४५७ ।

४ कादम्बरी, पृ० २३१-३३ ।

**सूत्र-क्रीडा<sup>१</sup>**—सूत्र द्वारा विभिन्न प्रकार के खेल करने की कला का सूत्र क्रीडा कहा जाता था। समवायाग सूत्र में ७२ प्रकार की कलाओं के अन्तर्गत सूत्र क्रीडा, वृत्त क्रीडा, घम क्रीडा तथा नलिका क्रीडा का उल्लेख क्रीडा कला के अन्तर्गत किया गया है।<sup>२</sup>

**वस्त्र क्रीडा**—वस्त्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के खेल-बूद करने की कला का वस्त्र क्रीडा कहा जाता था।

**वाह्य क्रीडा**—वाह्याला में घुड़सवारी करने की कला को वाह्य क्रीडा कहते थे।

**नलिका क्रीडा**—वृत्त क्रीडा की तरह का ही एक खेल।

**पत्रच्छेद<sup>३</sup>**—पत्रा व पत्तों पर भेदने की कला अर्थात् निगानेवाजी।

**कटच्छेद**—सेना में सैनिका का वेधने की कला इस कला का अन्तर्गत थी। समवायाग सूत्र में पत्रच्छेद की भाँति कटच्छेद नामक कला का भी उल्लेख है।<sup>४</sup>

**प्रतरच्छेद**—वृत्ताकार वस्तु को भेदने की कला को प्रतरच्छेद कला कहते थे।

**सजीव**—मृत या मृत तुल्य व्यक्ति को जीवित कर देने की कला को सजीव कहा जाता था। सजीव और निर्जीव कला का समवायाग की ७२ कलाओं में से एक माना गया है।<sup>५</sup>

**निर्जीव<sup>६</sup>**—मरण कला अर्थात् मारने की कला का निर्जीव कला कहते थे।

**शकुनवस्त**—पक्षियों की आवाज द्वारा शुभ-अशुभ का पान प्राप्त करना शकुनवस्त कला कहलाता था।

**सूचाकार (सूचाकार)<sup>७</sup>**—आकार मात्र से ही रहस्य की जानकारी प्राप्त कर लेने की कला का सूचाकार कहते थे।

**दूयाकार (दूताकार)**—दूत की आकृति तथा हाव भाव से ही सन् कुछ जान

१ तुलना के लिए देखिये—कामसूत्र १/३-१६।

२ कुट्टनीमतम् श्लोक १२४।

३ समवायाग, पृ० ७७अ।

४ तुलना के लिए देखिये—समवायाग, पृ० ७७अ, कुट्टनीमतम् श्लोक २३६, कुवलयमाला कहा २२/१-१०।

५ समवायाग पृ० ७७अ।

६ तुलना के लिए देखिये—कामसूत्र १/३-१६—‘गुक्सारिकाप्रलापनम्’ समवायाग पृ० ७७अ कादम्बरी पृ० २३१-३२—यहाँ विभिन्न प्रकार की कलाओं के साथ ‘शकुन शास्त्र’ नामक विद्या का उल्लेख है।

७ तुलना के लिए देखिये—पिठनियुक्ति ४३७, प्रकाशन (बम्बई १९२२)।

लेने की कला तथा द्रुत नियुक्ति के समय द्रुत व अनुरूप गुणा की जानकारी का ध्यान रखना आदि द्रुताकार के अंतर्गत था ।

विद्यागत—वेद शास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करना विद्यागत कला का विषय था । समवायाग सूत्र में विभिन्न कलाओं के अंतर्गत विद्यागत मन्त्रगत, रहस्यगत सभ्य चार प्रतिचार, व्यूह प्रतियूह आदि कलाओं को अलग-अलग गिनाया गया है ।<sup>१</sup>

मन्त्रगत—दृष्टिक, दक्षिण और भौतिक बाधाओं को दूर करने के लिए मन्त्र विधि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना मन्त्रगत विद्या का विषय था ।

रहस्यगत—रहस्य (गूढ़तम) की समस्त जानकारी अथवा जानू-टाने आदि की जानकारी इस विषय के अन्तर्गत मानी जाती थी ।

सभ्य—सम्भवतः प्रसूति विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान इसके अंतर्गत था ।

चार—तेज गमन करने की कला चार कला का विषय था । चार प्रति चार यूह और प्रतियूह आदि युद्ध सम्बन्धी विद्याएँ हैं जिनके द्वारा क्रमशः सेना की आगे बढ़ाना शत्रु की सेना की पाल का विफल करने के लिए सेना का संचार करना चक्रयूह रचना द्वारा सेना का विराम करना एवं शत्रु की व्यूह रचना का तोड़ने योग्य सेना का विराम किया जाता था ।

प्रतिचार—मम्मवत उपचार सम्बन्धी विषय यथा—रोगा, घायल आदि के उपचार की विद्या ।

व्यूह—युद्ध के समय व्यूह रचना की कला इसका विषय क्षेत्र था । युद्ध के समय व्यूह की रचना कर लेने के पश्चात् उसमें प्रत्युत्तर में व्यूह रचने की कला को प्रतिव्यूह कहा जाता था ।

स्कंधाचारमान<sup>२</sup>—छावनी के प्रमाण यथा—लम्बाई-चौड़ाई तथा तद्विषयक अन्य प्रकार की जानकारी इस कला में सम्मिलित थी । वास्तुकला के अंतर्गत नगरमान वास्तुमान स्कंधाचार निवेगम आदि का आभास होता है ।<sup>३</sup> स्कंधाचारमान नगरमान, वास्तुमान स्कंधाचार निवेगम, नगर निवेगम का आगम निविर आदि का समाने एवं उसके योग्य भूमि गृह आदि का मान प्रमाण निश्चित करना था ।<sup>४</sup>

१ समवायाग सूत्र, पृ० ७७अ ।

२ तुलना के लिए देखिये—समवायाग सूत्र पृ० ७७अ, कामशास्त्र १/३-१६ तथा कादम्बरी पृ० २३१-३२ में वास्तुविद्या ।

३ जगन्नीलचन्द्र जन—जनागम साहित्य में भारतीय समाज पृ० २९८ ।

४ होरालाल जन—प्राचीन भारतीय भस्त्रुति में जन धर्म का यागदान, पृ० २९० ।

**नगरमान**—नगर के प्रमाण आदि की जानकारी प्राप्त करना नगरमान विद्या का विषय क्षेत्र था। समवायाग सूत्र में स्कंधावारमान, नगरमान, वास्तुमान, स्कंधावरनिवेश, वास्तुनिवेश तथा नगरनिवेश का अलग अलग कला के रूप में गिनाया गया है।<sup>१</sup>

**वास्तुमान**—भवन प्रासाद तथा गृह के प्रमाण आदि का जानने की कला वास्तुमान कला था।

**स्कंधावार निवेशम**—छावनिया की रचना सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी यथा—छावणियों के डालने का उचित स्थान तथा उचित रचना रसद की समुचित व्यवस्था तथा शत्रु से सुरक्षा आदि का विशेष गान स्कंधावार निवेश विद्या का विषय था।

**नगर निवेशम**—नगर बसाने की कला का नगर निवेश विद्या कहते थे।

**वास्तु निवेश**—भवन प्रासाद एवं घर बनाने की कला का वास्तु निवेश के अन्तर्गत माना जाता था।

**इष्टस्त्र**<sup>२</sup>—बाण प्रयोग करने की कला को इष्टस्त्र कला कहते थे।

**तत्त्वप्रवाद**—तत्त्वज्ञान की शिक्षा गान आदि तत्त्व प्रवाद के अन्तर्गत आता था। कादम्बरी में अथ कलाओं के अन्तर्गत भीमासा, न्याय, वैशेषिक आदि द्वाग शास्त्र के विषय के रूप में उल्लेख आया है।<sup>३</sup>

**अश्व शिक्षा**—घोड़ा का नाना प्रकार के कदम तथा चालें सिखलाने की कला का अश्व शिक्षा कहा जाता था। समवायाग, कादम्बरी, कुवलयमाला कहा आदि ग्रन्थों में अश्व शिक्षा, हस्ति शिक्षा आदि का उल्लेख विविध कलाओं के अन्तर्गत आया है।<sup>४</sup>

**हस्ति शिक्षा**—हाथिया का युद्ध करने का शिक्षा देना तथा रणभेद्य में संचालन आदि का शिक्षा आदि हस्ति शिक्षा के अन्तर्गत था।

**मणि शिक्षा**—मणिया का सुन्दर एवं आकर्षक बनाना तथा मणि की सहा जानकारी रखना आदि का मणि शिक्षा कहा गया है।

४ समवायाग, पृ० ७७अ।

१ मुलना के लिए देखिए—समवायाग सूत्र, पृ० ७७अ०, प्रश्नव्याकरणसूत्र १।५, पञ्चमधरिख १८।४०—प्राकृत प्रथ परिपद्—वाराणसी—५ में प्रकाशित।

२ कादम्बरी, पृ० २३१-३२।

३ समवायागसूत्र, पृ० ७७ अ, कादम्बरी, पृ० २३१ ३२ कुवलयमाला कहा २३।१-१०।

धनुर्वेद<sup>१</sup>—धनुष चलाने की कला का धनुर्वेद के अंतर्गत माना जाता था ।

हिरण्यवाद—चाँदी के विभिन्न प्रकार के प्रयोग को जानने की कला को हिरण्यवाद कहा जाता था । हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक का उल्लेख समवायाग सूत्र में एक ही कला के अंतर्गत आया है ।<sup>२</sup> कादम्बरी में विविध कलाओं के अंतर्गत 'रत्नपरीक्षा' का उल्लेख है ।<sup>३</sup> कामसूत्र में भी विभिन्न कलाओं के साथ 'रत्नपरीक्षा', धातुवाद और मणिरागाकरण आदि का उल्लेख है ।<sup>४</sup>

सुवर्णवाद<sup>५</sup>—माने के अनेक भेद तथा उसके प्रयोग करने की कला को सुवर्णवाद कहा जाता था ।

मणिवाद—मणियों के भेद तथा उनके प्रयोगों का मणिवाद कहा जाता था ।

धातुवाद—धातु सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी रखना धातुवाद की श्रेणी में आता था ।

बाहु युद्ध—बाहु युद्ध करने की कला का पान जिस मूल युद्ध भी कहा जाता था । युद्ध विद्या में युद्धनियुद्ध, युद्धातिरुद्ध, मुष्टि युद्ध, धनुर्वेद, गृह, प्रतिगृह आदि कलाएँ मानी जाती थीं । समवायागसूत्र में बाहुयुद्ध, दंडयुद्ध, मुष्टियुद्ध, अस्थि युद्ध, युद्ध नियुद्ध और युद्धनियुद्ध आदि सभी को एक ही कला अर्थात् युद्ध-कला के रूप में गिनाया गया है ।<sup>६</sup>

दण्ड युद्ध—दण्ड अर्थात् लाठी से युद्ध करने की कला को दण्ड युद्ध कहते थे ।

मुष्टि युद्ध—मुक्का या घुँसा मारकर युद्ध करने की कला को मुष्टि युद्ध के अंतर्गत रखा गया था ।

अस्थि युद्ध—हड्डियों से युद्ध करने की कला को अस्थि युद्ध कहते थे ।

युद्ध—रणक्षेत्र में युद्ध करने की कला को युद्ध विद्या माना जाता था ।

नियुद्ध—कुशली लड़ने की कला का नियुद्ध की संज्ञा दी जाती थी ।

युद्ध नियुद्ध—घमासान लड़ाई करने की कला का युद्ध नियुद्ध विद्या कहा जाता था ।

१ तुलना के लिए देखिए—कादम्बरी, पृ० २३१-३२ समवायागसूत्र, पृ० ७७ अ ।

२ समवायागसूत्र, पृ० ७७ अ ।

३ कादम्बरी पृ० २३१-३२ ।

४ कामसूत्र १।३-१६ ।

५ तुलना के लिए, देखिए—शुक्लयजुस ब्राह्मण २२।१-१० ।

६ समवायाग सूत्र, पृ० ७७ अ ।

## छठा-अध्याय आर्थिक दशा

### अथ का महत्व

भारतीय जीवन का मूल आधार पुरुषार्थ चतुष्टय ( धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ) बताया गया है।<sup>१</sup> अनर्थक विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जीवन का सन्तुलन सम्भव नहीं। यद्यपि जीवन का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य मोक्ष माना गया है फिर भी त्रिवर्ग ( धर्म अर्थ और काम ) पूर्णतया त्याज्य नहीं है क्योंकि विना इन तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त किये मोक्ष नामक शाश्वत सुख असम्भव है। जीवन के उद्देश्य का दस्य दो रूपों में ( व्यवहार और परमाय अथवा प्रवृत्ति और निवृत्ति ) देखा जा सकता है। जिनमें मोक्ष का परमाय अथवा निवृत्ति से तथा धर्म, अर्थ और काम का व्यवहार अथवा प्रवृत्ति से जोड़ा गया है।

जीवन के तीन मूल उद्देश्य त्रिवर्ग के सेवन से ही सम्भव है जिनमें धर्म सर्वोच्च है।<sup>२</sup> समराध्व कहाँ में त्रिवर्ग<sup>३</sup> ( धर्म अर्थ, काम ) का सेवन करना ही लोक धर्म बताया गया है। यही समस्त भौतिक सुखा का मूलधार बताया गया है। अर्थ ( धन ) के अभाव में धर्म और काम तथा इन तीनों के अभाव में मोक्ष की सिद्धि असम्भव है। धर्म अर्थ, काम आदि सभी पुरुषार्थ की सिद्धि एक दूसरे पर आधारित है।<sup>४</sup> अग्निपुराण में युवराज की शिक्षा में धर्म, अर्थ और काम का आवश्यक बताया गया है।<sup>५</sup>

१ महाभारत १२ ५९, ७२-७६, १८, ५, ५०, २, ५ ६, मनु० ७, १००, विष्णु पुराण १ १८, २१, अमर कोश २, ७, ५८।

२ महाभारत १२ ५९ २९-३१, कठोपनिषद् २ १२ ( यहाँ श्रेय और प्रेय का भेद बताया गया है ) मनु० १२।२८।

३ गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ में—लल्लम जी गोपाल—इकोनामिक परसूट आफ ऐसियट डिटिया पृ० ४०६।

४ सम० क० ९ पृ० ८६५-६६।

५ पद्मपुराण, ६, २८४, १२।

६ अग्निपुराण—राजवर्म २ प० ४०६ धर्मार्थ काम शास्त्राणि धनुर्वेद च शिष्येयम्।

समराइच्च कहा में उल्लिखित है कि अथ रहित पुरुष पुरुष नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'नरिन्' व्यक्ति न यज्ञ प्राप्त कर सकता है न सज्जना की सगति प्राप्त कर सकता है और न तो परोपकार सम्पादन ही कर सकता है।<sup>१</sup> इससे साथ-साथ अथ को ही देवता बताया गया है। अथ ही व्यक्ति का सम्मान बढ़ाता है गौरव जताता है मनुष्य का मूल्य बढ़ाता है सोभाग्यशाली बनाता है तथा यही (अथ) कुल रूप और बुद्धि का प्रकाशित करता है।<sup>२</sup> महाभारत<sup>३</sup> में अथ की महत्ता का स्वीकार किया गया है और इसे जीवन का बहुमूल्य अंग बताया गया है। यहाँ अजुन कहते हैं गरीबी एक पाप है। जीवन के सबभ्रष्ट काय धन सम्पत्ति पर आघातित हैं सम्पूर्ण धार्मिक कृत्य अथ पर ही निर्भर रहते हैं, सभी प्रकार के सुख तथा स्वर्ग की प्राप्ति धन से ही सम्भव है। धन से ही बुद्धि प्रकाशित होती है। अतः वह 'यक्ति जिसके पास धन नहीं है वह धार्मिक क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता और न तो समाज में सुखी जीवन ही पत्तीत कर सकता है। अतः बिना धन और अथ के समान योगदान के वह सुख अलभ्य है। कौटिल्य ने अथशास्त्र<sup>४</sup> में धन और काम का मूलाधार अथ ही बताया है। सर्वज्ञान संग्रह में भी चतुर्वर्ग (धन, अथ, काम, मोक्ष) में अथ और काम का जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य बताया गया है।<sup>५</sup>

जन श्रय आदि पुराण में भी बताया गया है कि आदितीयकर ने अपने पुत्र भरत को अथशास्त्र की शिक्षा दी थी।<sup>६</sup> अथशास्त्र के अतः भौतिक कल्याण सम्बन्धी सभी बातें यथा—उत्पादन, उपभोग, विनिमय और वितरण आदि का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक विचार के अन्तर्गत धन कमाना, अर्जित धन का रक्षण करना, पुनः उसका सम्बर्द्धन करना तथा योग्य पात्रों को दान देना बताया गया है।<sup>७</sup> अतः स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जीवन के चार

१ सम० क० ४, पृ० २४६—अथरहिआ पुरिमा अपुरिमो चेव ।

२ वही ६, पृ० ५३८-३९—'अन च एस अत्यो नाम महत् त्वयारुध—॥', देखिए—आदिपुराण ४१।१५८—'लम्पी वाग्वनिता समागम सुवस्थवा धिपत्य दधत ।

३ महाभारत १२ ८, ६-३३, १२, १६७ १२-१४ ।

४ अथशास्त्र १ ७—अथ एव प्रधान इति कौटिल्या । अथमूलो हि धन कामो इति, देखिए—पराशर० ८।३—'अथ मूलौधमकामौ ।'

५ सर्वज्ञान संग्रह, पृ० २, प्रबोध चन्द्रिका, पृ० ५६ ।

६ आदिपुराण १६।११९ ॥

७ वही ४२।१२२—अथमम्माजन, रक्षण वधन पात्रे च विनियोजनम् ॥

मूल उद्देश्या में अथवा अत्यधिक महत्व था जिसे सम्पूर्ण सुखों का उद्गम स्रोत माना जा सकता है तथा जिसके उत्पादन के प्रधान स्रोत कृषि, व्यापार वाणिज्य शिल्प आदि थे ।

## व्यापार-वाणिज्य

### बाजार

प्राचीन काल में कृषि व अतिरिक्त देश की समृद्धि का मुख्य आधार व्यापार वाणिज्य था । व्यापार का मुख्य ध्येय समाज के लिए विभिन्न प्रकार की आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पादन के पाम से उपभोक्ता के पाम पहुँचाना था ।

ममराइच्च कहा में 'हट्ट'<sup>१</sup> शब्द का उल्लेख है जिसका प्रयोग आजकल हाट अथवा बाजार के रूप में किया जाता है । इन हाटों के बीच में सड़कें विस्तृत तथा चौरम होती थी । विशेष अवसरा पर उन्हें सजाया जाता था ।<sup>२</sup> भोजन, वस्त्र आदि उपभाग की सभी सामग्रियाँ बाजारों में सुलभ थी ।<sup>३</sup> पाल अमिलेख में 'हाटक'<sup>४</sup> नामक अधिकारी का उल्लेख है जो संभवतः हाट (बाजार) का प्रबंध करता था । प्रतिहार अमिलेख में उल्लिखित है कि वका नामक वैश्य भिन्न भिन्न स्थानों ( हाटों ) से वय विक्रय की सामग्रियाँ खरीद कर लाता था ।<sup>५</sup> परमार लेख उन वर्णिकों के विषय में संकेत करते हैं जो सामान लाते तथा हाटों में बेचते थे ।<sup>६</sup>

### बाजार सामग्री

ममराइच्च कहा में बाजार से भाजन सामग्री लाने का वर्णन है ।<sup>७</sup> इससे प्रतीत होता है कि उस समय के बाजारों में गेहूँ चावल या दूध साग सजी आदि की विक्री होती थी । चेल्लादि भाण्ड'<sup>८</sup> का उल्लेख से भी यह

१ सम० क० ४ प० २६०, ७ ६१४-७१७, ९ ८५८ ॥

२ वही ७, पृ० ६३३-३४, ९ ८५८ ।

३ वही ७ प० ७१७ 'हट्टाओ अह किञ्चिभोयण जाय—तथा प० १७२—चलादिभाण्ड—' ।

४ इपि० इडि० १७, प० ५२५ ।

५ वही २०, पृ० १५ ।

६ वही २१ पृ० ४८ लेख में हाट शब्द का उल्लेख किया गया है जिसका प्रबंध एक मण्डल द्वारा किया जाता था—आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इंडिया ऐनुअल रिपोर्ट, १९३६-३७, पृ० ९१ ॥

७ सम० क० ७ पृ० ७१७ ( हट्टाओ अह किञ्चिभोयण जाय ) ।

८ वही ३ पृ० १७२ ।



सूचित होता है कि वस्त्र-रूपास सन अनाज आदि का क्रय विक्रय दूरस्थ व्यापारिक केन्द्रों के साथ-साथ इन हाटा ( बाजारों ) में भी होता था ।

माग

हरिभद्र कालीन भारत में हाट<sup>१</sup> में जाने-आने की सुविधा के लिए चौरस एवं विस्तृत माग थे ।<sup>२</sup> इन मागों का प्रबन्ध एवं मरम्मत संभवतः राज्य की तरफ से किया जाता था जिससे व्यापारिक वन तथा अन्य लोगों के आवागमन की सुविधा रहे ।

वाहन

हाटा से व्यापारिक सामग्रियों का ले आने तथा ले जाने की सुविधा के लिए बल गाड़ी<sup>३</sup> का प्रयोग होता था । मनुस्मृति में गाड़ी का उल्लेख है, जिसे बल खच्चर, भस आदि खींचते थे ।<sup>४</sup> निजीय चूर्णी में भी व्यापारिक सामग्री ढोने के लिए गाड़ी का उल्लेख है ।<sup>५</sup> यह बल गाड़ियाँ निजी तथा भाड़ा कमाने वाली ( किराये पर दास्त ढाने वाली ) होती थी ।<sup>६</sup> चाहमान अभिलेख में व्यापारिक सामग्री ढाने वाली बलगाड़ी का उल्लेख है ।<sup>७</sup>

दूरस्थ प्रदेशों से व्यापार के लिए साधनवाह की आवश्यकता में व्यापारियों का माय<sup>८</sup> चला करता था । उस साथ में भार-वाहक तथा गाड़ी रख आदि खींचने के लिए हाथी, घोड़े, बल, खच्चर, ऊँट आदि जानवरों का उपयोग होता था ।<sup>९</sup>

१ सम० क० ४, पृ० २६०, ७ प० ७१४-७१६ ॥

२ वही ९ पृ० ८५८ ॥

३ वही ४ पृ० ३५५, ७, पृ० ८५०, देखिए—उपमितिभव प्रपञ्च कथा, प० ८६७-६८ ।

४ आन मनु० ८ २९० ।

५ निजीय चूर्णी ४ पृ० १११—अणुरगा नामघसिआ तथा ३, पृ० ९९—अणुरगा गडडी ।

६ सम० क० पृ० ३३५ ।

७ इपि० इडि० ११ पृ० ३७ और ४३ ।

८ सम० क० ४ प० २४२, ६ पृ० ५०४, ५०९ ५११ १२ ५३५, ५३७, ५५३ ५५४ ५५५, ७, पृ० ६५६, ६५८, ६६६ ६७, ६७२, देखिए—तिलकमजरी, पृ० ११७, पतञ्जलि—महामाध्य १, १, ७४, पृ० ४६३—'क्वचित् कर्तारो समुपस्थिते साधमुपान्त, तथा २, २ २४, पृ० ३७० ।

९ निजीय चूर्णी ३, पृ० ९९ हस्ति चुरगादि गमेव जाण ४ पृ० १११, २, पृ० ९ निजीय गलाका पुरुष चरित १, ७ ।

बहुत्व भाष्य<sup>१</sup> में पाच प्रकार के सायों का उल्लेख है, यथा गाहिमा और छकडों से माल ढोने वाले ( भडी ), डेंट खच्चर बैल आदि से माल ढोने वाले ( वहिलग ) अपना माल स्वयं ढोने वाले ( भारवह ) अपनी आजीविका के योग्य द्रव्य लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करने वाले ( ओन्रिया ) और कापटिक ( कपटिय ) साधुओं का मार्ग ।

## तौल माप

समराहच कहा में ताराज-चाट<sup>२</sup> का उल्लेख हुआ है जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक काल की तरह प्राचीन काल में भी वस्तुओं का क्रय विक्रम और उसका मूल्य निर्धारण तौल के ही आधार पर किया जाता था । निशीथ चूर्णी<sup>३</sup> में भी तुला का उल्लेख है । वणिज लोग बहुत चालाक होते थे । अतएव वे गलत तौल ( कुरा तुला ) और गलत परिमाण से ग्राहकों को धोखा भी देते थे ।<sup>४</sup> हरिभद्र के पूर्वकाल में भी तुला चाट और परिमाण आदि का बराबर प्राप्त होता है ।<sup>५</sup>

समराहच कहा में 'निशीथ भाण्ड'<sup>६</sup> का उल्लेख है जिससे स्पष्ट होता है कि वस्तुओं का मूल्य निर्धारण तौल के साथ-साथ माप में भी किया जाता था ।

## सिकके

समराहच कहा में दीनार नामक सिकके का उल्लेख कई बार आया है ।<sup>७</sup> इस सिकके का व्यवहार सख्या में किया जाता था ।<sup>८</sup> आपसी लेन-देन अथवा वस्तुओं के क्रय विक्रय में इन सिकके का प्रयोग किया जाता था । प्राचीन काल में दीनार ग्रीक में लिया गया लटिन का 'देनरियस' था, जो एक प्रकार का चानी का सिकका था ।<sup>९</sup> किन्तु संस्कृत शब्द कोशा में इसे एक स्वर्ण सिक्का

१ बहुत्व भाष्य १ ३०६६ ।

२ सम० क० १, प० ६२ ३, ८० २१२ ।

३ निशीथ चूर्णी १, प० १४४ ४ प० १११, धर्मि य तुलाए परिजति ।

४ वही १ पृ० ११५ ।

५ पतजलि महाभाष्य ४ ४ ११, वाशिका० ३ ३, ५० ।

६ सम० क० ६, पृ० ५३९, देखिए—निशीथ चूर्णी १, प० ११५—कुदामन ।

७ वही २, प० ११४, ३, १७१ ४, २६७ ६, ५०९ ८, ७४६ ।

८ वही २ प० ११४, ८, प० ७४६ ।

९ लक्षण जी गापाल—एकोनामिक लाइफ आफ नान्त इण्डिया प० २०९ ।

सूचित होता है कि वस्त्र-कपास सन अनाज आदि का क्रय विक्रय दूरस्थ व्यापारिक केन्द्रों के साथ-साथ इन हाटा ( बाजारों ) में भी होता था ।

माग

हरिभद्र कालान भारत में हाट<sup>१</sup> में जाने-आने की सुविधा के लिए चौरस एवं विस्तृत माग थे ।<sup>२</sup> इन मार्गों का प्रबंध एवं मरम्मत सम्भवतः राज्य की तरफ से किया जाता था जिसमें व्यापारिक वगैरह तथा अन्य लोगों के आवागमन की सुविधा रहे ।

वाहन

हाटा से व्यापारिक सामग्रियाँ खरी ले आने तथा ले जाने की सुविधा के लिए बलगाड़ी<sup>३</sup> का प्रयोग होता था । मनुस्मृति में गाड़ी का उल्लेख है जिसे बल, खच्चर, भस आदि खींचते थे ।<sup>४</sup> निजीय चूर्णों में भी व्यापारिक सामग्री ढोने के लिए गाड़ी का उल्लेख है ।<sup>५</sup> ये बलगाड़ियाँ निजी तथा भाड़ा कमाने वाली ( किराये पर बोम ढान वाली ) होती थी ।<sup>६</sup> चाहमान अभिलेख में व्यापारिक सामग्री ढोने वाली बलगाड़ी का उल्लेख है ।<sup>७</sup>

दूरस्थ प्रदेशों से व्यापार के लिए साथवाह की आवश्यकता में व्यापारियों का साथ<sup>८</sup> चला करता था । उस साथ में भार-वाहक तथा गाड़ी रथ आदि खींचने के लिए हाथी घोड़े बल खच्चर जैट आदि जानवरों का उपयोग होता था ।<sup>९</sup>

१ सम० क० ४, प० २६०, ७ पु० ७१४-७१६ ॥

२ वही ९ प० ८५८ ॥

३ वही ४ प० ३५५, ७ प० ८५० देखिए—उपमितिभव प्रपचा कथा प० ८६७-६८ ।

४ आन मनु० ८ २९० ।

५ निजीय चूर्णों ४ प० १११—अणुरगा ग्रामघसिआ तथा ३, प० ९९—अणुरगा गड्डी ।

६ सम० क० पु० ३३५ ।

७ इपि० इडि० ११ पु० ३७ और ४३ ।

८ सम० क० ४ प० २४२, ६ प० ५०४ ५०० ५११ १२ ५३५, ५३७, ५५३ ५५४ ५५ ७ पु० ६५६ ६५८ ६६६ ६७, ६७२, देखिए—तिलवमजरी, पु० ११७, पतञ्जलि—महामाध्य १, १, ७४ पु० ४६३—'कञ्चित् कर्तार समुपस्थिते साथमुपादत्त तथा २ २, २४, पु० ३७० ।

९ निजीय चूर्णों ३ पु० ९९ 'इत्ये तुरगादि गमेव जाण ४ पु० १११, २ पु० ९ निजीय शलाका पुरुष चरित १, ७ ।

वहुत्व भाष्य<sup>१</sup> में पाँच प्रकार के साधों का उल्लेख है यथा-गाड़ियों और छकड़ों से माल ढोने वाले ( मडी ), ऊँट खच्चर बैल आदि से माल ढोने वाले ( वहिलग ) अपना माल स्वयं ढोने वाले ( भारवह ) अपनी आजीविका के योग्य द्रव्य लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करने वाले ( आन्तरिया ) और वापटिक ( कम्पडिय ) साधुभावा का साथ ।

## तौल-माप

समराइच्च कहा में ताराजू वाट<sup>२</sup> का उल्लेख हुआ है जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक काल की तरह प्राचीन काल में भी वस्तुओं का क्रय विक्रय और उसका मूल्य निर्धारण तौल के ही आधार पर किया जाता था । निजीय चूर्णी<sup>३</sup> में भी तुला का उल्लेख है । वणिक् लोग बहुत चालाक होते थे । अतएव वे गलत तौल ( बुदा तुला ) और गलत परिमाण से ग्राहकों को धाखा भी देते थे ।<sup>४</sup> हरिभद्र के पूर्वकाल में भी तुला वाट और परिमाण आदि का बराबर प्राप्त होता है ।<sup>५</sup>

समराइच्च कहा में 'निजोइय भाण्ड'<sup>६</sup> का उल्लेख है जिसमें स्पष्ट होता है कि वस्तुओं का मूल्य निर्धारण तौल के साथ-साथ माप से भी किया जाता था ।

## सिक्के

समराइच्च कहा में दीनार नामक सिक्के का उल्लेख कई धार आया है ।<sup>७</sup> इस सिक्के का व्यवहार मर्यादा में किया जाता था ।<sup>८</sup> आपसी लेन-देन अथवा वस्तुओं के क्रय विक्रय में इन सिक्कों का प्रयोग किया जाता था । प्राचीन काल में दीनार ग्रीक से लिया गया लटिन का 'देनरियस' था, जो एक प्रकार का चाँदी का सिक्का था ।<sup>९</sup> किन्तु संस्कृत शब्द कोशों में इसे एक स्वर्ण सिक्का

१ बहुत्व भाष्य १, ३०६६ ।

२ सम० क० १, प० ६२, ३, ८० २१२ ।

३ निजीय चूर्णी १, प० १४४ ४ प० १११ धरिम य तुलाए धरिजति ।

४ वही १ प० ११५ ।

५ पतजलि महामाष्य ४ ४, ११, काशिका० ३, ३ ५२ ।

६ सम० क० ६, प० ५३९, देखिए—निजीय चूर्णी १: प० ११५—कुदामन ।

७ वही २, प० ११४ ३, १७१ ४, २६७, ६ ५०९, ८, ७४६ ।

८ वही २ प० ११४, ८ प० ७४६ ।

९ उल्लन जी गापाल—एकोनामिक लाइफ आफ नादन इण्डिया, प० २०० ।

वताया गया है। राजतरंगिणी<sup>१</sup> में सोने, चादी और तंबू के दीनारों का उल्लेख है। निशीथ चूर्णी में दीनार का उल्लेख एक स्वर्ण सिक्के के रूप में किया गया है जिसका प्रचलन पूर्व देश में अधिक था।<sup>२</sup> एक अन्य स्थान पर मयूर से अंकित दीनारों का उल्लेख है।<sup>३</sup> गुप्तकाल में दो प्रकार के स्वर्ण सिक्का का प्रचलन था, जिनमें प्रथम तो रोमन दीनारस के वजन के बराबर था तथा दूसरा मनु का सुवर्ण था।<sup>४</sup>

सम्राट्चक्रवर्त कदा में 'पोडस सुवर्ण'<sup>५</sup> के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि दीनारों के अलावा सुवर्ण का भी व्यवहार सस्या में किया जाता था, जिसकी पुष्टि गुप्तकाल में प्राप्त सिक्कों से की जा सकती है।<sup>६</sup> पूर्वकाल में कुषाण और गुप्तों के शासन काल में स्वर्ण सिक्का का प्रचलन था। अनेक शताब्दियों तक कोई सोने के सिक्के नहीं बन। इस काल में सर्वप्रथम शगोय देव (त्रिपुरी का कलचुरी वंशज) ने सोने के सिक्के बनवाए जिसके स्वर्ण सिक्के उपलब्ध हुए हैं।<sup>७</sup> प्रथम चंदेल राजा कीर्तिवर्धन ने भी स्वर्ण सिक्के चलाए थे जो सस्या में कम थे।<sup>८</sup> रत्नपुर के कलचुरी वंशज पद्मवी देव, जज्जल देव और रत्न देव तृतीय ने १३ ग्रैन से लेकर ६० ग्रैन तक के वजन के स्वर्ण सिक्के चलाए थे।<sup>९</sup> उत्पलान्त्य नामक परमार वंश के शासक (१०६०-१०८७ ई०) ने स्वर्ण सिक्के चलाए थे।<sup>१०</sup> उत्तर प्रदेश के झांसी जिले में सिद्धराज जयसिंह के चलाये गये सिक्के प्राप्त हुए हैं।<sup>११</sup>

१ राजतरंगिणी ८७ ९५०।

२ निशीथ चूर्णी ३, पृ० १११ चक्रवर्त भाष्य वृत्ति २ पृ० ५७४।

३ वही ३ पृ० ३८८।

४ भण्डारकर—त्रैवचस आन नुमिस्मेटिक्स पृ० १८३ तथा ब्राउन—दी क्वायर्स आफ इण्डिया पृ० ४५।

५ सम० क० ४ पृ० २४४ (पोडस सुवर्ण), ५५८।

६ लल्लन जी गोपाल—एकानामिक लाइफ आफ नादन इण्डिया, पृ० २०९।

७ २२ स्वर्ण सिक्के—आजमगढ़ स—जनल आफ नुमिस्मेटिक सोसायटी आफ इण्डिया १७।१११, ३ स्वर्ण सिक्के—कनिष्क—अकियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट स १०।२५, वापस इन्सक्रिप्शनम इंडिकैरम ४ पृ० CL XXXVIII

८ इण्डियन ऐण्टीक्वेरी ३७ पृ० १४८।

९ जनल आफ दी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल २६ (१९३०) न० ३५।

१० सी० आर० मिहल—बिलियोग्राफा आफ इण्डियन क्वायर्स प्लेट १ पृ० ९६।

११ वही पृ० ९६।

धर्मशास्त्रों में ७० रूपक की १ मुवण के बराबर तथा २८ रूपक (चौदी) का १ दीनार के बराबर बताया गया है।<sup>१</sup> इस प्रकार दीनार और मुवण सिक्के के मूल्य में २५ का सम्बन्ध था।

### प्रादेशिक व्यापार-केन्द्र

छोटे एवं बड़े स्थानीय हाटा के अलावा भारत के व्यापारी व्यापार के निमित्त देश के अन्दर विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों का भी जाया करते थे। ये व्यापारी अपनी सुविधा तथा जान माल की रक्षा के लिए सार्थक बना कर चलते थे। समराहन्व कहाँ में अमरपुर के माध लम्बी निलय<sup>२</sup>, सुशम नगर<sup>३</sup> बराट नगर<sup>४</sup> आदि के व्यापार का उल्लेख है। इसी प्रकार श्रीपुर से इवेतविका<sup>५</sup> नामक व्यापारिक केन्द्र के बीच व्यापार का उल्लेख प्राप्त होता है। माकदी का रहने वाला घण उत्तरा-पथ के अचलपुर नामक प्रसिद्ध नगर में व्यापार के निमित्त जाता है और वहाँ से आठ गुना लाभ प्राप्त कर वापस लौटता है।<sup>६</sup> धावस्ती<sup>७</sup> तथा उज्जयिनी<sup>८</sup> नामक प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों का वणन भी आया है जहाँ पर देश के विभिन्न भागों के व्यापारी व्यापार के निमित्त आते रहते थे।

इस प्रकार के उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में देश के अन्दर विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों का आपसी व्यापार होता था जो मनुष्यों के उपयोग का विभिन्न सामग्रियों की दृष्टि से एक कोने से दूसरे कोने तक सुलभ करने का एक साधन था। व्यापारिक केन्द्रों में अमरपुर लम्बी निलय सुशम नगर बराट नगर, श्रीपुर इवेतविका, माकदी, अचलपुर, धावस्ती तथा

- १ पी० बी० काणे—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग ३, पृ० १२२।
- २ सम० क० ४, प०—२४२, ६ ५०४-५११-१२, ५३५-३६, ५५३ ५४ ५५ ५६ ५५८, ५६६ ६७, ५७२।
- ३ वही ३ प० १७२।
- ४ वही ४ प० २४० ४१ २५६, २६१, २८७।
- ५ वही ४, प० २८५।
- ६ वही ५ पृ० ३९८ ९९।
- ७ वही ६ प० ५१०।
- ८ वही ४, प० २५७ २८६-८७ देखिए यन० सी० बालोपाध्याय—एकानामिक लाइफ एण्ड प्राग्रस इन ऐसियन्ट इण्डिया, प० २२१ २२।
- ९ वही ९, प० ८५८, देखिए वही, पृ० २२१ २२२।

उज्जयिनी आदि प्रसिद्ध नगर थे। ताम्रलिप्ति<sup>१</sup> तथा वैजयन्ती नामक प्रसिद्ध वदरगाहों से भी देश के व्यापारी स्थल मार्गों से व्यापार करते थे।

प्रादेशिक व्यापार मार्ग

समराइच्च कहा के पात्र दश के अन्दर स्थल मार्गों द्वारा विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में व्यापार के निमित्त आते जान दिखाई देते हैं। ये व्यापारी अपने जान माल की सुरक्षा तथा अन्य सभी प्रकार की सुविधाओं के लिए साथ (साथ अर्थात् साथ अथवा झुण्ड) बनाकर चला करते थे।<sup>१</sup> यह साथ व्यापारियों का कारवाँ था जो देश के एक छोर से दूसरे छोर तक चला करता था। उस साथ का नेता साथबाह कहलाता था जिसकी अध्यक्षता में व्यापारिक झुण्ड दूरस्थ प्रदेशों को जाता था।<sup>२</sup> समराइच्च कहा में नगर एवं हाटों के मार्ग<sup>३</sup> का ता उल्लेख है, पर इन दूरस्थ प्रदेशों को जाने वाले मार्गों अथवा सड़कों का उल्लेख नहीं है। इतना अवश्य पता चलता है कि इन व्यापारियों को दुर्गम मार्ग से होकर जाना पड़ता था<sup>४</sup> जिसे पार करने के लिए उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। मार्ग में चलते समय चोर डाकुओं के भय के कारण ये व्यापारी अपने साथ सगद्ग सुरक्षा दल भी लेकर चलते थे।<sup>५</sup>

मार्ग में यात्रा करते हुए ये व्यापारी विश्राम के लिए पड़ाव ढालते थे जहाँ अपनी सुविधा के लिए बगैचा के तन्तू ढालकर उसके नीचे विश्राम करते थे।<sup>६</sup> कभी-कभी उनके विश्राम स्थल पर लूटपाट मचाने वाले गवरा के आक्रमण भी होते थे जिनसे आयुधधारी सुरक्षा दल का मुँह करना पड़ता था।<sup>७</sup>

१ सम० क० ४ पृ० २४०-४१-४२, ५ पृ० ३६७-६८-६९, ॥ प० ६५२-५३-५४।

२ वही ६ पृ० ५३९।

३ वही ४ पृ० २४२ ६ पृ० ५०४, ५०९, ५११-१२, ५३५, ५३७, ५५३-५५४-५५, ७ ६५६ ६५८ ६६६-६७, ६७२ देविका—त्रिपट्टि शालावापुरुष चरित १ पृ० ७ ॥

४ निगीय चूर्णी २ पृ० ४६९, अनुयाग द्वार चूर्णी, पृ० ११ बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति १०४०।

५ सम० क० ९, पृ० ८५८, निगीय चूर्णी में ३ पृ० ४९८ ५०२ (यहाँ नगरों में राजमार्ग, द्वि मार्ग त्रिमार्ग चौक (चौराहा) आदि का उल्लेख है।)

६ वही ६, पृ० ५११-१२, ७ ६५६ ६५८ ॥

७ वही ६ पृ० ५११-१२ ७, पृ० ६५६ ॥

८ वही ७, पृ० ६५६ ॥

९ वही ६ पृ० ५११-१२ ॥

युद्ध में कमजोर पड़ने पर इन व्यापारियों का सुरक्षा दल, स्त्री-बच्चे आदि नष्ट हो जाते और साथ ही लूट जाता था।<sup>१</sup> व्यापारियों के ये भाग अधिकतर जंगली एवं पहाड़ी हाते थे जो भयानक एवं असुरक्षित थे। इसी कारण उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। अथ साहित्यिक साक्ष्यों में भी व्यापारिक यात्रा सम्बन्धी कठिनाइयों का उल्लेख है।<sup>२</sup> सप्तदश सत्रक<sup>३</sup> में मार्गों को दुर्गम एवं भयावह बताया गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग भी मार्ग में डाकूओं द्वारा लूट लिया गया था।<sup>४</sup>

यद्यपि सम्राट् च्च कहाँ में नगरों एवं हाटों के अलावा दूरस्थ प्रदेशों तक जाने वाले मार्गों एवं सड़कों का उल्लेख नहीं है फिर भी अथ ग्रंथों में माल ले जाने तथा ले आने के लिए छोटी तथा लम्बी सड़कों का उल्लेख है।<sup>५</sup> देशी नाममाला में रघ्य<sup>६</sup> (लम्बा मार्ग अथवा सड़क) और लघुरघ्य<sup>७</sup> (छोटी सड़क) का उल्लेख किया गया है। समरागणसूत्रधर<sup>८</sup> में भी कई प्रकार की सड़कों का विवरण प्राप्त होता है जो नगरों के बाहर जाती थी। बहुत से भूमि दान में दान दी गयी भूमि की सीमा बंधने के ध्येय से लम्बी सड़कों का उल्लेख है।<sup>९</sup>

प्राचीन काल में यद्यपि सड़कें बहुत कम थी और जाँची भी वह अच्छी नहीं थी। त्रिपिटकालाकारुप चरित<sup>१०</sup> में उल्लिखित है कि वर्षों के समय व्यापारियों का सड़कों से होकर चलना दुर्भर हो जाता था। उनके ऊँट फिसलकर गिर पड़ते थे। कीचट में बल तथा सज्जर आदि फँस आते थे। उपमितिभव प्रपञ्च कथा<sup>११</sup> से पता चलता है कि सड़कें चौरस तथा समतल न होने के कारण उन पर

१ सम० क० ७, पृ० ६१६-६५८।

२ निशाथ चूर्णी ३, पृ० ५२७, ४, पृ० ११८ कुट्टनामतम पक्ति २१८-२९, उपमितिभव प्रपञ्च कथा, पृ० ६६३, ८६३ कथाकाय, पृ० २०७, राजतरंगिणी ७, १००९।

३ सप्तदशसत्रक पक्ति ११७—'मगुदुग्गमू समाठ'।

४ दी लाइफ पृ० ६०, ७३, ८६ १९८।

५ वैजयन्ती २ ३१-३३, अभिधानरत्नमाला, पक्ति २८९।

६ देशीनाममाला ३, ३१, ४ ८ ६ ३९, ७ ५५, ८ ६ १ १४१।

७ वहा ३ ३१।

८ समरागण सूत्रधर १, पृ० ३९, पक्ति ६-१४।

९ कामरूप शासनावली पृ० १८०।

१० त्रिपिटकालाकारुप चरित १ पृ० ७।

११ उपमितिभवप्रपञ्च कथा पृ० ८६३—'विषम मार्ग'।



उज्जयिनी आदि प्रसिद्ध नगर थे। ताम्रलिप्ति<sup>१</sup> तथा वैजयंती नामक प्रसिद्ध बंदरगाहों से भी दश के व्यापारी स्थल मार्गों से व्यापार करते थे।

प्रादेशिक व्यापार मार्ग

सम्राट्चक्रवर्ती के पात्र देश के अन्दर स्थल मार्गों द्वारा विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में व्यापार के निमित्त आते जाते दिखाई देते हैं। ये व्यापारी अपने जान माल की सुरक्षा तथा अन्य सभी प्रकार की सुविधाओं के लिए साथ (साथ अर्थात् साथ अथवा झण्ड) बनाकर चला करते थे।<sup>१</sup> यह साथ व्यापारियों का कारवां था जो देश के एक छोर से दूसरे छोर तक चला करता था। उस साथ का नेता साथबाह कहलाता था जिसकी अध्यक्षता में व्यापारिक झुण्ड दूरस्थ प्रदेशों को जाता था।<sup>२</sup> सम्राट्चक्रवर्ती में नगर एवं हाटों के मार्ग<sup>३</sup> का तात्पर्य उल्लेख है, पर इन दूरस्थ प्रदेशों को जाने वाले मार्गों अथवा सड़कों का उल्लेख नहीं है। इतना अवश्य पता चलता है कि इन व्यापारियों को दुर्गम मार्ग से होकर जाना पड़ता था<sup>४</sup> जिसे पार करने के लिए उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। मार्ग में चलते समय चोर डाकुओं के भय के कारण ये व्यापारी अपने साथ सशस्त्र सुरक्षा माल भी लेकर चलते थे।<sup>५</sup>

मार्ग में यात्रा करते हुए ये व्यापारी विध्राम के लिए पड़ाव ढालते थे जहाँ अपनी सुविधा के लिए कपड़ों के तम्बू ढालकर उसमें नीचे विध्राम करते थे।<sup>६</sup> कभी-कभी उनमें विध्राम स्थल पर लूटपाट मचाने वाले गैरों के आक्रमण भी होते थे जिनसे आम्रमुधारी सुरक्षा-दल को मुक्त करना पड़ता था।<sup>७</sup>

१ सम० क० ४ पृ० २४०-४१-४२, ५ पृ० ३६७-६८-६९, ७, पृ० ६५२-५३-५४।

२ वही ६ पृ० ५३९।

३ वही ४ पृ० २४२ ६ पृ० ५०४, ५०९ ५११-१२ ५३५, ५३७, ५५३-५५४-५५, ७ ६५६ ६५८ ६६६-६७, ६७२, देखिए—त्रिपट्टि शलाकापुराण चरित १ पृ० ७ ॥

४ निर्णय चूर्णी २ पृ० ४६०, अनुयाग द्वार चूर्णी, पृ० ११, बह्वक्त्यमाध्य वृत्ति १०४०।

५ सम० क० ९, पृ० ८५८ निर्णय चूर्णी में ३, पृ० ४९८ ५०२ (यहाँ नगरों में राजमार्ग द्वि मार्ग त्रिमार्ग चोवर (चौराहा) आदि का उल्लेख है।)

६ वही ६, पृ० ५११-१२ ७ ६५६ ६५८ ॥

७ वही ६ पृ० ५११-१२ ७, पृ० ६५६ ॥

८ वही ७ पृ० ६५६ ॥

९ वही ६ पृ० ५११-१२ ॥

युद्ध में कमजोर पड़ने पर इन व्यापारियों का सुरमा-दल, स्त्री-बच्चे आदि नष्ट हो जाते और साथ ही लूट जाता था।<sup>१</sup> व्यापारियों के ये भाग अधिकतर जंगली एवं पहाड़ी होते थे जो भयानक एवं असुरक्षित थे। इसी कारण उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। अन्य साहित्यिक साक्ष्यों में भी व्यापारिक यात्रा सम्बन्धी कठिनाइयों का उल्लेख है। सप्तशतक<sup>३</sup> में मार्गों को दुर्गम एवं भयावह बताया गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग भी मार्ग में डाकुआ द्वारा लूट लिया गया था।<sup>४</sup>

यद्यपि समराहचक्र कहाँ में नगरों एवं हाटा व अलावा दूरस्थ प्रदेशों तक जान वाले मार्गों एवं सड़कों का उल्लेख नहीं है फिर भी अथ ग्रन्थ में माल ले जाने तथा ले आने के लिए छाटी तथा लम्बी सड़क का उल्लेख है।<sup>५</sup> देशी नाममाला में रथ्य<sup>६</sup> (लम्बा मार्ग अथवा सड़क) और लघुरथ्य<sup>७</sup> (छाटी सड़क) का उल्लेख किया गया है। समरागणसूत्रधर<sup>८</sup> में भी कई प्रकार की सड़कों का विवरण प्राप्त होता है जो नगर के बाहर जाती थी। बहुत से भूमि दान में दान दी गयी भूमि की सीमा बाँधन व ध्येय में लम्बी सड़क का उल्लेख है।<sup>९</sup>

प्राचीन काल में यद्यपि सड़कें बहुत कम थी और जाँची भी वह अच्छी नहीं थी। त्रिपिटकालाकापुष्प चरित<sup>१०</sup> में उल्लिखित है कि वर्षा के समय यात्रा रिया का सड़क से होकर चलना दुर्गम हो जाता था। उनका ऊँट फिसलकर गिर पड़ते थे। कीचट में बल तथा सञ्चर आदि फँस जाते थे। उपमितिभव प्रपञ्च कथा<sup>११</sup> से पता चलता है कि सड़कें बीरस तथा समतल न होने के कारण उन पर

१ सम० क० ७ प० ६१६-६५८।

२ निशीथ चूर्णी ४, प० ५२७ ४ पृ० ११८, कुटटनामतम, पक्षि २१८-२९, उपमितिभव प्रपञ्च कथा, पृ० ६६३ ८६३, कथाकाव्य, पृ० २०७, राज तरंगिणी ७ १००९।

३ सप्तशतक पक्षि ११७—'ममदुर्गमसु सभाउ'।

४ डी लाइफ, पृ० ६०, ७३, ८६ १९८।

५ वज्रपन्ता २ ३१-३३, अमिषानरत्नमाला पक्षि २८९।

६ देशीनाममाला ३, ३१, ४ ८ ६, ३९ ७ ५५, ८, ६, १, १४५।

७ वही ३ ३१।

८ समरागण सूत्रधर १, पृ० ३९, पक्षि ६-१४।

९ कामरूप सामनावली, पृ० १८०।

१० त्रिपिटकालाकापुष्प चरित १ पृ० ७।

११ उपमितिभवप्रपञ्च कथा, पृ० ८६३—'विषम मार्ग'।

यात्रा करना आमान काम नहीं था। त्रिपट्टिशलाकापुरण चरित<sup>१</sup> में एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि एक सना को अपने अभियान के समय भाग में पड़ने वाले वृणा<sup>२</sup> का काट कर सुगम पथ बनाना पड़ा था।

कहीं-कहीं यात्रियों की सुविधा के लिए नगर से बाहर मार्गों पर राज्य का आर से पानी पीने का प्रबंध किया जाता था।<sup>३</sup> अयूजईद हसन ने लिखा है कि महरों के किनारे यात्रियों की सुविधा के लिए सराएँ बनवाई गयी थी।<sup>४</sup> प्रबोधविनायक<sup>५</sup> में उल्लेख है कि बुद्धिमान तथा प्रजापालक राजाओं द्वारा सड़कों पर यात्रियों की सुविधा के लिए सत्रागार (आरामदेह गृह) का निर्माण कराया जाता था। किन्तु सम्राट्चक्रवर्ती में ऐसा उल्लेख नहीं है।

ऊपर के विवरण एवं सामग्रियों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में निकटस्थ स्थानों को जाने वाले मार्गों में सुख-सुविधा थी किन्तु दूरस्थ व्यापारिक कर्तव्यों के जाने वाले मार्ग सुविधाजनक एवं सुरक्षित नहीं थे, क्योंकि यात्रियों को अधिकतर घन प्रान्तों तथा पहाड़ी स्थलों को पार करके जाना पड़ता था, जहाँ उनके जान-माल का खतरा पड़ा होता था।

### व्यापार-सामग्री

सम्राट्चक्रवर्ती में हाथी दाँत का व्यापार रस वाणिज्य साल बँवर और विष वाणिज्य<sup>६</sup> का सर्वत्र प्राप्त होता है। इमर नाच-नाच घन धान्य हिरण्य सुवर्ण, मणि-मुक्ता प्रवाल त्रिपल (पत्नी) चतुष्पद<sup>७</sup> (अर्थात् अस्त्र, हस्ति, गाय, बल, बकरी आदि चार पैर वाले पशुओं) के उल्लेख से भी स्पष्ट होता है कि इनका भी क्रय-विक्रय प्रांतीय व्यापारिक कर्तव्यों में होता था। निम्नीय चीजों में व्यापारिक सामग्रियों का चार भागों में विभाजित किया गया है।<sup>८</sup> यथा—गणित

१ त्रिपट्टिशलाकापुरण चरित ४ पृ० ३२५।

२ निमर मजरी पृ० ११७।

३ अयूजईद हसन—गेमियट एवाउण्टग आऊ दइया एण्ड वाइना पृ० ८७।

४ प्रबोधविनायक, पृ० १०६।

५ गम०क० १, पृ० ६३।

६ यहाँ १ पृ० ३९।

७ निम्नीय चीजों ४ पृ० १११—गणित विभाग पुन गणिमणि चतुर्विध गणित पुनःकर्मणि चरित ७ तुलाए गिजनि गहमककराणि मज्ज पुन तुलाणि पारिष्ठा रम्यमानिवाणि, १, पृ० १११ गणित—वर्णमाला पृति ३, पृ० ८६४, भाषाधर्म चक्र ८, पृ० ९८।

(गणना करने योग्य) पूगफल आदि, घरिम (जा ढोली जा सब) खाँड शक्कर पिप्पल आदि, परिमाण करने योग्य वस्तुएँ यथा—घो, चावल आदि और चौथी प्रकार की पारिच्छ (परीक्षण) करके क्रीत वस्तु यथा रत्न, हीरा, माती आदि । अतः निशोष चूर्णों व उल्लेख से पता चलता है कि कुछ व्यापारी तो केवल खान सामग्री का ही व्यापार करते थे, यथा चावल, गेहूँ, तेल भव्यन<sup>१</sup> आदि । पूर्वी भारत के कपड़े लाट देश में मेहग दामों पर बँचे जाते थे ।<sup>२</sup> निशोष चूर्णों में उल्लिखित है कि पिप्पली, हरिताल मनासिला, लवण आदि सामग्रियाँ सैकड़ा याजन दूर से मगाई जाती थी ।<sup>३</sup>

### वैदेशिक व्यापार-केन्द्र

सम्राट् क्व वहाँ में उल्लिखित है कि तत्कालीन बड़े-बड़े भारतीय व्यापारी व्यापार के निमित्त भारत से बाहर जाया करते थे ।<sup>४</sup> यहाँ के व्यापारी अधिक लाभ की लालसा से समुद्री मार्गों से जाकर जलयानों द्वारा विभिन्न द्वीपों को जाया करते थे ।<sup>५</sup> सम्राट् क्व कहा के पात्र वजयती<sup>६</sup> तथा ताम्रलित्ति<sup>७</sup> नामक प्रसिद्ध बन्दरगाहों से भारत के बाहर महाकटाह<sup>८</sup> द्वीप, चीन द्वीप<sup>९</sup> सिंहल द्वीप<sup>१०</sup>, सुवर्ण द्वीप<sup>११</sup> और रत्न द्वीप<sup>१२</sup> आदि के लिए प्रस्थान करते थे ।

इन द्वीपों के दृष्टांतर में वे अपने व्यापारिक भाल बँच कर यथेष्ट लाभ प्राप्त कर अपने देश के लिए उपयुक्त व्यापारिक सामग्री खरीद कर वापस आते

- १ निशोष चूर्णों ४, पृ० १११, बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति ३, पृ० ८६४ ।
- २ वहाँ २, पृ० १४, बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति ४, पृ० १०६८ ।
- ३ वही ३, पृ० ५१६—हरितालमनासिला जहा लवण—एते पिप्पलिमादिणो जायण सत्ताता आगया वि जे हरीतकिमादिणो आतिण्णा त धेप्पति , तथा बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति २, पृ० ३०६ ।
- ४ सम०क० ५, पृ० ४९८ ।
- ५ वही ४ पृ० २४६, २५१, २६८, ६ ५३९-४०, ५४२-४३-४४, ५५१, ५५५, ७, ६१३ ।
- ६ वही ६ पृ० ५३९ ।
- ७ वहाँ ४ पृ० २४०-४१-४२, ५, ३६७-६८ ६९, ७, ६५२-५३-५४ ।
- ८ वही ८, पृ० २५० २५९, ५, पृ० ४२६-२७ ७, ६१३ ।
- ९ वही ६ पृ० ५४० ५५१-५२, ५५५ ।
- १० वही ४, पृ० २५४ ५, ४०३, ४०७ ४२० ।
- ११ वही ५ पृ० ३०७-९८ ६, पृ० ५४०, ५४३ ।
- १२ वहाँ २ पृ० १२६, ६ ५४४-४५ ।

थे। कभी-कभी व्यापार की अनुमति प्राप्त करने के लिए वहाँ के राजा का भेंट आदि प्रदान करते थे जिसे वे (व्यापारी) कर मुक्त हो जाते थे।<sup>१</sup>

अब स्रोतों से भी पता चलता है कि भारत का व्यापार बाह्य देशों से चला करता था। ६०७ ई० में चीना सम्राट ने ममुद्री नामक चीन-तु (स्याम) से व्यापारिक सम्बन्ध बनाने का संकेत भेजा था। ६५६-६५८ ई० में भारत के बहुत से प्रदेश यथा—चान-या (चम्पापुर) कान चिह फा (काँचापुर), सिंह ली चुन (संभवतः चालुक्य राज्य) और मोला (मलाया) आदि ने चीन देश से व्यापारिक सम्बन्धों के लिए अधिकारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे।<sup>२</sup> बृहत्कथा मञ्जरी में उल्लिखित है कि भारतीय व्यापारी कटाह द्वीप (संभवतः कटाह द्वीप) का जात थे।<sup>३</sup> बृहत्कथा श्लोकसंग्रह तथा कथाकोष<sup>४</sup> में भारतीय व्यापारियों द्वारा सुवर्ण द्वीप जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। हरियेण द्वारा रचित बृहत्कथा कोष में भारतीय व्यापारियों द्वारा सुवर्ण द्वीप<sup>५</sup> तथा रत्नद्वीप<sup>६</sup> जाने का उल्लेख है।

कथासरित्सागर की कहानियाँ में सुवर्ण द्वीप तथा कटाह द्वीप से व्यापार का वर्णन प्राप्त होता है और उस कहानी का एक पात्र अपने पुत्र तथा छोटी बहन को खोजने के लिए नारिकेल द्वीप, कटाह द्वीप, सुवर्ण द्वीप और सिंहल द्वीप को जाने वाले व्यापारियों से मिलता है।<sup>७</sup> सातवीं शताब्दी में धर्मपाल नामक बौद्ध भिक्षु ने बंगाल से सुवर्ण द्वीप को प्रस्थान किया था।<sup>८</sup>

पाहसियान के समय में ताम्रलिप्ति से सुमात्रा जाने के लिए एक जहाज लका आया था।<sup>९</sup> कथासरित्सागर<sup>१०</sup> में भी भारतीय व्यापारियों द्वारा लका

१ सम० क० ६ प० ५०९ ५५१, ५६२ देखिये—नाताधमकथा ८, प० १०२ तथा—प्रतिपाल भाटिया—परमाराज पृ० ३०४।

२ चाऊ जु-कुआ पृ० ७-८।

३ जनल आफ दी मलाया ब्राच आफ दी रवायल एशियाटिक सोसायटी ३२, भाग २, प० ७४-७५।

४ बृहत्कथा मञ्जरी २, प० १८३।

५ बृहत्कथा श्लोकसंग्रह १८ ४२८ कथाकोष पृ० २९।

६ बृहत्कथा काव्य ५३ ३।

७ वही ७८, ६२।

८ आर० सी० मज्झिम-सुवर्ण द्वीप १, पृ० ३७-३८ ५१-५२।

९ इण्डियन हिस्टोरिकल नवार्टरला १३ ५९३ ५९६।

१० लीग प० १००।

११ कथासरित्सागर (टानी), ६, पृ० २११।

जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। आठवीं शताब्दी में लका के एक अभिलेख में भारतीय व्यापारियों द्वारा लका से व्यापार किये जाने का उल्लेख है।<sup>१</sup>

ताम्रलिप्ति नामक प्रसिद्ध बंदरगाह से सुवर्ण द्वीप, कटाह द्वीप आदि का भारतीय व्यापारिक जहाज आते जाते थे।<sup>२</sup> ताम्रलिप्ति के अलावा भारत के पूर्वी तट पर पाटमपुरी, कलिंग अथवा कलिंग पाटम, चिकाकोल, वानपुर और रामेश्वर आदि बंदरगाह व्यापार के केन्द्र माने जाते थे।<sup>३</sup>

### वैदेशिक व्यापार-सामग्री

समराट्चक्र कहा के पान विभिन्न द्वीपों में व्यापार के योग्य निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ लेकर जाते थे। समराट्चक्र कहा में व्यापारियों द्वारा भाण्ड ल जाने का उल्लेख है।<sup>४</sup> ये भाण्ड विभिन्न धातुआ सिक्कों एवं अन्य प्रकार की सामग्रियाँ के होते थे। स्वर्ण भाण्ड,<sup>५</sup> रत्न भाण्ड<sup>६</sup> आदि से स्पष्ट होता है कि बाहरी देशों से स्वर्ण, रत्न, मणि मुक्ता आदि का आयात होता था। रत्नद्वीप से रत्न तथा सुवर्ण भूमि से स्वर्ण प्राप्ति का वर्णन इस बात का सिद्ध करता है कि उन उन द्वीपों से क्रमशः रत्न और स्वर्ण का आयात होता था। समराट्चक्र कहा में इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि कौन कौन सी वस्तुओं का आयात निर्यात होता था।

इडनबुरन्दक ने भारत से निर्यात की जाने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उल्लेख किया है यथा मुसबूर का लकड़ी चदन की लकड़ी, कपूर और कपूर का पानी जायफल, नारियल साग-सब्जियाँ, मसमल तथा मूँसी वस्त्र एवं हाथी दात के बने सामान आदि।<sup>७</sup> मार्कोपोलो के अनुसार भारतीय व्यापारी अपने साथ मसाले कीमती पत्थर, माती सिल्क के कपड़े और सोना आदि व्यापारिक सामग्री लेकर चलते थे।<sup>८</sup> मार्कोपोलो आगे लिखता है कि भारत चीन देश से सिल्क के कपड़े तथा साना आदि प्राप्त करता था।<sup>९</sup> भार

१ जनल आफ दी एशियाटिक सासायटी आफ बंगाल १९३५, पृ० १२।

२ बह्मकथा इलोकमग्रह १८ १७६, बृहत्कथा मजरी २, १८३।

३ टी० सी० दास गुप्त-ऐस्पेक्ट आफ बंगाली सासायटी पृ० ३०।

४ सम० क० ४, पृ० २४० ४१ ४२, २४७ २८६ ८७।

५ वही ४, पृ० २८३ ६, ५५१, ५५८ ५६१।

६ वही ६ पृ० ५८६ ८७।

७ फेरण्ड टेक्स्टस पृ० ३१।

८ मार्कोपोलो १ १०७।

९ वही २, ३९०, २ २४, १३२, १५२, १५७, १७६, १८१।

थे। कभा-कभी व्यापार की अनुमति प्राप्त करने के लिए वहाँ के राजा को भट आदि प्रदान करते थे जिससे वे (व्यापार) कर मुक्त हो जाते थे।<sup>१</sup>

अन्य स्रोतों से भी पता चलता है कि भारत का व्यापार बाह्य देशों से चला करता था। ६०७ ई० में चीनी मन्नाट ने समद्री मार्ग से चीन-सु (स्याम) से व्यापारिक सम्बन्ध बनाने का सन्देश भेजा था। ६५६-६५८ ई० में भारत के बहुत से प्रदेश यथा—चान-या (चम्पापुर), कान चिह फा (काचीपुर) सिंह ली-चुन (संभवतः चालुक्य राज्य) और माला (मलाया) आदि ने चीन देश से व्यापारिक समझौता के लिए अधिकारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे।<sup>३</sup> बहत्कथा मजरी में उल्लिखित है कि भारतीय व्यापारी कटाह द्वीप (संभवतः कटाह द्वीप) को जाते थे।<sup>४</sup> बहत्कथा बलाकसग्रह तथा क्याकोप<sup>५</sup> में भारतीय व्यापारियों द्वारा सुवर्ण द्वीप जान का उल्लेख प्राप्त होता है। हरियेण द्वारा रचित बहत्कथा कोप में भारतीय व्यापारियों द्वारा सुवर्ण द्वीप<sup>६</sup> तथा रत्नद्वीप<sup>७</sup> जाने का उल्लेख है।

कथा-सरित्सागर की कहानियों में सुवर्ण द्वीप तथा कटाह द्वीप से व्यापार का वर्णन प्राप्त होता है और उस कहानी का एक पात्र अपने पुत्र तथा छोटी बहन को खोजने के लिए नारिकल द्वीप, कटाह द्वीप सुवर्ण द्वीप और सिंहल द्वीप को जान वांटे व्यापारियों से मिलता है।<sup>८</sup> सातवीं शताब्दी में धर्मपाल नामक बौद्ध भिक्षु ने बंगाल से सुवर्ण द्वीप को प्रस्थान किया था।<sup>९</sup>

फाहसियान के समय में ताम्रलिप्ति से सुमात्रा जाने के लिए एक जहाज लका आया था।<sup>१०</sup> कथासरित्सागर<sup>११</sup> में भी भारतीय व्यापारियों द्वारा लका

१ सम० क० ६ प० ५०९ ५५१, ५६२ देखिये—नाताधमकथा, ८, प० १०२ तथा—प्रतिपाल भाटिया—परमाराज प० ३०४।

२ बाऊ जु-कुआ पृ० ७-८।

३ जनल आफ दी मलाया स्ट्राच आफ दी रवायल एशियाटिक सोसायटी ३२, भाग २, प० ७४-७५।

४ बहत्कथा मजरी २, पृ० १८३।

५ बहत्कथा बलाकसग्रह १८, ४२८ क्याकोप, पृ० २९।

६ बहत्कथा कोप ५३ ३।

७ वही ७८ ४२।

८ आर० सी० मजूमदार—सुवर्ण द्वीप १, पृ० ३७-३८, ५१-५२।

९ इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली १३, ५९३ ५९६।

१० लीग पृ० १००।

११ कथासरित्सागर (टानी) ६, प० २११।

जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। आठवीं शताब्दी में लंका के एक अभिलेख में भारतीय व्यापारियों द्वारा लंका में व्यापार किये जाने का उल्लेख है।<sup>१</sup>

ताम्रलिप्ति नामक प्रसिद्ध बंदरगाह से सुवर्ण द्वीप, कटाह द्वीप आदि का भारतीय व्यापारिक जहाज आते जाते थे।<sup>२</sup> ताम्रलिप्ति के अलावा भारत के पूर्वी तट पर पाटमपुरी, कलिंग अथवा कलिंग पाटम, चिवाकोल, वानपुर और रामेश्वर आदि बंदरगाह व्यापार के केन्द्र माने जाते थे।<sup>३</sup>

### वैदेशिक व्यापार-मामग्री

सम्राट् चक्रवर्ती ने पाद विभिन्न द्वीपों में व्यापार के योग्य निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ लेकर जाते थे। सम्राट् चक्रवर्ती में व्यापारियों द्वारा भाण्ड लाने का उल्लेख है।<sup>४</sup> ये भाण्ड विभिन्न धातुओं से बने हुए अथवा प्रकार की सामग्रियों के होते थे। स्वर्ण भाण्ड,<sup>५</sup> रत्न भाण्ड<sup>६</sup> आदि से स्पष्ट होता है कि बाहरी देशों से स्वर्ण, रत्न अथवा मुक्ता आदि का आयात होता था। रत्नशास्त्र में रत्न तथा सुवर्ण भूमि से स्वर्ण प्राप्ति का वर्णन इस बात का सिद्ध करता है कि उन-उन द्वीपों में क्रमशः रत्न और स्वर्ण का आयात होता था। सम्राट् चक्रवर्ती ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि कौन-कौन-सी वस्तुओं का आयात निर्यात होता था।

इन्द्रप्रस्थ ने भारत से निर्यात की जाने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उल्लेख किया है। यथा मुसंवर की लकड़ी, चंदन की लकड़ी, कपूर और कपूर का पानी, जायफल, नारियल, साग-सब्जियाँ, मखमल तथा सूती वस्त्र, एवं हाथी दाँत के बने सामान आदि।<sup>७</sup> मार्कोपोलो के अनुसार भारतीय व्यापारी अपने साथ मसाले, कीमती परवर, मोती, सिक्के व कपड़े और सोना आदि व्यापारिक सामग्री लेकर चलते थे।<sup>८</sup> मार्कोपोलो आगे लिखता है कि भारत चान अथवा सिक्के के कपड़े तथा साना आदि प्राप्त करता था।<sup>९</sup> भार

१ जनरल आफ दी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल १९३५, पृ० १२।

२ बहलकथा श्लोकमग्न १८, १७६, बृहत्कथा मजरी २, १८३।

३ टी० सी० दास गुप्त-ऐम्पेकट आफ बंगाली सासायटी, पृ० ३०।

४ सम० क० ४, पृ० २४० ४१ ४२, २४७ २८६ ८७।

५ वही ४ पृ० २८३ ६ ५५१, ५५८, ५६१।

६ वही ६ पृ० ५८६ ८७।

७ फेरिड टेक्स्टस पृ० ३१।

८ मार्कोपोलो १ १०७।

९ वही २ ३९० २ २४ १३२ १५२ १५७, १७६, १८१।



तीय साहित्यों में भी चीनी सिल्क ( चीनातुक ) का उल्लेख मिलता है ।<sup>१</sup> वजय-ती में भी चीनपट्ट<sup>२</sup> का उल्लेख है । एक तामिल अभिलेख ( ग्यारहवीं शदी का ) में उल्लिखित है कि दक्षिणा भारत को चीन देश से साना प्राप्त होता था ।<sup>३</sup> मार्कोपोलो के अनुसार विदेशी व्यापारी जो आते थे वे अपने साथ साना, चाँदी, ताँबा आदि ले आते थे ।<sup>४</sup> वजय-ती के अनुसार भी सुवर्ण द्वीप को साने का केन्द्र माना जाता था और वहाँ से भारत के लिए सोना आता था ।<sup>५</sup> तिलकमजरी में उल्लिखित है कि उपयुक्त द्वीपों में मशिरता को खान साना, चाँनी और मोती आदि का उत्पन्न स्थान है ।<sup>६</sup>

### सामुद्रिक व्यापार वाहन

सम्राट्त्व कहा में यान पान<sup>७</sup> ( जलयान ) का उल्लेख कई बार किया गया है । इन जलयानों ( समुद्री जहाज ) द्वारा भारतीय व्यापारों चीन द्वीप सिंहल द्वीप, सुवर्ण द्वीप तथा महाकटाह द्वीप आदि बाह्य देशों का जाते तथा व्यापार करके वापस लौट आते थे । निम्नीय चूर्णों में चार प्रकार के जलयानों का उल्लेख है जिनमें एक सामुद्रिक मार्गों का तय करने के लिए प्रयुक्त समझा जाता था<sup>८</sup> तथा अन्य तीन समुद्र के किनारे तथा नदियों व झीलों के लिए प्रयुक्त थे ।<sup>९</sup> प्रथम प्रकार का यान सबसे बड़ा जलयान<sup>१०</sup> था जो सामुद्रिक रास्तों से देश विदेश को आया जाया करता था । इन जहाजों का रोकने के लिए लगर<sup>११</sup> का प्रयोग किया जाता था । ये जलयान पाला के सहारे हवा के वेग से चलाए

१ कुट्टनीमत्तम पक्ति ६६ ३४४ नवमीय चरित—२१ २ ।

२ वजय ती, पृ० ४३ १ ६० ।

३ जनल आफ दी नुमिस्मेटिक सोसायटी आफ इंडिया २० १३ ।

४ मार्कोपोलो २ ३९५ ३०८ ।

५ वजय-ती पृ० ४२ १।२१ ।

६ तिलक मजरी, पृ० १३३ ।

७ सम० क० ४, पृ० २४६ २५१, २६८ ६, ५३९ ४०, ५४२ ४३ ४४, ५५१-५५५ ।

८ निम्नीय चूर्णों १, ६९—'वारिणी नावातारिमें उदये चउरा ।'

९ वही ९, पृ० ६९ ।

१० वही १, पृ० ६९ ज्ञातघमकथा ९, १२३ १७ पृ० २०१ ।

११ सम० क० ४, पृ० २४६-४७ ६ ५३९ ४० ज्ञात घम कथा ८ पृ० ९८, आचाराग २।३, १।३४२ ।

जाते थे ।<sup>१</sup> उनमें पतवार तथा डढे भी लगे रहते थे ।<sup>२</sup> इन जलयानों के चालकों का नियामक कहा जाता था ।<sup>३</sup> कभी-कभी समुद्री तूफानों में ये यान भग्न हो जाते थे और यात्रिया का काफी नुकसान उठाना पड़ता था, व स्वयं फलकों ( लटकी क पटर ) आदि की सहायता से किसी प्रकार बच कर बाहर निकल पाते थे ।<sup>४</sup>

समुद्र में तरने वाले जहाजा का नाव<sup>५</sup> पोत<sup>६</sup>, प्रवहण<sup>७</sup> अथवा यानपट्ट<sup>८</sup> कहा जाता था । जैन ग्रन्थ अगविज्जा में प्राचीन भारत में चार प्रकार के जहाजा का उल्लेख है ।<sup>९</sup> इनमें नाव और पोत सबसे बड़े जहाज माने जाते थे । कोलियम्ब, सघाड प्लावा और तप्पक आदि कुछ छोटी थी, करय और वेल् उनमें कुछ छोटी तथा तुम्बा कुम्मा और दाति आदि सबसे छोटी आकार की जहाजें थी ।<sup>१०</sup> साक्ष्यों से पता चलता है कि भारतीय जहाज चीन के जहाजों से छोटे होते थे ।<sup>११</sup>

प्राचीन काल में भारतीय व्यापारी व्यापार के निमित्त यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व दान आदि के साथ गुरु-श्रवता तथा जलनिधि की पूजा अर्चा भी किया करते थे ।<sup>१२</sup> यात्रा करते समय समुद्री मार्गों में उन व्यापारियों को बड़े-बड़े तूफाना

- १ सम० क० ४, प० २४६४७ ६, ५३९४० जातुघम कथा ८ प० ९८ ।
- २ आचाराम २।३ १।३४२ म अलित (डढा) पीटय (पतवार) वस (वास) वलय और रज्जु का भी उल्लेख है ।
- ३ सम क० ६ प० ५४० दविण—आवश्यक चूर्णी, प० ५१२ निशीय चूर्णी ३ प० ३७४ ।
- ४ वही ४ प० २५३ ७ ७१३ देखिए—निशीय चूर्णी ३ प० २६९, बृहत्कल्प भाष्यवृत्ति ५ प० १३८८ जातुघम कथा ९ प० १२३ यशस्तिलक, पृ० ३४५ उत्तर० ।
- ५ निशीय चूर्णी १ प० ६९ ।
- ६ वही ४ पृ० ४०० ।
- ७ वही ३ पृ० १४२ ।
- ८ वही ३ प० २६९ ।
- ९ वासुदेवशरण अग्रवाल—इंद्रोदकशन आफ सायबाह प० १० ।
- १० वही प० १० ।
- ११ मार्कोपोलो—२, प० ३९१ ।
- १२ सम० क० ४ पृ० २४६४७ ६ प० ५३९-४० देखिए जातुघम कथा ८ पृ० ९७ ।

का सामना करना पड़ता था । तूफान व समय ये जलयान कभी क बाहर हो जाते थे तथा नाविक और यात्री घबड़ा जाते थे ।<sup>१</sup> कभी-कभी तो उनके जहाज टूट जाते ■ तथा सब व्यापारिक सामग्री आदि नष्ट हो जाती थी ।<sup>२</sup>

शिल्प

समराइच्चकहा में तत्कालीन भारतीय शिल्पों में भी कुछ नाम आय हैं । य शिल्पी अपने हस्त कौशल के सहार अपनी जीविका चलाते थे । आदि पुराण में भी हस्त कौशल को शिल्प कम कहा गया है ।<sup>३</sup> अपने हस्तकौशल के बल पर अपना जीवन निर्वाह करने वालों में बड़ई, लुहार, कुम्हार, सुनार, चमार, जुलाहा आदि मुख्य थे । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शिल्पी शब्द की व्याख्या करते हुए स्नायक, सवाहक, अरत्तरक, रजक, मालाकार आदि का तो शिल्पी कहा है इसके साथ-साथ उबटन बनाना सुगंधित चूण तैयार करना, चन्दन द्रव तैयार करना कस्तूरी एवं कुकुम आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार के चूण तैयार करना शिल्पिया का ही काम था ।<sup>४</sup> समाज में अधिक दृष्टिकोण से इन शिल्पियों का अत्यधिक उपयोग ममज्ञा जाता था । समराइच्चकहा में यद्यपि शिल्प के विषय में तो कुछ उल्लेख नहीं मिलता किन्तु कुछ शिल्पियों का नाम अवश्य आया है जिनका विवरण अधोलिखित ढंग से प्राप्त होता है ।

सुवर्णकार<sup>५</sup>—ये सोन, चाँदा आदि धातुओं द्वारा विभिन्न प्रकार के आभूषण तैयार करते थे । ये लग स्वर्ण आदि धातुओं के विघटन होते थे । महाभाष्य में सुवर्ण का एक बार तपाने की क्रिया के लिए निष्पत्ति सुवर्ण सुवर्णकार किन्तु बार बार तपाने के लिए निस्तपत्ति का उल्लेख हुआ है ।<sup>६</sup> अतः स्पष्ट होता है कि पहले स्वर्ण का तपान लिया करते थे और तत्पश्चात् उससे आभूषण आदि तैयार करते थे ।

चित्रकार<sup>७</sup>—चित्रकार भी एक प्रकार के शिल्पी थे । वे अपनी चित्रकारिता का प्रदर्शन मकानों, वस्त्रों और बतनों आदि पर किया करते थे ।

१ सम० क० ६ प० ५४०, देखिए—पातृधम कथा ७, पृ० २०१ ।

२ वही ४ प० २५३, ७ पृ० ७१३, पातृधम कथा ९ प० १२३ ।

३ आदि० १६।१८२ ( शिल्प स्यात्कर कौशलम् ) ।

४ अर्थशास्त्र—बौध्मवा प्रकाशन १९६२, पृ० ५१४ ।

५ सम० क० प० ५६०, देखिए—जम्बू दीप प्रज्ञप्ति ३, पृ० ४३ रामायण—२, ८३, ११-१४ ।

६ पतञ्जलि महाभाष्य, ८, ३, १०२ ।

७ सम० क० ७, पृ० ७३९, देखिए—जम्बूदीप प्रज्ञप्ति ३: ४३ पातृधम कथा ८, प० १०५ ॥

लोहार—गमराहन्व कहा में लोहे की वस्तुओं, यथा लौह पिंजर, लौह-मृगला लोहे की कील<sup>१</sup> आदि व उल्लेख से लोहारों के व्यवसाय का अनुमान लगाया जा सकता है। लोहार खेती के योग्य हल, कुदाली लकड़ी काटने का फरसा आदि बना कर बेचते थे।<sup>२</sup> लोहे से स्पात बनाया जाता था और उसमें अनेक औजार हथियार कवच आदि तयार किये जाते थे। बृहत्कल्पभाष्य<sup>३</sup> में उल्लिखित है कि इम्यात में साधुआ के उपयोग आने वाले छुरा सुई, आरा मृत्ना आदि बनाये जाते थे। लोहे की भट्टिया में कच्चा लोहा पकाया जाता था। गम गाव जलते हुए लोहे का मड़सो से पकड़ कर उठाया जाता था और फिर नेह<sup>४</sup> (अधिकरिणी) पर रख कर बूटा जाता था। इस प्रकार लोहे को हथौड़े से कूट पीट एवं काट कर उपयोगी वस्तुएँ तयार की जाती थी।

कुम्भकार—कोडिय कम्भ<sup>५</sup> अर्थात् वासन या बतन ( मिट्टी व ) बना कर बेचने वाले कुम्भकारों का भी शिल्पकारों का श्रेणी में रखा जाता था। इन्हें कुलाल भी कहा जाता था। कुम्भ ( घड़ा ) बनाने के कारण इन्हें कुम्भकार कहा जाता था।<sup>६</sup> जिस घर का आवश्यकता पड़ती थी वह कुम्भार के घर जा कर घट बनाने का आदेश देता था।<sup>७</sup> बड़े-बड़े मटके चतुर कुलाल ही बना सकता था जिस महाकुम्भकार कहते थे।<sup>८</sup> वह वाद्या व साचे आदि तयार करता था।<sup>९</sup> कुलाल द्वारा बनाये गये पात्रा का कीलालक कहते थे।<sup>१०</sup> अथ प्रया में भी कुम्भकार द्वारा रचित घड़े, कलम आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>११</sup> पण्यशाला में बतना की विक्री की जाती थी, भाण्डशाला में उन्हें इकट्ठा करके रखा जाता था, कमशाला में उन्हें तयार किया जाता, पचनशाला में उन्हें

१ सम० क० ३ प० २०८ ४ प० ३०९ ३१९ ३४३, ७ प० ६६३, ९ प० ९२६ ।

२ उत्तराख्ययन सूत्र, १९-६६, आवश्यक धूर्णी, प० ५२९ ।

३ बृहत्कल्पभाष्य १।२८८३ ।

४ याख्या प्रनप्ति, १, १६।१ ।

५ सम० क० १, प० ६२-६३ देखिए—रामायण २, ८३ ११-१४ ।

६ पतजलि महाभाष्य १, ३ ३, प० २३ ।

७ आपिशल शिन्ना १ पृ० १७ ।

८ पतजलि महाभाष्य ३, १ ९२ पृ० १६७ ।

९ वहां ४ ४, ५५, प० २५९ ।

१० पतजलि महाभाष्य ४, ३ ११६ प० २५० ।

११ उपासक दगा ७, प० ४७-४८, अनुयोग द्वार सूत्र १३२ प० १३९ ।

जन्तपोलण कम्म<sup>१</sup>—कोल्हू आदि चलाने का व्यवसाय ।

दावणि दावणय कम्म<sup>२</sup>—जंगल आदि जगाने के लिए आग लगाना या लगाना ।

असइपायण<sup>३</sup>—कुत्ता चिल्ला आदि पशु तथा दाम-दासी आदि पाल कर वचना या भाड़े से आय कमाना । गौतम ने भा पशु तथा मनुष्य (दास) आदि का व्यवसाय करना अनतिक माना है ।<sup>४</sup>

सागडि कम्म<sup>५</sup>—गाड़ी जोत कर आजीविका चलाने वाला काम । गौतम ने गाड़ी जोतना ता दूर रहा गाड़ी में जातने वाले बल का भी बेचना आवाय ब्राह्मणों के लिए वर्जित बताया है ।<sup>६</sup>

सरवह तलायस्सासणाय<sup>७</sup>—सालाव, वह आदि सुखा कर आय प्राप्त करने वाला काम । गौतम ने भी मधु मास, विपली वस्तुओं के साथ ही जल का व्यवसाय करना ब्राह्मणा के लिए वर्जित बताया है ।<sup>८</sup>

गारुडिया<sup>९</sup>—गारुडिक मंत्र आदि जानने वाला गारुडिया कह जात था । यह लाग भयकर से भयकर विपले मर्षों के काट लने पर मन्त्रोपधि आदि का उपचार कर लोगों को ठीक करते तथा उसी से अपनी जीविका चलात था ।

## पालतू पशु

समराइच्च कहा में हिरण्य सुवण मणि मुक्ता आदि के साथ-साथ द्विपद अर्थात् पक्षी चतुष्पद अर्थात् जानवरों ( पालतू तथा जंगली दोनों ) का भा सम्पत्ति की श्रेणी में गिना गया है ।<sup>१०</sup> वैदिक काल में पशु को एक प्रधान धन माना जाता था । ऋग्वेद में कहा गया है कि मानव, अश्व और गौ के मांस भक्षी का सिर कुचल दो ।<sup>११</sup> उस समय ग्राम्य पशुओं में गाय भस, बकरी भैंस

१ सम० क० १ ६२-६३ भगवती सूत्र ८।५।३३० ।

२ वही १, पृ० ६२-६३, भगवती सूत्र ८।५।३३० ।

३ वही १ प० ६२-६३ भगवती सूत्र ८।५।३३० ।

४ गौतम ७।८-१४ भगवता सूत्र ८।५।३३० ।

५ सम० क० १ प० ६२-६३ भगवती सूत्र ८।५।३३० ।

६ गौतम ७।१५ ।

७ सम० क० १ प० ६२-६३ भगवती सूत्र ८।५।३३० ।

८ गौतम । ७ ८ १४

९ सम० क० २ पृ० १३२, ४, प० २५५ ।

१० वही १ प० ३९ ८ प० ७३४-३५ ।

११ ऋग्वेद ८, ४, १८ ।

घोडा कुत्ता और मुअर यज्ञ पशु य । शतपथ ब्राह्मण में आया है कि 'क्तमो प्रजापतिरिति, यज्ञरिति क्तमा यज्ञरिति पशुरिति' अर्थात् प्रजापति क्या ह ? प्रजापति यज्ञ है । यज्ञ क्या ह ? पशु ही यज्ञ ह । यहाँ पशु की महत्ता बताते हुए उसे यज्ञ और प्रजापति कहा गया ह ।<sup>१</sup>

समराइष्य कहा में निम्नलिखित पालतू पशुओं का उल्लेख प्राप्त होता है—

गाय<sup>२</sup>—गाय से दूध प्राप्त किया जाता था तथा उसके बछड़े बड़े होकर हल खींचते थे । बहिक काल में गाय का सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त था ।<sup>३</sup> महाभाष्य में आया ह कि देवदत्त घनी ह क्योंकि उसने पास गौ, अश्व और हिरण्य ह ।<sup>४</sup> उपाध्यायों व गुरुओं को श्रद्धा की प्रतीक गाय भेंट म दी जाती थी ।<sup>५</sup> किसी किसी परिवार के पास तो सहस्रा गायें हाती थी ।<sup>६</sup> प्राचीन काल में गाय बल, भल, भैंस आदि राज्य की बहुमूल्य संपत्ति समझे जाते थे ।<sup>७</sup>

बैल<sup>८</sup>—महाभाष्य में आगे चल कर श्रेष्ठ बल बनने वाले बछड़े को आपम्य<sup>९</sup> कहा गया ह । अच्छे बल से मान जाते थे जो गाड़ी और हल दोनों खींचने के काम आते थे ।<sup>१०</sup> बैल रथ भी खींचते थे ।<sup>११</sup>

१ श्रीषट्त्र जन—हमारे पशु यज्ञी पृ० ४१

२ सम० क० ३ १९२, ४ ३४७ ४८, ८, ७३४ ३५, ९ ९३८ देखिए—  
यन० सी० वचोपाध्याय—एकानामिक लाइफ एण्ड प्राप्ति इन ऐसियट इंडिया पृ० १३९ ४० ।

३ ऋग्वेद—८ ४, १८ तथा देखिए—श्रीषट्त्र जन—हमारे पशु-यज्ञी, प० ३५ ।

४ महाभाष्य १ ३ ९, पृ० २८ देवदत्तस्य गवोऽश्वो हिरण्य च । आढयो वधवेय ।

५ वही १ ४ ३२, प० १६७ ।

६ वही २, १, ५१, पृ० ३०५ ।

७ औपपातिक सूत्र ६ तथा हरिभद्र—आवश्यक टीका पृ० १२८ ।

८ सम० क० २ पृ० १३५, १५२ ४ पृ० ३४७, देखिए औपपातिक सूत्र—  
६ आवश्यक—टीका पृ० १२८ ।

९ महाभाष्य ५ १, १३ पृ० ३०५ ।

१० वही ५, ३, ५५ पृ० ४४५ गौरय शकट वहति । गौतरोऽय य शकट वहति सार च ।

११ वही २ २, २४, पृ० ३३६ ।

भेस महिय<sup>१</sup>—समराइच्च कहा में महिय को अरण्य तथा पालतू जाना प्रकार का पंग कहा गया ह। किन्तु ये प्राय अरण्य पंग ही थ। कही-वही इनने पाले जाने का भी भवेत प्राप्त होता है। तरण भसा को जिनके सीम निकल रहे हा कगाह कहते थे।<sup>२</sup> अय जन ग्रयों में भस भी गाय बल भेड, बकरी की भांति राज्य की बहुभूय सम्पत्ति ममशी जाती थी।<sup>३</sup>

बकरा बकरी<sup>४</sup>—आवश्यक चूर्णी में भी भेड गाय आदि के माय हो बकरी को भी दूध देने वाला पंग बताया गया ह।<sup>५</sup> अजा को कृपका का धन माना गया ह।<sup>६</sup> भेड खरिया का प्रमुख उपयोग ऊन और मास के कारण होता था। गा और अज दाना की यथा में बलि दी जाती थी।<sup>७</sup> इद्र और अग्नि को छाग की हवि देने का उल्लेख ह।<sup>८</sup>

भेड<sup>९</sup>—जन ग्रया में इसे भी राज्य की सम्पत्ति समझा गया ह।<sup>१०</sup> गाय भस की तरह इसका दूध भी उपयोग में आता था।<sup>११</sup> भेड के दूध का अविमत् अविम या अविमरीस कहते थे।<sup>१२</sup> भेडा के बठने को अविपट तथा उनके ममह को अविक्क कहते थे।<sup>१३</sup>

१ सम० क० २ प० १३५ ४ ३१६ ३१८ ३२३ ३४७ ४८ ६ ५१० ५३० खिए—यन० मी० वद्यापाध्याय—एकानामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन ऐमियट इंडिया प० १४२।

२ महाभाष्य १: १ २२ प० २०६ तथा ४, २, ८७ प० १९६।

३ जीपपानिक सूत्र ६ तथा हरिभद्र—आवश्यक टीका पृ० १२८।

४ सम० क० ३ पृ० १८३ ४ ३१४ ३२३ ६ ५३० खिए—श्रीषट्त्र जन—हमार पंग पक्षी पृ० ३०।

आवश्यक चूर्णी २ प० ३१९।

५ महाभाग १ १ ८६ पृ० २८० (अजाविधनी दवन्त यन्तौ न ज्ञायत कस्याजाधन कस्यावय इति)।

७ वही ४ १ ९२, पृ० १५५ (गारनुवध्याऽजोविनपोमीय)।

८ वही २ ३ ६१ पृ० ४४८।

९ सम० क० ८ पृ० २७९।

१० जीपपानिक सूत्र ६ तथा हरिभद्र—आवश्यक टीका पृ० १२८।

११ आवश्यक चूर्णी २ ३१९।

१२ महाभाष्य ८ २ ३६ प० १७७।

१३ वही ५, २ २९ प० ३७६।

गदभ<sup>१</sup>—उष्ट्र व समान खर (गदभ) भी भार वाहन एवं गवट वाहन के लिए पाला जाता था। महा भाष्य में गदभ द्वारा खींचे जाने वाले गवट की गदभ नाम लिया गया है।<sup>२</sup> गोगाल का भीति खरगाल<sup>३</sup> का भी उत्प्रेम प्राप्त होता है। गदभ अरण्यक भी थे।<sup>४</sup>

खच्चर<sup>५</sup>—यह अरण्य पशु के साथ-साथ पालतू भी था। प्रजापना सूत्र में इस अवतर कहा गया है।<sup>६</sup> यह भी एक भार वाहक पशु था।

कुत्ता<sup>७</sup>—कुत्ता भी एक पालतू पशु था। ऋग्वेद में माता पिता तथा नौकरों व साथ कुत्ते व वस्त्राण की कामना की गयी है।<sup>८</sup> ऊँची नम्ब व कुत्ते का बौलेयक कहते थे।<sup>९</sup> महाभाष्य में उल्लिखित है कि कुत्ता इणु (ईश्वर) के खतों की शृंगाल व खाने से खचाता था।<sup>१०</sup> खान और बाराह की शत्रुता का स्ववराहिका<sup>११</sup> कहते थे। कुत्ता के रहने व स्थान का गाण्डव कहत थे।<sup>१२</sup> कुछ निम्न श्रेणा के लोग कुत्ते का मांस भी खाते थे।<sup>१३</sup>

बिल्ली<sup>१४</sup>—यह भी एक ग्राम्य जीव था जो पाला भा जाता था तथा बिना पाले भी बस्ती में रहता था। भाष्यकार के अनुसार यह चूहे मारता था।<sup>१५</sup> मोटा मजार स्थूलोतु कहलाता था।<sup>१६</sup>

१ सम० क० १ प० ५४, २, पृ० १३५ दखिये—महाभाष्य—८ ३ ३३ प० ३५४।

२ महाभाष्य ४ ३ १२०।

३ वही ४, ३ ३५।

४ वही २ १ ६९ प० ३२३।

५ सम० क० ६ पृ० ५०६।

६ प्रजापना सूत्र १।३४।

७ सम० क० १, ५४ ४ ३०८ ३२३, ७ पृ० ७११ ८, ८२९, ९ पृ० ९१९ ९२३ ९२५।

८ ऋग्वेद ७।५५।५।

९ महा० ४ २ ९६, प० २०२।

१० वही ३ ४ १२ पृ० ४६७।

११ वही ४, २, १०४ प० २१०।

१२ वही ४ २, ७७ प० ५०४।

१३ वही ३, १३४, प० १९७।

१४ सम० क० ४ प० ३२०, ६ प० ५७८।

१५ महा० ३, २ ८४, प० ३३४।

१६ वही ६ १ ९४, पृ० १५१।



गरभ —<sup>१</sup> समराइच्च कहा में इस एक जगली पंगु बताया गया है। प्रनापना मूत्र में इसे अरण्य पंगु के रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>२</sup> सम्भवतः यह आठ पर वाला तथा सिंह से बलवान् जन्तु था।

अश्व —<sup>३</sup> यदिक काल में गाय व साय अश्व को भी महत्व दिया जाता था तथा उसके मांस भस्मी का सिर काट देने का निर्देश है।<sup>४</sup> समराइच्च कहा में घाडा की कई जातियां का उल्लेख मिलता है यथा-तुरुष्क, वाल्हीक, कम्बोज और बज्जरा<sup>५</sup> आदि। यह रथ में जाता जाता था। महाभाष्य में उल्लिखित है कि साधारण अश्व दिन में चार याजन तथा अच्छी नस्ल का अश्व आठ याजन चलता था।<sup>६</sup> घाडे के सवार को अश्वार कहते थे।<sup>७</sup> अश्व से युक्त रथ का अश्वरथ कहते थे।<sup>८</sup> अश्व युद्ध में भी काम आते थे।<sup>९</sup> अश्वशाला को मन्दुरा कहते थे।<sup>१०</sup> पतजलि के समय में सिध दश क घोड़े प्रतिद्व थे। इसलिए घोड़े का सामान्य नाम सैधव<sup>११</sup> हा गया था।

हस्ति<sup>१२</sup>—समराइच्च कहा में थोडा के साथ साथ हस्तिया का भी उल्लेख प्राप्त होता है। भद्र और भद्र जाति के हाथी श्रेष्ठ समझे जाने थे।<sup>१३</sup> यह राजा महाराजा अथवा धनी-संपन्न लोग की मवारी व काम आता था। गज

१ सम० क० ४ प० ३४७।

२ प्रनापना मूत्र १।३४ देखिये आपटे—संस्कृत हिंदी कोश पृ० १००५—  
अष्टपात्र गरभ सिंहघाती।

३ सम० क० २ पृ० १०० ४ पृ० ३१९, ३२६, ४, प० ३६५ ७ प० ६५५  
८ पृ० ७८४ ८२३ ९ पृ० ९७१।

४ ऋग्वेद ८।४।१८।

५ सम० क० १ पृ० १६, २ प० १००।

६ महाभाष्य ५ ३ ५५ पृ० ४४६ (अश्वान्य पशवत्वारि योजनानि गच्छति।

७ वही ८ २ १८ प० ३४२।

८ वही २ १ ३४ पृ० २८७।

९ वही १, ७ ७२, प० ४४७।

१० वही १ १ ३ पृ० १०९।

११ वही १ १ ४ प० २७४।

१२ सम० क० १ पृ० ५५ २ पृ० ७५ ११६ १३८, १५२ ४, प० २३६  
२०४ ३३९ ५ पृ० ३७८ ४१० ८७८ ६ पृ० ५५१ ७, पृ० ६३४  
६३८ ६४० ६४७ ८ पृ० ७३४ ९ ७८४ ९, पृ० ८८०।

१३ वही २ प० १००।

को द्विप भी कहते<sup>१</sup> थे । क्याकि वह मुख तथा सूँड दोनों स्थानों से पी सकती था । गजा का समूह गजता<sup>२</sup> तथा हरितियों का समूह हस्तिवे<sup>३</sup> कहलाता था । जंगल हाथियों का अरण्यगज कहते थे ।<sup>४</sup> जंगल से हाथी पकड़ कर लाये जाते थे और हस्तिपक उन्हें प्रणिमित कर चलना आदि सिखाते थे ।<sup>५</sup> विवाह आदि मागलिक कार्यों के लिए प्रस्थान करते समय हस्ति का आगे रखा जाता था । इनमें युद्धक्षेत्र में गज सेना का रौन्ने का भी काम लिया जाता था ।

अरण्य-पशु—पालतु पशुओं के साथ साथ अरण्य पशुओं का भी उपयोग था । लोग मृग आदि का शिकार कर उनका मांस खाते थे । व्याघ्र सिंह आदि वंश का भी उपयोग होता था । ममराइच्च कहा में निम्नलिखित अरण्य पशुओं का उल्लेख है ।

मृग<sup>१</sup>—ममराइच्च कहा में इसे हिरण भा कहा गया है ।<sup>२</sup> हिरण का शिकार कर उसका मांस खाया जाता था । महाभाष्य में हिरण का उल्लेख पाया गया है । हरित और हरिण जाति की स्त्रा हरिणी तथा राहित की राहिणी कही जाती थी ।<sup>३</sup> भाष्य में हरिण का एक जाति मृग भी बताया गया है ।<sup>४</sup> भाष्यकार ने इस बातमज<sup>५</sup> अर्थात् वायु के समान शीघ्रगामी कहा है । मृग की एक जाति मृश्य थी, जिसकी मांस को राहित कहते थे ।<sup>६</sup> काले मृग को कृष्ण सारंग कहते थे ।<sup>७</sup> चमर बनाने के लिए चमरी (मृग की एक जाति) का शिकार किया जाता था ।<sup>८</sup> मृगया का विषय होने के कारण ही इसका नाम मृग पड़ा ।

१ महाभाष्य ३, २ ४, पृ० २०९ ।

२ वही ४ २, २३ ।

३ वही ४, १ १, पृ० १० ।

४ वही ४, २ १३९, पृ० २१६ ।

५ वही १, ३, ६७, पृ० १५ ।

६ सम०क० ६ पृ० ५१० ५१६, ८ पृ० ७८७ ५ पृ० ४७७, देखिये—  
प्रजापना सूत्र १-२४ ।

७ वही १ पृ० ४७ ५ पृ० ४१० ७, ६५६, ६५९, ८, पृ० ७९८ ।

८ महाभाष्य १ २, ६४ पृ० ५७३ ।

९ वही १ २ ७ पृ० ६८ ।

१० वही ३ २ २८ पृ० २१५ ।

११ वही ६, ३, ३४, पृ० ३१८ ।

१२ वही २, १ ६९ पृ० ३२० ।

१३ वही २ ३ ३६ पृ० ४३१ (विशेष चमरी दत्ति) ।

भाष्यकार न रुख और पृथक् जाति के मृग का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> यजुर्वेद संहिता में उल्लिखित है कि पृथक् नामक मृग का चम वस्त्राभाव की पूर्ति करता है।<sup>२</sup>

शूकर<sup>३</sup>—शूकर पालतू तथा आरण्यक दोनों प्रकार के होते थे। पालतू शूकर मांस और बाला के लिए पाले जाते थे। ग्राम्य शूकर का मांस अभक्ष्य माना जाता था।<sup>४</sup> महाभाष्य में उल्लिखित है कि बाल निकालने के लिए शूकर का धाघ लिया जाता था और फिर उसका एक एक बाल खींच कर उखाड़ते थे।<sup>५</sup>

बिल्लो<sup>६</sup>—यह ग्राम्य जीव के साथ साथ अरण्य पशु भी था।

महिष—यह भी पालतू तथा आरण्यक दोनों प्रकार के होते थे। पालतू पशुआ की श्रेणी में इसका उल्लेख किया गया है।

वृषभ<sup>७</sup>—यह पालतू और आरण्यक दोनों प्रकार का होता था। पालतू पशुआ की श्रेणी में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

गज<sup>८</sup>—यह भी पालतू एवं जंगली दोनों प्रकार का पशु होता था। जंगली हाथिया का अरण्य गज कहते थे।<sup>९</sup> जंगल के हाथी पकड़ कर लाये जाते थे और हस्तिपक उन्हें प्रशिक्षित करता था।<sup>१०</sup>

सिंह<sup>११</sup> यह एक हिंसक पशु था। सिंह शब्द हिंस घातु से वष विषय

१ महाभाष्य २ ४ १२, पं ४६६।

२ श्रीचन्द्र जन—हमार पशु पक्षी, पृ० ३३।

३ सम० क० ५ पं ४७७, ६, पृ० ५१० ५७८, ५९३।

४ आपिंगल शिक्षा १ पृ० ११।

५ महाभाष्य ८ २, ४४, पृ ३६२।

६ सम० क० ६ पृ० ५७८ ८ पृ० ८२९ ९ पृ० ८८७।

७ वही २ पृ० १३५ ६ पृ० ५१० ५१६।

८ वही २ पृ० १३५, ८ पृ० ७९८।

९ वही २ पृ० १३५ १३८ १४९ १५२ ३ पृ० २३९ ४ पृ० २८५ २९४, ३३७ ३४० ५ पं ४१० ४७१, ६ ५११ ५१६ ५३२ ७, पृ० ६४८ ८ पृ० ७७६, ७८७ ८०१।

१० महाभाष्य ४, २, १२९ पृ० २७६।

११ वही १ ३ ६७ पृ० १५।

१२ सम० क० १ पृ० ११, ५४ २ पृ० १३५ १५२ ४, पृ० २९४, ३१२ ३३७ ५ पृ० ४४५ ४४६, ६ पृ० ५१३ ५२७, ५३२, ५०५, ७ पृ० ६४८, ६५६ ६५०, ८ पृ० ७७२ ७७८ ८०१, ८१६।

हाकर बना ह ।<sup>१</sup> याघ्र सिंह आदि स व्याप्त वरण्या का उल्लेख भाष्य में मिलता है ।<sup>२</sup> सिंह का चम अनेक काम में आता था । लोग उसे वस्त्र के रूप में भी धारण करते थे ।

व्याघ्र<sup>३</sup>—बाघ चीता नामक जंगली हिंसक पशु था । व्याघ्री का भी उल्लेख पतञ्जलि भाष्य में मिलता ह ।<sup>४</sup>

बाराह<sup>५</sup>—प्रनापना सूत्र में भी इसका उल्लेख मिलता ह ।<sup>६</sup>

बदर<sup>७</sup>—शाक<sup>८</sup>—आखेट पशुओं में मृगों की भाँति शशक का भी महत्व था । आज भी लोग खरगोज के मांस के लिए उनका शिकार करते ह ।

अक्षर<sup>९</sup>—यह पशु पालतू और आरण्याक दोनों प्रकार क हाते थे ।

शृगाल<sup>१०</sup>—भाष्य में शृगाल के हुआ हुआ करने का उल्लेख ह ।<sup>११</sup> इसका कुत्ते से शाद्वत बर ह ।<sup>१२</sup> शृगाल को मरज भी कहते थे ।<sup>१३</sup>

खान और कबाल<sup>१४</sup>—सड़े-गले मांस तथा रक्त आदि पीने वाले जन्तु जीव ह ।

## पक्षी

पालतू तथा जंगली पशुओं के साथ-साथ द्विपद अर्थात् पक्षिया को भी समाज की सम्पत्ति समझा जाता था ।<sup>१५</sup> यजुर्वेद<sup>१६</sup> सहिता में बताया गया ह कि

१ महाभाष्य ३ १ १२३ पृ० १९१ ।

२ वही ५, २ ११५ पृ० ४१८ ।

३ सम० क० २ पृ० १३२ ६ पृ० ५१६ ५२७ ।

४ महाभाष्य—४ १, ४८ पृ० ६० ।

५ सम० क० ५ पृ० ४४५, ४४६, ६, पृ० ५११ ८ पृ० ७९८ ।

६ प्रनापना सूत्र १।३४ ।

७ सम० क० ४ पृ० २५८ ६ पृ० ५१० ७, पृ० ६६९ ८ पृ० ८२९ ।

८ वही ४ पृ० २६० ६, पृ० ५३० ७ पृ० ७०३ ।

९ वही ६, पृ० ५१८ ।

१० वही ४ पृ० २८० ८, पृ० ७७२ ८०१ ।

११ महाभाष्य १ ३, २१ पृ० ६२ ।

१२ वही २ ४, १२ पृ० ४६७ ।

१३ वही १ १, ४७, पृ० २८८ ।

१४ सम० क० ४ पृ० २०३, ७२४ ।

१५ वही १ पृ० ३९ ८, पृ० ७३४—३५ ।

१६ यजुर्वेद सहिता भाग २ पृ० ३१६ ।

अग्नि के प्रयाग करने के लिए कुटर मुर्गा नामक पक्षी प्राप्त करें। वनस्पतिधर्म के पान के लिए उल्लू जातिमा के पक्षी को प्राप्त करें। उनके जीवन का अनुशीलन करें। अग्नि और जल की परीक्षा के लिए चाप नामक पक्षिया को देखें। म्या पुरुष के समयी प्रेमी और सुंदर मुखप्रद आलाप के लिए मयूर का देखें। मित्र और वरुण अर्थात् मित्रता और स्नेह तथा परस्पर वरण के लिए कपात नामक पक्षियों को देखें। धदिक युग में जहाँ पशु एक प्रधान घन था वही विहग एक प्रकृष्ट मनोविनोद का साधन था। समराहञ्च कहा में निम्नलिखित पक्षिया का उल्लेख है।

कुक्कुट<sup>१</sup>—यह एक पालतू पक्षी था। पाणिनी ने ह्रस्व शेष एव प्लुत की पहचान के लिए कुक्कुट के स्वर का ही आश्रय लिया है।<sup>२</sup> मुर्गों का मांस भी खाया जाता था यद्यपि ब्राह्म्य कुक्कुट अभक्ष्य था।<sup>३</sup> मुर्गा भूल लगने पर कुट-कुट करता था।<sup>४</sup> प्राचीन काल से ही प्रभात काल में जागरण के लिए मुर्गा सहायता करता था।<sup>५</sup> आग्नि पुराण में भी कुक्कुट का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>६</sup>

मयूर<sup>७</sup>—यह भी पालतू पक्षिया की श्रेणी में गिना जाता था। मयूर का भाष्यकार न यसक (धूत) कहा है।<sup>८</sup> मयूर और मयूरी साथ-साथ नृत्य करते हुए उल्लिखित किये गये हैं।<sup>९</sup> आग्नि पुराण में भी मयूर का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>१०</sup> यह इस समय राष्ट्रीय पक्षी माना जाता है।

हंस<sup>११</sup>—आदि पुराण में भी हंस<sup>१२</sup> हमी<sup>१३</sup> एव राजहंस<sup>१४</sup> का उल्लेख पाया

१ सम० क० ४ प० ३०२ ३०३ ३२० ३२३ ३३२ ३४२ ८।७३४-३५ ७७०।

२ महाभाष्य १ २ २७।

३ आपिशल शिक्षा १।११।

४ महाभाष्य ६ १, १४२ पृ० १९० (अपस्किरत कुक्कुटो मभार्थी)।

५ वही १ ३, ४८ पृ० ६७ (वरतनुसम्प्रवर्त्ति कुक्कुटा)।

६ आदि० ४।६४।

७ सम० क० ४, प० ३२३ ३३२ ७ पृ० ६११ ६२५ ६२७।

८ महाभाष्य २ १ ७२ पृ० ३३०।

९ वही ७ ३ ८७ पृ० २१२ (प्रिया मयूर प्रतिनततीति)।

१० आग्नि० ३।१७०।

११ सम० क० १ प० ९ २ पृ० ९८२-८७, ८९ ५, प० ४२० ४३० ४७४ ८ प० ७३२ ७८३ ७८५ ८४२।

१२ आग्नि० ४।७४ १८।६० ९।५४।

१३ वही ६।७४ ११।२७ १२।२१।

१४ वही ९।३।

गया ह। भाष्य में स्त्री हस का बरटा कहा गया ह।<sup>१</sup> हस शब्द हन घातु स बना ह। जिसका अर्थ माग का हनन (नमन) करने वाला ह।<sup>२</sup>

चक्रवाक<sup>३</sup>—पतञ्जलि ने भी चक्रवाक का उल्लेख किया है।<sup>४</sup> आदि पुराण में भी इसका नाम आया ह।<sup>५</sup>

सारस<sup>६</sup> आदि पुराण में भी सारस का उल्लेख पाया गया ह।<sup>७</sup>

तोता<sup>८</sup>—यह एक पालतू पक्षी था। भाष्यकार ने शुकी का उल्लेख किया ह।<sup>९</sup> गुक की चर्चा खण्डिक और उलूक के साथ की गई ह।<sup>१०</sup> आदि पुराण में भी गुक का उल्लेख प्राप्त होता ह।<sup>११</sup>

गरुड<sup>१२</sup>—हस, सारस की भांति इसका भी उल्लेख पक्षियों की श्रेणी में प्राप्त होता ह। आदि पुराण में इसे पतत्पति<sup>१३</sup> (गरुड) कहा गया ह।

श्येन<sup>१४</sup>—यह छोटी छोटी चिन्टिया का शिकार करता था। श्येन द्वारा बटेर को मारने का उल्लेख ॥ १५

लवक<sup>१६</sup>—लवा अर्थात् बटेर नामक पक्षी था।

- १ महाभाष्य ६ ३ ३४ पृ० ३१८ (हसस्य बरटा यापित)।
- २ वही ६ १ १३ प० ४३ (हतेहस हत्यध्वामिति)।
- ३ सम० क० ५ पृ० ४७४ ८७३२ ७६६-७६८ ८२९ ९८६५, ९३४।
- ४ महाभाष्य २ ४ १२ प० ६६।
- ५ आदि० १५।१०।
- ६ सम० क० ५।४१९ ८७४२ ९८६५
- ७ आदि० १४।६९, १४।१९९ २६।१५०।
- ८ सम० क० २।८२, १०७ ४।३२१।
- ९ महाभाष्य ४ १, ६३, पृ० ७४।
- १० वही ४ २ ४५, प० १८१।
- ११ आदि० ६।७२ ४६१, १५।११४।
- १२ सम० क० ४ प० ३२१।
- १३ आदि० १।२०८।
- १४ सम० क० ४।२८५ दक्षिण-महाभाष्य १ १ ४५ प० २७८।
- १५ महाभाष्य ६ १ ४८ पृ० ७०।
- १६ सम० क० ५ प० ४४५ ८४२ दक्षिण यजुर्वेदसंहिता २४ वीं अध्याय।

चातक<sup>१</sup>—आदि पुराण में भी चातक<sup>२</sup> और चातकी<sup>३</sup> का उल्लेख प्राप्त होता है ।

घगुला<sup>४</sup>—समराइच्च कहा में अथ पणिया की भांति इमका भी उल्लेख मात्र प्राप्त होता है ।

कोकिल<sup>५</sup>—वसंत ऋतु का अवकाकिल कहा गया है क्योंकि विशेष रूप से वाकि<sup>६</sup> इसी ऋतु में वाज्जती है ।<sup>७</sup> स्त्री वाकि<sup>८</sup> का पिक्की कहते हैं ।<sup>९</sup>

गूढ<sup>१०</sup>—यह एक मामाहारी पणा है । गूढ सम्बन्धी वस्तु का गायन करते हैं ।<sup>११</sup>

कुरर<sup>१२</sup>—राज की जाति का मस्य भाजो पणी बताया गया है ।<sup>१३</sup>

मुद्र जंतु

समराइच्च कहा में कुछ मुद्र जन्तुआ व भी नाम गिनाए गए हैं ।

सप<sup>१४</sup>—सप बामीक (विठ) में रहता है ।<sup>१५</sup> साप सरक्ता है इसीलिए इसका नाम सप पड़ा है । उसकी चाल का मृज्ज कहते हैं ।<sup>१६</sup> क्रोध के समय पन उठाकर फुटकारने की अवस्था का औजायमान<sup>१७</sup> कहते हैं । पने और भयानक

१ सम० क० ८ प० ८४२ ।

२ आदि० ४।६१ ३।१७० ५।२१८ ।

३ वही ७।१५९ ।

४ सम० क० ८ प० ८४२ ।

५ वही १ प० ९ २ प० ७८ ७ प० ६३७ ९ प० ८७९ ९२४ ।

६ महाभाग्य २२ १८ प० ३५० (अवकष्ट कोकिल यावकोकिलो वसंत) ।

७ वही ४ १ ६३ पृ० ७४ ।

८ सम० क० ६।५३० ७।७०२ ०।९९८ आदि० १०।७४ १०।४२ ।

९ महाभाग्य ४ ३ १५६ प० २६० ।

१० सम० क० २ प० १५२ ।

११ महाभाग्य ४ १ ९३ प० १२५ ।

१२ सम० क० १ प० ५४ २।१०६ १५२ ४।३२३ ५।४२५ ६।५२७

५७८ ९।९२८ ।

१५ महाभाग्य ७ १ ६९ प० ३२३ ।

१४ वही २ ३ ६७ प० ४५४ ।

१५ वही ३ १ ११ प० ४५ ।

जंगल में सबसे बड़ा सर्प अजगर<sup>१</sup> पाया जाता था। यह अपने शिकार का काटने का स्थान पर निगल जाता है। आन्ति पुराण में भी अजगर<sup>२</sup> अहि<sup>३</sup> उरग<sup>४</sup> कृष्णाहि<sup>५</sup> नन्दूक<sup>६</sup> (विपला भयकर सर्प) नाग<sup>७</sup> पद्मग<sup>८</sup> भुजग<sup>९</sup> आन्ति सर्पों की विभिन्न जातियाँ का उल्लेख पाया गया है।

सूत<sup>१०</sup>—नकुल सर्प का और सर्प भूपिक का शत्रु है। भूपिका का पुमान् भोपिकार कहलाता था।<sup>११</sup>

मकुल<sup>१२</sup>—पतञ्जलि भाष्य में नकुल का उल्लेख सर्प के शाश्वत विरोध के रूप में हुआ है।<sup>१३</sup> अस्थिर व्यक्ति के व्यवहार के लिए अवतप्त नकुलस्थितम्<sup>१४</sup> कहावत प्रचलित थी।

जलचर

जल में रहने वाले जीव यथा मछली मेंढक सिंमुमार का भी उल्लेख ममराद्वेष कहाँ में आया है। उपयोगिता की दृष्टि से मछली का महत्त्व था। मत्स्य का मौभाष्य का प्रताक माना जाता है। आन्ति पुराण में जलचरों को अप्पुज<sup>१</sup> कहा गया है।

मत्स्य<sup>१५</sup>—मछली खाने के काम में आती थी। महाभाष्य में मीन के शिकारी

१ सम० क० २ प० १५२ ५।४४२।

२ आन्ति० ५।१२१।

३ बहा ५।१०५।

४ बहा १०।२८।

५ बहा ६।८०।

६ वही ९।५५।

७ वही ४।७०।

८ वही १०।२९।

९ बहा १।८१।

१० बहा २।१३७ ३।१८३ ०।९२४।

११ महाभाष्य ४, १ १२०, प० १४२।

१२ सम० क० पृ० ८ ७८७।

१३ महाभाष्य ४२, १०४ पृ० २१०।

१४ बहा १४, १३ प० १४३।

१५ आन्ति० २८।१०४।

१६ सम० क० ४ पृ० २२३।



को मैत्रिक कहा गया है।<sup>१</sup> मछली के काटे मांस कर और उसके टुकड़े-टुकड़े किए जाते थे।<sup>२</sup> आदि पुराण में तिमिर<sup>३</sup> (एक बड़ा मछली) मत्स्य<sup>४</sup> तथा मीन<sup>५</sup> का उल्लेख है।

**मोदक**—यह सप का शिकार माना जाता है। इस पाना में रहने वाला सप तथा बही-बंगा मछलियाँ निगल जाती हैं।

**सिमुमार**<sup>६</sup>—जलचरा में यह सबसे शक्तिशाली जाति है। आदि पुराण में इसे मकर<sup>७</sup> कहा गया है।

### वन सम्पत्ति वृक्ष

प्राचीन भारत का अधिकांश भूभाग वन से घिरा हुआ था। य अरण्य विभिन्न प्रकार के वृक्ष लता गुल्म हरित औषधियाँ आदि से भरे पड़े थे। भारत की समृद्धि में वृक्षा, लताआ आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। समराइच्च कहा में उपभोग योग्य पल्लव पुष्प फल तथा छाया आदि से युक्त वृक्ष तथा वनस्पतियाँ दण अथवा समाज की सम्पत्ति कही गयी है।<sup>८</sup>

समराइच्च कहा में उल्लिखित कुछ वृक्ष फल-फूल छाया लकड़ी आदि देने के कारण उपयोगी थे किंतु कुछ वृक्ष केवल गोमा छाया आदि के लिए उपयुक्त समझ जाते थे।<sup>९</sup> वृक्षा में अशोक का नाम कई बार उल्लिखित हुआ है। अशोक वृक्षा में रत्नाशकोक<sup>१०</sup> का भी उल्लेख प्राप्त होता है। अथ जन ग्रन्था में भी शोभा वृक्ष के रूप में अशोक का उल्लेख हुआ है।<sup>११</sup> अशोक के

१ महामाष्य ४१६३ पु० ७४ तथा ११६८ प० ४३५।

२ वही ११३० प० ५१६।

३ आदि० २८।१८२।

४ वही ११।१९९ ४।११७ १०।३०।

५ वही ५।३४ २८।१७१।

६ सम० क० २ प० १५२ ८।८४२।

७ वही ४ प० ३२३।

८ आदि० २८।१७१।

९ सम० क० ४ प० ३१० (उवभागजाम्गपल्लवपुष्पफलच्छाहिउदगपमटठे)।

१० वही १ प० ११ ४१ २ प० ८७ ८८ ११६ ५।३७८ ४२० ६।५६६ ७।६३९ ४० ६६२ ६३८ ६८० ८।७६६।

११ वही १।४१।

१२ आदि० ९।९ ६।६२ राजप्रसीप सूत्र १ पु० ५ ३ प० १६ नातधम कथा १ प० १०।

अतिरिक्त ताड़<sup>१</sup> के वृक्ष तथा न्यग्रोव<sup>२</sup> (वट वृक्ष) भी छाया तथा शाभा के ही काम में आते थे। न्यग्रोव वृक्ष की जटाएँ नीचे की ओर फलकर वृक्ष का रूप लेता जाती है इसीलिए इसका नाम न्यग्रोव (नीचे की ओर फलने वाला) पड़ा है।<sup>३</sup> इस अवराहवान, क्षीरी और पशु पण कहा गया है।<sup>४</sup>

शाभा तथा छाया वाले वृक्षा के साथ-साथ कुछ फल-फूल तथा वनस्पतियां वाले वृक्षा का भी उल्लेख सम्राट्त्वं कहा में है, जिन्हें उपयोगिता की दृष्टि से तत्कालीन समाज की सम्पत्ति कहा जा सकता है।

उन वृक्षा में आम<sup>५</sup> (फल तथा छाया वाला वृक्ष), सहकार<sup>६</sup> (आम का दूसरा नाम) बूत<sup>७</sup> (आम का दूसरा नाम), नारियल<sup>८</sup> अथवा नारिकेल<sup>९</sup> जम्बू<sup>१०</sup> (जामुन) कदली<sup>११</sup> (केला) साल<sup>१२</sup> (साखू) बकुल,<sup>१३</sup> निम्ब,<sup>१४</sup> पलाश<sup>१५</sup> (यश में

- १ सम० क० २, प० ८२ ४, प० ३१०, ३७५ देखिए—आदि० ३०।१५।
- २ वही २, प० ११५, १३५ १३६ ४ प० २८५ ३१० ५ प० ४३३, ४३५ ६, पृ० ५०६, ५१७ देखिए—आदि ३१।११३।
- ३ महाभाष्य २, २ २९, प० ३८३।
- ४ वही १ १ ५६, प० ३४२ (ये क्षीरिणोऽवरोहवत् पशुपर्णा स्तेयग्राहा)।
- ५ सम० क० १०।१६ २।८७।८८ १३५ ९।८७९ देखिए—आदि० ४।१६, महाभाष्य १, १, ५६, प० ३४२ (गाँव के चारा आर आम का बाग लगाने की प्रथा थी)।
- ६ वही १।१७ ३४, ४१, २।७८, ५।४०५ ४१०, ६।५७, ६।५४६, ५८२, ७।६३६, ६३७।
- ७ वही ६, प० ५४६, देखिए—आदि० ४।१६।
- ८ वही ३।१६९ १७१ १८७।
- ९ आदि० ३०।१३।
- १० सम० क० २।१३५ ५।४०४, देखिए—आदि० १७।२५२ तथा महाभाष्य १, १, ११९ प० १३८।
- ११ वही २ ८७, ८८, ५ पृ० ४०५ ४२०, ६।५४७ ५४९ देखिए—आदि० १७।२५२ (यहाँ आदि पुराण में कदली को मोच कहा गया है)।
- १२ वही २, पृ० १०८, १३५ ३।१८३, ६।५७३ देखिए—महाभाष्य १, १, १ प० ९२।
- १३ वही १ प० ११, २ १३५ ४ प० २८१ ७ प० ६३७, ६३९ ४०।
- १४ वही १, प० ४१, २, पृ० १३५ ३ प० १७४ ५ पृ० ४२८।
- १५ वही २ प० १३५ ६, प० ५१८, ७, पृ० ६३७, देखिए—महाभाष्य ४, ३ १५५ पृ० २६६ तथा ३ १ ७९ पृ० १२९ (दिवरक्षा किंशुका)।

पलांग की समिधाए काम में आती थी), विपाक,<sup>१</sup> वीम<sup>२</sup> पूगपात्प<sup>३</sup> बमूल<sup>४</sup> करीर,<sup>५</sup> ग्यान्त्रि<sup>६</sup> (कत्थे का वृक्ष), मज्ज,<sup>७</sup> पनम<sup>८</sup> (कटहल) पामाड वृक्ष<sup>९</sup> चंदन<sup>१०</sup> मन्गर<sup>११</sup> (छोटा पादप) खजन<sup>१२</sup> अमृद<sup>१३</sup> (गुप्फ वृक्ष) तिलक,<sup>१४</sup> मिंदुवार<sup>१५</sup> कदम्ब<sup>१६</sup> म निमिर<sup>१७</sup> पात्प तमाल<sup>१८</sup> कम्पवृक्ष<sup>१९</sup> नारंगी<sup>२०</sup> मग्ग<sup>२१</sup> तागान्ति<sup>२२</sup> अङ्गोल,<sup>२३</sup> वज्जुत्रा<sup>२४</sup> पात्प मत्तकि<sup>२५</sup> निनिग<sup>२६</sup> कुटज<sup>२७</sup>

१ सम० क० ५ प० ४७८ ४८० ।

२ वही ५, प० ४७८ ६ प० ५०१ देखिए—महाभाष्य १, १, १३, प० १८२ ।

३ वही ५ प० ४१९ ४४५ ।

४ वही ४ पृ० ३१० ।

५ वही ४ प० ३१० ।

६ वही २ प० १३५ ४ पृ० ३१० ।

७ वही प० ३१० ।

८ वही ४ प० ४०५ देखिए—आदि० ३०।१९ तथा महाभाष्य ५ १ २, पृ० २०६ ।

९ ३ प० १७६ ।

१० वही ६ पृ० ५४५, देखिए—आदि० ६८० १।८१ ।

११ वही ६ प० ५४५, देखिए—आदि० ४।१९७ ।

१२ वही ४ पृ० ३१० ।

१३ वही ४ प० ३१०, देखिए—आदि० ३१।६८ ।

१४ वही २ प० १३५ ८ प० ३२५ ५ पृ० ३७८ ।

१५ वही ५ प० ३७८ ।

१६ वही २ प० १३५ ३ १७४ ५ प० ३७८, देखिए—आदि० ९।१७ ।

१७ वही ४ पृ० २५३ ।

१८ वही २ प० १३५, ३ प० २२४, ६ प० ५४५, ७ पृ० ६९६ ।

१९ वही ७ प० ६८३ ६८४ ६८८ ६९६ ।

२० वही २, प० १०८, ८ प० ८७९ ।

२१ वही २ प० १३५ ।

२२ वही २ प० १३५ ।

२३ वही २ प० १३५ ।

२४ वही २ प० १३५ ।

२५ वही २ प० १३५ ।

२६ वही २, प० १३५ ।

२७ वही २ पृ० १३५, देखिए—आदि० ९।१६ ।

मर्जी<sup>१</sup> और अजुना<sup>२</sup> पाप्म आनि मुख्य ह ।

वन सम्पत्ति लता

ममराइच्च कहा में निम्नलिखित लताया का उल्लेख ह जो फल पूर, अग प्रमाणन गह-वन-वाटिका आनि का गाभा तथा माज-भज्जा को बनाने के लिए उपयुक्त समझी जाती थी ।

उन लताओं में माधवी लता<sup>३</sup> धम्पव<sup>४</sup> लता ताम्बूल<sup>५</sup> नागवल्ली<sup>६</sup> पुनाग<sup>७</sup> मुक्त लता<sup>८</sup> बून लता<sup>९</sup> लवंग लता<sup>१०</sup> अमूर ज्वा<sup>११</sup> सुपारी<sup>१२</sup> और कुटुम<sup>१३</sup> लता (किमर ज्वा) आदि का उल्लेख ह ।



- 
- १ सम० क० २ प० १३५ ।
  - २ कहा २ प० १३५ ।
  - ३ वही २ प० ८७ ८८ ८, प० ३६० ।
  - ४ कहा १ प० ११ ४१ देविण—महामाष्य २ १, १ प० २४० ।
  - ५ कहा २ प० ८७ ८८ ०० ।
  - ६ वही १ प० ११ २ प० ८८ ५ प० ४१९ आनि ३१।१७ ।
  - ७ वही १, प० ११, आदि० ३१।१७ ।
  - ८ वही ७ प० ६७० ।
  - ९ कहा ९ प० ८७९ गजप्रस्तोय सूत्र १ प० ५ ३, प० १८ ।
  - १० वही ६, प० ५४७ नातृ धमकया १ प० ३ १० ।
  - ११ वही २ प० ८७ ८८ ।
  - १२ वही २ प० ८७ ८८ ।
  - १३ वही २ प० ८७ ८८ नातृ धमकया १, प० ३।१० ।

यजुर्वेद में इसके पाच भेद गिनाए गये हैं जिसमें ग्रीहि को सबसे अच्छा माना जाता था ।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि चावल का प्रयोग वैदिक काल से ही प्रारम्भ होता था । अधिकतर इसे पानी अथवा दुग्ध में पका कर खाया जाता था । जन श्रम्य आनि पुराण में तो चावल की सात जातियाँ का उल्लेख है यथा—साठी<sup>२</sup> शलि<sup>३</sup> कलम<sup>४</sup> ग्रीहि<sup>५</sup> सामा<sup>६</sup> नीवार<sup>७</sup> और श्यामाक<sup>८</sup> यशस्तिलक में भी चावल की चार जातियों का उल्लेख है यथा—दीन्वि<sup>९</sup> श्यामाक<sup>१०</sup> शालि<sup>११</sup> और कालम<sup>१२</sup> (यह आदिपुराण में कलम को कालम कहा गया है) आनि जिसमें पता चलता है कि चावल की भिन्न भिन्न जातियाँ थी ।

**मोदक**—समराडच्च कहा में मानक (एक प्रकार का मिष्ठान्न पन्थ) का उल्लेख किया गया है ।<sup>१३</sup> यह घृत अन्न दूध और चीनी के मिश्रण से तैयार किया जाता था । आनिपुराण में अमृत नभमोदक का उल्लेख आया<sup>१४</sup> है जो अत्यन्त स्वादिष्ट एवं सुगन्धित पन्थ माना जाता था । मोदक का नाम यशस्तिलक में भी आया है ।<sup>१५</sup>

**पक्वान्न**—समराडच्च कहा के कथा प्रसंग में पक्वान्न का उल्लेख है ।<sup>१६</sup> यह

१ आमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिक्स इन ऐसियाट इण्डिया पृ० १० ।

२ आदिपुराण—३।८६ ।

३ वही ४।६० ।

४ वही ३।१८६ ।

५ वही ३।१८६ ।

६ वही ३।१८६ ।

७ वही ३।१८६ देखिए—अभिज्ञान शाकुन्तल २।३५—नीवारपण्डभाप भण्णावमुपहरन्ति रघुवश १।५० ।

८ आनिपुराण ३।१८६ न्वित—अभिज्ञानशाकुन्तल ४।१४—श्यामाकपुष्टि परिवर्धितकम् ।

९ यशस्तिलक पृ० ४०१ ।

१० वही पृ० ४०६ ।

११ वही पृ० ५१५ १६ ।

१२ वही पृ० ५१५ ।

१३ सम० क० २ पृ० १२७ ३ पृ० २२९ २३१ ।

१४ आनिपुराण ३।१८८ ।

१५ यशस्तिलक पृ० ८८ उत्तर खण्ड ।

१६ सम० क० २ पृ० १२४ ।

घृत और चीनी के मिश्रण से तयार किया जाता था। यशस्तिलक में पक्वान्न का स्वाद्युक्त बताया गया है।<sup>१</sup>

सक्नु—समराइच्च कहा के कथा प्रसंग में इसे भी उल्लिखित किया गया है।<sup>२</sup> जो अथवा गेहूँ का भूनकर तथा उसमें भूना हुआ चना मिलाकर पीमा जाता था और उसी पीसे हुए चूण का सक्नु कहा जाता था। ऋग्वेद<sup>३</sup> तथा तत्तिरीय ब्राह्मण<sup>४</sup> में भी इसका उल्लेख है। यह पानी में मिगकर पिण्ड के रूप में अथवा पतला बनाकर खाया जाता था।

### फलाहार

समराइच्च कहा में अन्नाहार के अतिरिक्त फगहार का भी उल्लेख है। फगूल का प्रयोग अधिकतर साधु सयासी करते थे तथा कभी-कभी अतिथि सत्कार के लिए भी फग का प्रयोग किया जाता था। यद्यपि घमसूत्रा में विभिन्न प्रकार के फग का उल्लेख नहीं है फिर भी बह्वि कालान आयों के भोजन-पान में फगहार का मुख्य समझा जाता था।<sup>५</sup> समराइच्च कहा में निम्न विहित फग का उल्लेख है यथा—

आम्र<sup>६</sup>—(इसका प्रयोग कच्चा तथा पका गता रूपा में किया जाता था) कन्नी<sup>७</sup> कन्नी<sup>८</sup> फठ (एक प्रकार का जगली फल था) कन्मूल<sup>९</sup> नारंगी<sup>१०</sup> जम्बीर<sup>११</sup> (जिमिरिया नामक फल), पनम<sup>१२</sup> (कटहल) पूगफ<sup>१३</sup> (मुपाडी जिमका

१ यशस्तिलक पृ० ८०२—प्रियतमाधररिव स्वाद मान पक्वान्न।

२ सम० पृ० ४ पृ० ३०७ देखिए—यशस्तिलक पृ० ५१२ ५१५।

३ ऋग्वेद १०।७।१२।

४ तत्तिरीय ब्राह्मण ३।८।१४।

५ ओमप्रकाश—पूठ एण्ड ट्रिक्म इन ऐमिप्ट डण्डिया, पृ० ४२।

६ सम० पृ० ६, पृ० ५४६ देखिए—अष्टाध्यायी ८।४।५, आपस्तम्ब घर्म-सूत्र १।७।२०।३ आन्ति पुराण १।५।२५२।

७ सम० पृ० ६ पृ० ५४१ ९ पृ० ९७२ देखिए—आन्तिपुराण १।७।१५२, यशस्तिलक, पृ० ५१२।

८ वही २ पृ० ८८।

९ वही ८, पृ० ७९९ ८०० देखिए—यशस्तिलक पृ० ५१२, ५१६।

१० वही ४ पृ० २५७ ५ पृ० ४३१ ४३३ ३४।

११ वही ९ पृ० ९७२ देखिए—यशस्तिलक पृ० ९६।

१२ वही ९ ९७२ देखिए—वाटम-आन युवान च्वाग १ पृ० १७७—(ह्वेन मांग ने भा यहाँ पनम का उल्लेख फगहार को श्रेणा में किया है)।

१३ वही ४ पृ० ३४०, देखिए—आदि पराण ३०।१३।

प्रयोग खाना खाने के बाद मुख शुद्धि के लिए किया जाता था) और अगूर आदि<sup>१</sup>।

## पेय पदार्थ

अन्नाहार और फलाहार के अलावा कुछ पेय भी आहार के रूप में प्रयुक्त होते थे। समराइच्च कहा में निम्नलिखित पेय पदार्थों का उल्लेख है।

**दूध<sup>२</sup>**—समराइच्च वहा के कथा प्रसंग में दूध का उल्लेख है। बन्धिकाल से ही दूध का प्रयोग होता था जिसे ऋग्वेद में क्षीर<sup>३</sup> तथा पय<sup>४</sup> के नाम से उल्लिखित किया गया है। गाय का दूध गम के काम में लाया जाता था।<sup>५</sup> गौतम<sup>६</sup> आपस्तम्ब,<sup>७</sup> वशिष्ठ<sup>८</sup> तथा वौधायन<sup>९</sup> धर्मसूत्रों में सत्रिणी गाय का दूध वच्छन्त हाने की स्थिति में दस दिन तक गाय भेड़ और भस का दूध तथा ऊँटनी और अन्य जानवरों का दूध सबका निषिद्ध बताया गया है। जन श्रव आदि पुराण में भी दूध का उल्लेख क्षीर<sup>१०</sup> तथा पय<sup>११</sup> के रूप में हुआ है जो पीने के काम में आता था।

**ब्राह्मपानिक<sup>१२</sup>**—यह एक प्रकार का स्वास्थ्य वधक पेय पदार्थ था। आग्नि पुराण में आरिष्ट<sup>१३</sup> का उल्लेख प्राप्त होता है जो द्रव्या गुण तथा चावल आग्नि पदार्थों का मड़ा कर तैयार किया जाता था।

१ वही ९ पृ० ९५८ वाटस—आन युवान च्वाण १ पृ० १७७ ७८। (यहाँ ह्येनसाग ने वश्मीर में अगूर की अधिकता बतलाई है)।

२ सम० क० ३, पृ० १९२ ७ पृ० ६७५।

३ ऋग्वेद १।१६४।७।

४ वही १।१५३।४ १।२१।५ ६।५२।१०।

५ वही १।६२।९।

६ गौतम १।७।२२ २६।

७ आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।५।१७।२२ २४।

८ वशिष्ठ धर्मसूत्र १।४।३४ ३५।

९ वौधायन धर्मसूत्र १।५।१५६ १५८।

१० आदि पुराण २०।११७ २६।४२।

११ वही १३।१९३।

१२ सम० क० ९ पृ० ९५८।

१३ आदि पुराण ९।३७।

मदिरा—सम्राट्त्व कहा में मदिरा पान का भी उल्लेख<sup>१</sup> है जिसका सेवन करने वाला व्यक्ति निम्न चरित्र का कहा गया है। सुरा पान का वर्णन बल्कि काल में ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख कई बार किया गया है।<sup>२</sup> छान्दोग्य उपनिषद् में सुरा पान करने वालों को पापी बताया गया है।<sup>३</sup> इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर वैक्य के राजा अश्वपति ने कहा है कि उनके राज्य में मद्यपान नहीं किये जाते।<sup>४</sup> गौतम धर्मसूत्र<sup>५</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र<sup>६</sup> एवं मनुस्मृति<sup>७</sup> आदि ग्रन्थों में ब्राह्मणा के लिए सभी प्रकार की नशीली वस्तुओं का प्रयोग वर्जित कहा गया है। स्मृतियों में सुरापान का महापातक बताया गया है।<sup>८</sup> यानिया न, यथा—सुलेमान,<sup>९</sup> अबूजै<sup>१०</sup> इब्नखुरददब<sup>११</sup> तथा अल्मसूनी<sup>१२</sup> आदि के विवरण से पता चलता है कि हिन्द के लोग मदिरा पान को त्याग्य समझते थे। यद्यपि धार्मिक दृष्टि से मदिरा पान घृणित माना जाता था फिर भी समाज में विभिन्न वर्ग के लोग इसका सेवन करते थे।

## मासाहार

सम्राट्त्व कहा में जहाँ हमें अनाहार और फगहार का उल्लेख है वही मासाहार का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>१३</sup> यद्यपि धार्मिक दृष्टिकोण से तत्कालीन समाज में मासाहार का त्याग्य माना जाता था फिर भी समाज के उच्च

- १ सम० क० ८ प० २८० (यहाँ पूर्व कृतकर्म दाप से सुरापान कर दुराचरण करने का उल्लेख है) ६ प० ५५४ ८ ८२७।
- २ ऋग्वेद १।११६।७ ८।२।१२।
- ३ छान्दोग्य उपनिषद् ५।१०।९।
- ४ बही ५।११।५।
- ५ गौतम धर्मसूत्र २।२५।
- ६ आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१।१७।२१।
- ७ मनुस्मृति १०।१४।
- ८ मनु० ११।५४, याज्ञवल्क्य० ३।२२७।
- ९ इलियट एण्ड डाउमन—हिस्ती आफ इण्डिया इज टाल्ड बाई हर ओन हिस्टोरियन वालूम १, पृ० ७।
- १० बही १, पृ० ८।
- ११ बही १ पृ० १३।
- १२ बही १ पृ० २०।
- १३ सम० क० ४ पृ० ३०३ ३१३, ६, ५७८, ६०२।



यग त्व वे लग्म जघति ब्राह्मण और क्षत्रिय भी मांस का प्रयोग करते थे।<sup>१</sup> समराइच्च कहा में एक स्थान पर नरक लोक में नागकियों को दी जाने वाल यातनाआ में मांस भक्षण के परिणाम स्वरूप उनके शरीर के मांस को पक्षियों से नाचे जान की याति कही गयी है।<sup>२</sup> इससे स्पष्ट होता है कि जन विचारधारा में मांस भक्षण त्याज्य था। मांसाहार का प्रचलन अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। ऋग्वेद में जाया है कि अग्नि के लिए घाडा वैलो साडा, बाँस गाया एवं भेडा की बलि दा गयी।<sup>३</sup> यद्यपि ऋग्वेद में गाय का रदा की माता वसुआ की पुत्री आन्तिया की हवन एवं अमृत का वेद्र मानकर उनकी हत्या करने का मनाही की गया है।<sup>४</sup> किन्तु कहीं-कहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में गाय का बलि भी जान का भी मन्त्र मिलता है।<sup>५</sup> शतपथ ब्राह्मण में मांस का सर्वश्रेष्ठ भोजन बताया गया है।<sup>६</sup> यद्यपि वैष्णव कालीन ममाज में मांस भक्षण विहित था। कालान्तर में धार्मिक दृष्टिकोण से इसके प्रति घणा का भाव बना। शतपथ ब्राह्मण में भी यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि मांसभक्षी अगले जन्म में उन्ही पशुआ द्वारा खाया जायगा।<sup>७</sup> बृहदारण्यक उपनिषद् में आया है कि जो व्यक्ति बुद्धिमान पुत्र का इच्छुक है वह बल या साड या किमी अन्य पशु के मांस को चावल एवं घृत में पकाये।<sup>८</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में श्राद्ध के समय मांस भक्षण का उल्लेख है।<sup>९</sup> इसी प्रकार अश्वलायन गृह्यसूत्र में भी अतिथि के स्वागत के लिए मांस भक्षण का उल्लेख है।<sup>१०</sup>

समराइच्च कहा में मछली<sup>११</sup> सूकर<sup>१२</sup> बकरा महिष<sup>१३</sup> और शशक<sup>१४</sup> आदि

- १ सम० क० ४ प० ३१६ ३१८।
- २ वही ८ प० ८५३ ५५।
- ३ ऋग्वेद १०।५।१।४ ८।४३।११ १०।७९।६।
- ४ वही १०।१।१५ १६।
- ५ तत्तिरीय ब्राह्मण ३।९।८ शतपथ ब्राह्मण ३।९।२।२१।
- ६ शतपथ ब्राह्मण ११।७।१।३।
- ७ काण्वे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ४२१।
- ८ बृहदारण्यक उपनिषद् ६।४।१८।
- ९ आपस्तम्ब धर्मसूत्र—२।७।१६।२५।
- १० आश्वलायन गृह्यसूत्र १२।२।४।२२ २६।
- ११ सम० क० ४ पृ० ३१३।
- १२ वही ३ पृ० ३७४।
- १३ वही ४ पृ० ३१९।
- १४ वही ६ पृ० ५१८।

का मास खाने का उल्लेख है। जीवित महिष तथा मछली को निदयता पूर्वक भून कर तथा उसमें सोंठ, पीपल, मीच रवग और हल्दी डालकर पकाया जाता था।<sup>१</sup> मनु ने मधुपक यज्ञ, देव कृत्य एवं श्राद्ध में पशु हत्या की आज्ञा दी है।<sup>२</sup> आगे उन्होंने यह भी लिखा है कि जब प्राणमकट में हो तो मांस भक्षण में पाप नहीं लगता<sup>३</sup> जिसका यानवच्य<sup>४</sup> ने भी किया है। एक स्थान पर तो मनु ने लिखा है कि मांस भक्षण मद्य पान एवं मद्युन में दाप नहीं है क्योंकि ये स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं।<sup>५</sup> काणे के अनुसार स्मृति काल में दो प्रकार के व्यक्ति थे एक वे जो मांस भक्षण को वर्जित मानते थे। किन्तु बाद के कथानुसार यज्ञ आदि अवसरा पर हा पशु बलि दते थे और दूसरे ऐसे लोग थे जो बिना नियन्त्रण के मांस भक्षण करते थे।<sup>६</sup> मनु ने सभी प्रकार की मछलियों के भक्षण का निवृष्ट माना है किन्तु श्राद्ध आदि के समय राहित राजीव सिंह की मुखाकृति वाला मछलियाँ की छूट दी हैं।<sup>७</sup> इस प्रकार धर्म शास्त्रों में भी मांस, मछली खाने का उल्लेख है किन्तु यहाँ समय विशेष का ध्यान रख कर इसका उपयोग किया जाता था। चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार मछली, भेंड का मांस तथा हिरन का मांस स्वादिष्ट समझा जाता था।<sup>८</sup> हपचरित में भी उल्लिखित है कि हप के सनिकाँ का बकरी हिरन चातक (चिडिया) और खरगोश का मांस दिया जाता था।<sup>९</sup> अलबरूनी के अनुसार तत्कालीन समाज में भेंड बकरे, खरगोश भैंस मछली, मूंग, मछा पानी में तथा स्थल पर रहने वाली पक्षियाँ में गौरैया, पेंडुकी तथा मार आदि का मांस खाया जाता था।<sup>१०</sup>

इन उपरोक्त माण्यों से स्पष्ट होता है कि हरिभद्र सूरि के काल में भी मांस भक्षण का प्रचलन था किन्तु धार्मिक दृष्टिकोण से इस उचित नहीं समझा जाता था।

१ मम० क० ३ पृ० ३१३, ३१०।

२ मनु० ५।२७ तथा ४४।

३ वही ५।२७ तथा ३२।

४ यानवच्य० १।१७९।

५ यानवच्य ५।५३।

६ पी० बी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४२३।

७ मनु० ५।१६।

८ वाग्म—आन युवान च्वाग १ पृ० १७८।

९ हपचरित ७ पृ० १५१।

१० सचाऊ—अलबरूनीज इण्डिया २ पृ० १५१।

वस्त्र

संस्कृति के अतमग्न भाजा पान व माय-माय वस्त्र एवं आभूषण का भी विशेष महत्त्व है। किसी भी देश के लोगों का सांस्कृतिक स्थिति का पता उसमें रहने वाले लोगों के वेशभूषा से भी आका जा सकता है। मोहन-जान्हों और हड़प्पा की मय्यता में ता बहुधा गेग नगे ही रहा करते थे और यनि कुछ लोग कपडे पहाने भी थे ता वह लंगोटी या छाटी धाती के रूप में। कभी-कभी लोग चान्दर भी आड लने थे और अपने बाल पाते स बांध लेते थे।<sup>१</sup> बनिष काल स लेरर गानवी शनी तरु गिरे हुए कपडा एवं आभरणों का उल्लव साहित्य में बरानर मिलना है और उनका अवन भी बहुधा चित्रों में हुआ है।<sup>२</sup> बहुत प्राचीन काल स गांधार और पञ्जाव में लोग ठंडक के कारण सिले वस्त्र पहनते थे और इन सिले हुए वस्त्रों में यूनानी ईरानी और मध्यसिया का काफी प्रभाव देखने को मिलना है। इन प्रांतों का उपराक्त जातियों स अति प्राचीन काल स बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था परिणामतः नाना में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का हाना स्वाभाविक था।<sup>३</sup>

समराइच्च कहा व यणन से पता चलता है कि जहाँ धनी-सम्पन्न तथा राज घरानों के लोग मूल्यवान एवं सुन्दर वस्त्रा का धारण करते थे वही गरीब लोग मलिन तथा कटे पुराने वस्त्रा को पहन कर किसी तरह अपना जीवन निर्वाह करते थे।

वस्त्र के प्रकार

समराइच्च कहा में निम्नलिखित प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है।

डुकूल—समराइच्च कहा में इसका उल्लेख कई बार आया है।<sup>४</sup> यह एक श्वेत रंग का सुन्दर एवं कामती वस्त्र था। इसका प्रयोग अधिकतर धनी सम्पन्न तथा राजा महाराजा ही करते थे। डुकूल का उल्लेख महाभारत में भी आया है जिसे मोतीचन्द्र ने रोमन केवका का बाहसाम माना है। आगे उन्ही के अनुसार यह डुकूल वृक्ष की छाल के रेशा से बनता था बगाल का बना डुकूल सफेद और मुलायम हाता था पौड का नीला और निक्का तथा सुवर्ण बुड्या का डुकूल ललाई लिए हाता था। इसी प्रकार मणिस्मि घोदकवान डुकूल घुट

१ मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेशभूषा भूमिका पृ० ३।

२ वही—भूमिका पृ० २।

३ वही पृ० ३।

४ सम० क० ४ पृ० २९७ ५ पृ० ४९५, ८ पृ० ७९८।

हुए सूत क बनते थे ।<sup>१</sup> आचार्यग सूत्र में उल्लिखित है कि दुकूल वगाल में पैदा होने वाल एक विशेष प्रकार की रई में बनने वाला वस्त्र था ।<sup>२</sup> निगीय चूर्णी में दुकूल का दुकूल नामक वृक्ष का छाल को कूटकर इसमें रंगे में बनाये जाने वाला वस्त्र कहा गया है ।<sup>३</sup> हर्षचरित में दुकूल का प्रयाग उत्तरीय अश्वत्थ सानी चान्दर आदि के रूप में किये जाने का उल्लेख है ।<sup>४</sup> वामुदेवगण अग्रवाल के अनुसार सम्भवत कूल का अर्थ नैद्य या आन्ति भाषा में कपण था जिसमें कालिक गन् बना है । गहरी चान्दर या घान के रूप में विक्रयाय आने क कारण पट्ट द्विकूल या दुकूल कहलाने लगा ।<sup>५</sup> यागस्तिलक में भी दुकूल का उल्लेख पाया गया है, राजपुर में दुकूल और अगु क वज्रतिया (पताकाय) लगाई गयी थी ।<sup>६</sup> इसी ग्रन्थ में आगे बताया गया है कि राज्याभिषेक क बाद सम्राट यगोधर ने धवल दुकूल धारण किये ।<sup>७</sup> हमीर महाकाव्य में नीले रंग क दुकूल का उल्लेख है ।<sup>८</sup>

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि दुकूल श्वेत नाले तथा लाल आदि विभिन्न रंग का होता था जो मृत् स्निग्ध तथा कोमती किस्म का कपड़ा समझा जाता था ।

धनक—समराडम्ब कहा क उल्लेख से पता चलता है कि अगु क एक प्रकार का महीन एवं सुंदर रंगी वस्त्र था ।<sup>९</sup> मातीचन् के अनुसार यह चन्द्र किरण एवं श्वेत कम क समान सफेद होता था ।<sup>१०</sup> बुनावट क अनुसार इसक कई भेद बताये गये हैं यथा एकानुक अघ्यघानुक द्वयगु और त्रयगु आदि ।<sup>११</sup>

- १ मोठीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेगभूषा भूमिका पृ० ९ ।
- २ आचार्यग सूत्र २५।१३—दुकूल गौड विषय विणिष्ट कार्यामिकम ।
- ३ निगीय चूर्णी ७ पृ० १०-१२ दुगुलो रस्खो तरस बागा घेतु उद्वल्ले कृटिगति वाणिण तात जाव धूमी भूता ताहे कज्जति एतपु दुगुल्ला ।
- ४ हर्षचरित—१ पृ० ३४ ३, पृ० ८५ तथा ५ पृ० १७२ ।
- ५ वामुदेवगण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ७६ ।
- ६ यागस्तिलक पृ० १९ (दुकूलानुक वज्रयन्त्री सततिमि) ।
- ७ यागस्तिलक, पृ० ३२३ घत धवल दुकूल भात्य विन्पनालकार ।
- ८ दण्डय गर्मा—अर्णो चोहान डायनेस्टीज, पृ० २६२ में उद्धृत ।
- ९ सम० क० १, पृ० ७४ ।
- १० मातीचन्—प्राचीन भारतीय वेगभूषा, पृ० ५५ ।
- ११ वही पृ० ५५ ।

आचाराग सूत्र में अंगुक और चीनांगुक नाना का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup> बृहत् कल्पभाष्य में दाना को पथक-पृथक गिनाया गया है।<sup>२</sup> कालिंगस ने भी सीतांगुक<sup>३</sup>, अरुणांगुक<sup>४</sup> रत्नांगुक<sup>५</sup> तथा नीलांगुक<sup>६</sup> का उल्लेख किया है। ह्यचरित में भी एक स्थान पर मृणाल व रसा से अंगुक की मृदमता का चित्रण कराया गया है।<sup>७</sup> एक अन्य स्थान पर फूल-पत्तियों और पत्तियाँ की आवृतियाँ से सुगोभित अंगुक का भी उल्लेख हुआ है।<sup>८</sup> आन्तिपुराण में भी रग भेद से इमे सितान्गुक रत्नांगुक और नीलांगुक आदि कई नामों से उल्लिखित किया गया है।<sup>९</sup>

यशस्तिलक में भी सफेद अंगक कुसुम्भांगुक या ललाई लिए हुए रग का अंगुक<sup>१०</sup> तथा कान्मिकांगुक अर्थात् नीला या मटमले रग का अंगुक<sup>११</sup> आदि का उल्लेख है। रग आन्ति के भेद में अंगुक कई प्रकार का होता था जो सम्भवतः दुकूल से निम्नकाटि का कपड़ा माना जाता था।<sup>१२</sup> यह सुन्दर स्निग्ध तथा महीन होता था।

चीनांगुक—समराइच्च कहा में चीनांगुक नामक वस्त्र का भी उल्लेख है।<sup>१३</sup> यह एक प्रकार का पतला एवं स्निग्ध रेशमी वस्त्र था। इसका उल्लेख अथ जन प्रथा में भी किया गया है।<sup>१४</sup> बृहत्कल्पभाष्य में इसकी 'पाथ्या कोपकार' नामक कीड़े से अथवा चान जनपद के बहुत पतले रेशम से बने वस्त्र से की गई है।<sup>१५</sup>

- १ आचाराग २।१४।६—अंगुयाणि वा चीनांगुयाणि वा ।
- २ बृहत्कल्पभाष्य सूत्र ४।३६६१—अमुग चीनसुगे च विगलेंदी ।
- ३ विक्रमावशी ३।१२—सितान्गुका मगल मात्र भूषणा ।
- ४ रघुवश ९।४३—अरुणरागनिषीधिमिरांगुक ।
- ५ ऋतु संहार ६।४।२९ ।
- ६ विक्रमावशी पृ० ६० ।
- ७ ह्यचरित १, पृ० १० ।
- ८ वही १ पृ० ११४—बहुविविकुमुमशकुनिशतशोभितादूतिस्वच्छादङ्गुकात् ।
- ९ आन्तिपुराण १०।१८१ ११।१३३, १२।३० १५।२३ ।
- १० यशस्तिलक—उत्तर खण्ड, पृ० १३—'सित पताकांगुक ।
- ११ वहा पृ० १४—कुसुम्भांगुक पिहित गौरीपयोधर ।
- १२ वही पृ० २२०—वादमिकांगुकाधिकृत काय परिकर ।
- १३ सम० क० ५ पृ० ४३८ ।
- १४ आचाराग २।१४।६ भगवतीसूत्र ९।३३।९, निखीय चूर्णी ७ पृ० ११ ।
- १५ बृहत्कल्पभाष्य ४।३६।६२ ।

दशरथ 'नर्मा' व अनुसार चीनाशुक चीनी सिल्क की भाँति जान पड़ता है।<sup>१</sup>

अधचीनाशुक—चीनाशुक की भाँति समराइच्च कहाँ में अधचीनाशुक का भी उल्लेख है।<sup>२</sup> संभवतः यह आधा रेशम तथा आधा सूत का बना होता था जयवा चीनाशुक के छोटे माप का टुकड़ा था।

द्वन्द्व—यह एक दिव्य किस्म का वस्त्र था जिसका प्रयोग अधिकतर धार्मिक प्रवृत्ति के लोग तथा राजा-महाराजा ही करते थे।<sup>३</sup> आदिपुराण में दुष्य का उल्लेख है जिनका अनुसार द्वन्द्वसाला<sup>४</sup> कपड़े की धाँनी के लिए उपयुक्त समझा जाता था। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार स्तूपके शरीर पर जा कीमती वस्त्र पहनाए जाते थे वे द्वन्द्व कहलाते थे।<sup>५</sup> भगवती सूत्र में द्वन्द्व को एक प्रकार का दबी वस्त्र बताया गया है जिसे भगवान महावीर ने धारण किया था।<sup>६</sup>

क्षौम वस्त्र—समराइच्च कहाँ में इसका उल्लेख कई जगह किया गया है।<sup>७</sup> वैदिक साहित्य में भी इसका उल्लेख है जिसे मोतीवद ने अलसी की छाल से निर्मित बताया है।<sup>८</sup> तत्तिरीय संहिता में भी इसका उल्लेख आया है।<sup>९</sup> आश्वलायन श्रौतसूत्र में क्षौम का उल्लेख दान देने के संबंध में हुआ है।<sup>१०</sup> आदिपुराण में भी क्षौम का उल्लेख है जो आत्यधिक कीमती, मुलायम और सूक्ष्म होता था।<sup>११</sup> ह्यचरित से पता चलता है कि आसाम के राजा भास्करवर्मान ने ह्य को बहुत से क्षौम के लम्बे टुकड़े भेंट स्वरूप प्रदान किये थे।<sup>१२</sup> वासुदेवशरण

१ राजस्थान भारती, ५—में—दशरथ शर्मा—७वीं शताब्दी में आनन्द मुज्जा की सामग्री।

२ सम० क० २ पृ० १००।

३ वही ४, पृ० २९१ ९, पृ० ८९८ ९११ ९५७, ९७३।

४ आदिपुराण २७।२४।

५ वासुदेवशरण अग्रवाल—ह्यचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७५।

६ भगवती सूत्र १५।१।५४१।

७ सम० क० ७ पृ० ६३४ ३५ ६४७।

८ मोतीवद—प्राचीन भारतीय वस्त्रभूषण भूमिदा पृ० ४।

९ तत्तिरीय संहिता ६।१।१।३।

१० आश्वलायन श्रौत सूत्र २।३।४।१७।

११ आदिपुराण १२।१७३।

१२ ह्यचरित ७ पृ० २१७।

अप्रपाल व अनुगार यह आगाम और बंगाल में ऊपग्र एक प्रकार की घास से निर्मित किया जाता था।<sup>१</sup> बागी और पण्डु दण शीम व निग प्रगिद्ध थे।<sup>२</sup> उग्र राज उल्लेखों ॥ स्पष्ट होता है कि शीम एक प्रकार का महान बीमता एक मुन्दर वस्त्र था जिगवा प्रयाग अधिष्ठित बना मन्वय एक राजपगने व लोग हा कर पाने थे।

पटवात—ममराइच्च कृष्ण में पटवाग का भा उल्लेख है।<sup>३</sup> आग्निपुराण में पटागुव का उल्लेख है<sup>४</sup> जिगवा अथ रणमी वस्त्र न लगाया जा सकता है। पटवाग और पटागुव एक दूसरे में भिन्न थे। पटागुव एक बीमती रणमी वस्त्र था जिगवा प्रयाग धनित हा कर पाने थे। अथर्व पटवाग मूनी एक मन्त्र विष्णु का वस्त्र था जिगवा प्रयोग मापारण लग भा करत थे। हरचरित में गग्गधा व विवाह व ममय मय रंग हुए दुर्मुख वस्त्रों व बन हुए पटविता लग हुए थे और पूर घास में न पट्टियों और छात्र-छात्र पट्ट ताज कर अनन्य प्रकार की मन्त्रा वन व काम में लाये जा रहे थे। यही बागुवेवर्णन अथवात व अनुगार ममयत पूरा घास था और पटा रणमी पट्टियों थी जो सांस्कृतिक व काम में लायी जा रहा था।<sup>५</sup> नम गव उद्धरण न स्पष्ट होता है कि पटवाग ममयत मापारण विष्णु का वस्त्रा रता होगा।

वस्त्रज—गवा प्रयाग अधिष्ठित जंगल में रहने वाली जानियों अथवा गाधु ममयता हा करत थे।<sup>६</sup> छात्र व वस्त्र की वस्त्रज का उल्लेख जा होता था जो बीज मिश्रकों का अधिष्ठित था।<sup>७</sup> वाग्जिगम म कुमाराग्रमय में वस्त्रज वस्त्र का उल्लेख किया है।<sup>८</sup> वाग्जिगम न उत्तरीय और वाग्ज व मय म वस्त्रज व वस्त्रज का उल्लेख किया है।<sup>९</sup> हरचरित में उल्लेखित है कि गाधिवी म वस्त्रज का वस्त्र न विनि वस्त्रज वस्त्र पारण किया था।<sup>१०</sup>

१ बागुव रण अथवात—हरचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ७६।

२ म मावज—अथर्व आग्नीव वस्त्रज अधिष्ठित पृ० ७।

३ मम० व० ७ पृ० ९४।

४ आग्निपुराण ११।४८।

५ बागुवेवर्णन अथवात—हरचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ८१।

६ मम० व० ८ पृ० ३१।

७ म मावज—अथर्व आग्नीव वस्त्रज अधिष्ठित पृ० ११।

८ कुमाराग्रमय १।७७।

९ आग्नीव १ पृ० १४। पृ० १४ वस्त्रज पृ० १११ ११२।

१० हरचरित—पृ० १०।

## अथ वस्त्र

उत्तरीय—समराद्वय कहा में उत्तरीय का धार के रूप में उल्लिखित किया गया है जो कमर में ऊपर ओढ़ने के प्रयोग में आता था ।<sup>१</sup> इस कर्धों पर धारण किया जाता था ।<sup>२</sup> यशस्तिलक में उल्लिखित है कि मुनिकुमार युगल शरीर की शुभ प्रभा के कारण ऐसे प्रतीत होते थे जैसे उन्होंने दुकूल का उत्तरीय आड़ रखा है ।<sup>३</sup> आगे इसी ग्रन्थ में उल्लिखित है कि कुमार यशोधर के राज्याभिषेक का भूत निकालने के लिए जो ज्योतिषी इकट्ठा हुए थे वे दुकूल के उत्तरीय से अपना मुँह ढके थे ।<sup>४</sup> अमरकोष में उत्तरीय को ओढ़ने वाला वस्त्र बताया गया है ।<sup>५</sup> कादम्बरी और हृषचरित में उत्तरीय का उल्लेख है । हृषचरित में बकल के भी उत्तरीय का उल्लेख मिलता है ।<sup>६</sup> इन सभी प्रमाणा से स्पष्ट होता है कि उत्तरीय का प्रयोग कमर में ऊपर आढ़ने के लिए होता था । यह विभिन्न किस्म का होता था ।

कम्बल—यह भेड़-बकरा के बाल से तयार किया जाने वाला वस्त्र था जो आढ़ने के लिए प्रयुक्त होता था । कम्बल का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है ।<sup>७</sup> आदिपुराण में भी इस वस्त्र का नाम आया है ।<sup>८</sup> ह्येनसाग के अनुसार यह भेड़, बकरा के ऊँठों से निर्मित किया जाता था और मुलायम तथा सुंदर होता था ।<sup>९</sup>

१ सम० क० ४, पृ० २५४ २६९ ५ प० ४२३ ४४४, ५ प० ४९५ ९ पृ० ८६२ ।

२ ए० के० मजूमदार—बालुववाज आफ गुजरात प० ३५६ ।

३ यशस्तिलक, प० १५९, वपुप्रभाषणल दुकूलोत्तरीयम् ।

४ यशस्तिलक प० ३१६ उत्तरीय दुकूलाचल विहित विम्बिना ।

५ अमरकोष २।६।११८ । म यानमुत्तरीय च ।

६ हृषचरित १ पृ० ३४ ५ पृ० १६२ कादम्बरी प० ८५ ९५, १३८, १७४ ।

७ हृषचरित १ प० ३४ ४ पृ० १४३ ।

८ वही ३ पृ० ६५६ ६६१ ।

९ अथर्ववेद १४।२।६६ ६७ ।

१० आदिपुराण ४७।४६ ।

११ वाटस—आन युवानज्वाग १ प० १४८ ।



चेल वस्त्र<sup>१</sup>—यह एक मोटा और मजबूत किस्म का कपड़ा होता था। समराइच्च कहा में चेलगृह<sup>२</sup> का उल्लेख है जिससे पता चलता है कि यह एक मोटा तथा मजबूत कपड़ा रहा होगा जो दरी गत्तीचा तथा तम्बू आदि बनाने के काम में आता था। भगवती सूत्र में भी चेल का उल्लेख है जिस साधारण लोग अथवा साधु-मयामी धारण करते थे।<sup>३</sup>

स्तनछावन—समराइच्च कहा में मणि रत्ना से जटिल एक प्रकार का वस्त्र बताया गया है जिसका प्रयोग राजघरानों की स्त्रियाँ करती थी।<sup>४</sup> यहाँ इसका व्यवहार वक्ष बाधनी के रूप में किया गया है। बर्दिक काल में आय स्त्रियाँ स्तनपट्ट धारण करती थी।<sup>५</sup> यहाँ इसका व्यवहार वक्ष बाधनी के रूप में किया गया है। गुप्त काल में भी उस समय के सिक्का पर स्तन पट्ट धारण की हुई स्त्रियों के चित्र अंकित हैं।<sup>६</sup> आदि पुराण में स्तनागुक दाह का उल्लेख मिलता है।<sup>७</sup> सम्भवतः यह एक रसमी वस्त्र का टुकड़ा होता था जिसे स्त्रियाँ वक्ष स्थल पर सामने से लेकर पीछे पीठ की ओर बाँधती थी। समराइच्च कहा में इसे मणि रत्ना से युक्त बताया गया है जो सौंदर्य वृद्धि के लिए जटिल किये गये जान पड़ते हैं।

गण्डोपधान<sup>८</sup>—समराइच्च कहा में इसे रख कर आराम से बैठने के लिए प्रयुक्त समझा गया है। सम्भवतः यह गोल तकिया की तरह का होता था।

अलगणिका<sup>९</sup>—यह एक प्रकार की लम्बी तकिया होती थी जिसका प्रयोग साते समय किया जाता था।

## आभूषण

हरिभद्र कालीन समाज के लोग विविध प्रकार के आभूषणों का प्रयोग करते थे। वस्त्रों के धारण करने की कला के आविष्कार के साथ-साथ आभूषण

१ सम० व० ८, पृ० ७६६।

२ वही ॥ पृ० ६५६ ६६१।

३ भगवती सूत्र ११।०।८१७, १५।१।५४१।

४ सम० क० २ पृ० ९५।

५ मोतीच द—प्राचीन भारताय वेशभूषा भूमिका पृ० ४।

६ वही पृ० २३।

७ आदिपुराण १२।१७६ ८।८।

८ सम० क० ९ पृ० ९७४।

९ वही ९ पृ० ९७४।

का भी प्रयाग भारतीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रारंभ हुआ।<sup>१</sup> सम्राट् चक्रवर्ती ने निम्नलिखित आभूषणों का उल्लेख है।

**कुण्डल**—इसका उल्लेख सम्राट् चक्रवर्ती ने कई स्थानों पर किया गया है।<sup>२</sup> यह कान में पहना जाने वाला एक अङ्गूरी या जिमे स्त्री पुरुष दोनों धारण करते थे। कुण्डल की आकृति गोल-गोल छेले के समान होती थी। अमरकोष में इसे कान का लपेट कर पहना जाने वाला आभूषण बताया गया है।<sup>३</sup> इसमें गोल बालों तथा साने की इकट्टरी लड़ी लगी होती थी अजस्ता की चित्रकला में इस तरह के कुण्डल का चित्रित किया गया है।<sup>४</sup> हम्मौर महाकाय में भी कुण्डल का उल्लेख है जिसका प्रयोग पर्य किया करते थे।<sup>५</sup> याज्ञिक में आया है कि सम्राट् याज्ञिक चक्रवर्ती के बने कुण्डल धारण किये थे।<sup>६</sup> इसी ग्रंथ में आगे उल्लिखित है कि मुनिकुमारयण्य विना आभूषणों के ही अपने कपड़ों की काँति से ही ऐसे लगने थे मानो कानों में कुण्डल धारण किये हुए।<sup>७</sup> आदिपुगण में मणि कुण्डल<sup>८</sup> रत्न कुण्डल<sup>९</sup> कुण्डली तथा मकराकृत<sup>१०</sup> कुण्डल आदि विभिन्न प्रकार के कुण्डलों का उल्लेख है जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय विभिन्न प्रकार के कुण्डलों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ कुण्डली का तात्पर्य छोटे आकृति के कुण्डल से लगाया जा सकता है।

**कटक**—सम्राट् चक्रवर्ती ने कटक का उल्लेख कई बार किया गया है।<sup>११</sup> इसका प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों करते थे। यह हाथ में पहना जाने वाला

१ जे० सी० सिकार—स्टडीज इन दी भगवती सूत्र पृ० २४१।

२ सम० क०—१ पृ० ३१, २, पृ० ९६, १००, १३१, ५ पृ० ४५२, ६ पृ० ५८१, ५९५, ७, पृ० ६३९, ६९८, ९ पृ० ९११।

३ अमरकोष २।६।७३०। कुण्डलं कण वेष्टनम्।

४ वासुदेवशरण अग्रवाल—ज्ञानचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २० चित्र ७८।

५ शारंग धर्म—अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० २६३ में उद्धृत।

६ याज्ञिक—पृ० ३६७ (कुण्डलाम्यामलकृत श्रवण)।

७ वहा पृ० १५९ (कपोलकाँति कुण्डलित मुसमल)।

८ आदिपुगण ३३।१०४, ९।१९०, १४।११।

९ वही ४।१७७, १५।१८९।

१० वही ३।७२।

११ वही १६।३३।

१२ सम० क० १, पृ० ३१, ७, पृ० ७१४, १५-१६, ७२४।

आभूषण था। कटक वदम्ब (पल्ल सिपाहो) की व्याख्या में वासुदेवशरण अग्रवाल ने बताया है कि सम्भवतः कटक (कडा) पहनने के कारण ही उन्हें कटक वदम्ब कहा जाता था।<sup>१</sup> ह्यचरित में भी कटक और केयूर दाना का उल्लेख आया है।<sup>२</sup> कटक और केयूर दाना का प्रयोग स्त्री पुरुष करते थे। आग्नि पुराण में एक स्थान पर त्रिव्य कटक<sup>३</sup> का उल्लेख है जिसे रत्न जटित कहा जाता है।<sup>४</sup>

केयूर<sup>५</sup>—इसका प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों करते थे। अमर कोष में अंगूर और केयूर का पर्याय बताया गया है।<sup>६</sup> भक्तहरि ने केयूर का उल्लेख पुरुषों के अलंकार के रूप में किया है।<sup>७</sup> किन्तु हमने विपरीत यशस्तिलक में आया है कि विरह की स्थिति में स्त्रियों बाहु का केयूर पैरा में तथा पैरों का मूषुर बाहु में पहन लेती हैं।<sup>८</sup>

मुद्रिका—समराइच्च कहा में इस अंगुलिका में पहना जाने वाला अलंकार बताया गया है।<sup>९</sup> मुद्रिका का उल्लेख भगवती सूत्र में भी आया है।<sup>१०</sup> यशस्तिलक में अंगूठी के लिए उर्मिका<sup>११</sup> तथा अंगुलीयक<sup>१२</sup> शब्द आये हैं। ह्यचरित में भी उर्मिका का उल्लेख है।<sup>१३</sup> सम्भवतः भँवर के समान चक्कर लगाकर बनायी गई अंगूठी का उर्मिका कहा गया है। त्रिशष्टिनालाका पुरुष चरित में भी स्त्री के आभूषण के रूप में अंगूठी का उल्लेख है।<sup>१४</sup> मुद्रिका का

१ वासुदेवशरण अग्रवाल—ह्यचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० १३१।

२ वही पृ० १७६ में उद्धृत।

३ आग्नि पुराण २९।१६७।

४ सम० क० १ पृ० ३१ २ पृ० १०० ७ पृ० ६३८।

५ अशरकाप २।६।१०७ (केयूरमगद तुल्ये)।

६ भक्त हरिशतक २।१९। केयूर न विभूषयन्त पुरुष देखिए—रघुवंश ६।६८ कुमारसम्भव ७।६९।

७ यशस्तिलक पृ० ६१७ केयूरचरणघृतविरचित हस्ते च द्विज्वीरिकम्।

८ सम० क० २ पृ० ९६ ९८।

९ दशरथ गर्मा—जर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० २६२।

१० यशस्तिलक पृ० ६७ (सरलोमिकामरण)।

११ वही उत्तर पृ० १३१ (प्रसानी करोत्यंगुलीयकम्)।

१२ ह्यचरित १ पृ० १० (कम्बुनिमित्तोर्मिका)।

१३ ए० के० मजूमदार—चालुक्यशासक आफ गुजरात पृ० ३५९ में उद्धृत।

प्रयोग स्त्री-युरूप नाना करते थे जा अपने मामध्य के अनुसार मोने-चानी आदि की वनवाई जाती थी ।

**कङ्कण**—समराडच्च कहा में इसे कण्ठाभरण के साथ उल्लिखित किया गया है ।<sup>१</sup> प्राचीन काल में कंकण पहनने का भी प्रचलन था । भतहरि ने इसे कन्हाई का आभूषण कहा है ।<sup>२</sup> यशस्तिलक में आया है कि मीधेय जनपद में कृपकों की स्त्रिया साने व कंकण पहनती थी ।<sup>३</sup> अत स्पष्ट है कि हरिभद्र के काल में कंकण का प्रचलन स्त्री-युरूप दोनों में था ।

**नूपुर**—समराडच्च कहा में इसे स्त्रिया व अभूषण के रूप में उल्लिखित किया गया है ।<sup>४</sup> यह पर में पहना जाने वाला स्त्रिया का एक अलंकार था । हितोपदेश में नूपुर को पर का आभूषण बताया गया है ।<sup>५</sup> आग्निपुराण में मणिनूपुर का उल्लेख है ।<sup>६</sup> नूपुर को राजस्थान में नेवरी कहा जाता था ।<sup>७</sup> हय चरित में भी नूपुर को स्त्रिया का आभूषण बताया गया है ।<sup>८</sup> जिसे पर में धारण करती थी ।

**रत्नावली**—यह रत्ना का बनी हुई माला होती थी जिसे राजघरानों की स्त्रिया ही धारण करती थी ।<sup>९</sup> रत्नावली का उल्लेख भगवती सूत्र<sup>१०</sup> तथा आग्नि पुराण<sup>११</sup> में आया है । रत्नावली में नाना प्रकार के रत्न गँये जाते थे और मध्य में एक बड़ी मणि जड़ित रहती थी ।

**हार**—समराडच्च कहा में हार का उल्लेख कई बार किया गया है ।<sup>१२</sup> यह

- १ सम० क० ६ प० ५९७ (ठमि एयस्म समीवे छिनककण कण्ठाहरण) ।
- २ भतहरिशतक २।७१ । (दानेन पाणिन तु ककणेन विभाति ) ।
- ३ यशस्तिलक प० १५ ।
- ४ सम० क० २, प० ८२, ९५, ८, पृ० २६९ ६ प० ४९३, ७ पृ० ६३९ ८ प० ७११, ९ पृ० ९४४ ।
- ५ हितोपदेश २।७१ तहि चूडामणि पादे नूपुर मूर्ध्निर्धायते ।
- ६ आग्निपुराण ७।२३७ १२।२२, ५।२६८ ७।१२९ ।
- ७ दशरथ चरित—अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० २६२ ।
- ८ बामुनेत्र चरण अग्रवाल—हय चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६१ ।
- ९ सम० क० ४, पृ० २५४, २८५ ।
- १० भगवती सूत्र ११।११।४३० ।
- ११ आग्नि पुराण १६।५० ।
- १२ सम० क० २ प० ७६ ८५, ९१, ९६, १००, ३, पृ० २२० ५ प० ३८० ४५२, ६, पृ० ४९५ ७ प० ६१० ११, ६२७ ६३९, ६९८, ० पृ० ९११ ।

गले में धारण किया जाने वाला आमपण था। कालिंगस ने हार का उल्लेख कई रूपा में किया है यथा हार<sup>१</sup> हारशेखर<sup>२</sup> हारयष्टि<sup>३</sup> तारहार<sup>४</sup> तथा लम्बहार<sup>५</sup> आदि। आम्पिपुराण में एक भी आठ मुक्ता लङ्घियों से युक्त हार का उल्लेख है।<sup>६</sup>

एकावली—ममराडच्च कहा वं क्या प्रसंग में इसका उल्लेख आया है।<sup>७</sup> मातियों की एक लट्ठी की माला का एकावली कहा गया है जो मातियाँ का घने रूप में गूथ कर बनायी जाती थी। अमरकाप में एकावली को मोतिया की झुहरी माला कहा गया है।<sup>८</sup> गुप्त काल में एकावली सभी आभूषणों में अधिक प्रिय थी। वामुदेव गण अग्रवाल के अनुसार गुप्त कालीन शिल्प की मूर्तियों और चित्रों में हस्तनील की मध्य गुरिया सहित मोतिया की एकावली पायी जाती है। यह घने मातियाँ का गूथ कर बनायी जाती थी।<sup>९</sup> याग्नितिलक में उज्ज्वल माती की मध्य मणि के रूप में लगा कर एकावली बनाने का उल्लेख है।<sup>१०</sup>

मणिमेखला—ममराडच्च कहा में इसका उल्लेख कई बार किया गया है।<sup>११</sup> यह स्त्रियों का आभूषण था जिसे मेखला अर्थात् कमर में पहन जाने का कारण मेखला कहा जाता था। इसमें मणि-अटित रहते थे। हय चरित म स्त्रियाँ द्वारा कटि भाग में धारण की हुई करधना का रूप में इसका उल्लेख है।<sup>१२</sup> भगवता सूत्र<sup>१३</sup> आदिपुराण<sup>१४</sup> तथा याग्नितिलक<sup>१५</sup> में भी इसका उल्लेख है।

१ ऋतुसंहार १।४ २।१८ मेघदूत—उत्तरमेघ ३० कुमार सम्भव ५।८।

२ ऋतुसंहार १।६।

३ वही १।८।

४ रघुवश ५।५२।

५ वही ६।६०।

६ आम्पिपुराण १६।५८।

७ मम० क० ९ प० ९११।

८ अमरकाप २।६।१०६।

९ वामुदेवगण अग्रवाल—हय चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० १०२।

१० याग्नितिलक प० २८८ (तारतरम्मुक्ताफलाम) देखिए—अमरकाप २।६। १५५। (तारतारहारमयगा)।

११ मम० क० ५ पृ० ३८४ ६ पृ० ५९७ ७ पृ० ६८४।

१२ वामुदेवगण अग्रवाल—हय चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २४।

१३ भगवता सूत्र ९।३३।३८०।

१४ आदिपुराण १५।२३।

१५ याग्नितिलक प० १०० (मुखरमणिमेखलाजावाचालि पचमा लिपि)।

इन उल्लेखा से स्पष्ट होता है कि मणि मेखला का प्रयोग सम्पन्न एवं राजघराना की स्त्रियाँ किया करती थी।

**कटिसूत्र**—समराइच्च कहा में इस भा आभूषण की श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>१</sup> यह मणि मेखला की तरह कमर में पहना जाने वाला अलंकार या जिम अधिकतर राजपूष्य ही धारण करते थे। सम्भवत यह स्वर्णसूत्र और रत्नम का बना होता था। कटिसूत्र का उल्लेख आदिपुराण में भी आया है।<sup>२</sup>

**कठक**—समराइच्च कहा में इसका उल्लेख अलंकार की श्रेणी में हुआ है।<sup>३</sup> किंतु इसकी बनावट आदि का उल्लेख नहीं है। यह कठ में पहना जाने वाला एक अलंकार था। आदिपुराण में कठभरण<sup>४</sup> का उल्लेख मिलता है जो स्वर्ण और मणियाँ द्वारा तयार किया जाता था। सम्भवत यह स्त्री-पूष्य दोनों का आभूषण था।

**मुकुट**—समराइच्च कहा में इसे मिर पर धाघने वाले अलंकार के रूप में प्रमुख समझा गया है जिसे ताज कहा जाता था। इसका प्रयोग राजा महाराजा राजकुमार और राजपरिवार की स्त्रियाँ ही करती थी। जज्ञता की भित्ति चित्रा पर रत्न-जटित लम्बोत्तरा मुकुट, चाटीगार मुकुट मातौ की लड़ी से अलङ्कृत लम्बात्तरा मुकुट कलगार मुकुट आदि विभिन्न प्रकार के मुकुट अङ्कित किये गये हैं।<sup>५</sup> आदिपुराण में भी कई स्थानों पर मुकुट का उल्लेख है।<sup>६</sup> भगवतीसूत्र में पता चलता है कि ताज का प्रयोग राजा और राजकुमार ही करते थे।<sup>७</sup>

**बूडामणि**—समराइच्च कहा में इस मणि और रत्न से जटिल बताया गया है।<sup>८</sup> ह्यचरित में मालता के शरीर पर कटि प्रदेश में करधना, गले में मुक्ताहार कलाई में साने का कड़ा आदि के साथ केशा में बूडामणि मकरिका नामक आभूषण का उल्लेख है।<sup>९</sup> यह आभूषण स्त्रियाँ अपने बालों का गुँथ कर उसमें

१ सम० क० २ पृ० १०० ४ प० २६५ ७ प० ६२८ ६४४ ६५९।

२ आदिपुराण १२।६९ १६।२३५ १६।१९।

३ सम० क० ५ प० ३८४ ६ प० ५९७ ७ प० ६८४।

४ आदिपुराण १५।१९३।

५ सम० क० ० प० ९११ (यहाँ दन्तीप्यमान मुकुट का उल्लेख है)।

६ मोतीवन्द—प्राचीन भारताय वेशभूषा भूमिका प० २२।

७ आदिपुराण ९।४१ १०।१२६ १५।५, १६।२३४।

८ भगवतीसूत्र ९।३३।२८५ ११।११।४२८।

९ सम० क० २ प० ८५, ९६ ७ पृ० ६०६।

१० वामुदवर्णन अग्रवाल—ह्यचरित एक साम्प्रतिक अभ्ययन प० २४।

धारण करती थी। आदिपुराण में ता चूडामणि<sup>१</sup> और चूडारत्न<sup>२</sup> दाना का उल्लेख अलग-अलग किया गया है। यद्यपि अलंकार की दृष्टि से दोनों समान समझे जाते थे किन्तु मणि और रत्ना व जटित होने के विभेद अलग-अलग नाम गिनाए गये हैं।

### अंग प्रसाधन सामग्री

हरिभद्र कालीन समाज के लोग विभिन्न प्रकार के आभूषणों के साथ-साथ अंग प्रसाधन की विभिन्न सामग्रियों का भी प्रयोग करते थे। शरीर के विभिन्न अंगों की शुद्धि तथा उसे सुन्दरतम बनाने के लिए प्रसाधन क्रिया आवश्यक समझी जाती थी। समराङ्ग कहा में निम्नलिखित अंग प्रसाधन की सामग्रियों का उल्लेख है।

चदन<sup>३</sup> (तिलक तथा शरीर में स्नेह के लिए आवश्यक समझा जाता था) कुकुमरांग<sup>४</sup> अंगराग<sup>५</sup> गंधोदक,<sup>६</sup> हरिचंदन<sup>७</sup> पद्मराग<sup>८</sup> जालक,<sup>९</sup> तिलक<sup>१०</sup>

१ आदिपुराण १४।८ ४।९४।

२ वही ११।११३ २९।१६७।

३ सम० क० २ प० ८५ ९४ ४ प० ३४५ ५ प० ३७५ ४८२ ६ पृ० ५३३, ५४८ ७, प० ६३८, ६३९ ६४७ ८ प० ७८२ ९ प० ९५७ देखिए—स्नान के बाद चदन तिलक—पी० बी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १ प० ३७२, रामायण—अयोध्या काण्ड ३।१३, महाभारत सभा पर्व २१।२८, दश स्मृति २।४३ भगवतीसूत्र ८।३३।३८३, आदिपुराण—१।८५, ६।८०।

४ वही २ प० ९३ ५, पृ० ३७० ४७४ ७ प० ६३८ ३९ ९ पृ० ८६१ ८८१ ८२ ९०० देखिए—यशस्तिलक पृ० ६१ आदिपुराण—१२।३४, १३।१७८ वासुदेवगण अग्रवाल—हृषिकेश एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ७६।

५ वही २ पृ० १३१ ९ पृ० ९००।

६ वही ८ पृ० ७४८ ९ ९५१।

७ वही ५, पृ० ४२४ ७ पृ० ६३८ ६९८ ८ पृ० ७९८ ० पृ० ९०० ९११।

८ वही ७ प० ६३८।

९ वही ६ प० ५४८, ७ पृ० ६२९, देखिए—आदि पुराण ७।१३३ यशस्तिलक पृ० १२६ (यशस्तिलक मण्डन विरचितम्)।

१० वही ५ पृ० ४८२, ७, प० ६४० देखिए—मालविकाग्निमित्र ३।४ ४।९, रघुवत-१८।४६, आदिपुराण १४।६।

(हरताल तथा बेशर आदि द्रव्यों से तैयार किया जाता था) अजून<sup>१</sup> लवंग<sup>२</sup> (ताम्बूल में मिलाकर मुखगुच्छि के लिए प्रयोग किया जाता था) काला अगरु<sup>३</sup> तुण्डक,<sup>४</sup> कपूर<sup>५</sup> सहस्रपाक तेल<sup>६</sup> (शरीर की स्निग्धता तथा चमरोगा का नाशक) अन्सी का तेल<sup>७</sup> हल्दी मिश्रित लेप<sup>८</sup> (हृदी तेल तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों का मिलाकर तैयार किया जाता था जिससे लेप से शरीर स्निग्ध तथा आकर्षक लगने लगता था) मिन्दूर धूल<sup>९</sup> गुलाल<sup>१०</sup> कस्तूरी<sup>११</sup> नागवल्ली दल,<sup>१२</sup> कुसुम माला<sup>१३</sup> तथा ताम्बूल<sup>१४</sup> आदि ।

- १ सम० क० ६ प० ५२१ दक्षिण-आदिपुराण १४।९ ।
- २ वही १, पृ० १५ ६ ५३८ ८ ७७०, दक्षिण-रघुवर्ग ६।५७ ।
- ३ वही ३ प० १७० २१९ ९ प० ९७३ दक्षिण-यागस्तिलक उत्तर खण्ड पृ० २८ (कालागुरुधूम धूमरित) ।
- ४ वही ३ प० १७० ।
- ५ वही २ प० ८४ ४ प० २९२ ५ प० ४२४ ९ प० ८६१ ९७४ दक्षिण-यागस्तिलक उत्तर खण्ड प० २८ (कपूर दल दत्तुरित) आदिपुराण-३१।६१ ।
- ६ वही ९ पृ० ९५७ दक्षिण-चरक संहिता भाग २ प० ८३४ ।
- ७ वही ९ प० ९६० ।
- ८ वही ९, प० ८७७ ।
- ९ वही ९, प० ८९७ दक्षिण-यागस्तिलक, उत्तर खण्ड प० ५ ।
- १० वही ९ प० ८८१ ।
- ११ वही ९ प० ८८१, दक्षिण-वासुदेवचरण अथवाल-हृषिकेशित एक साम्प्रतिक अध्ययन प० १७३ (यहाँ कस्तूरिकाकाशक का उल्लेख है) ।
- १२ वही २ पृ० ९१, दक्षिण-आदिपुराण १२।५३ (यहाँ आया है कि स्त्रियों बेला, चमेली कपक आदि विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पा म बालों का अलङ्कृत करती थी) ।
- १३ वही ५ प० ३७९ ९ प० ९०१, दक्षिण-भगवती सूत्र ११।११।४२८ आदिपुराण २०।१८, ११।१३३, १६।२४ ३१।९४ ।
- १४ वही २, प० ८०, ८४, ९०, १३१ ४, प० २९२, ५ पृ० ३६९ ३८१, ३८३, ७ पृ० ६४७, ८ पृ० ७६६ ९ पृ० ९०१ ९०५ ९५८ दक्षिण-हजारा प्रसाद द्विवेदी—प्राचीन भारत व कल्याणिक मनादिनाद प० २३ २४ (यहाँ हजारी प्रसाद द्विवेदी व अनुसार आय लोग भारतवर्ष में आने के पूर्व ताम्बूल गन्ता से परिचित न थे और न तो उसका उपयोग



अंग प्रसाधन के उपकरणा का प्रचलन अति प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। श्रीमद्भागवत पुराण में शरीर पर कुकुम्भ अंगराग, चदन आदि के लेप करने का उल्लेख है।<sup>१</sup> बुद्ध कालीन समाज में भी कस्तूरी, चदन अंगरू तथा केसर का प्रयोग किया जाता था।<sup>२</sup> वात्स्यायन कामसूत्र में सुगन्धित तेल के साथ माथ चदन लेप का विधि महत्त्व बताया गया है।<sup>३</sup> विक्रम की गति के साथ ही हरिभद्र के काल में भी सामन्तवाणी सामाजिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में अंगप्रसाधन की सामग्रिया का अधिक उपयोग देखने का मिलता है।

### मनोरजन के साधन

जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए मनोरजन एक आवश्यक तत्त्व है। मनोरजन में चित्त की प्रसन्नता के साथ-साथ नवीन स्फूर्ति एवं नयी चेतना की उपलब्धि होती है। हरिभद्र के काल में लोग विविध प्रकार से अपना मनोरजन किया करते थे। समराइच्च कहा में कलात्मक मनोविनायक श्रौट्टा एवं अन्य खेल कूद तथा उत्सव महोत्सव एवं गाण्ठियों के आयोजन का उल्लेख है।

### कलात्मक मनोविनोद

नाटक—समराइच्च कहा में अनेक स्थान पर नाट्य-कला का उल्लेख है।<sup>४</sup> नाटक खेलने के लिए अलग से नाट्य शालाएँ होती थी जहाँ उसके पात्र संगीत वाद्य एवं नृत्य के साथ नाट्य-कला का प्रदर्शन करते थे। राजा महाराजा तथा सामन्ता के अंतःपुर में अलग से नाट्य शालाएँ होती थी जहाँ स्त्रियाँ अपना मनोरजन करती थी। नाट्य कला का उल्लेख बौद्ध काल से प्राप्त होता है।

का ही जानने थे। आर्यों ने ताम्बूल पत्र का प्रयोग नाग जातिया से ग्रहण किया इसी प्रसंग के आधार पर वे नागबल्ली पत्र की उत्पत्ति मानते हैं। शिव शेषर मिश्र—मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० २५१ (यहाँ शिवशेषर मिश्र के अनुसार भारत में २००० वर्ष पूर्व इस नागबल्ली का सवन जावा सुमात्रा आदि दक्षिणी सामुद्रिक टापूवा से प्रारम्भ हुआ। कुछ ही समय पश्चात धीरे धीरे सम्पूर्ण भारत का सभी जातिया में इसका प्रचलन हो गया और इस ताम्बूल के उपयोग का सर्वश्रेष्ठ समझा जाने लगा) कामसूत्र १४।४।१६ मानसोल्लास ३।४०।९६१।

१ श्रीमद्भागवत पुराण १०।६०।२३।

२ शिवशेषर मिश्र—मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २६६।

३ वही पृ० २६६।

४ सम० क० १, पृ० १६ ४ पृ० ३०९ ५ पृ० ८६५ ९५४ ९७३।

नाट्य शास्त्र के उल्लेख से पता चलता है कि नाटक का सृजन करते समय ब्रह्मा ने यजुर्वेद से ही अभिनय को ग्रहण किया था ।<sup>१</sup> वाजसनेयि संहिता में गलूपा नामक अभिनेता का उल्लेख है<sup>२</sup> जिसमें स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में नाट्यकला का प्रचलन किया जाने लगा था । कामसूत्र में भी नाटक और उसकी कहानी का उल्लेख है जिसमें स्पष्ट होता है कि उस समय के लोग नाट्यकला से परिचित थे ।<sup>३</sup> जन श्रम्य आदि पुराण में उल्लिखित है कि ऋषभदेव व मना राजा हेतु इन्द्र आदि देवा ने अनेक प्रकार के नाटका का प्रचलन किया था ।<sup>४</sup>

छन्द<sup>५</sup>—संगीत वाद्य की तरह समराङ्ग कहने के अनुसार छन्द रचना द्वारा भाव मनाविना किया जाता था । कामसूत्र में नाटक आख्यायिका आदि के साथ छन्द गान का कलाओं के अंतर्गत गिनाया गया है ।<sup>६</sup>

नृत्य—समराङ्ग कहने में भगीन कला के अंतर्गत नृत्य कला का भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । नृत्य गीत और वाद्य की लय ताल तथा ध्वनि के आधार पर किया जाता था ।<sup>७</sup>

विना गीत और वाद्य के नृत्य का अस्तित्व ही नहीं समझा जाता था । विवाह अथवा किसी अन्य उत्सव महात्म्य आदि के समय वैश्यायें नृत्य कला का प्रदर्शन करती थीं ।<sup>८</sup> नृत्य-कला का प्राचीनतम उल्लेख हमें ऋग्वेदिक काल में प्राप्त होता है । उस काल में औरतें नृत्य कला का प्रदर्शन करती थीं ।<sup>९</sup> श्रीमद्भागवत पुराण में भी नृत्य कला का उल्लेख है । गांधीयों के माथ भगवान् कृष्ण राम लाला के समय नृत्य करते हुए चित्रित किये गये हैं ।<sup>१०</sup> कामसूत्र में भी

१ ना गसाम् १।१७ ।

२ वाजसनेयि संहिता ३०।६ ।

३ गण० मा० चक्रान्तर-मोगल लाइफ इन ऐंजियट इण्डिया-स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६८ ।

४ आदि पुराण १४।९७ ३७।५० ।

५ मम० क० १, पृ० १६ ।

६ गण० सा० चक्रान्तर-मोगल लाइफ इन ऐंजियट इण्डिया-स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६५ ।

७ मम० क० १ पृ० १६ २२ ७१ ४ पृ० ३०९ ६, पृ० ५७२-कहमीय वाइयेण विना नञ्वामि । कुमारहि भणिय । अम्हे गीय वाइय करेमो ।

८ मम० क० ६ पृ० ५४७, ७ पृ० ६३३ ३४ ८, पृ० ७६६ ।

९ पुरुषोत्तल लाल भार्गव-इण्डिया इन दी वेदिक एज पृ० २५० ।

१० श्रीमद्भागवत पुराण—१०।१८।१३ ।

विविध कलाओं के अतम नृत्य कला का भी उल्लेख है ।<sup>१</sup> मानसोल्लास में उत्सव जय, हृष, काम त्याग विलास विवाह तथा परीक्षा इन आठ अवसरों पर नृत्य करने का उल्लेख है ।<sup>२</sup> इसी ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि नृत्य में अपाग, अग तथा प्रत्यग आदि का प्रयोग होता था ।<sup>३</sup> आन्ति पुराण में भी विभिन्न प्रकार के उत्सव एवं महात्म्यों पर नृत्य कला के आयोजन का उल्लेख है ।<sup>४</sup> इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि पूर्व मध्य काल में मनोरञ्जन के साधनों के अतम नृत्यकला का एक आवश्यक अंग समझा जाता था ।

गीत<sup>५</sup>—यह सब माधारण से लेकर धनी सम्पन्न तथा राजपरिवार वालों के मनाविनोद का एक साधन था । जन्मात्मव विवाहात्मव वसतात्मव आदि के समय वाद्य गाण्डी नाट्य प्रश्न आन्ति के माय संगीत का भी आयोजन किया जाता था । संगीत कला का प्राचीनतम उल्लेख हमें वैदिक काल में प्राप्त होता है । आय लंगा के मनोविनाद के साधना में संगीत को अत्यधिक महत्व दिया जाता था । इसका प्रश्न वाद्य यन्त्र तथा विना वाद्य यन्त्रों के साथ भी किया जाता था ।<sup>६</sup> कामसूत्र में भी संगीत कला का उल्लेख है ।<sup>७</sup> आदिपुराण में भी संगीत कला को मनाविनाद का अभिन्न अंग माना गया है ।<sup>८</sup> मानसोल्लास में स्वर ताल एवं पञ्चम आन्ति में प्रवीण गायक का अति उत्तम बताया गया है ।<sup>९</sup> इसी ग्रन्थ में संगीत कला का विस्तृत विवरण देते हुए सोमेश्वर ने गीत विनाद के अतम गायकों के भेद गाने का नियम तथा अनेक प्रकार के रागा का वर्णन किया है ।<sup>१०</sup>

**वाद्य कला**—नृत्य और गान में वाद्य कला का महत्वपूर्ण योग रहता है ।

- १ एच० सी० चकलान्दर—मोशल लाइफ इन ऐसियट इंडिया—स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६५ ।
- २ शिवशेखर मिश्र—मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ४३१ ।
- ३ वही पृ० ४३३ ।
- ४ आन्तिपुराण १२।१८८ १४।१९२ ।
- ५ सम० क० १ पृ० २२ ७१ ४, पृ० ३०९ ५ पृ० ३७३ ।
- ६ पुरुषोत्तम लाल भागवत—इंडिया इन दी वैदिक एज पृ० २४९ ।
- ७ एच० सी० चकलान्दर—सामल लाइफ इन ऐसियट इंडिया—स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६५ ।
- ८ आदिपुराण ४५।१८३ ।
- ९ मानसोल्लास ४।१६।१७९० ९६ ।
- १० शिवशेखर मिश्र—मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ४१४ ।

समराइच्च कहा में वीणा<sup>१</sup> शृङ्ग<sup>२</sup> भेरी<sup>३</sup> त्रय<sup>४</sup> (तुरही) गख<sup>५</sup> घटा<sup>६</sup>,  
ढोल<sup>७</sup> मृदंग<sup>८</sup> ताल<sup>९</sup> और पटह<sup>१०</sup> (ढोल और मृदंग की तरह का वाद्य यंत्र)  
आदि कई प्रकार के वाद्यों का उल्लेख है। कभी-कभी वीणा वादन का अलग से  
आयोजन किया जाता था।<sup>११</sup> ऋग्वेद में वाण नामक वाद्य का उल्लेख है।<sup>१२</sup>  
तत्तिरीय ब्राह्मण में भी वीणा वादन का उल्लेख है।<sup>१३</sup> मेघदूत में तो यक्ष की  
पत्नी वीणा बजा बजा कर पति के गुणों का गान करती है।<sup>१४</sup> कामसूत्र में भी  
विभिन्न कलाओं के अन्तर्गत वाद्य कला का विनिष्ट स्थान है।<sup>१५</sup> मानसोल्लास में  
उल्लिखित है कि वाद्य से पूरा नृत्य तथा संगीत की गाभा बढ जाती है और  
इसी कारण नृत्य तथा संगीत में वाद्य की प्रधानता रहती है।<sup>१६</sup> इस ग्रन्थ में पटह  
हुटका ढक्का तथा घडस इन चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन है।<sup>१७</sup> सामेश्वर ने  
वादन कला में भी ताल को विशेष महत्व दिया है।<sup>१८</sup>

- १ सम० क० १ प० १०, ७१ २ प० ८२ ५ प० ३७५ ७६ ३८२ ६ प० ५४९ ९ प० ८६५।
- २ वही ७, पृ० ६५६ ९ पृ० ८९७।
- ३ वही ७ पृ० ६४४ ९ प० ८९७।
- ४ वही १ प० १० ४ प० ३४० ७ पृ० ६३३ २४ ६३६ ६४५ ६९९, ८ पृ० ६५१ ७६६ ७७१ ७८८ ९, प० ८९७ ९३४।
- ५ वहा ३ प० २११ ७ प० ६३४ ९ ९३८।
- ६ वही ३ प० २३६, ६ पृ० ५३२ ७, पृ० ६४४।
- ७ वही १, प० १०।
- ८ वही १, प० १०, ४ पृ० ३०९।
- ९ वही १ पृ० १०।
- १० वही ६ पृ० ५३१, ७, प० ६९९ ७०३।
- ११ सम० क० १, प० ७२ २ प० ८२ देविया आदि० १४।१९२।
- १२ ऋग्वेद १।८५।१०।
- १३ तत्तिरीय ब्राह्मण ३।४।१४।
- १४ मेघदूत—उत्तरमेघ—२६।
- १५ एच० सी० चकलादर—सामल लाइफ न्न ऐमियट इंडिया—स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६५।
- १६ मानमोल्लास—४।१७।२४७०
- १७ वहा ४।१७।२४७३ ७७।
- १८ वही ४।१७।२७३० ३१।

**चित्रकला**—समराइच्च कहा में चित्रकला का भी उल्लेख है। लोग के हृदयगत भाव रस एवं तूलिका के साथ चित्रपट्टिका पर चित्र के रूप में प्रस्तुत दिखाई पड़ते हैं।<sup>१</sup> अर्थात् चित्रकार अपनी हृदयगत भावनाओं को अपनी अनुपम चित्रकला में परिणत कर देने की क्षमता रखता था। कही गंधर्वों के चित्र स्वर एवं संगीत मुद्रा में दृष्टिगत होते हैं<sup>२</sup> तो कही विद्याधरा, चक्रवाक तथा मधुकर आदि के चित्र<sup>३</sup> कला के अनुपम उदाहरण स्वरूप दृष्टिगत होते हैं। समराइच्च कहा में कही वानमत्तर तथा मयूर के जीते-जागते चित्र<sup>४</sup> तो कही नारी के आकृति चित्र चित्रपट्ट पर अंकित मिलते हैं।<sup>५</sup> चित्रकला के अंकन में रंग<sup>६</sup> तूलिका<sup>७</sup> तथा चित्र पट्टिका<sup>८</sup> की अत्यधिक आवश्यकता समझी जाती थी। समराइच्च कहा में चित्रकला के प्रदर्शन के लिए चित्र शालाओं का भी उल्लेख है<sup>९</sup> जहाँ चित्रकार अपनी कलात्मक रचना का प्रदर्शन किया करते थे। आदि पुराण में ऋषभ देव के मनोरजनाथ चित्रगोष्ठी के आयोजन का उल्लेख है<sup>१०</sup> जिसमें विभिन्न प्रकार की चित्रकारिणा का प्रदर्शन किया गया था।

**क्रोडा एवं अन्य खेलकूद**

**कदुक क्रीडा**—समराइच्च कहा में मनोविनोद के साधनों में कदुक क्रीडा का भी उल्लेख है।<sup>११</sup> राज परिवारों के अंतर्गत स्त्रियाँ द्वारा कदुक क्रीडा करने की बात कही गई है। आदिपुराण में जयकुमार ने अपन अतिथियों के सम्मान में कदुक क्रीडा का आयोजन किया था।<sup>१२</sup>

१ सम० क० ८ प० ७४९५० ९ प० ८६५।

२ वही ८ प० ७५७।

३ वही २ प० ०२।

४ वही ७ प० ६१० ११ ६२५

५ वही ८ प० ७३९४० ७४३।

६ वही २ प० ८९ ० पृ० ८६३।

७ वही २ प० ८९, ९ पृ० ८६३।

८ वही ८ प० ७५३५४ ७५६।

९ वही ४, पृ० ३०९, ७ पृ० ६२५।

१० आदिपुराण १४।१०२।

११ सम० क० १, प० २२ २ प० ८२।

१२ आदिपुराण ४५।१८३ (नृत्यगीत सुखालायवर्णादिभिः । वनवापी सर क्रीडाकदुकादिविनोदः)।

**जलक्रीडा<sup>१</sup>**—नदियों तथा घर की बावडिया में स्नान आदि के साथ साथ स्त्री-पुरुष जल क्रीडा द्वारा अपना मनोरंजन किया करते थे। आदि पुराण में भा जल क्रीडा का उल्लेख है।<sup>२</sup> यहाँ कुमार ऋषभदेव मनोरंजन के लिए देव कुमारा के साथ जल क्रीडा करते हुए दिखाये गये हैं।<sup>३</sup> मानसोल्लास में उल्लिखित है कि ग्रीष्म ऋतु में सूय के अत्यन्त तीव्र होने पर प्रचण्ड धूप में राजा जल क्रीडा करता था।<sup>४</sup> राजा यह जलक्रीडा नदी, पुष्करिणी अथवा कण्ठक के निमल जल पूरा सापान युक्त जलाशय में करता था।<sup>५</sup> जलक्रीडा का स्थल प्राकार द्वारा चारों तरफ से घिरा रहता था।<sup>६</sup> मानसोल्लास में राजा का सहर्षिया के साथ जल क्रीडा करने का उल्लेख है।<sup>७</sup> श्रीमद्भागवत पुराण में श्री कृष्ण गांधियों के साथ जल क्रीडा करते हुए दिखाये गये हैं।<sup>८</sup> बामसूत्र में जलक्रीडा की प्राग्मिकाल की क्रीडा कहा गया है।<sup>९</sup> इसी प्रकार रघुवश<sup>१०</sup> तथा किराताजुनीय<sup>११</sup> में भी जलक्रीडा का उल्लेख है। मध्यतया यह क्रीडा ग्रीष्म ऋतु में की जाती थी।

**अथ क्रीडायाँ**—सम्राट्त्वं कहा में कन्दुक की भाँति सूत्र क्रीडा<sup>१२</sup> (दोना हाथों में रस्मी पकड़ कर दौड़ते हुए उसे फाँटना), बतक्रीडा<sup>१३</sup> (घर अथवा महल के बरतनी पर खेला जाता था), बाह्यक्रीडा<sup>१४</sup> (बाहर बागीचा एवं उद्यान में) नलिका क्रीडा<sup>१५</sup> (जल में स्नान करते समय कमल नाल से किया गया जिलवाड),

१ सम० क० २ प० ८२ ० पृ० ८६५।

२ आदि पुराण १४।२०४ ८।२३ २५।

३ वही १४।२०४ ६।

४ मानसोल्लास ५।५।२४१ ४४।

५ वही ५।५।२४५।

६ वही ५।५।२४६ ४९।

७ वही ५।५।२५० ५२।

८ श्रीमद्भागवत पुराण १०।६५।२० तथा १०।६९।२७।

९ शिवशेखर मिश्र—मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ४६४ में उद्धृत।

१० रघुवश १६।६१ ६७।

११ किराताजुनीय ८।३०।५३।

१२ सम० क० ७, पृ० ६३४ ३५।

१३ वही ७ प० ६३४ ३५।

१४ वही ७ प० ६३४ ३५।

१५ वही ७, प० ६३४ ३५।

पशियों के साथ क्रीडा<sup>१</sup> छत पर घूमना<sup>२</sup>, आभूषणा<sup>३</sup> पहनना<sup>३</sup>, पदच्छेदन क्रीडा<sup>४</sup> (विभिन्न प्रकार के घृणा के सुन्दर पत्ता में छेदन) आदि क्रीडाओं का उल्लेख है। ये सभी मनोविनोद राज परिवार की स्त्रिया द्वारा सम्पन्न किये जाते थे।

**बाह्याली क्रीडा<sup>५</sup>**—राजा महाराजा तथा सामंत लोग घोड़े पर चढ़कर बाह्याली क्रीडा किया करते थे। बाह्याली राज प्रासाद में बाहर का वह भवान हाता था जहां राजा महाराजा आदि बैठकर अश्व एवं गज की दौड़ देखा करते थे। आदि पुराण में भी बाह्याली क्रीडा का उल्लेख है।<sup>६</sup> मानसोल्लास में पाता हाता है कि बाह्याली प्रायः सौ धनुष लम्बी और साठ धनुष चौड़ी बनायी जाती थी। उसके भवान से मिट्टी पत्थर तथा बकड़ आदि का हटा कर समतल बना दिया जाता था। यह पूव दिशा का आर उचा होती थी तथा इसमें दो विशाल द्वार होते थे। इनके आगे दो विशाल तारण पूव दिशा की आर मुँह करके बनाये जाते थे। बाह्याली के दक्षिण ओर मध्य भाग में ऊँचा एवं सुन्दर आलोक भवन बनाया जाता था। यह ऊँचा होता था तथा इसके चारों ओर गहरी खाई बनी हाती थी। यह अनेक प्रकार के रत्ना एवं मुक्क आदि से जटित हाती थी। परिखा पर फलक द्वारा पूण मांग बनाया जाता था। इसी प्रकार दक्षिण भाग के समीप ही कुछ पीछे परिखासे पूण ऊँचा चित्रों से युक्त भित्ति वाला सुरम्य विशाल, आठ स्तम्भा में पूण स्थूल हाथिया के वक्षस्थल की ऊँचाई के बराबर पूव के द्वार के समीप उत्तर दिशा की ओर एक अथ मण्डप बनाया जाता था।<sup>७</sup> बाह्याली में शौड के लिए जो अश्व उपस्थित किये जाते थे उनकी ग्रीवा में कुकुम का लेप किया जाता था और उन्हें विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषणा से सजित किया जाता था। इस प्रकार अत्यन्त चतुर अश्वारोहा दो भागों में आठ-आठ की संख्या में विभक्त हो जाते थे।<sup>८</sup> इन उल्लेख से स्पष्ट हाता है कि बाह्याली क्रीडा राजपुरुषों का एक प्रमुख मनोरंजन था।

१ सम० क० २ प० ८२।

२ वही २ प० ८२।

३ वही २ प० ८१ ८२।

४ वही २ प० ८२।

५ वही १ प० १६ ८ प० ८४५।

६ आदिपुराण ३७।४७।

७ मानसोल्लास ४।१।५४७ सं ५६२।

८ वही ४।४।४९०।

आलेख—ममराइच्च कहा में राजा-महाराजाओं द्वारा मनोरंजन के लिए आलेख का उद्देश्य किया गया है।<sup>१</sup> वन, पर्वत, नदियाँ, नद, गरावर, नद, तट एवं गुफा आदि स्थान आगट के लिए प्रयुक्त होते थे। वनिक बाल में आगट का मनोरंजन का एक प्रमुख माध्यम माना जाता था। राग धनुष-बाण में शेर कुत्ता एवं जंगल गुजर आदि का गीत करत थे।<sup>२</sup> कामसूत्र में भी आगट क्रीडा का मनोरंजन का एक माध्यम बताया गया है।<sup>३</sup> रघुवंश में भी राजा दशरथ द्वारा आगट क्रिया का उल्लेख है।<sup>४</sup> मानसार्णव में एतनीस प्रजा का मृगया का उल्लेख है।<sup>५</sup> यही कहा गया है कि पर्वत गह्वर तथा बंराओं में युक्त बटवों में पूरा अधिक धायाणा में भरे हुए दुर्गम मार्गों में युक्त चलने में कष्टपूर्ण अधवारपूर्ण व्याघ्र गज तथा मय आदि में पूरा वन में राजा का मृगया के लिए नहीं जाता था।<sup>६</sup> इनके अनिरिक्त जा वन पूरा रूप में सुरंगित हा एवं योजन विस्तृत हो जन बागाल में गूँथ हा मृगों से पूरा तथा समान भूभाग बाग हा तेमे अरण्य की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य बताया गया है।<sup>७</sup> राजा का चाहिए कि वह अपने नगर के समीप में स्थिति अरण्य में ही मृगया के लिए जाये।<sup>८</sup> इस प्रकार प्राचीन भारत में अनेक क्रीडाओं के साथ-साथ आगट को भी मनोरंजन के माध्यम में गिना जाता था।

छूत-क्रीडा—ममराइच्च कहा में अनर स्थान पर छूत क्रीडा का उल्लेख है जो तत्कालीन लोग के लिए मनोरंजन का एक माध्यम समझा जाता था। इस क्रीडा के अच्छे जाना को छूताबाय कहा जाता था।<sup>९</sup> ऋग्वेद में एक स्थान पर अन अयका पाग (छूत) क्रीडा का उल्लेख है।<sup>१०</sup> महाभारत में इगी क्रीडा के

- १ मम० क० ३, पृ० १७३ ४, पृ० ३२५ देखिए—आदिपुराण ५।१२८।
- २ पुराणोक्त लाल भागव—इडिया इन दी वदिक एज पृ० २५०।
- ३ एच० सी० कवगदर—सागल लाइफ इन मेसियट इडिया—स्टडीज इन कामसूत्र, पृ० १७१।
- ४ रघुवंश ९।४० ५०।
- ५ मानसार्णव ४।१५।१४६ ५०।
- ६ वही ४।१५।१४३ ३५।
- ७ वही ४।१५।१४४ ४३।
- ८ वही ४।१५।१४५ ५०।
- ९ मम० क० ४, पृ० २४३ ४४, २५४ २५६।
- १० वही ३, पृ० १८३।
- ११ ऋग्वेद १०।३४।८।



फलस्वरूप पाण्डवा को निर्वामित जावन ध्यतीत करना पड़ा।<sup>१</sup> मनु ने द्यूत क्रीडा को राजा के लिए निषिद्ध कम कहा है।<sup>२</sup> याज्ञवल्क्य ने निर्जीव पासादि से खेले जाने वाले क्रीडा को द्यूत कहा है और उस द्यूत के द्वारा जीते हुए धन में राजा का भी भाग रखा गया है।<sup>३</sup> वात्स्यायन धर्मसूत्र में द्यूत पलक का उल्लेख है।<sup>४</sup> निशीथचूर्णी में द्यूत के खिलाडियों का चतवार कहा गया है।<sup>५</sup> दशकुमार चरित में भी इसके उल्लेख मिलते हैं।<sup>६</sup> इन उल्लेखों से मनोविनोद के साधना में द्यूत क्रीडा का प्रचलन स्पष्ट होना है। जनसाधारण से लेकर राजघराने तक के लोग इस क्रीडा द्वारा यत्न बना अपना मनोविनोद करने थे। मानसाल्लस में अक्ष अथवा पाशक क्रीडा के उल्लेख में बताया गया है कि इस क्रीडा में बीस अंगुल के विस्तार का श्रष्ट दास लकड़ी का पलक बनाया जाता था।<sup>७</sup> इसमें चार अंगुल विस्तार के तथा नौ अंगुल मोटा चौरीस गह बनाये जाते थे और दो पदकों में सुशोभित दो वृत्ताकार पत्तियाँ बनायी जाती थी जिसमें एक अंगुल का अंतर रहता था।<sup>८</sup> मानसाल्लस में द्यूत क्रीडा का विस्तृत वर्णन मिलना है जिसमें इस क्रीडा के विशेष प्रचलन का आभास होता है।

उत्सव-महोत्सव—समराइच्चवहा में विविध पर्वों पर आयोजित विविध प्रकार के उत्सव एवं महोत्सवों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

कार्तिक पूर्णिमा महोत्सव—समराइच्चवहा में इसे स्त्रिया का उत्सव बताया गया है। इस अवसर पर पुण्या का नगर से बाहर कर दिया जाता था। पूरी रात स्त्रियाँ आपस में संगीत नृत्य एवं वाद्य आदि के द्वारा यह महात्सव सम्पन्न करती थी।<sup>९</sup> रामायण में भी कार्तिक पूर्णिमा एक पवित्र तिथि मानी गयी है।<sup>१०</sup> जगदीश चन्द्र जन ने इस कौमुदी महात्सव कहा है<sup>११</sup> जिसमें सब प्रथम सूर्यास्त के

१ महाभारत सभाष्य ।

२ मनु० १।२२१ ।

३ याज्ञ० २।२०४ ।

४ शिवशेखर मिश्र—मानसाल्लस एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४९७ ९८ में उद्धृत ।

५ निशीथचूर्णी ३ पृ० २२७ ३८० २ पृ० २६२ ।

६ दशकुमार चरित पृ० २०९ दक्षिण—कादम्बरी पृ० ८१ ।

७ मानसाल्लस ५।१३।७०१ ।

८ वही ५।१३ ७०२ ३ ।

९ सम० क० ९, पृ० ९५४ ।

१० पा० वी० काण—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वाक्य ५ पाठ १ पृ० २८५ में उद्धृत ।

११ जगदीश चन्द्र जन—जनाग्रम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ३६१ ।

पश्चात् स्त्री-पुरुष किसी उद्यान में जाकर अनेक प्रकार की केलि-क्रीडा द्वारा रात व्यतीत करते थे।<sup>१</sup> किन्तु समराइच्च वहां में इस कौमुदी महोत्सव से भिन्न उताया गया है।

**कौमुदी महोत्सव**—समराइच्च वहां में अनेक स्थाना पर कौमुदी महोत्सव का उल्लेख है। यह महोत्सव शरद पूर्णिमा के दिन सम्पन्न किया जाता था।<sup>२</sup> काणे के अनुसार आश्विन मास के कृष्ण पक्ष का चतुर्दशी के दिन कौमुदी महोत्सव मनाया जाता था।<sup>३</sup> भविष्योत्तर पुराण में कौमुदी नद की व्याख्या में कु (पृथ्वी) मुग्धा (हृष) उताया गया है जिसका तात्पर्य पृथ्वा पर नगों द्वारा हृष अथवा आनन्द मनाये जाने से है।<sup>४</sup> कामसूत्र में इसे दस व्यापी महोत्सव के रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>५</sup> हृष की प्रियदर्शिका में भी इस महोत्सव को उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>६</sup> इस अवसर पर स्त्री पुरुष नया वस्त्र सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण आदि धारण कर उद्यानों कुओं तथा स्तागहा में जाकर नृत्य गान आदि व द्वारा आनन्द मनाते थे।

**अष्टमी व्रतमहोत्सव**—यह महोत्सव चतु मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी का सम्पन्न किया जाता था। उस दिन स्त्रिया सुन्दर वस्त्राभूषणा से युक्त होकर उद्याना में नाच गान तथा अन्य कति क्रीडा द्वारा अपना मनोरंजन करती थी। इस अवसर पर मन्त्र लीला के साथ-साथ मन्त्र पूजा का भी आराधन किया जाता था। यद्यपि इस समारोह में पुष्प भी सम्मिलित होते थे किन्तु स्त्रियों की प्रधानता रहती थी। सम्भवत यह वसन्तोत्सव में सम्बंधित कोई उत्सव था जिसमें मन्त्र पूजा एवं मन्त्र लीला की प्रधानता दी गया है।

१ सूत्रकृताङ्ग टीका २ ७५ पृ० ४१३।

२ सम० क० १, पृ० ३३ ५३ २ प० ७८ ७९ ४ पृ० ३२१ ५, पृ० ३६८ ३७०, ३७३, ४१६ ४७८ ६ प० ४९६ ७ पृ० ६३५ ३६ ८ पृ० ७४३, ९ प० ८८०।

३ पी० बी० काणे—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वालूम ५ भाग १ पृ० २०६।

४ भविष्योत्तरपुराण १४०।६१-६४ (कु सन्तान महो नेया मुदीहर्षे तत् परम्। धातुर्नर्गेगम नद्व तेनगा कौमुदी स्मृता। कौमोदन्ते यस्या नानाभाव पारस्परा। हृष्टा तुष्टा सुखा यत्तास्तेनगा कौमुदी स्मृता (पी० बी० काणे—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, वालूम ५ पाट १, प० २०६ में उद्धृत।

५ कामसूत्र १।४।४२।

६ प्रियदर्शिका अंक ३, पृ० ७०।

७ सम० क० ४, प० २३५।

मदनात्सव<sup>१</sup>—यह उत्सव प्राचीनकाल में चत्र मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को भय आयोजन<sup>२</sup> व साथ सम्पन्न किया जाता था। इस महात्मव के विशेष आयोजन व लिए नगर में राजा द्वारा धोपणा की जाती थी। नगर के सभी स्त्री और पुरुष चाहे किमी भी बग जानि व क्या न हों वे नृत्य-गीत एवं नाट्य व अभिनय का आयोजन करते थे। राजमार्गों पर सुगन्धित पुष्प तथा केशर एवं बस्तूरी युक्त जल छिड़का जाता था। लोग टालियाँ बनाकर विभिन्न प्रकार व अलवारा से युक्त नगर चबूरी के साथ नाच-गान करते हुए राजमार्गों में होकर उद्यान की तरफ जाने थे।<sup>३</sup> नगर उद्यान में पहुँचकर लग विभिन्न प्रकार की क्रीडा करते हुए यह उत्सव सम्पन्न करते थे। राजपरिवार के ाग भवनोद्यान में छले आग्नि के साथ यह महात्मव मनाने थे।<sup>४</sup> नाताधम कथा में मदन त्रयोदशी के त्रि कामदेव की पूजा का उल्लेख है।<sup>५</sup> यह बहुत बड़े उत्सव के साथ सम्पन्न किया जाता था। हफ की रत्नावली में भी मन्न महात्मव का विस्तृत वर्णन मिलता है। हम बसन्तात्मव व रूप में भी जाना जाता था जिसका आयोजन चत्र मास की पूर्णिमा को सम्पन्न किया जाता था।<sup>६</sup> अन्ववन्ती ने लिखा है कि चत्र मास की पूर्णिमा को बसन्तोत्सव मनाया जाता था जिसका आयोजन विषयतया स्त्रियों द्वारा किया जाता था।<sup>७</sup> यह महोत्सव धाधुनिष होली की तरह ही था। रत्नावली व भी उल्लेख से पता चलता है कि उक्त अवसर पर स्त्री पुष्प सज्जा पर टोली बनाकर नाचते गाते तथा रंग विरंगी गुलाल उड़ाते थे।<sup>८</sup> निम्न बग के लग उस दिन मस्त्रि पान भी करते थे।<sup>९</sup> विविध प्रकार के खेल-कूद करते हुए सूर्यास्त के समय उद्यान में आकर पुष्प आग्नि व साथ मन्न का पूजा करते थे।<sup>१०</sup> डा० दानरथ शर्मा व अनुसार

१ सम० क० १ पृ० ३३ ५३ २ प० ७८ ७९ ४ प० ३२१ ५ प० ३६८ ३७० ३७५ ४१६ ४७४ ६ पृ० ४०६ ७ पृ० ६३५ ३६ ८ प० ७४३ ९ पृ० ८८०।

२ वही ५ प० ३७३ ७ पृ० ६३५ ३६।

३ वही ९ पृ० ८७९।

४ नाताधम कथा—टाका २ प० ८०।

५ रत्नावली अक १ पक्ति १६।

६ सचाऊ २ प० १७९।

७ रत्नावली अक १ प० १० पक्ति ११ १२ १३।

८ वही अक १ प० २२।

९ वही अक १ प० १६ २६।

प्राचीन काल में मन्त्रोत्तम तथा कौमुदी महोत्तम आदि राजस्थान के लोग का प्रमुख महात्म्य था ।<sup>१</sup>

गोष्ठी—विभिन्न प्रकार के मनोविनोद के साधनों में कुछ गोष्ठियों के भी उल्लेख मिलते हैं । गोष्ठियाँ में सम्मिलित होकर राग नानाप्रकार के मनोविनोद का अनुभव करते थे । संगीत नृत्य वाद्य आदि के साथ साथ कुछ अन्य गोष्ठियों का भी आयोजन होता था ।

गुरु चतुष्टय गोष्ठी<sup>२</sup>—राजपरिवार के लोग अस्थानिका महल में बैठकर इस गोष्ठी का आयोजन किया करते थे । यह गोष्ठी समवयस्कों द्वारा ही सम्पन्न की जाती थी । अतः लग एक स्थान पर एकत्रित होकर तरह तरह के बात विवाद द्वारा गूँतर बात का रहस्य भेदन किया करते थे । बात विवाद के साथ साथ इस गोष्ठी में तरह तरह की मनोरञ्जक चर्चाएँ भी चला करती थी । कामसूत्र में भी नागरिक द्वारा गृह्य और पद्मान गोष्ठी में भाग लेने का उल्लेख है ।<sup>३</sup> इस गोष्ठी में समान वयस् चरित्र एवं गुण वाले लोग ही सम्मिलित होते थे जहाँ के काय समस्या और कला समस्या आदि का समाधान करते थे ।<sup>४</sup>

मित्र गोष्ठी<sup>५</sup>—इस गोष्ठी के सम्म्य मनोहर गीत गाकर, प्रहेलिका तथा समस्यापूर्ति द्वारा गाथा पढ़कर बीणा वादन द्वारा चित्र गान द्वारा कामशास्त्र पर विचार कर पनिया के विषय में चर्चा करके झूला झूल कर तथा पुष्प गाय आदि सजा कर भाँति भाँति के मनोरंजन कार्यों का सम्पादन किया करते थे । मित्र गोष्ठी अपने समवयस्कों की ही होता था । वास्तव्ययन के कामसूत्र में मगीत वाद्य नृत्य नाटक, दान, दान नान आदि चौंसठ कलाओं के ज्ञाता का ही गोष्ठी का सचान्वित बताया गया है किन्तु इन कलाओं को न जानने वाले का अधिक सम्मान नहीं दिया जाता था ।<sup>६</sup> अधिकतर यह गोष्ठी मनोरंजनाय संचालित की जाती थी जिसमें स्त्रियाँ भी बराबर भाग लेती थी ।

१ दण्डरथ शर्मा—अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० २६६ ।

२ सम० क० ८ पृ० ७५२ ।

३ एच० सी० चकलादर—सामल लाइफ इन ऐसियट इंडिया-स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६० ।

४ वही पृ० १६४ ।

५ सम० क० ८, पृ० ७४४ ७५२ ९, पृ० ८६५ ।

६ एच० सी०—चक्रावर्त—सामल लाइफ इन ऐसियट इंडिया-स्टडीज इन कामसूत्र पृ० १६५ ।

यहां तक कि काम सूत्र में कुमारी लडकिया के लिए कला और गांठी का ज्ञान एक गुण माना गया है।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि गोष्ठियों का आयोजन कलात्मक ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ मनोविनोद के लिए भी उपयुक्त साधन समझा जाता था।

## वाहन

प्राचीन भारत में आवागमन की सुविधा के लिए सड़का का निर्माण किया जाता था जो राजमार्ग के नाम से जाना जाता था।<sup>२</sup> राजमार्गों के निर्माण एवं प्रबंध का सारा प्रयत्न राज्य लोग ही वहन करते थे। राजमार्ग पर यातायात के विविध साधन यथा—हाथी घोड़ा बलगाड़ी तथा रथ आदि का प्रयोग होता था। प्रायः हाथी या रथ गिरिका आदि का प्रयोग राजपरिवार सामंत तथा श्रेष्ठ वर्ग के लोग करते थे। जन साधारण वर्ग गांवट खच्चर एवं घोड़ा आदि का प्रयोग करता था। सम्राट्त्व कहा में निम्नलिखित वाहनों का उल्लेख आया है।

अश्व—सम्राट्त्व कहा में इसका उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है।<sup>३</sup> इसका प्रयोग साधारण वर्ग के लोग स लेकर राज परिवार तक के लोग करते थे। यह घुड़सवारी रथ तथा सेना में वाहन के रूप में प्रयुक्त होता था। सम्राट्त्व कहा में एक स्थान पर बाह्लीक मुष्क एवं वज्ररा आदि अश्वों की घुड़सवारी का उल्लेख है। स्पष्ट है कि घोड़ा का नाम उनसे दस के आधार पर रखा गया है। आय लोग अपने आगमन के प्रारम्भिक काल से ही घोड़ा का प्रयोग करते थे।<sup>४</sup> बर्हिक काल में यध्येशिया यथा बाह्लीक जाति के घोड़े प्रसिद्ध थे।<sup>५</sup> इसके साथ-साथ गुजरात बलूचिस्तान कम्बोज और पर्गिया भी घोड़ा के लिए

१ एच० सी० चकलार्-मोर्गन गडफ इन ऐम्पियट इन्डिया-स्टडीज इन कामन्यूथ पृ० १६७।

२ गम० क० ४ पृ० ३६८ ३०५ ७ प० ७०० ८ पृ० ८८३।

३ वही २ पृ० १०१ ५ पृ० ३६५ ३६७ ८ पृ० ७६६ ७८६ ८२१ ८२२ ८४३।

४ वही ८ पृ० ७१३-वहिया वहवे बल्हाय तुस्कर वज्रराया आमा, देविण-आदि पुराण-३०१०६ ७।

५ आर० यल० मित्र—मैटीक्विटीज आफ इंडीमा पृ० २००।

६ वही प० २०१।

प्रसिद्ध थे, इनका उल्लेख रहा भारत में भी आया है।<sup>१</sup> वैदिक काल में अश्वरथ के साथ-साथ घुड़दौड़ का भी उल्लेख है,<sup>२</sup> जिससे प्रतीत होता है कि अश्व का प्रयोग वैदिक काल से ही रथा में किया जाता था। पतञ्जलि के काल में भी अश्व वाहन के लिए प्रयुक्त होते थे।<sup>३</sup> पूर्व मध्यकाल में भी अश्व और हस्ति को वाहन के रूप में प्रयुक्त समझा जाता था।<sup>४</sup> मानसोल्लाम में भी अश्व को वाहन का श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>५</sup> जन ग्रन्थ आदि पुराण में घुस्सवारा करने वाले घोड़ों को मन्वुरा कहा गया है।<sup>६</sup> सवारा के घोड़ों का स्वस्थ रखने के लिए उनके शरीर में अमराग लगाया जाता था।<sup>७</sup>

हस्ति—सम्राट्त्वं कहा में इसका उल्लेख राजकीय वाहन के रूप में किया गया है।<sup>८</sup> विवाह के समय वर यात्रा में हस्ति को अनेक अलंकारों से सजा कर धारात के आगे रखा जाता था। महाभारत में हस्ति का प्रयोग युद्ध क्षेत्र में किये जाने का उल्लेख है।<sup>९</sup> मिकन्दर के आक्रमण के समय अश्व और हस्ति दोनों सेना के प्रमुख अंग थे।<sup>१०</sup> मेगस्थनीज ने भी हस्ति सेना का उल्लेख किया है।<sup>११</sup> मानसोल्लाम में हस्ति के नौ भेद बताए गये हैं यथा—नाग और करिणी। सामने से जा विपुल स्कन्ध वाला, मृदु संचार वाला तथा चलाने पर तेज चलने वाला ही उसे नाग कहा जाता था। मुखण स्तम्भ मुक्ता का माला और ऊँच प्रदक्ष में काचन कलशों से युक्त तथा मयूर के समान पूँछ वाले तथा पुष्पा से सुशोभित करिणी का करिणी मान कहा जाता था।<sup>१२</sup>

१ आर० यल० मित्र—ऐंटीक्विटीज आफ़ उडीसा पृ० २०१।

२ ऋग्वेद १०।३३।५।

३ वही २।१३।५, ३।४।३।

४ प्रभुदयाल अग्निहारी—पतञ्जलि कालीन भारत पृ० २९३।

५ ए० व० मजूमदार—बालुक्काज आफ़ गुजरात पृ० ३५७।

६ मानसोल्लाम ३।१६।१६३० ४०।

७ आदि पुराण २९।१११।

८ वही २९।११६।

९ सम० क० २ पृ० ११६ ३ पृ० २००, ७ पृ० ६४० ८, पृ० ७६६ ७८४, ८२१, ८२३ ८३४ ८४३ न्हिए—आदि पुराण ३०।४८, २९।१२२।

१० आर० यल० मित्र—ऐंटीक्विटीज आफ़ उडीसा पृ० २००।

११ वही पृ० २०१।

१२ वही पृ० २०५।

१३ शिवनेसर मिश्र—मानसोल्लाम एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३०३।

खचर<sup>१</sup>—समराइच्च कहा में इसका उल्लेख भार वाहक व रूप में किया गया है। यह अक्ष से मिलता जुलता उससे छोटे आकार का जानवर है। इसका प्रयोग साधारण वग के लोग करते थे।

शकट<sup>२</sup>—समराइच्च कहा में माल ढाने के लिए शकट का उल्लेख हुआ है। शकट का प्रयोग बौद्ध काल से ही बोझा ढाने के लिए किया जाता था।<sup>३</sup> अथर्ववेद में शकट का उल्लेख है जिसे ऊष्ट मीचते थे।<sup>४</sup> आदि पुराण में बला द्वारा खींचे जाने वाले शकट का उल्लेख है जो वाझा ढाने के काम आते थे।<sup>५</sup>

शिविका—समराइच्च कहा में शिविका का दिव्य वाहन व रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>६</sup> इसे ढाने के लिए वाहका की आवश्यकता पड़ती थी। समराइच्च कहा में कहीं-कहीं पालकी का भी उल्लेख है,<sup>७</sup> किन्तु इस वृणन से शिविका और पालकी में कोई अंतर नहीं निखलाया गया है। आप्ट ने भी शिविका और पालकी का पर्याय माना है।<sup>८</sup> शिविका का उल्लेख महाभारत तथा अन्य संहृत ग्रंथों में भी आया है जिसमें दो काष्ठ स्तम्भ लगे रहते थे और जो व्यक्ति द्वारा कंधा पर रखकर डोई जाती थी।<sup>९</sup>

रथ—समराइच्च कहा में अनेक स्थानों पर रथ का उल्लेख आया है।<sup>१०</sup> यह सम्मान की दृष्टि से एक उच्चकोटि का वाहन माना जाता था जिसका उपयोग धनी-सम्पन्न तथा राज परिवार के लोग ही करते थे। आवागमन के साथ-साथ युद्ध क्षेत्र में भी रथों का प्रयोग किया जाता था। रथों को सुंदर तथा आकर्षक बनाने के लिए पताकावा से सजाया जाता था क्षुद्र घटिकाएँ बांधी जाती थी रत्नों की मालाएँ मातियों के हार तथा चामर आदि लटकाएँ जाते थे रथ के बीच में माणिक्य सिंहासन हाता था जिस पर रथी बैठते थे।<sup>११</sup>

१ सम० क० ६ पृ० ५०६।

२ वही ४ पृ० ३५५, ३५०।

३ आर० यल० मित्र—ऐंटीक्विटीज आफ उडीसा, प० २११।

४ अथर्ववेद २०।१२७।१३२।

५ आदिपुराण—७।३३।

६ सम० क० ३ प० २२२ प० ९३६ देखिए—आदिपुराण १७।८१।

७ वही ७ पृ० ६३९ ६५५ ८ प० ७४३।

८ आप्टे—संहृत हिन्दी वाश।

९ आर० यल० मित्र—ऐंटीक्विटीज आफ उडीसा, पृ० २१२।

१० सम० क० १, पृ० २९ २ पृ० ९६ ६ प० ४९६ ४९८, ५३८, ८, ७८८, ९, पृ० ८७९ ८० ८१ ८२ ८३, ८८६-८७ ८९२।

११ वही ८, पृ० ८८१।

रथ का प्रयोग वैदिक काल से ही चला आ रहा है। ऋग्वेद में रथ का उल्लेख अनेक बार हुआ है।<sup>१</sup> प्रायः रथ में दो अश्व जोड़े जाते थे किन्तु कहीं-कहीं तीन और चार का भी संकेत आया है। यह कहना कठिन है कि इनमें तीसरे और चौथे अश्व को आगे जोड़ा जाता था या पार्श्व में।<sup>२</sup> रामायण में राम के यौवराज्य पद पर अभिषेक के लिए अय्य सामग्री के साथ वैयाघ्र नामक रथ भी लाया गया था।<sup>३</sup> महाभारत में भी रथ का उल्लेख है।<sup>४</sup> कौटिल्य ने रथ पथ का उल्लेख किया है।<sup>५</sup> पाणिनी काल में लोहा के आवागमन के साधना में रथ का विशेष महत्त्व था जिसे बैल खींचते थे।<sup>६</sup> पतञ्जलि के काल में भी बला द्वारा रथ खींचे जाते थे।<sup>७</sup> मानसोल्लास में दा पहियों से युक्त, सुन्दर चित्रा तथा नाना वण की पताकाओं आदि से सुशोभित रथ का उल्लेख है जिसे अश्व खींचते थे।<sup>८</sup> यहाँ इसे राजाओं के ही योग्य बताया गया है। हमने अन्यत्र रथ के सैनिक उपयोगों का विवेचन किया है।<sup>९</sup>

अन्वयान—इसका भी प्रयोग व्यापारिक तथा आवागमन गानों दृष्टियाँ से किया जाता था। हमने इसका विवरण अन्यत्र दिया है।<sup>१०</sup>

### स्वास्थ्य—रोग और परिचर्या

समराइच्च कहाँ में कुछ आयुर्वेदीय सामग्री भी मिलती है। इसमें निम्न लिखित रागा का उल्लेख है तथा उनको दूर करने के उपायों का भी उल्लेख मिलता है।

शीघ्र घेदना—समराइच्च कहाँ के कथा प्रसंग में इस राग का उल्लेख कई

१ ऋग्वेद १।२०।३ ३।१५।५ ४।४।१०।

२ मूलकात-वैदिक काल पृ० ४३६।

३ रामायण—अयोध्या काण्ड ६।२८।

४ महाभारत—सभाषव ५१।२३ ६१।४।

५ अथशास्त्र २।४।

६ वासुदेवशरण अग्रवाल—पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ० १५० ५१।

७ प्रमुदमाल अभिहारी—पतञ्जलि कालीन भारत, पृ० २९०।

८ मानसोल्लास ३।१६।१६५६।

९ विशेष जानकारी के लिए देखिए—राजनातिक दशा वाले अध्याय में सयव्यवस्था के रथ सना वाले परिच्छेद में (दीक्षितार चक्रवर्ती तथा मज्जमदार के विचार)।

१० देखिए—आर्थिक दशा वाले अध्याय में व्यापारिक यान।



बार आया है।<sup>१</sup> सम्भवतः यह उस समय का एक सब साधारण रोग था। इसे दूर करने के लिए बघ विगारद बुलाए जाते थे<sup>२</sup> तथा विविध प्रकार की औषधियाँ तथा रत्नलेप आदि का प्रयोग किया जाता था। चरक संहिता में चिर रोग पाँच प्रकार का बताया गया है—वातजय (वातिक) पित्तजय कफजय (श्लेष्मिन्) मन्निपातज और क्रिमिजय।<sup>३</sup> इस दूर करने के लिए मत (तगर), उत्पल (नील कमल) चन्दन और कड़वा कुट आदि को समान भाग में लेकर उसका चूण बनाना चाहिए और उसमें घृत मिला कर लेप करना चाहिए इससे वैशाख शान्त हो जाता है।<sup>४</sup>

वधिर—समराइच्च कहा में शबर बघ द्वारा वधिर रोग को प्राकृतिक उपचार द्वारा टाक करने का उल्लेख है।<sup>५</sup> लेकिन यहाँ दूर करने की विधि आदि का उल्लेख नहीं है। यह एक प्रकार का कणराग था जिससे सुनाई नहीं पड़ता था। इसका उल्लेख निशीथ चूर्णों में भी किया गया है,<sup>६</sup> किन्तु इसका दूर करने का उल्लेख नहीं है। आज भी नमरा और गाँवा में कुछ आदिवासी जाति के लोग घूम घूमकर बान के रोग का उपचार करते हैं।

तिमिर रोग—समराइच्च कहा में शबर बघ द्वारा इस अय रोग की श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>७</sup> इस रोग के प्रभाव से आँखा की ज्योति समाप्त हो जाती थी।<sup>८</sup> चरक संहिता में बताया गया है कि ज्वर तथा शक आदि से सतस पुरुषों में तथा मद्य पीने वालों लोगों में तिमिर रोग उत्पन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में रस शीताजन का प्रयोग, लेप और पुटपाक के प्रयोगों द्वारा तिमिर रोग को दूर करना चाहिए।<sup>९</sup>

कसम—शबर बघ द्वारा इसे भी अय प्रकार के रोगों की श्रेणी में गिनाया

१ सम० क० १ पृ० २१ ७ प० ६९१।

२ वही ६ पृ० ५८४।

३ चरक संहिता भाग १ प० ३३३ स ३३५।

४ वही भाग १ प० ६३ से ९१।

५ सम० क० ६ प० ५८४ ८५।

६ निशीथ चूर्णों ३ पृ० २५८।

७ सम० क० ६ प० ५८४।

८ निशीथ चूर्णों ३ प० ५८ देखिए—वासुदेवशरण अग्रवाल—हृषिकेश एक सांस्कृतिक अध्ययन प० १२०।

९ चरक संहिता भाग २ पृ० १०७५।

गया है,<sup>१</sup> किन्तु इसके उपचार का उल्लेख नहीं है। निशीथ चूर्णी में भी इसका उल्लेख है।<sup>२</sup>

**गूल<sup>३</sup>**—यह एक प्रकार का उदर राग था जिसके प्रभाव से उदर में अत्यधिक वेदना उत्पन्न होती थी। निशीथ चूर्णी में इसका उल्लेख आतक राग के रूप में किया गया है।<sup>४</sup> चरक संहिता के अनुसार जी के आगे तथा घब छाग को तक्र से पीस कर तथा उसे गरम कर पेट पर रगाने से पेट का गूल दूर हो जाता है।<sup>५</sup> इसी ग्रन्थ में उल्लेख है कि हृदय राग से पीडित जिन रोगियों में भोजन करने के बाद हृन्म्य में गूल अधिक उत्पन्न होता है तथा भोजन के पाचन काल में गूल अल्प मात्रा में होता है और भोजन के पूरा माना में पच जाने के बाद जा गूल शान्त हो जाता है उसमें दन्तारु कुट लाघ, मेघा नमक साचर नमक और अताम इन मधु का पुण गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए।<sup>६</sup>

**कुष्ठ रोग**—समराहृन्म्य कहा के क्या प्रसंग में कुष्ठ रोग का भी उल्लेख है।<sup>७</sup> जिसका कारण पूर्व कृत कम दाप माना गया है। चरक संहिता में विवृति का प्रान्त हुए सात द्रव्य कुष्ठ रोग के कारण बताये गए हैं यथा—प्रकोपक कारणा से विवृत तान त्रय—वात पित्त और कफ त्रया के आक्रमणों से विवृत हुए हृन्म्य स्वल्प गरीर धातु, वचा माम, रक्त लसिका ये चार द्रव्य। इन सात धातुओं का समूह मान कुष्ठों का उत्पन्न बताया गया है।<sup>८</sup> उसी ग्रन्थ में एक जगह बताया गया है कि कुष्ठ राग से पीडित व्यक्ति को घन आग्नि स्नेहा और विकार न घटा करने वाली लाभप्रद जीपत्रिया से स्नेहन अथवा पिप्पली हर्ष या त्रिफला से पकाये हुए स्नेह से स्नेहा करना चाहिए।<sup>९</sup>

**विषुचिका<sup>१०</sup>**—यह भी तत्कालीन समाज का प्रचलित राग था। इसकी उत्पत्ति अत्यधिक भोजन करने से बतायी गयी है।<sup>११</sup> चरक संहिता में बताया

१ सम० क० ६ पृ० ५८६।

२ निशीथ चूर्णी ३ पृ० २५८।

३ सम० क० ६ पृ० ५८४, ७ पृ० ६९१।

४ निशीथ चूर्णी ३ पृ० ५२९।

५ चरक संहिता १ पृ० ६२।

६ वही २ पृ० ७३६।

७ सम० क० ४ पृ० ३१७ ३४८ देखिये निशीथ चूर्णी ३ पृ० २५८।

८ चरक संहिता भाग १, पृ० ६४१।

९ वही १ पृ० २७९।

१० सम० क० ४ पृ० २०८।

११ निशीथ चूर्णी २ पृ० २६७ (अतिमत्त वा विसर्तिता)।

गया है कि ऊपर मुख और नीचे गुदा भाग द्वारा प्रवृत्त आम दोष तथा वात पित्त कफ आदि लक्षणा से युक्त जो रोग हा उसे विमूचिका जानना चाहिए।<sup>१</sup> इसका सात्पय हजे स लगाया गया ह ।

**मूर्च्छा**<sup>३</sup>—यह भी समराइच्च कहा में एक रोग क रूप में उल्लिखित ह । चरक संहिता में बताया गया ह कि मलीनाहार करने वाले जिस मनुष्य की आत्मा रज और माह स युक्त ह उसके शरीर में जब क्षुब्ध हुए वात, पित्त और कफ अलग-अलग या समस्त दाप रक्तवाही रमवाहा सनावाही आदि श्रोता का अवरुद्ध कर रक जाते ह तो मर्द, मूर्च्छा आदि व्याधिया को उत्पन्न करते ह।<sup>४</sup> यहाँ मूर्च्छा क कई भेद बताये गये ह—यथा वातज पित्तज, कफज सम्निपात (इसमें वात पित्त, कफ आदि सभी क लक्षण होते हैं) आदि।<sup>५</sup> इस रोग क कारण व्यक्ति चेतनाशून्य (बेहोश) हो जाता ह ।

**ज्वर**—समराइच्च कहा में ज्वर को भी अथ रागा को धेणा में गिनाया गया<sup>६</sup> ह, किन्तु इस रोग की उत्पत्ति तथा प्रभाव आदि का विवरण नहीं दिया गया ह । इसका उल्लेख अथ जन ग्रन्थों में भी आया ह।<sup>७</sup> इस रोग से शरीर का ताप बढ जाता ह तथा शरीर में पीडा आदि के साथ शक्ति का ह्रास होना प्रारम्भ हा जाता ह । चरक संहिता में बताया गया ह कि ज्वर में पित्त का ही प्रधानता हाती ह क्योंकि बिना पित्त के प्रधान हुए ताप की सम्भावना नहीं हो सकती और ज्वर में सताप ही प्रधान ह।<sup>८</sup> यहाँ ज्वर क आठ भेद गिनाये गये ह—वात, पित्त कफ वात पित्त वात कफ पित्त कफ वात पित्त कफ और आगन्तु (यकाबट) के कारण से उत्पन्न ज्वर।<sup>९</sup> अथवा वात, पित्त कफ रज और तम ये पाँच प्रकृति दोष ज्वर के कारण बताये गये ह।<sup>१०</sup> चरक के अनुसार ज्वर क पूव रूप में हल्का भोजन और उपवास करना चाहिए

१ चरक संहिता १ पृ० ६८८ ।

२ आष्टे—संस्कृत हिन्दी कोश ।

३ सम० क० पृ० ४ पृ० २९८ ।

४ चरक संहिता १ पृ० ४४९ ।

५ वहाँ १, पृ० ४५१ ५२ ।

६ सम० क० ४ पृ० ३४८ ।

७ निशीथ चूर्णी ३ पृ० २५८ यशस्तिलक, पृ० ५०९ ।

८ चरक संहिता भाग १ पृ० ६०१ ।

९ वही भाग १ पृ० ६१० ।

१० वही भाग २ पृ० ०५

क्याकिं श्वर आमाशय स ही उत्पन्न होता ह । इसका वात दापा के अनुसार वपायपान अभ्यगस्नेह, स्वेन प्रणेह परिसेक, अनुलेप बमन विरेचन, स्थापन वस्ति, अनुवासनवस्ति, सभन औषध, नम्य, घूप, घूम्रपान अजन, दुग्ध और भोजन की व्यवस्था उत्तिपूर्वक करनी चाहिए ।<sup>१</sup> जोण श्वर की शांति के लिए घृत का प्रयोग करना चाहिए ।<sup>२</sup> यहाँ वात, पित्त कफ, आग्नि ही प्रधान रूप से श्वर के कारण बताये गये ह और इन तीनों में भी पित्त को प्रधान माना गया है ।

जलोदर—समगहच्च वहा में म रोग के कारण भुजाआ का सूख जाने पर को गय हा जाने नेत्र मलीन हा जाने निद्रा समाप्त हो जाने जिह्वा के जड हा जाने तथा अत्यधिक पोषा का अनुभव होने का उल्लेख ह ।<sup>३</sup> निशीय चूर्णी में भी जलातर का उल्लेख ह ।<sup>४</sup> चरक संहिता में जलादर के लक्षण के सम्बन्ध में बताया गया ह कि इस रोग में भोजन की अनिच्छा पिपासा की वृद्धि गुण से जल का श्राव, गूल गारीरिक दुबलता उत्तर में नाना प्रकार की रोगाये, स्तन करने पर जल स भर हुए भगव व समान उत्तर में जल तरंग का अनुभव होता ह ।<sup>५</sup> इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर बताया गया ह कि मन्नाग्नि वात पुरण या दुग्ध यन्त्रि जव मात्रा से अधिक जल का सवन करते ह तो उनकी जठराग्नि नष्ट हो जाती ह । फलस्वरूप उत्तर में जलोदर की वृद्धि हा जाने व कारण जलातर की उत्पत्ति होती ।<sup>६</sup>

महोदर सन्निपात<sup>७</sup>—यह उदर में अत्यधिक द्रव पान करने वाला रोग था । चरक संहिता में सन्निपातातर नामक रोग का उल्लेख ह जो वात पित्त कफ जय उत्तर रोग के अन्तर्गत बताया गया ह । उदर के ऊपरी भाग में जल नाना वण की रखाये और निराये प्राप्त हुई निखाई में ता इस सन्निपातोदर जानना चाहिए ।<sup>८</sup> उदर में सन्निपात की स्थिति आ जान पर ही सन्निपातोदर नामक रोग जाना जाता ह । निशीय र्णी में भी सन्निपात रोग का उल्लेख ह जो वात कफ

१ चरक संहिता १ पृ० ६१७ ।

२ वही १ पृ० ६१७ ।

३ सम० क० ६ पृ० ५८४ ।

४ निशीय चूर्णी ३, पृ० २५८ ।

५ चरक संहिता २, पृ० ३९० ।

६ वही २ पृ० ३८६ ।

७ सम० क० ६ पृ० ५८५ ।

८ चरक संहिता, भाग २, पृ० २८६ ।

और पित्त व असन्तुलन में पदा होता था ।<sup>१</sup> चरक संहिता में भी एक स्थान पर बताया है कि सन्निपात में प्रायः एक ही स्थान में रहने वाले शरीर के दाप (वात, पित्त, कफ) तुल्य गुण हानि का कारण उनका सन्निपात या ससंग होता है ।<sup>२</sup> इन तीन दापों (वात, पित्त, कफ) का एक साथ बिगड़ने पर विषम ज्वर अथवा भीषण ज्वर उत्पन्न हो जाता है जिसे सन्निपात कहा जाता है ।<sup>३</sup>



१ नीशीष पूर्ण ४ पृ० ३४० ।

२ चरक संहिता भाग १ पृ० ७१८ ।

३ आपटे—संस्कृत हिन्दी कोश पृ० १०७० ।

## अष्टम-अध्याय धार्मिक-दशा

### देवी-देवता

#### सरस्वती

समराइच्च कहाँ में यद्यपि सरस्वती के स्वरूप और उनकी पूजा विधि आदि का उल्लेख नहीं है फिर भी क्या प्रसंग में उन्हें वही विद्या<sup>१</sup> और वही गारु<sup>२</sup> के नाम से सम्बोधित कर उनकी महत्ता दर्शायी गयी है। समराइच्च कहाँ में उल्लिखित सरस्वती का प्राचीनतम उल्लेख हमें धार्मिक काल से प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर सरस्वती का नदी के रूप में उल्लिखित किया गया है।<sup>३</sup> एक स्थान पर तो इनकी महिमा के सन्दर्भ में सरस्वती का ममस्तान उत्पन्न करने वाली कहा गया है।<sup>४</sup> ऋग्वेद में उल्लिखित इसी सरस्वती नदी के तट पर उच्चकाटि की बंदि क संस्कृति का विकास हुआ था। इसी नदी के तट पर बैठकर बंदि क बालीन ऋषि मुनियों ने वेदों की रचना की। कालांतर में इसे देवी का रूप मिला और पुनः यह वाणी और ज्ञान की देवी के रूप में मानी जाने लगी।<sup>५</sup> सुशीला खरे ने प्राचीन साक्ष्यों के आधार पर सरस्वती की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड के सारावर से बताया है।<sup>६</sup>

धार्मिक काल में तो सरस्वती का नदी के रूप में स्वीकृत किया गया है, किन्तु उत्तर बंदि क काल में इन्हें उत्तरोत्तर वाणी की देवी के रूप में स्वीकृत किया जाने लगा। शतपथ ब्राह्मण<sup>७</sup> तथा ऐतरेय ब्राह्मण<sup>८</sup> में स्पष्ट रूप से सरस्वती का वाक की अधिष्ठाता देवी बताया गया है। सम्भवतः उत्तर बंदि क काल में क्रमशः सरस्वती का, जिन्हें ज्ञान की अधिष्ठाता माना जाने लगा था

१ सम०क० ७ पृ० ६८१।

२ वही ८, प० ७८६।

३ ऋग्वेद १।३।१०, ४।९।११, ६।६।१२, ६।६।१८-१०, १०।६।८-९, १०।७।५।

४ वही १।३।१२।

५ सुशीला खरे—प्राचीन भारतीय संस्कृति में सरस्वती, पृ० ७।

६ वही पृ० ८।

७ शतपथ ब्राह्मण ३।९।१।७।

८ ऐतरेय ब्राह्मण ३।९।१०।

‘वाक’ से समीकरण किया जाने लगा। इस प्रकार घोर घोर इहें वाग्देवी और जानदवी कहा जाने लगा।<sup>१</sup>

रामायण में वाग्देवी के रूप में सरस्वती का जिह्वा पर वास करने वाली और कण्ठ में निवास करने वाली कहा गया है।<sup>२</sup> महाभारत में सरस्वती का वाग्देवी के साथ माध विद्यादेवी के रूप में भी उल्लिखित किया गया है।<sup>३</sup> एक अन्य स्थान पर सरस्वती का दण्डनीति की रचना करने वाली बताया गया है।<sup>४</sup> पुराणों में तो सरस्वती को ब्रह्मा, विष्णु और शिव द्वारा पूज्य कह कर उच्चकोटि का स्थान प्रदान किया गया है तथा उन्हें सबभ्यापी एवं दिव्य रूपों में स्वीकृत किया गया है।<sup>५</sup> वायुपुराण में दी गयी देवियों की सूची में प्रजा (सरस्वती) तथा श्री (लक्ष्मी) को महादेवी बताया गया है तथा इन्हीं दोनों रूपों से सहस्रों देवियों की उत्पत्ति बतायी गया है।<sup>६</sup>

सरस्वती के स्वरूप का चित्राकन खजुराहों की दीवारों पर देखने का मिलता है वहाँ वह अपने वाहन हंस पर आसीन, हाथ में वाणा लिये हुए है।<sup>७</sup> एक अन्य स्थान पर अपने दो हाथों से बीणा बजाती हुई तथा एक हाथ में पुस्तक और दूसरे हाथ में पुष्प लिये हुए सरस्वती का चित्र चतुर्भुज रूप में देखने को मिलता है।<sup>८</sup> स्वतंत्र रूप में सरस्वती को उन सभी वस्तुओं का प्रतीक माना गया है जो जीवन में शुद्ध और स्वच्छ है।<sup>९</sup> चटर्जी के अनुसार देवी सरस्वती न केवल बुद्धि और विद्या की ही अधिष्ठाता थी बरन वह औपधि कला और समृद्धि की भी अधिष्ठाता देवी के रूप में मानी जाती थी।<sup>१०</sup>

१ सुशीला त्रवर—प्राचीन भारतीय संस्कृति में सरस्वती, पृ० १७।

२ रामायण—६।१२०।२४, ७।१०।४०-४३, ७।५।२८।

३ महाभारत—वनपर्व ३।१८६।

४ बही शान्ति पर्व १२।१२२ तस्माच्च धमचरणनीतिर्देवा सरस्वती।

ससृजेदण्डनीति सा त्रिषु लोकेषु विद्युताम ॥’

५ दक्षिण—सरस्वती स्तोत्र माकण्डेय पुराण अध्याय २३, वामन पुराण अध्याय ३२।

६ वायुपुराण ९।५८।९८।

७ विद्या प्रकाश—खजुराहा, पृ० १४१।

८ आइकनोग्राफी इन ठाका म्युजियम प्लेट ६३।

९ ए०के० चटर्जी—सम एस्पेक्टस आफ सरस्वती पृ० १५२—‘वेपरसु समितार आन लक्ष्मी एण्ड सरस्वती’—एडिटेड बाई डी०सी० सरकार।

१० बही पृ० १५२।

समराइच्च कहा म उल्लिखित विद्या और शारदा सरस्वती के ही पर्याय है। उपरोक्त साध्या के अनुसार इन्हें विद्या सरस्वती, शारदा तथा प्रज्ञा आदि विभिन्न नामों से जाना जाता था। समराइच्च कहा में उल्लिखित सरस्वती की महत्ता का सर्वत जन घम पर ब्राह्मण घम के प्रभाव की पुष्टि करता है। जनघम में इन्हें (सरस्वती का) विद्या की दवी के रूप में उतना ही महत्त्व प्रदान किया गया है जितना ब्राह्मण घम में ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती का। उनके चिह्न (वीणा, पुस्तक) आदि भी लगभग एक से ही हैं।<sup>१</sup>

### लक्ष्मी

प्राचीन भारतीय देवी-देवताओं की मायता के आधार पर चण्डिका, सरस्वती आदि के साथ ही लक्ष्मी की भी अलौकिक शक्ति में विश्वास किया जाता था। समराइच्च कहा में लक्ष्मी का उल्लेख ता हुआ है किन्तु उनके स्वरूप आदि पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है। श्री तथा लक्ष्मी का उल्लेख ऋग्वेद<sup>२</sup> में भी हुआ है किन्तु वहाँ भी उनके स्वरूप के बारे में कुछ भी विवरण नहीं है। ऋग्वेद में एक स्थान पर माता अदिति<sup>३</sup> का उल्लेख है। यजुर्वेद में वहिक् देवी अदिति को विष्णु की पत्नी के रूप में दिखाया गया है।<sup>४</sup> ऋग्वेद में उन्हें जग-माता स्रवप्रदाता तथा प्रकृति की अधिष्ठात्री देवी कहा गया है।<sup>५</sup> इन उल्लेखों के आधार पर लक्ष्मी को माता अदिति से भी जाना जा सकता है।

तत्तिरीय उपनिषद् में लक्ष्मी का वस्त्र भोजन, पेय, धन आदि की प्रदात्री के रूप में बताया गया है।<sup>६</sup> ऐतरेय ब्राह्मण में 'श्री' की कामना करने के लिये वित्त के देव का मूष शास्त्रा सहित बनाने का आदेश मिलता है।<sup>७</sup> वित्त का धाफल भा कहा गया है।<sup>८</sup> रामायण में श्री कुबेर के साथ सम्बन्धित बताया

१ सुशीला खरे—भारतीय संस्कृति में सरस्वती, पृ० ५७।

२ सम०क० ८ पृ० ७३१ ७४१, ९, पृ० ९६०।

३ ऋग्वेद—श्री १ १६८ १०, १, १७९ १ १ १८८, ६ २, १ १२, ४ १०, ५ ४ २३, ६ ५ ४४ २, लक्ष्मी—१०, ७१, २।

४ वही १ ८९, १०।

५ तत्तिरीय संहिता—७ ५ ४।

६ ऋग्वेद १, ८९ १०।

७ तत्तिरीय उपनिषद् १।४।

८ ऐतरेय ब्राह्मण २, १, ६।

९ मनु० ५।१२०।



गयी ह, जो सांसारिक सुख एवं धन के दबता ह।<sup>१</sup> रामायण में एक अर्थ स्थान पर लक्ष्मी को पुष्पक प्रासाद पर कर में कमल लिये हुए दिखाया गया ह।<sup>२</sup> महाभारत में लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्रमंथन में बतायी गयी ह जिनका मार्गलिक चिह्न मकर माना गया ह<sup>३</sup> जिसे श्रीक देवता अफोडाइट ॥ जाडा जा सकता ह।

बीडग्रन्थ दीप निकाय व ब्रह्मजाल सूत्र में लक्ष्मी की उपासना वर्णित ह।<sup>४</sup> धम्मपद अटठकथा<sup>५</sup> में लक्ष्मी को 'रज्जसिरी दायक' अर्थात् राजा का राज्य दिलान वाली देवी कहा गया ह। जन ग्रन्थ अगविज्जा में लक्ष्मी को 'श्री' के रूप में उल्लिखित किया गया ह।<sup>६</sup>

कालिदास ने रघुवश में लक्ष्मी का राज्य लक्ष्मी के रूप में उल्लिखित किया ह।<sup>७</sup> मालविकाग्नि मित्र में कवि ने नायिका की उपमा लक्ष्मी से की ह।<sup>८</sup> विष्णु पुराण में श्री की उत्पत्ति समुद्र मंथन में कह कर उन्हें विष्णु की पत्नी बताया गया है।<sup>९</sup> एक अर्थ स्थान पर इन्हें कमलालया कहा गया ह।<sup>१०</sup>

भरहुत के कटघरों के खम्बों पर हमें लक्ष्मी के विकसित वा स्वरूप प्राप्त होते ह। एक बठा हुआ<sup>११</sup> तथा दूसरा खड़ा<sup>१२</sup> हुआ। बठा हुई मूर्ति यागासन की मुद्रा में दाया हाथ आड़ हुए कमल के फूल पर स्थित ह। खड़ा हुई मूर्ति के एक हाथ में कमल का फूल तथा दूसरा हाथ वरद मुद्रा में नीचे की ओर लटका हुआ ह। इन दोनों प्रकार के फलका में गज उन्हें स्नान करा रहे ह। इसके साथ साथ लक्ष्मी का स्वरूप प्राचीन भारतीय मुद्राओं मुहरों तथा अभि

१ रामायण ७, ७६ ३१।

२ वही ५, ७, १४।

३ महाभारत १३, ११ ३।

४ दीप निकाय १, ११।

५ धम्मपद अटठकथा ११, १७।

६ अगविज्जा—देवता विजय' अथाय ५१ पं० २०४।

७ रघुवश ४१५।

८ मालविकाग्नि मित्र ५।३०।

९ विष्णु महापुराण १ ८ १५, १६ १४ १५।

१० वही १ ८, २३।

११ कलकत्ता इण्डियन म्यूजियम—भरहुत खम्बा ११० के पास।

१२ वही भरहुत खम्बा २१० तथा १७७ के पास।

लेखों में भी चित्रित किया गया है।<sup>१</sup> प्राचीन भारतीय मूर्तिकला तथा मुद्रा निर्माण कला में लक्ष्मी का चित्रावन दूसरी शताब्दी ई० पू० से प्रारम्भ होकर बारहवीं ई० तक चलता रहा।<sup>२</sup>

राय गविन्द चन्द के अन्त में लक्ष्मी पहले अनायों की देवी था जो कालांतर में हमारे धर्म में आ गयी और आयों का इन्हें अनायों से अपनाना पड़ा। कभी इन्हें वरुण की स्त्री के रूप में माना गया है कभी इन्द्र की, कभी कुबेर की और अन्त में विष्णु की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया जो आज भी जन प्रचलित है।<sup>३</sup>

उपरोक्त सभी विवरण से स्पष्ट होता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त में उल्लिखित लक्ष्मी को आज भी धन वशव की अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्वीकृत किया जाता है। यह विश्वास जन साधारण में आज भी प्रचलित है कि दीपावली के दिन लक्ष्मी प्रत्येक गृह में पधारती है। अतः उनका आगमन की प्रतीक्षा में लोग अपने घरों को स्वच्छ करते हैं, दीपक जलाते हैं जागरण करते हैं तथा धूल रचाते हैं।<sup>४</sup> माघ मास के शुक्ल पक्ष में पंचमी को बंगाल के निवासी बड़ी धूमधाम से लक्ष्मी की मूर्ति बनाकर उसका पूजन करते हैं।<sup>५</sup>

### चण्डिका

सम्राट् चन्द्रगुप्त में देवताओं के साथ साथ देवी पूजन का भी उल्लेख प्राप्त होता है। तत्कालीन भारतीय समाज में चण्डिका देवी<sup>६</sup> की अपूर्व शक्ति में विश्वास किया जाता था मन्दिरों में उनकी मूर्ति स्थापित कर समुचित पूजा की जाती थी।<sup>७</sup> अपने मनावलित फल की सिद्धि के लिए जगती जातिया द्वारा पशुबलि के साथ माघ नरवाल का भी सक्त प्राप्त होता है।<sup>८</sup> बी० पी० सिन्हा के अनुसार प्राचीन काल में मुख्य रूप से सीरिया एशिया माइनर पलेस्तीन,

१ रेविल—रायगविन्दचन्द—प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा अध्याय—७ ८ तथा ९।

२ लक्ष्मीकांत त्रिपाठी—'लक्ष्मी एण्ड सरस्वती'—पृ० १६०—वेपर—'सेमिनार ऑन लक्ष्मी एण्ड सरस्वती'—एडी०—डी० सी० सरकार।

३ रायगविन्दचन्द—प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा पृ० १२।

४ वही पृ० ३।

५ जे० यन० वनर्जी—डेवेलपमेण्ट आफ हिन्दू आइडनोग्राफी, पृ० ३७०।

६ सम० क० ४ पृ० ३५५ ३५७ ५८ ३६१ ६ पृ० ५२९।

७ वही ४ पृ० ३५५ ३६० ६१।

८ सम० क० ६, पृ० ५२९।

साइप्रस ग्रीस और इजिप्ट आदि स्थान मातृ पूजा के स्थल रहे ह। उन्ही के अनुसार यह कहना कठिन ह कि शक्ति व रूप में मातृ देवी की उपासना कहाँ स विकसित हुई, किंतु माशुल के विचार में सिंधु और नील के बीच के लोग मातृपूजा से प्रभावित थे।<sup>१</sup> अत स्पष्ट होना कि प्राचीन भारत में शक्ति पूजा का प्रारम्भ सिंधु घाटी के लोग म हुआ।<sup>२</sup> बी० पी० सिन्हा के समयन में डी० सी० सरकार ने भा कहा ह कि पश्चिमी भारत म लोग उस समय शक्ति पूजा स पूज्यता परिचित थे।<sup>३</sup>

महाभारत<sup>४</sup> में उल्लिखित ह कि अजुन ने युद्ध म विजय प्राप्त करने के लिए श्रीकृष्ण का सलाह पर दुर्गा देवी की आराधना की थी। पिण्डनिमुक्ति के टीकाकार ने भी महाभारत में प्राप्त साम्य व समयन में इस बात का उल्लेख किया ह। युद्ध में जाते समय लाग चामुण्डा का प्रणाम करते थे।<sup>५</sup> यहाँ चामुण्डा का सम्बोधन चण्डी अथवा चण्डिका से ध्वनित होता ह। धर्म शास्त्रों में दुर्गा को विभिन्न नामा म सम्बोधित किया गया ह, यथा—उमा पावती, देवी अम्बिका गौरी, चण्डी (चण्डिका), काली कुमारी ललिता आदि।<sup>६</sup>

माकण्डेय पुराण में देवी माहात्म्य<sup>७</sup> खड मिला ह।<sup>८</sup> वायु पुराण म भी चण्डिका का उल्लेख प्राप्त होता ह।<sup>९</sup> चण्डेश्वर ने देवी पुराण का उद्धरण देत हुए व्यक्त किया ह कि महीने में शुक्ल पक्ष की अष्टमी (विशेषत आश्विन मास की) देवी क लिए पवित्र ह और उस दिन बकर या भसे की बलि होनी चाहिए।<sup>१</sup> आचाराग चूर्णी में चण्डिका को बकरे भसे तथा पुरुष आदि की बलि दकर उस प्रसन करने का उल्लेख प्राप्त हाता ह।<sup>१०</sup> निशीथ चूर्णी में उल्लिखित

१ बी० पी० सिन्हा—इवोल्यूशन आफ शक्ति वर्सिप इन इण्डिया पृ० ४६  
सेमिनार—‘आन दी कल्ट आफ शक्ति एण्ड तारा —एडीटड—आई—डी० सी०  
सरकार।

२ वही पृ० ५४।

३ डी० सी० सरकार—शक्ति कल्ट इन वेस्टर्न इण्डिया, पृ० ८७।

४ महाभारत भीष्म पर्व अध्याय २३।

५ पिण्ड निमुक्ति-टीका ४४१।

६ पी० बी० काणे—धर्म शास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४०२।

७ माकण्डेय पुराण अध्याय—८१—९३।

८ वायु पुराण अध्याय ९।

९ कृत्य रत्नाकर, पृ० ३५१।

१० आचाराग चूर्णी पृ० ६१।

ह कि अपने जमाई की तीष यात्रा कुशलतापूर्वक सम्पन्न होने पर स्त्रियाँ कोटार्या को बकरे की बलि चढ़ाती थी।<sup>१</sup> आर्या और काटटकिरिया (कोटार्या) दानों ही दुर्गा के रूप हैं।<sup>२</sup> अलवरुनी ने भी लिखा है कि चामुण्डा (चण्डिका) के पुजारी देवी का सुश करने के लिए बकरा, भसा तथा बिल आदि की बलि चढ़ाते थे।<sup>३</sup>

बण्डी को महिषासुर (भैसे के आकार वाला राक्षस) मदिनी कहा गया है जो मदिग, मास और जानवर का भक्षण करती थी वह यशोदा क यहाँ पैदा हुई थी और पत्थर पर पटकते समय वहाँ से उछलकर स्वर्ग को चली गयी। वह वासुदेव की प्रिय बहन थी जिनका स्थायी निवास स्थान विन्ध्य-पर्वत बताया जाता है।<sup>४</sup> भण्डारकर के अनुसार अम्बा (दुर्गा) शवर पुलिद शवर तथा अम्ब जगली जातियों की आराध्या देवी मानी जाता थी, जिनका आहार मदिरा और मांस था।<sup>५</sup>

समराहन्व कहा तथा अम्ब साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में दवा पूजन का प्रचलन अवश्य था किन्तु अधिकतर जगली जातियाँ यथा—शवर, पुलिद आदि पशु बलि तथा नर बलि के द्वारा देवी पूजन किया करते थे। संभवतः देवी को भस्मे बकरे आदि की बलि देकर प्रसन्न करने का प्रचलन चण्डिका द्वारा महिषासुर (भसे के आकार वाला राक्षस) का वध करने के बाद से प्रारम्भ हुआ। लगता है कि लोगों में यह भावना पैदा हो गयी कि पशु बलि देकर ही देवी का सुश किया जा सकता है। राजस्थान में आज भी चण्डिका की पूजा के समय गृह् ममारोह में भस्म की बलि दी जाती है।

### नगर देवी

हरिमद्रकालीन भारतीय समाज में अम्ब देवी-देवता के साथ साथ नगर देवी<sup>६</sup> के अस्तित्व में भी विश्वास किया जाता था। वह नगर की रक्षिका के रूप में मानी जाती थी। उत्सव महोत्सव के समय नगर देवी की पूजा का प्रचलन

१ निशोय चूर्णी १३-४४००।

२ हापकिंस-इपिक् माइयालाजी प० २२४।

३ सवाल वालूम I, प० १२०।

४ सर आर० जी० भण्डारकर—अण्णविज्ज, गविज्ज एण्ड अदर माइनर रिलिजम सिस्टम, पृ० १४३।

५ वहा, प० १४३।

६ सम० क० १, पृ० ११६, ४, प० ३५४ ३५५, ५ पृ० ४५७।

था।<sup>१</sup> प्राकृत ग्रंथ अगविज्जा में नगर देवता<sup>२</sup> का उल्लेख आया है। इससे स्पष्ट होता है कि नगरों के सरक्षक देवी देवताओं में लोगों का विश्वास था।

कुछ विद्वानों के अनुसार यूनानी भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ननाइया (Nanaia) नामक नगर देवी की पूजा करते थे। यूनानियों के प्रभाव के कारण ही इनके अधिकार में स्थित नगरों में भी उस नगर की अपनी नगर देवी की परम्परा की सम्भावना विद्वानों ने स्वीकार की है।<sup>३</sup>

## ब्रह्मा

भारतीय धार्मिक परम्परा में ब्रह्मा की सृष्टि का रचयिता स्वीकार किया गया है। समराइच्च कहा म एक स्था पर इहें विधि<sup>४</sup> (विधाता अर्थात् बनाने वाला) बताया गया है। एक अन्य स्थान पर इहें प्रजापति (ब्रह्मा का दूसरा नाम) कहकर मनानुकूल फल की सिद्धि के लिए पूजा का विधान बताया गया है।<sup>५</sup> प्रजापति को ही कला का अधिष्ठाता देव समझ कर सुन्दर समार का रचयिता बताया गया है।<sup>६</sup> समराइच्च कहा कय उल्लेख ब्राह्मण धर्म का जन ग्यों पर प्रभाव निखलाते हैं।

ब्रह्मा का प्राचीनतम इतिहास बौद्ध काल के पूर्व का माना जा सकता है। प्रा० तारपद भट्टाचार्य के अनुसार बौद्ध संस्कृति ब्रह्मा की अलौकिक शक्ति का ही विकसित रूप है।<sup>७</sup> उही के अनुसार ब्रह्मा ही ससार मानव, देव, राक्षस वगैरे एवं सभी धर्मों का जन्मदाता कहे जाते हैं।<sup>८</sup> यद्यपि ऋग्वेद में प्रजापति सूक्त का वर्णन मिलता है जिसे कुछ विद्वानों ने सृष्टि का रचयिता देव माना है। लेकिन प्रजापति को कहा सवित्र और साम के विशेषण का रूप में<sup>९</sup> ता कही हिरण्य गम्भ के रूप<sup>१०</sup> में उल्लिखित किया गया है जिससे प्रजापति की

१ सम० क० ४, प० ३५५।

२ अगविज्जा-देवता विजय अध्याय ५१, प० २०४-६।

३ ड्यू-डेल टान—ग्रीक्स इन बकिन्ग्या एण्ड इण्डिया प० ६०।

४ सम० क० ९ पृ० ८५८।

५ वही ८, पृ० ७३१ ७४२ ७६५।

६ वही ८ पृ० ७३१ ७४२—जइमय निउणत्त पुण एत्थ सुणमयवओ पया वइणो। जेण जयसुदर मिण लइह रुव विणिम्मविय'।

७ तारपद भट्टाचार्य—दी कल्ट आफ ब्रह्मा प० २४५।

८ वही, प० १०२।

९ ऋग्वेद ४।५३।२।

१० वही १०।२१।१।

सावभौमिक शक्ति में सदेह प्रतीत होता है। प्रो० भट्टाचार्य के अनुसार वैदिक काल में ब्रह्मा का नाम अज्ञात नहीं था। ऋग्वेद में ब्रह्मणस्पति<sup>१</sup> का ब्रह्मा के रूप में प्रयोग किया गया है यह ब्रह्मणस्पति पूर्व वैदिक कालीन ब्रह्मा का समा नाथी है।<sup>२</sup>

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रजापति को श्रेष्ठ देवता बताया गया है किन्तु अथ स्याना पर उही ग्रन्थों में वैदिक देवताओं की स्तुति और आहुति का भी उल्लेख है जिसमें प्रजापति को अथ देवताओं की तुलना में कम महत्त्व दिया गया है। प्रो० भट्टाचार्य ने अपने तक में यह बात सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित प्रजापति (ब्राह्मण ग्रन्थों के सब शक्तिमान देव) का तात्पर्य प्राधान ब्रह्मा से है जिसके माहात्म्य, शक्ति आदि का बौद्धिक धर्म में दवा दिया गया था।<sup>३</sup> यहाँ भट्टाचार्य की बात सही भी जान पड़ता है, क्योंकि समराइच्च कहा म भी ब्रह्मा का विधि अर्थात् विधाता कह कर सम्पूर्ण ब्रह्मा के अधिष्ठाता देव माना गया है। जिससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्मा का स्वरूप और उनकी शक्ति आदि वैदिक काल के पूर्व भी अज्ञात नहीं थी। प्रो० भट्टाचार्य ने वैदिक काल के पूर्व ब्रह्मा का सम्बन्ध 'राश' से जोड़ा है जिसके अंतर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि वायु आदि शक्तियाँ में विश्वास किया जाता था। धीरे धीरे ये सभी शक्तियाँ अलग-अलग देवताओं के रूप में परिणत हो गयीं और बाद में सभी देवताओं का एकमात्र देव ब्रह्मा के रूप में जाना जाने लगा।<sup>४</sup> तभी से ब्रह्म ब्राह्मण उपनिषद् तथा बाद के अथ ग्रन्थों में कही ब्रह्मा, कही 'प्रजापति' और कही विधाता के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

कारणों के अनुसार इन्द्र, यम, वरुण आदि की भाँति ब्रह्मा का भी पूजा में बलि (पशुबलि का अंग) दी जाता था।<sup>५</sup>

ब्रह्मा के स्वरूप और उनके वाहन का चित्राकन अज्ञातता का चित्रकला में चित्रण को मिलता है। वहाँ ब्रह्मा के तीन मुख दिखाए गये हैं तथा उनके वाहन हंस का भी चित्राकन है।<sup>६</sup> यहाँ ब्रह्मा विष्णु और शिव को साथ साथ दिखाया गया है जिससे पता चलता है कि धार्मिक परम्परागत आधुनिक विचार

१ ऋग्वेद २।१।३।

२ तारापद भट्टाचार्य—दी कल्ट ऑफ ब्रह्मा, पृ० १०८।

३ वही पृ० २४६।

४ वही पृ० २४३।

५ पी० वी० कार्णे—धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ४०६।

६ जे० यन० बर्गर्जो—डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू इक्नोग्राफी, पृ० ५५१।

धारा ( यथा—सृष्टिकर्ता ब्रह्मा पालनकर्ता विष्णु तथा सहारकर्ता शिव )  
प्राचीन विचार धारा का ही प्रतिफल ह ।

## विष्णु

समराइच्च कहा में विष्णु की पूजा प्रशस्ति तथा उनके स्वरूप आदि का  
ता उल्लेख नहीं ह फिर भी वही परमेश्वर<sup>१</sup> और कही नारायण<sup>२</sup> कह कर उनकी  
महत्ता दर्शायी गयी ह । हिंदू धार्मिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और  
महेश (शिव) ये तीनों देवता सभी देवों में श्रेष्ठ माने जाते ह और इन तीनों में  
भी विष्णु का स्थान श्रेष्ठतम ह ।

ऋग्वेद में विष्णु की महिमा, पराक्रम एवं पूजा आदि का विस्तृत वर्णन  
किया गया ह ।<sup>३</sup> एक स्थान पर विष्णु को बृहत् शरार एवं युवा रूप में युद्ध में  
जाते हुए उल्लिखित किया गया ह ।<sup>४</sup> विष्णु के प्रसिद्ध दस अवतार मान गये  
हैं, यथा—मत्स्य बूम वाराह भरसिंह धामन परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध,  
एवं कल्कि ।<sup>५</sup> महाभारत के शांतिपर्व में विष्णु के दश अवतारों का उल्लेख ह ।<sup>६</sup>  
परन्तु वहाँ 'बुद्ध' की हस्त तथा कृष्ण की जगह 'मात्स्य' नाम आया ह ।

विष्णुधर्मोत्तर में 'विष्णुराज' कह कर विष्णु की पूजा किये जाने का संकेत  
प्राप्त होता ह ।<sup>७</sup> इन्हें चतुर्भुज देवता के रूप में पूजे जान का उल्लेख ह । उनके  
एक हाथ में शङ्ख, दूसरे में चक्र, तीसरे हाथ में गदा तथा चौथे हाथ में पद्म लिए  
हुए दिखाया गया ह ।<sup>८</sup>

वासुदेव, जो कि बह्मिक देवता विष्णु के अवतार माने जाते थे तथा दूसरे जिन्हें  
नारायण के रूप में भा जाना जान लगा, की पूजा का प्रचलन पाणिनि के समय  
ही प्रारम्भ हो गयी थी ।<sup>९</sup> तत्तिरीय आरण्यक में भा नारायण, वासुदेव और

१ सम० क० ७, पृ० ६५७ ।

२ वही ८, पृ० ७५७ ।

३ ऋग्वेद—विष्णु सूक्त ।

४ वही १।१५५।६ ।

५ पौ० धौ० वाणें—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ३९४ ।

६ महाभारत—प्राणि पर्व ३३९।१०३४ ।

७ वासुदेव चरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लाक्ष धर्म पृ० ८९ ।

८ ईस्टन इण्डियन स्कूल आफ मसिक् स्वरूपकर प्लेट XLIII XLIV ।

९ दां कस्करल हर्नटज आफ इण्डिया, ४, पृ० ४२ ।

विष्णु का एक ही देवता के रूप में स्वीकार किया गया है ।<sup>१</sup> नारायण को हरि तथा अनन्त एवं सवशक्तिशाली देवता के रूप में स्वीकार किया गया है ।<sup>२</sup>

नर अथवा नरों के समूह का विश्राम स्थल ( अन्तिम लक्ष्य ) ही नारायण है ।<sup>३</sup> महाभारत में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मैं ही अनन्त नरों का विश्राम स्थल हूँ ।<sup>४</sup> भण्डारकर के अनुसार 'नृ अथवा नर' का प्रयोग वेदों में नर रूपी दैवता ( नारायण ) को इंगित करता है ताकि वह ( नारायण ) अन्य देवताओं का अन्तिम लक्ष्य ( अन्तिम विश्राम स्थल ) बन सके ।<sup>५</sup> नौवीं शताब्दी में भी विष्णु की एक पत्थर की मूर्ति पर भगवान् नारायण का अंकन प्राप्त होता है ।<sup>६</sup> अतः स्पष्ट है कि सम्राट् च्व कहाँ में उल्लिखित नारायण तथा परमेश्वर शब्द विष्णु के पर्याय हैं । यह देवों में भी श्रेष्ठ अर्थात् परमेश्वर के रूप में आज भी मान्य है तथा जो समय-समय पर इस पृथ्वी पर अवतरित होकर अधम का नाश करके धर्म का स्थापना करते हैं ।

## सूय

हरिभद्र के काल में अन्य देवी-देवताओं की तरह सूय देव की सत्ता में भी विश्वास किया जाता था । सम्राट् च्व कहाँ में इन्हें दिनकर कह कर ऋषिगण, किन्नर तथा लक्ष्मी आदि से वन्दनीय बताया गया है ।<sup>७</sup> सूय देव का तीनों लोकों का प्रकाशित करने वाला देवता समझकर उनकी पूजा की जाती थी । वह अपनी तजस्विता के कारण ही तीनों लोकों में वन्दनीय समझे जाते थे ।<sup>८</sup>

विश्व की प्रत्येक प्राचीन सभ्यता यथा—मिस्र, मेसापोटामिया, ग्रीक, राम ईरान और भारत में सूय की उपासना का उल्लेख पाया गया है ।<sup>९</sup> कुछ विषय

१ तत्तिरीय आरण्यक १०।१।६ नारायणया विदमहे वासुदेवायधामाहि तव ना विष्णु प्रचोदयात ।

२ दी कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया ४ पृ० ११९ ।

३ मेघातिथि—आन मनु० १।१० ।

४ महाभारत—शांति पर्व १२।३४१ ।

५ सर आर० जी० भण्डारकर—वर्णविजय शविजय एण्ड माइनर रिजिलस सिस्टम्स पृ० ३० ।

६ इपि० इडि० १८ प० ३३०—भगवतो नारायणस्य शैली प्रतिमा भवतानाम् ।

७ सम० क० ९ प० ८५९-६०, ९६० ।

८ वहा ९ पृ० ८५९ ६० ।

९ लालता प्रसाद—सन वर्गिप इन ऐसियट इडिया, इन्ट्रोडक्शन, पृ० XXIV ।



रका व अनुमार सूर्य की उपासना उत्तर पापाण काल से ही प्रारम्भ हुई और सिंधु घाटी की सभ्यता तथा उसके बाद तक चलती रही।<sup>१</sup>

वदिक काल में सूर्य की उपासना विभिन्न रूपों में की जाती था। सूर्य के रूप में वह प्रकाश और गर्मी प्रदान करने वाले, सवित के रूप में वह सभी लोगों का यहाँ तक कि मानव मस्तिष्क के विचारों का भी प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करने वाले विष्णु के रूप में वह सम्पूर्ण जीवा को पदा करने वाले, पालन करने वाले तथा सम्पन्नता प्रदान करने वाले पूषण के रूप में वह पशुआ, पक्षी भोजन तथा वनस्पतियों के सरम्भक देव के रूप में पूजनीय थे।<sup>२</sup>

मौर्य काल के अंतिम समय से ही सूर्य देव का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है और सभी से सूर्य-देव की मूर्ति-पूजा का प्रारम्भ होता है।<sup>३</sup> इण्डोग्रीक, शक और कुषाण के आगमन पर सूर्य की उपासना का प्रचार और बढ़ गया क्योंकि वे लोग (विदेशी) अपने देश में सूर्य पूजा में पू्व परिचित थे।<sup>४</sup>

गुप्तकाल में सूर्य देव के बहुत से मन्दिर निर्मित किये गये। कुमार गुप्त के शासनकाल में सूर्य के सम्मान में मन्मौर (मन्मौर) में तथा स्कन्द गुप्त के समय में मध्यदेश में सूर्य देव का मन्दिर बनवाया गया जिसमें उन्हें भाष्कर कह कर उनकी प्रायना की गई है।<sup>५</sup> गुप्त प्रशासन के पतन के पश्चात् बहुत से राजवंशों ने, यथा—मौर्य, यानेश्वर और कन्नौज के वधन वंशीय शासक, काश्मीर के कार्कोटक और सेन तथा बंगाल के पालवंशीय शासक सूर्य के उपासक बने रहे।<sup>६</sup> यानेश्वर के राजा राज्यवधन प्रथम, आदित्यवधन तथा महा राज प्रभाकरवधन सूर्य देव के उपासक थे।<sup>७</sup> अलबर्ना न यानेश्वर नामक नगर में सूर्य देव की एक विशाल मूर्ति देखी थी।<sup>८</sup> प्रतिहार नरेश महेंद्र पाल द्वितीय के उज्जैन भूमिदान पत्र में सूर्य की उपासना का उल्लेख है।<sup>९</sup>

सूर्य देव की मूर्ति की चतुर्भुज मन्दिर की दीवाली पर चित्रित किया गया

१ लालता प्रसाद—सन वशिष्ठ इन ऐसियट इंडिया, पृ० १८९।

२ वही, पृ० १८९।

३ वही, पृ० १८८।

४ वही पृ० १८८।

५ इन्सक्रिप्शनम इंडिकरम, ३, पृ० ८९।

६ लालता प्रसाद—सन वशिष्ठ इन ऐसियट इंडिया, पृ० १८९।

७ हपवधन का मधुवन साम्रपत्र—इपि० इण्डि० १ पृ० ७२।

८ सचार् १ पृ० ११७।

९ इपि० इण्डि० १४, पृ० १७८।

ह। वह सात धार्यों से खीचे जान वाले रथ में बैठे हुए चित्रित किये गये हैं।<sup>१</sup> खजुराहो के संग्रहालयों में भी सूर्य की मूर्ति देखने को मिलती है। पूर्व मध्य कालीन भारत में भी वन्तिक काल की मूर्ति भिन्न भिन्न नामों से सम्बोधित कर उनकी उपासना की जाती थी—यथा—सूर्य<sup>२</sup>, इन्द्रादित्य<sup>३</sup>, भास्कर<sup>४</sup>, आदित्य<sup>५</sup> और मातण्ड<sup>६</sup> आदि। उन्हें समस्त रागा का हता तथा विश्व प्रकाशक बताया गया है।<sup>७</sup>

अन स्पष्ट होता है कि सूर्य का विभिन्न नामों से सम्बोधित कर धदिक काल में लेकर पूर्व मध्यकाल तथा उससे पश्चात् भा उनको पूजा का प्रचलन था। उन्हें विश्व को प्रकाशित करने वाला दिन और रात को बनाने वाला तथा जीवन और शक्ति प्रदान करने वाला देव स्वीकार किया गया है।

### चन्द्रमा

हर्षिभद्र कालीन भारतीय समाज में चन्द्रमा को भी देवता के रूप में जाना जाता था।<sup>८</sup> हरन और यन आदि कार्यों में अथ देवताओं की तरह चन्द्रमा की भी अलौकिक शक्ति में विश्वास कर उनकी पूजा का विधान था। वह सकल जन मन आनन्दकारी मृगलक्षणयुक्त चन्द्रत्व के रूप में पूजनीय थे।<sup>९</sup> अथर्व में भी चन्द्रमा का देवताओं की सूचा में उल्लिखित किया गया है।<sup>१०</sup> विष्णुधर्मोत्तर में राक्ष देवता का उल्लेख आया है। राक्ष शब्द का अर्थ हवि (इच्छा) से लगाया जाता है अर्थात् जो जिसका हवता था वही उसका देवता बन जाता था, वही चन्द्रराक्ष का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>११</sup>

१ विद्या प्रकाश—खजुराहो, पृ० १४०।

२ इपि० इपि० ११ पृ० ५५ ९ पृ० १-५ तथा ६३।

३ वही १९ पृ० १७८।

४ वही १६ पृ० १३।

५ सधाऊ १ पृ० ११०।

६ राजतरंगिणी ३, ४६७, ४ १००।

७ जनल आफ द एगियाटिक सोसायटी आफ बंगाल (यूरोप) २६ पृ० १४७ प्लेट २ (सूर्य समस्त रोगानां हर्ता विश्व प्रकाशक)।

८ सम० व० ८ पृ० ७५८।

९ वही ५, पृ० ३६४ ६५।

१० अथर्व ११।६।१-२३ (पाप प्राचन सूक्त), दक्षिण—अगविज्जा-देवता विजय अध्याय ५१ पृ० २०४-६।

११ वामुदेवगण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय साहित्य, पृ० ८-७।

यानवत्त्व स्मृति में चन्द्रमा को नौ ग्रहा में से एक माना गया है और इन नौ ग्रहा (सूर्य चन्द्र मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु) की पूजा के लिए उनकी मूर्तियाँ क्रम से ताम्र, स्फटिक, लाल चन्दन, साना (गुध एव बृहस्पति के लिए) रजत लोहा सीसा एव कसि की बनी होनी चाहिए।<sup>१</sup> गीता में सूर्य चन्द्र इन्द्र अग्नि आदि देवताओं को विष्णु का नाना रूप बताया गया है।<sup>२</sup> इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि वैदिक काल से ही चन्द्रमा को सूर्य इन्द्र अग्नि आदि की श्रेणी में रखा जाने लगा और स्मृति काल तक आते आते इन्हें (चन्द्रमा को) नौ ग्रहा में से एक मानकर पूजा जाने लगा। यहाँ चन्द्रमा के स्वरूप का उल्लेख तो नहीं प्राप्त होता है किन्तु कुछ विद्वानों की राय में तो अग्नि वायु आन्तिय पृथ्वी और चन्द्रमा आदि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले देवताओं की मनुष्य के रूप में नहीं आँका जा सकता।<sup>३</sup> समराइच्च कहा में इन्हें मंगलभणयुक्त बताया गया है जो आज भी हमें दृष्टिगोचर होता है। संभवतः इन्हें प्राकृतिक तैलज रूप में स्वीकृत किया गया है।

प्राचीन जन और बौद्ध ग्रन्थ सूर्य चन्द्र इन्द्र, अग्नि, यम कुबेर आदि देवताओं के स्वरूप गुण-अङ्गुण, मायता तथा पूजा आदि के सम्बन्ध में एक दूसरे का समर्थन नहीं करते, लेकिन महाकाव्य में उल्लिखित इन आठ देवताओं की वाद के ग्रन्थों में दिकपाल के रूप में चार मुख्य और चार गौड दिशाओं का अधिपति देव माना जाने लगा।<sup>४</sup> समराइच्च कहा में भी दिकपाल का उल्लेख आया है, किन्तु यहाँ दिकपाल देवों के नाम नहीं आये हैं।

### देवराज इन्द्र

समराइच्च कहा में अथ देवताओं के साथ-साथ देवराज इन्द्र की अलौकिक शक्ति में भी विश्वास का उल्लेख है। एक स्थान पर इन्हें पुरंदर<sup>५</sup> कहा गया है।

१ यानवत्त्व स्मृति १।२९६ ९८।

२ भगवद्गीता—अध्याय १० श्लोक—२१।

३ जे० यन० बनर्जी—डेवलपमेंट आफ हिंदू आइकनाग्राफी पृ० ४९।

४ वहा पृ० ४९।

५ सम० क० ८ पृ० ६३८, ८ पृ० ७५७ ९, पृ० ९६२।

६ वही ८ पृ० ७५७ देखिए—आप्टे-भस्कर हिंदी कोश—पुर दारयति इति पुरंदर ( द + णिच् + स्वप् + मुम् = पुरंदर ), रघुवंश २।८, मकडोनल—वर्त्मक माइयालाजी, पृ० ११३ ( यहाँ दैत्या के पुर या गढ़ को तोड़ने के कारण ही इन्द्र को पुरंदर कहा गया है )।

वन्दिक काल से ही इन्द्र की प्रतिमा एवं स्वरूप का पता चलता है। ऋग्वेद में इन्द्र का तुविषीव ( शक्तिशाली या माटी गदन वाला ) वयोन्र ( बड़े उदर वाला ) एवं सुबाहु बताया गया है।<sup>१</sup> आगे उनके अगा एवं पार्श्वों का वर्णन करते हुए जिह्वा से मधु पीने का कहा गया है। ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थान पर इन्द्र को रगीन वाला एवं दाढी वाला<sup>२</sup> एवं हरे रंग की ठुड्डी वाला<sup>३</sup> कहा गया है। कभी-कभी उन्हें स्वर्ण के रंग वाला बताया गया है।<sup>४</sup>

ऋग्वेद में इन्द्र का हथियार वज्र बताया गया है।<sup>५</sup> कभी-कभी उन्हें घनुष बाण लिए हुए दिखाया गया है।<sup>६</sup> वे अकुश भी लिए रहते थे।<sup>७</sup> शत्रुओं का पैसान के लिए वह एक जाल भी लिए रहते थे।<sup>८</sup> इन्द्र को जन्म से ही बहादुर एवं पराक्रमी बताया गया है।<sup>९</sup> ऋग्वेद में उल्लिखित है कि इन्द्र के जन्म के समय उनके भय से पर्वत, आकाश और पृथ्वी हिल उठे।<sup>१०</sup>

इन्द्र का वैदिक कालीन भारतीयों का राष्ट्रीय देवता बताया गया है। मकडानल के अनुसार इन्द्र की महत्ता का पता इससे चलता है कि लगभग दो सौ पचास स्तुति मन्त्र तथा उनकी प्रशंसा एवं अन्य देवों के साथ प्रशस्ति में उल्लिखित मन्त्रों की संख्या तीन सौ के करीब पहुँच जाती है।<sup>११</sup> सप्तप्रथम उन्हें वर्षा का देवता ( पानी वर्षाने वाला देव ) और दूसरे स्थान पर युद्ध का देवता कहा जाता है जिन्होंने युद्ध में आयुषों का सहायता की थी।<sup>१२</sup>

हरिवंश पुराण में इन्द्रमहर्षि उत्तम के रूप में इन्द्रध्वज के पजन का उल्लेख

१ ऋग्वेद ८।१७।३।

२ वही ८।१७।७।

३ वही १०।९७।८।

४ वही १०।१०५।७।

५ वही १।७।२ ८।५५।३।

६ मकडानल—वैदिक माइथालोजी पृ० ५५।

७ ऋग्वेद ८।४५।४ १०।१०३।२ ३।

८ वही ८।१७।१ अथर्व० ६।८२।३।

९ अथर्ववेद ८।८५।८।

१० ऋग्वेद ३।५१।८, ५।३०।५ ८।४५।४।

११ वही १।६।१४।

१२ मकडानल—वैदिक माइथालोजी पृ० ५४।

१३ वही पृ० ५४।

ह।<sup>१</sup> बृहत् संहिता में किष्किणी जाल, माला, छत्र घटियों और पिटकों से इन्द्र ध्वज का सजान का उल्लेख है।<sup>२</sup> बालिगाम ने भी रघुवश में इन्द्र ध्वज का सजान का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> राजतरंगिणी में इन्द्र के उत्सव का वर्णन आता है।<sup>४</sup> गुप्तकालीन मत्स्यपुराण में इन्द्रात्मव का शक्र का मंत्र कहा गया है। वासुदेवगण अग्रवाल के अनुसार भस्म मद्य और मह तीना का परस्पर सम्मिश्रित है।<sup>५</sup> अग्रवाल जी के ही शब्दों में प्राचीन भारतीयों के जीवन में इन्द्र महो सब हरियाली से भरा हुआ।<sup>६</sup> उसकी दयामला धरित्री के दशन में माननाय उल्लाम का यज्ञ करने का उत्सव था। इसके द्वारा विश्व-यापी प्रजनन और पुष्पा से पनपन वाले वनस्पति जीवन का देखकर मानव के स्वाभाविक रूप की अभिव्यक्ति की जाती थी।<sup>७</sup>

रामायण में भी आश्विन की पूर्णिमा का इन्द्र ध्वजात्सव मनाया जान का उल्लेख है।<sup>८</sup> जन शोधों में भी इन्द्रात्मव का उल्लेख मिलता है। निशीथ सूत्र में इन्द्र शक्र यश और भूत नामक महामहों का उल्लेख है जो क्रमशः आपाद अमावस्य वार्तिक और चतुर्थी की पूर्णिमाओं के दिन मनाया जाता था। उस समय साग खूब खाते पीते और नाचते गाते थे।<sup>९</sup> उत्तराध्ययन टीका में इन्द्रध्वज की पूजा का उल्लेख है जो गड़ी ही धूमधाम एवं बाद्य नृत्य गान आदि के साथ किया जाता था।<sup>१०</sup> बृहत्कल्प भाष्य से पता चलता है कि हेमपुर में भी इन्द्रमह मनाया जाता था। यहाँ इन्द्र स्थान के चारों ओर नगर की पाँच सौ कुल बालिकाएँ एकत्रित हो अपने मोभाग्य के लिए बलि पुष्प और धूप आदि से इन्द्र की पूजा करती थी।<sup>११</sup> इन्द्र महोत्सव के समय आमोद प्रमाण से उत्सव रहने के कारण जिन सगंध मन्त्रियों का आमंत्रित नहीं किया जा सकता था

१ हरिवंश पुराण २।१।४।

२ बृहत् संहिता ४३।७।

३ रघुवंश ४।३— पुरुषोत्तम ध्वजस्यैवतस्यो नयन पक्कय । नवाभ्युत्थान दणिषा नन व सप्रजा प्रजा ॥

४ राजतरंगिणी ८।१७०।

५ वासुदेवगण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोक धर्म पृ० ३४।

६ वही पृ० ३४।

७ रामायण किष्कि का काण्ड १६।३७।

८ निशीथ सूत्र १९।११ १२।

९ उत्तराध्ययन टीका ८, पृ० १३६।

१० बृहत्कल्प भाष्य ४।५।१५३।

उन्हें भी प्रतिपदा व जिन बुलाया जाता था।<sup>१</sup>

जन ग्रन्थ बृहन्वल्गुभाष्य मन्त्र का पर स्वीकामी बताया गया है।<sup>२</sup> वल्गु सूत्र व अनुसार इन्द्र अपनी आठ पटरानियों तीन परिपदा सात मन्त्रों, सात सनापतियों<sup>३</sup> और आत्मरत्नकों में परिवृत्त होकर स्वर्गिक सुख का उपभाग करते हैं।<sup>४</sup>

समराड्ज्व कहाँ में उल्लिखित इन्द्र देव का महत्ता एवं पराक्रम का प्रशस्ति दोनों, पुराणा एवं अन्य जन ग्रन्थों में भी दखन का मिलता है। हिंदू धर्म ग्रन्थों के अतिरिक्त जन ग्रन्थों में इन्द्र का कहीं-कहीं पर-स्त्रागामी बता कर इनकी महिमा का घटाया गया है। अन्य उल्लेखों में पता चलता है कि प्राचीन काल में इन्द्र महोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था जिसमें इन्द्र की पूजा-अर्चा की जाती थी।

यम

प्राचीन भारतवाय दशतार्ज में यम देव का भी महत्ता पायी जाती है। यम का मृत्यु का देवता माना गया है। कठोपनिषद् में यमदेव का विराट् प्रभाव स्नान का मिलता है। महाभारत में भी यमदेव का प्रभावशाली अस्तित्व का पता चलता है। महाभारत उपनिषद् तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों का आधार पर यम को मृत्यु का देवता स्वीकार किया जाता है तथा उनका वाहन भमा माना गया है। समराड्ज्व कहाँ में यम का भगवान् कृतांत<sup>५</sup> का नाम से सम्बोधित किया गया है।

अथर्ववेद व पाप माचन सूक्त में भी यम देव का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>६</sup> विष्णुधर्मोत्तर में भी यम देव का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे विदित होता है कि यम का भी पूजा अर्चा लाग अपना रुचि से करते थे (यहाँ रुचि का अर्थ रुचि अर्थात् इच्छा से लगाया जाता है)।<sup>७</sup> रामायण में यम का चारों लोकपाल देवा (इन्द्र यम, बृहन् आर कुबेर) के अंतर्गत रखा गया है जिन्हें

१ निगाय वर्णों १९।६०६८।

२ बृहन्वल्गु भाष्य १।१८५६-५९।

३ वल्गुसूत्र २।२६।

४ वही १।१३।

५ यम० व० ६ प० ५२१।

६ अथर्ववेद ११।६।२२ (पाप माचन सूक्त) दक्षिण—अगविज्जा-वता विजय अध्याय ५१ पृ० २०४-६।

७ वामुत्तरागण अध्याय—प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ० ८९।

क्रमशः पूरव दक्षिण, पश्चिम और उत्तर का अधिपति देव बताया गया है।<sup>१</sup> महाभारत में भी अय देवताओं की भाँति यम का दक्षिण दिशा का दिक्पाल बताया गया है।<sup>२</sup> प्राचीन भारत में इन्द्र ब्रह्मा वरुण आदि देवों के साथ यमदेव की भी पूजा का विधान था।<sup>३</sup> भगवद्गीता में इन्द्र, यम सूय, अग्नि आदि देवताओं को विष्णु का ही रूप माना गया है।<sup>४</sup> इस प्रकार प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में यम का मृत्यु का देव तथा कही दिक्पाल (दिशा का मरदाह देव) बताया गया है।

समराइच्च कहा में यद्यपि यमदेव के स्वरूप आदि का उल्लेख नहीं है, फिर भी अज्ञात में यम देव को अय त्रिकपालों के साथ भू पर सवार हुआ चित्रित किया गया है।<sup>५</sup>

### दिक्पाल

हरिभद्र कालीन समाज में दिक्पाल<sup>६</sup> व अस्तित्व में भी विश्वास किया जाता था। इन्हें दिग्गात्रों का पालक अर्थात् निशाओं की रक्षा करने वाला देव समझा जाता था। यम आदि सत्कर्मों में दिक्पाल की पूजा का विधान था।<sup>७</sup> इन्हें मंदिरों व अगले भाग में चारों ओर पर स्थापित किया जाता था। उनका स्थापन इस प्रकार था—दक्षिण-पूर्व में इन्द्र और अग्नि दक्षिण-पश्चिम में यम और निरात, उत्तर-पश्चिम में वरुण और वायु और उत्तर-पूर्व में कुबेर और ईशान देव, मुख्यतया इनके चार भुजाएँ थी लेकिन कभी-कभी दो भुजाएँ ही मिललाई गयी हैं।<sup>८</sup> चारों निशाओं के सरदाह देव के रूप में इनका मान्यता प्राप्त थी।

पौराणिक आख्याना में भी पता चलता है कि इन त्रिकपालों में इन्द्र पूर्व व यम दक्षिण के, वरुण पश्चिम के और कुबेर उत्तर के अधिपति देव मान जाते थे। इस प्रकार अग्नि निरात वायु और ईशान क्रमशः दक्षिण पूर्व, दक्षिण पश्चिम, उत्तर पश्चिम और उत्तर-पूर्व के सरदाह देव मान जाते थे।<sup>९</sup>

१ जे० यन० बनर्जी—डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइडनोग्राफी, पृ० ५२०।

२ महाभारत ८.४५.३१।

३ पा० वा० काण—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४०६।

४ भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २१।

५ जे० यन० बनर्जी—डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइडनोग्राफी, पृ० ४८५।

६ गम० क० ६ पृ० ६०१।

७ जे० यन० बनर्जी—डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइडनोग्राफी पृ० २०७८।

८ विद्या प्रकाश—गजुगाहा पृ० १४१।

९ जे० यन० बनर्जी—डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइडनोग्राफी, पृ० ५१९२०।

रामायण में चार ही लोकपाल ( दिक्पाल ) के नाम आये हैं—इन्द्र, यम वरुण और कुबेर जो क्रमशः पूरव दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के अधीश्वर माने जाते थे ।<sup>१</sup> किन्तु महाभारत में अग्नि को पूरव का यम को दक्षिण का वरुण को पश्चिम और भागवत नाम के उत्तर का अधीश्वर देव बताया गया है ।<sup>२</sup>

अजन्ता के चित्रा में ब्रह्मा विष्णु और शिव के साथ ऊपर की तरफ दिक्पालों को अपने अपने वाहनों के साथ दिखाया गया है, यथा—वरुण मकर के ऊपर हस्त्र हाथी पर, अग्नि दुम्बा (एक प्रकार की मछली) पर, यम भसे पर, वायु बारहसिंगा (एक प्रकार का हिरन) के ऊपर<sup>३</sup> । सम्राट्ज्च कहाँ में यद्यपि दिक्पालों के नाम और उनमें सबिधित दिशाओं का उल्लेख नहीं है फिर भी अथ प्रमाणों से गत होता है कि उन्हें अपनी अपनी दिशाओं का संरक्षक देव समझा जाता था ।

## किन्नर

सम्राट्ज्च कहाँ में किन्नरों का उल्लेख कई बार किया गया है ।<sup>४</sup> इनके क्रियाकलाप सब-साधारण लोगों से कुछ भिन्न होते थे । गंधर्वों की भाँति ये भी संगीत के प्रेमी होते थे ।<sup>५</sup> प्राकृत ग्रन्थ अगविज्जा में भी किन्नर किन्नरी को देवताओं की श्रेणी में गिनाया गया है ।<sup>६</sup> प्राचीन भारतीय लोक धर्म के अतः गत किन्नरों के अस्तित्व में विश्वास किया जाता था ।<sup>७</sup>

किन्नर का अथ बुरा या विकृत पुरुष कहा गया है । पुराणों में इसका विवरण घाब के और दोष शरीर मनुष्य का बताया गया है ।<sup>८</sup> मानसार में भी किन्नरी को अशुभ मुखवाली यक्षिणी के समान वर्णित किया गया है ।<sup>९</sup> इससे स्पष्ट होता है कि किन्नर का स्वरूप मनुष्या से भिन्न कुछ विकृत ढंग का होता

१ जे० यन० वनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइडनाग्राफी, पृ० ५२० ।

२ महाभारत ८, ४५, ३१ ।

३ जे० यन० वनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइडनाग्राफी, पृ० ४८५ ।

४ मम० क० ६ पृ० ५४७ ७ पृ० ६८५, ९ पृ० ८८२ ९६०, ९६२ ।

५ वहा ५, पृ० ४५१ ।

६ अगविज्जा-देवता विजय अध्याय ५१, पृ० २०४-६ ।

७ वासुदेवशरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ० ११९ ।

८ दक्वि—वामन सिवराम आप्टे—मसूत हिंदी कोश, पृ० २७५ ।

९ मानसार अध्याय ७ ।



था जिसके कारण इन्हें विकृत पुरुष मया है।<sup>१</sup> कालिंगस ने भी किन्नरा का उल्लेख अपन ग्रंथा में किया है।<sup>२</sup> वाणभट्ट ने कादम्बरी में किन्नर मिथुन का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> किन्नरा का स्वरूप हमें ज्वलन् (मध्य भारत में स्थित झाँसी जिले के ललितपुर तहसील में) से प्राप्त मूर्ति में दखन का मिलता है। किन्नर मिथुन एक लघु पेड़ के नीचे खण्ड के अन्दर बने सुन्दर वस्त्र में एक दूसरा के आभूषण गामन सह दियाई देते हैं। उनका ऊपर का भाग मनुष्य का है जो पल्ल से जुड़ा है। घुटन के नीचे वाला भाग भी मनुष्य जसा है, किन्तु पाँव पक्षी का है तथा गरुड की भाँति आरुचयजनक भाँति है।<sup>४</sup>

मानसार अध्याय ५८ में गंधर्व और किन्नर को एक साथ समान रूप से वर्णित किया गया है।<sup>५</sup> उसी ग्रंथ के अध्याय आठ में किन्नरी की समरूपता अश्वमुखी यक्षिणी से का गयी है। अतः स्पष्ट होता है कि गंधर्व, किन्नर और यक्ष के स्वरूप में कुछ समरूपता थी। ये देवता विकृत स्वरूप के होते थे और कहीं गण्डमुखी (किन्नर और गंधर्व) तो कहीं अश्वमुखी (किन्नरा तथा यक्षिणी) चित्रित किये गये हैं।

किन्नर रूप से तो विकृत होते हैं। ये स्वभाव से भी बुरे होते थे। बौद्ध ग्रंथा में आया है कि किन्नर अपनी दबी गति के द्वारा पशु और विरक्त बनकर मनुष्य की आकृति धारण कर राजमहला के पास रहकर करते थे और महल की सुदूर रानिया के साथ बुरा व्यवहार करते थे।<sup>६</sup>

सम्भवतः समय के परिवर्तन के साथ किन्नर जो कि आज कल अपने कागज में किन्नोर कहते हैं आर्यों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप पहाड़िया पर ऊँचाई की तरफ बचने के लिए मजबूर हुए होंगे और धीरे धीरे आधुनिक किन्नोर बाने क्षत्र में अपना अधिकार जमा लिए होंगे। आज भी वहाँ नब्बे प्रतिशत हिन्दू रहते हैं जो अधिकतर अब नागरी लिपि तथा विभिन्न रूपों में किन्नोरी भाषा का प्रयोग करते हैं।

१ आप्ट—मस्कून हिन्दी काश, पृ० २७५ 'किम (कु + डिमु वा०) बुराई ह्रास दाप कक और निदा के भाव को प्रकट करने के लिए यह शब्द क आदि में कु के स्थान पर प्रयुक्त होता है यथा—किसश्वा, किन्नर—बुरा या विकृत पुरुष आदि।

२ रघु० ४।७८ कुमारसम्भव १।१४।

३ कादम्बरी—अनुच्छेद १२४।

४ जे० यन्० बनर्जी—डबलपेट ट आफ हिंदू आइडनोग्राफी पृ० ३५३।

५ मानसार अध्याय ५८ दक्षिण—गंधर्व सूची।

६ आर० यन्० महता—प्री बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० ११९।

यम्

समराज्य कहा में अय देवनाओं की भाँति यम् देव का भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।<sup>१</sup> समराज्य कहा में सत्तान प्राप्ति की कामना से यक्ष-रक्ष को पजा का उत्पन्न ह।<sup>२</sup> यम् देव का इतिहास अति प्राचीन जान पड़ता है। माताच द क अनुसार कुछ विद्वाना क विचार म यह कल्पना की जाती है कि यम् और नाग उत्तर भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व दम्पुआ द्वारा उबरता और वर्षा के देव के रूप में पूजे जाते थे।<sup>३</sup> कुमार स्वामी ने अपना मत प्रतिपादित करत हुए बताया है कि यम् अपन मरत्यक देव की महत्ता को लेकर राक्षसा प्रवृत्ति के देवों में गिन जान लग आ कि धार्मिक ग्रन्थों की रीट्याँ से प्रभावित जान पड़ते हैं।<sup>४</sup>

कुमार स्वामी न वेदा और उपनिषद् ग्रन्थों का उद्धरण दन हुए यम् के विषय में भी विचार घाराँ प्रतिपादित की है—प्रथम भय और अवशाम आ कि प्राकृतिक था क्योंकि आय लग अनाथों के दवताआ में विश्राम नहीं करते थे। दूसरा विचार यक्षों के विषय में उनक प्रति उच्च सम्मान था जिसका उत्पन्न अवयवों और उपनिषद् में पाया जाता है। उही क अनुसार वनस्पति और जल की धार्मिक काल में जीवन का प्रतीक माना गया है जिसका सम्बन्ध यम् देव म रहा क्योंकि यम् मवप्रथम वनस्पतियों क देव समझ जात थे आ जीवन रस और जल का प्रतीक है।<sup>५</sup>

यम् का उत्प्लेख वेद उपनिषद् ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में अनेक स्थाना पर किया गया है। अवयव में वरुण अथवा प्रजापति का पानी पर विश्राम करते हुए यम् क रूप में चित्रित किया गया है।<sup>६</sup> इसी ग्रन्थ में एक अय स्थान पर एक ब्रह्म नामक यक्ष का शरीर में प्रवेश करने वाला बताया गया है।<sup>७</sup> इस

१ सम० क० ३ प० १७४ ५ प० ४०२ ६ प० ५१० ५४७।

२ वही ४ प० २८८ २३५—अज्ञयावच्छिन्ता समप्यज्जर्ह। तत्रो तत्रय मन्त्रिहिपस्म घणधामिहाण अवस्मम् महापूय काकण कय उवाडयमणेहि।

३ मानीच—सम ऐम्पेक्टस आफ यम् कस्ट इन ऐम्पेक्ट इण्डिया प० २४५—फाम—पूर्व फलिसिटेगन वालूम।

४ कुमार स्वामी—यम्प्राज १ प० ४।

५ म्पिण—मानीच—सम ऐम्पेक्टस आफ यम् कस्ट इन ऐम्पेक्ट इण्डिया फाम—पूर्व फलिसिटेगन वालूम।

६ अवयवद १०।७।३८।

७ वही १०।२।२८-३३।

वात का समयन हमें महाभारत में भी प्राप्त होता है।<sup>१</sup> वासुदेवशरण अप्रवाल के अनुसार वीर ब्रह्म के रूप में यक्ष की पूजा आधुनिक काल में भी बंगाल से गुजरात तक और हिमालय से कन्या कुमारी तक प्रचलित है।<sup>२</sup>

आर० यन० मेहता ने जातक कथाओं के आधार पर यह विचार प्रतिपादित किया है कि इन कथाओं में यक्षों की दयालुता का भाव समाप्त हो दिखाई देने लगा और वे भयानक रूप में चित्रित किये गये। वे मनुष्य एवं जानवरों की मार पर तथा प्रेत की तरह रेगिस्तान जंगल वन एवं जलों में रहते हुए दिखाए गये हैं।<sup>३</sup> एक जाग्रत आवश्यक चूर्णी में उल्लिखित है कि आइम्बर नामक एक यक्ष का आयतन हाथ में भर हुए हड्डियों के आयतन पर बनाया जाता था।<sup>४</sup> निशीथ चूर्णी के उल्लेख से पता चलता है कि यक्ष प्रसन्न होने पर लाभ तथा अप्रसन्न होने पर हानि भी पहुँचाते थे।<sup>५</sup> जन सूत्रा में इन्द्रग्रह धनुग्रह स्वर्दग्रह और भूतग्रह के साथ साथ यक्षग्रह का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>६</sup>

मोतीचन्द के अनुसार बौद्ध जन और ब्राह्मण साहित्य में यक्ष को प्रथम तो दयालु (सच्चरित) और दुष्ट दोनों रूपों में चित्रित किया गया है। दूसरे उनको पूजे जाने का निश्चित स्थान भी बताया गया है जहाँ पूजा द्वारा लोग उन्हें प्रसन्न किया करते थे। तीसरे वे लोगों पर छा जाते थे और उनके प्रश्नों का उत्तर देते थे।<sup>७</sup> समराइच्च कहा में धन-देव यक्ष का नाम आया है जिसका एक आयतन था जहाँ लोग सत्तान धन-वैभव आदि प्राप्त करने के लिए पूजा करते थे। इसी ग्रंथ के धनुष भव में धन और धनश्री की कथा बही गयी है। धन का जन्म धनदेव यक्ष की मनीषी पर ही हुआ था जिसने कारण उसके माता पिता ने अपने पुत्र का धन (धनन्व यक्ष के नाम पर) ही रखा था। मोतीचन्द ने भी विस्तृत विवरण के साथ समराइच्च कहा के समर्थन में बताया है कि यक्ष भविष्य द्रष्टा के रूप में माने जाते थे तथा अपने भक्तों को सत्तान

१ महाभारत—शांति पर्व १७१।५२।

२ वासुदेवशरण अप्रवाल—प्राचीन भारतीय लोक धर्म, पृ० ११८।

३ आर० यन० मेहता—प्रा बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ३२४।

४ आवश्यक चूर्णी २ पृ० २२७।

५ निशीथ चूर्णी २ पृ० ३०८ ३ पृ० ४१६।

६ जम्बूद्वीप प्रगति सूत्र २४, पृ० १२०।

७ मोतीचन्द—सम ऐस्पेक्टस आफ यक्ष कल्ट इन ऐसियट इंडिया, पृ० २४९ फाम 'धर्म फेलिसिटेशन बालूम'।

धन-वभय एवं यग प्रदान करते थे। वे उन लोगो का हानि पहुँचाते थे जा उनके वृक्ष को नुकसान पहुँचाते थे जिसमें उनका वास होता किन्तु वे पुण्य, मालार्जा तथा बलि द्वारा पूजे जाने पर प्रसन्न भी होते थे।<sup>१</sup>

## विद्याधर

समराइच्च कहा में विद्याधरों का उल्लेख कई बार किया गया है। सत्कालीन समाज में विद्याधर लोग श्रमणत्व की सिद्धि<sup>३</sup> के साथ साथ यन-हवन आदि व द्वारा मन्त्र सिद्धि किया करते थे। सिद्धि से प्राप्त अलौकिक शक्ति के द्वारा व सबसाधारण को प्रभावित किया करते थे।<sup>४</sup> इन्हीं सिद्धियों के कारण व देवताओं की श्रेणी में गिना जाता था। किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के अवसर पर ये मुक्तहस्त में पुष्प-वर्षा भी करते थे।<sup>५</sup> समराइच्च कहा में विद्याधरों के अपने नगर का उल्लेख है। उनके स्वामी को विद्याधरों का राजा कहा गया है।<sup>६</sup> एक अन्य जन ग्रन्थ अगविज्जा में भी विद्याधर को देवताओं की श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>७</sup> रघुवश में राजा निलीप व त्याग और भक्ति के ऊपर प्रमत्त होकर विद्याधरा द्वारा उनका ऊपर पुण्य वृष्टि किये जाने का उल्लेख है।<sup>८</sup>

कथामरित्सामर में विद्याधरों का उल्लेख कई बार किया गया है। समरा इच्च कहा की ही भाँति इस ग्रन्थ में भी विद्याधरा के राजा<sup>९</sup> तथा उनकी सन्य शक्ति<sup>१०</sup> का उल्लेख है जिसके बल पर वे नगर में शासन करते थे। कथा

१ मोतीचन्द—सम ऐस्पक्ट आफ यस्त इन ऐसियट इडिया पृ० १४७—‘घूर्में फेलिसिटेशन बालूम स।

२ सम० क० १, पृ० ५६, २ पृ० १०७ १०९ पृ० ३६७ ४१२, ४१९ ४३८ ४३९, ४४१, ४२-४३ ४४८, ४५३-५४-५५-५६-४६३ ६ पृ० ५००, ५०४, ५४५, ५५८ ५६३ ७ पृ० ६११, ६४८, ६६६, ६८१, ६८२, ८ पृ० ७३६-३७-७४९ ७८०, ९, पृ० ९३९।

३ वही १ पृ० ५६।

४ वही ५ प० ४६८-६९, ८, पृ० ७७५।

५ वही ७ पृ० ६०७।

६ वही ५ पृ० ३६७ ४५६, ६, पृ० ५५८, ७ पृ० ६४८।

७ अगविज्जा-देवता विजय—अध्याय ५१ प० २०४-६, तथा देखिए—अध्याय ५८।

८ रघुवश २।६०—तस्मि क्षणे पालयितु प्रजानामुत्पश्यत सिंहनिपातमुग्रम।  
अवाह्ममुखस्यापरि पुण्यवृष्टि पपात विद्याधर हस्तमुक्ता ॥

९ यन० यम० पिञ्जर—नोटस आन टानीज आसन आफ स्टोरी, ५, पृ० १।

१० वही ४, प० १०।

सरित्सागर की व्याख्या करते हुए पिंजर का विचार है कि प्राचीन भारत में कुछ लोग जादुई शक्ति प्राप्त करने के लिए सगस्त जीवन बिताते थे जिस शक्ति को प्राप्त कर लेने पर उसका प्रयोग अच्छे अथवा बुरे उद्देश्यों के लिए करते थे।<sup>१</sup> उन्हीं के विचारों में ऐसी शक्ति अथवा विद्या (जिस विज्ञान अथवा कला भी कहा जा सकता है) का प्राप्त कर लेनेवाले लोग विद्याधर कहे जाने लगे।<sup>२</sup> इस बात का समर्थन हमें समराइच्च कहा से भी होता है जहाँ हम यह पाते हैं कि विद्या का सिद्धि (हवन, पूजन आदि के द्वारा) प्राप्त कर लेने पर साधारण मानव भी सम्पूर्ण कलाओं को जीत लेता था। विद्याधर का साधारण अर्थ भी विद्या को धारण करने वाला है। अतः स्पष्ट होता है कि ये लोग पहले मानव थे, किन्तु हवन तन्त्र मन्त्र आदि के सहारे विशिष्ट विद्या (कला अथवा विज्ञान) का प्राप्त कर लेने पर विद्याधर कहलाये जाने लगे।

## गन्धर्व

विद्याधरों की भाँति गन्धर्व भी प्राचीन भारतीय देवताओं की श्रेणी में गिने जाते थे। समराइच्च कहा में गन्धर्वों को सामान्य लोगों से कुछ भिन्न बताया गया है।<sup>३</sup> ये लोग भी तन्त्र मन्त्र की सिद्धि करते तथा संगीत एवं वाद्य में रुचि करते थे। गन्धर्व सुंदरिया द्वारा मधुर संगीत के आयोजन का उल्लेख है।<sup>४</sup> सम्भवतः ये गन्धर्व देश के निवासी<sup>५</sup> थे जो प्रारम्भ में मानव थे किन्तु कालान्तर में अथ दक्षिक लोगों के रूप में कल्पित किये जाने लगे। अगविज्जा नामक जन ग्रन्थ में भी देवताओं की सूची में गन्धर्व का उल्लेख है।<sup>६</sup>

अथर्ववेद के पापभाजन सूक्त में भी गन्धर्व को देवताओं की श्रेणी में गिनाया गया है।<sup>७</sup> वासुदेवधारण अग्रवाल के अनुसार भूत, पिशाच, किन्नर राक्षस गन्धर्व यातुघान किष्पुरुष नाग यक्ष दानव आदि प्राचीन लौकिक देवता की श्रेणी में गिने जाते थे।<sup>८</sup> भगवद्गीता में विष्णु रवि मरीचि चन्द्र

१ मोदस आन टानीज आसन आफ स्टारी ४ पृ० ४६।

२ वही ४ पृ० ४६।

३ मम० क० ४ पृ० २४८ ३३६ ६, पृ० ५४५ ५४८।

४ वही ६ पृ० ५४५।

५ वही ५, पृ० ४५८ ५०।

६ अगविज्जा—वना विजय अध्याय ५१ पृ० २०४६।

७ अथर्व—पापभाजन सूक्त ११।६।१ २३।

८ वासुदेवधारण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ० ११९।

इंद्र, रुद्र, अग्नि आदि के साथ साथ गंधर्व की देवता की श्रणी में गिनाया गया है तथा इन सब का भगवान् की विभूति या नाना रूप कहा गया है ।<sup>१</sup>

महाभारत में एक स्थान पर गन्धर्व द्वारा उत्सव में सम्मिलित होने का उल्लेख है ।<sup>२</sup> रामायण और महाभारत में चित्ररथ का गंधर्वों का राजा बताया गया है ।<sup>३</sup> यागवल्क्य स्मृति में गंधर्व के सुंदर स्वर का उल्लेख है ।<sup>४</sup> कुछ विद्वानों के अनुसार गंधर्व और किन्नर अथ दक्षिण चरित्र वाले काल्पनिक रूप हैं जिनका प्राधान भारतीय धार्मिक साहित्य और कला में कम महत्व है ।<sup>५</sup>

यद्यपि सम्राट्त्व कहा में गंधर्वों के स्वरूप का उल्लेख नहीं है फिर भी अन्य स्थान पर इनके स्वरूप का पता चलता है । मानमार में उल्लिखित है कि गंधर्व और किन्नर दोनों के पर जानवर जैसे थे ऊपर का भाग मानव जसा किन्तु मुख गहड़ जसा था । उनकी भुजाएँ पक्ष में जुड़ी हुई थी, वे कमल का ताज धारण किये थे और मधुर संगीत तथा वाद्य से सम्युक्त होते थे ।<sup>६</sup>

गंधर्व स्वरूप से सुन्दर थे वे ताज धारण करते कानों में आभूषण पहनते, सम्राट्त्व में भाग लेते और वाणा बजाते थे ।<sup>७</sup> मध्य भारत (भरतुत साँची) के प्राचीन बौद्ध स्मारकों में गंधर्व का नोचे का भाग चिह्नित जसा दिखाया गया है । उनका हाथ पक्ष में जुड़े हुए है किन्तु सिर तथा धड़ मानव जसा है । वे मिर पर ताज तथा काना में कुण्डल धारण किये हुए दिखाए गये हैं ।<sup>८</sup> अजन्ता के चित्रों में गंधर्वों के आड़े का समानरूप में, किन्तु हाथों में वाणा बजाते हुए चित्रित किया गया है ।<sup>९</sup>

सम्राट्त्व कहा तथा अन्य साँची के आधार पर कहा जा सकता है कि गंधर्व अध-लौकिक देवता थे जो सगात वाद्य मत्स्य के गौकीन होते थे । वे लोग महत्वपूर्ण समारोहों में भाग लते और अपने मधुर संगीत से श्रागा का प्रभावित करते रहते थे ।

१ भगवद्गीता—अध्याय १०, श्लोक २६ ।

२ महाभारत—आदि पर्व २१२ पृ० ६७ ।

३ जे० यन० बनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ० ३५१, देखिए—विष्णु धर्मोत्तर सूत्र ३ २२१, ७ ।

४ याग० १।७१—‘साम शीव दत्तावासा गंधर्वश्च गुमा गिरम् ।’

५ जे० यन० बनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ० ३५१ ।

६ मानमार अध्याय ५८ पृ० ५७० ।

७ हेमान्वित खण्ड, पृ० १३९ ।

८ जे० यन० बनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ० ३५२ ।

९ वही पृ० ३५२ ।

## वानमन्तर

हरिभद्र ने समराइच्च कहा में इस प्रत्यक्ष देव को कभी वानमन्तर<sup>१</sup> और कभी व्यन्तर सुर<sup>२</sup> कह कर सम्बोधित किया है। सम्भवतः ये दोनों नाम एक ही देवता का सम्बोधित करते हैं। तत्र मन्त्र की सिद्धि द्वारा इन्हें भी कुछ अलौकिक शक्ति प्राप्त थी जिसका वे कभी कभी दुरुपयोग भी करते थे।<sup>३</sup> भगवान् जिनके सत्कार में इन देवताओं को विशिष्टता प्राप्त थी।<sup>४</sup> निशीथ चूर्णी में भी वानमन्तर देव<sup>५</sup> का उल्लेख किया गया है जिन्हें यन् गुहाक आदि की श्रेणी में गिना जाता था। अनेक अवसरों पर वानमन्तर देव को प्रसन्न करनेके लिए सुबह दोपहर और संध्या के समय पटह बजाया जाता था।<sup>६</sup> बृहत्कल्प भाष्य में वानमन्तर देव की पूजा का उल्लेख किया गया है।<sup>७</sup>

नया मकान बनकर तयार होने पर वानमन्तर की पूजा की जाती थी।<sup>८</sup> वानमन्तरिया में सालेज्जा मगवान् महावीर की भक्त थी।<sup>९</sup>

समराइच्च कहा तथा अन्य ग्रन्थों में वानमन्तर देव का स्वरूप का पता नहीं चलता है किन्तु स्वभावतः ये लोग कुछ दुष्ट प्रकृति के होते थे। कभी कभी अपनी अलौकिक शक्ति का दुरुपयोग भी करते थे जिसके कारण लोग इनकी पूजा किया करते थे।

## क्षेत्र देवता

समराइच्च कहा में इन्हें स्थान विशेष का प्रभावशाली देव बताया गया है जो अपने क्षेत्र के अंतर्गत किसी अनतिक काय को नहीं होने देते थे।<sup>१०</sup> उत्तराध्ययन सूत्र और अभिधान चिन्तामणि आदि में चार देवताओं (उद्यातिप विमानवासी भवनपति और यन्तर देव) के साथ जिन देवताओं का उल्लेख

१ सम० क० ६ प० ५०२, ८ प० ७३७।

२ वही १, पृ० १०, ५६ ३, पृ० १७२, ८ प० ७८७।

३ वही ८, पृ० ७३७।

४ वही ८ पृ० ७८७।

५ निशीथ चूर्णी १ पृ० ८९, ४० प० १३।

६ दशकालिक चूर्णी पृ० ४८।

७ बृहत्कल्पभाष्य ४।४९६३।

८ वही ३।४७६९।

९ आवश्यक चूर्णी पृ० २९४।

१० सम० क० ७ प० ६२१ ६८८ ७२८ ८ पृ० ७३७।

आया ह—उनमें विद्यादेवी (सरस्वती) श्री (लक्ष्मी), गणेश तथा क्षेत्रपाल देव का भी उल्लेख किया गया ह ।<sup>१</sup>

क्षेत्रदेव की मान्यता एवं प्रभाव अपन क्षेत्र (कुछ सीमा के अन्दर) के अ तगत ही था । सम्भवत ये स्थानीय देव के रूप में जाने जाते थे जिनकी तुलना क्षेत्र पाल (क्षेत्र की रक्षा करने वाला देव)<sup>२</sup> से की जा सकती ह ।

भवनवासी देव

हरिभद्र के काल में भवनवासी<sup>३</sup> देव के अस्तित्व में विश्वास किया जाता था । सम्भवत यह गृह देव के रूप में जाने जाते थे तथा गृह की सुख सम्पृद्धि के लिए इन्हें पूजा जाता था । भगवान् जिन के स्वागत समारोह में भी अन्य देवताओं के साथ साथ भवनवासी देव की भूमिका थी ।<sup>४</sup> उत्तराख्ययन सूत्र तथा अभिषेक चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में भवनवासी देव को भवनपति बताया गया ह ।<sup>५</sup>

ज्योतिष्क देव

भवनवासी देव की भाँति ज्योतिष्क<sup>६</sup> देव को भी अधिमायता थी । भगवान् जिन के स्वागत समारोह में अन्य देवताओं के साथ ज्योतिष्क देव का भी स्थान महत्वपूर्ण समझा जाता था । अन्य जन ग्रन्थों में इन्हें ज्योतिषि देव कहा गया<sup>७</sup> ह किन्तु उनके स्वरूप का पता नहीं चलता ह ।

वन-देवता

हरिभद्र ने अन्य देवी-देवताओं के साथ वन-देवता<sup>८</sup> की लौकिक शक्ति की तरफ संकेत किया है । जंगल के अधिपति देव को वन देवता के रूप में स्वीकार किया जाता था । वन-देवता को जंगल में रहने वाले जीव जन्तुओं का कल्याणकारी समझ कर उनकी व दत्ता किमे जाने का उल्लेख है ।<sup>९</sup> बहुलकल्प भाष्य

१ जे० यन० बनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ० ५६१ ।

२ दक्षिण—आप्टे—संस्कृत हिन्दी का० ।

३ सम० क० ८, पृ० ७८७ ।

४ वही ८ पृ० ७८७ ।

५ जे० यन० बनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी पृ० ५६१ ।

६ सम० क० ८, पृ० ७८७ ।

७ जे० यन० बनर्जी—डेवेलपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ० ५६१ ।

८ सम० क० ५, पृ० ४२०, ७, पृ० ६६२-६६३ ।

९ वही ७ पृ० ६६२ ।



में भी वन देवता का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>१</sup> रामायण व उल्लेख से भी पता चलता है कि जब हनुमान जी सीता की खोज में लका पहुँचे तो सीता का देखकर पहले यह समझे कि यह नन्दन वन की देवता है।<sup>२</sup> डा० मेहता ने जातक ब्याख्या के आधार पर यहाँ तक सिद्ध किया है कि प्राचीन काल के लोगों में यह भावना प्रचलित थी वक्षों में भी देवी-आत्मा का वास होता है। परिणामतः सन्तान, धन-वैभव एवं सम्पन्नता के लिए वक्षों को देवता की भाँति पूजा जाने लगा।<sup>३</sup> उनकी पूजा के लिए लाग पुष्प, मालाएँ और यहाँ तक कि जीव-बलि भी देते थे।<sup>४</sup> काणे ने भी घमशास्त्रों के आधार पर वक्ष का दही माहात्म्य बताते हुए वक्षारोपण को पवित्र कृत्य बताया है।<sup>५</sup> वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'वृक्ष मह' के सन्दर्भ में बताया है कि प्राचीन काल में वक्ष-पूजा के पीछे आदिम मानव व मन की सहज प्रवृत्ति रही होगी जिसके कारण उसका वृक्षों की तरफ खिंचाव हुआ और उसने उन्हें देव भाव से पूज्य माना।<sup>६</sup> इस प्रकार वक्ष-पूजा की मायता से यह स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन काल के लोग वक्षों के समूह उद्यान एवं वन में भी देवी शक्ति मानने लगे। परिणामतः वन-देवता की भी अधिमायता प्रारम्भ हुई। अतः गृह-देवता, कुल-देवता, नगर-देवता और क्षेत्र-देवता की भाँति वन-देवता को भी अपने क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित देव माना जाने लगा तथा उसकी शक्ति में विश्वास कर अरण्या में आपत्ति के समय सुरक्षा के लिए उनका आह्वान किया जाने लगा।

### कुल-देवता

समराइच्च कहाँ कुल देवता का भी उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है।<sup>७</sup> हर परिवार के लोग अपने तथा परिवार के कल्याण के लिए कुल क्रमागत देव का हवन पूजन करते थे। पूजा के साथ-साथ अपने ममानुसूल कार्यों की सिद्धि के लिए उन्हें जीव बलि भी दी जाती थी।<sup>८</sup> किन्तु बृहत्कल्पभाष्य में आया है जब कभी गलगट अथवा महामारी से लोग मरने लगते, शत्रु के सैनिक

१ बृहत् कल्पभाष्य १।३।१८।

२ रामायण—मुन्दरकाण्ड ३०।२—ज्वेनमाणस्ता देवी देवतामिव नन्दने।

३ आर० मन० मेहता—श्री बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ३२६।

४ वही पृ० ३२६।

५ पी० वी० काणे—घमशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४७३-७५।

६ वासुदेवशरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृ० ७६।

७ मम० क० ४, पृ० २९८ ३०३, ६, पृ० ५१५।

८ वही ६ पृ० ५१५।

नगर के चारों तरफ घेरा डाल दते, भुखमरा फल जाती ता पुरवासी आचार्य ( पूजा-पाठ करन वाले ) के पास जाते और रक्षा के लिए प्रार्थना करते थे । आचार्य अश्वि आदि की शांति के लिए एक पुतला बनाते तत्पश्चात् मंत्र-पाठ द्वारा उसका छेदन कर कुल देव को प्रसन्न करते थे । इस प्रकार कुल देवता की शांति पर उपद्रव भा गत हो जाता था ।<sup>१</sup> किन्तु यहाँ के कुल देव को समरा इज्ज कहा में उल्लिखित कुल देवता से भिन्न बताया गया है । अगविज्जा में भी देवताओं की सूची में कुल देवता का उल्लेख है<sup>२</sup> किन्तु उनके स्वरूप आदि पर प्रकाश नहीं डाला गया है ।

काणे के अनुसार प्राचीन काल में इंद्र, यम वरुण ब्रह्मा आदि के साथ घरलू देवता ( कुल देवता ) का प्रसन्न रखने के लिए बलि ( पशुबलि का अंश आदि ) दी जाती थी ।<sup>३</sup> कुमार सम्भव में भी कुल देवता का उल्लेख है, यहाँ पावता जी द्वारा उन्हें प्रणाम किये जाने की बात कही गयी है ।<sup>४</sup>

### साधु-संन्यासी (धर्मधम)

भारतीय समाज के रंग मंच पर विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा जन मानस में अपने-अपने धर्म के प्रचार, प्रसार एवं प्रभाव का स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया गया । परिणामतः भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रही । बौद्ध धर्म का तो कहीं जन और बौद्ध धर्म का और बौद्ध मुसलमान धर्म का तो बौद्ध ईसाई धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता रहा है । ऐतिहासिक परिवर्तनों के साथ ही समय समय पर धार्मिक परिवर्तन का रूप यत्र तत्र परिलभित होता रहा है ।

धार्मिक परिवर्तन एवं परिवर्धन के परिवेश में हरिभद्र कालीन समाज में हम मुख्यतया बौद्ध धर्म बौद्ध धर्म तथा जन धर्म का स्पष्ट विश्लेषण करते हैं । तत्कालीन समाज के विभिन्न धार्मिक धाराओं के बीच भारतीय संस्कृति मुख्यतया जैन बौद्ध एवं बौद्ध धर्म से प्रभावित थी जिनके क्रिया कलाप समराइज्ज कहा में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं ।

प्राचीन काल में ही जन धर्म के प्रवर्तकों तथा तीर्थंकरों द्वारा समाज में अपने धर्म के प्रचार प्रसार एवं परिवर्धन का प्रयास किया जाता रहा है । समय

१ बहनकल्पमाध्य ४ ५११२ १३ तथा ५११६ ।

२ अगविज्जा अध्याय ५८ ।

३ पी० वी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १ पृ० ४०६ ।

४ कुमारसम्भव ७।२७—तामचित्ताम्य कुलदेवताम्य कुलप्रतिष्ठा प्रणम्य माता ।

समय पर इस धर्म में कुछ सुधार भी किये गये तथा जन समूह के कल्याणाय नियम, समय तथा व्रत आदि के विधानों का प्रतिपादन कर इस धर्म का प्रचार किया गया। परिणामतः भारतीय संस्कृति व परिवर्तन में इस धर्म का योगदान आज भी परिलक्षित होता है। इस धर्म का मुख्य लक्ष्य शुभ आचरण परिणाम से सम्पूर्ण कमल से मुक्ति पाना और तत्पश्चात् केवल ज्ञान के प्रभाव से सिद्धि सुख अथवा मोक्ष की प्राप्ति करना बताया गया है।<sup>१</sup> जिस सिद्धि अथवा परम-पद का प्राप्त होकर जीव को इस संसार में जन्म जरा मरण आदि दुखों से मुक्ति मिल जाती है।<sup>२</sup> जन धर्म के अनुसार सम्यक् दशन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चरित्र ये तीनों मिल कर उम मोक्ष भाग का निर्माण करते हैं।<sup>३</sup> जिस पर चलने से जीव और पुद्गल अततागत्वा अलग-अलग हो जाते हैं। पुद्गल से भवया मुक्त जीव ही शुद्ध आत्मा है सिद्ध है एवं परमात्मा है।<sup>४</sup> अतः हरिभक्त काल में भी श्रमणत्व का पालन परम पद का साधक तथा सुख का सार माना जाता था।<sup>५</sup>

### श्रमणत्व-कारण

समराइच्च कहा में जन परंपरा के अनुसार सांसारिक बलश (जन्म-जरा मरण रोग शोक-संयोग और वियोग) के कारण ही सम्पूर्ण दुखों के मांचक श्रमणत्व को ग्रहण करने का उल्लेख है।<sup>६</sup> अर्थात् सांसारिक दुखों से छुटकारा पाकर परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति का मुख्य साधन श्रमणाचरण ही माना जाता था। नारक तियक मनुष्य और देवान् के द्वारा कुछ न कुछ पाप होता है और पाप से ही सभी दुख गृहीत होते हैं तथा जब यक्ति यह सोचता है कि किन कारणों से मेरी उत्पत्ति हुई है और मुझ कहीं जाना है तो वही विचार (तब वितक) श्रमणत्व का कारण बन जाता है।<sup>७</sup> अतः दुखों का कारण और

१ सम० क० ४ प० ३३४ ६ प० ४९८ ७ प० ७२० ७२३, ८ प० ८३१, ९ प० ९५३।

२ सम० क० ४, प० ३२८ ३४० ७ प० ६२७ ८, प० ७८०, ९, ८७१ प० ९१७।

३ तत्त्वाथ सूत्र १।१ (सम्यक्दशन ज्ञान चरित्राणि मोक्ष भाग)।

४ मोहनलाल मेहता—जन दशन प० ३१।

५ सम० क० ५ प० ४७९ ९ प० ९१७ ९४८।

६ वही ४ प० ३३७, ७ प० ७१०, ९ प० ९२६।

७ वही १ प० ४७, २, प० १०२।

दुख से छुटकारा पाने का उपाय ही श्रमणत्व आचरण का कारण बताया गया है ।

### प्रव्रज्या

समराइच्चकहा में जन संप्रदाय की मान्यता के अनुसार कमठह को काट कर सभी प्रकार के वस्त्रों से छुटकारा पाने के लिए प्रव्रज्यारूपी महाकुठार परलाक में महायज्ञ बताया गया है ।<sup>१</sup> शुभ परिणाम योग से प्रव्रज्या ग्रहण करना तथा चरित्र पालन करते हुए आगम विधि से वेद-त्याग कर सुरलोक की प्राप्ति में विश्वास किया जाता था ।<sup>२</sup> सबसाधारण से लेकर मध्यम श्रेणी के लोग तिथिकरण मुक्त एवं शुभ शुक्ल की वेला में प्रवचन के बाद पत्नी आदि के सहित प्रव्रज्या ग्रहण करते थे ।<sup>३</sup> किंतु राजा महाराजा एवं धनी सम्पन्न घरानों के लोग प्रव्रज्या ग्रहण करते समय प्रशस्त तिथि करण मूल में पूजा महादान अष्टाहिका महिमा आदि के द्वारा माता पिता भाई पत्नी तथा परिजनों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण करते थे ।<sup>४</sup> दीक्षा के पूर्व भगवान् महावीर के शरीर पर चरित्त आदि का विलेपन किया गया था जिमने उनपर चार माह से भी अधिक समय तक स्थान-स्थान पर नाना प्रकार के जीव-जंतुओं का आक्रमण होता रहा ।<sup>५</sup> प्रव्रज्या ग्रहण करने के पूर्व लग्न माता पिता अथवा परिवार के अन्य लोगों की राय ले लिया करते थे ।<sup>६</sup> उत्तम जाति तथा गुण वाले व्यक्तियों के लिए महा प्रव्रज्या भी ग्रहण करने का विधान था ।<sup>७</sup>

समराइच्च कहा की ही भांति उत्तराध्ययन में प्रव्रज्या ग्रहण करने का कारण जीवन की क्षणभंगुरता तथा दुख बताया गया है ।<sup>८</sup> कमफल सभी को

१ सम० क० १, प० ५६ २ प० १२७ ४, पृ० २४६ ३४३ ३५०, ६ प० ५७४ ५००, ५९३, ७ पृ० ६२३ ७२४-२५, ८, पृ० ८११-१२ ।

२ वही ३ प० २८१ ७ प० ७१२-१३ ।

३ वही ३ प० २२२, ५ ४८७, ६ पृ० ५७५, ७२६, ८ पृ० ८४५ ।

४ वही १, प० ६८-६९ ४, पृ० २९८ ३५३, ५, प० ४७५, ४८७-८८, ६, प० ५९३, ७, पृ० ६१८ ६२९, ६९४-९५ ८ प० ८३७ ९, पृ० ९३६-३७ ।

५ माहनलाल मेहता— 'जैनाचार', पृ० १५३ ।

६ सम० क० ५ प० ४८५ ।

७ वही ६, पृ० ५८८ ।

८ उत्तराध्ययन १४।७ ।

था ।<sup>१</sup> गृहस्थाश्रम में रहने हुए थावक के लिए अणु ( छोटे ) व्रतों के पालन का विधान था ।<sup>२</sup> जन परम्परा के अनुसार ये अणुव्रत पाँच प्रकार के माने गये हैं यथा—स्थूल प्राणातिपात विरमण, स्थूल मृषावाद विरमण स्थूल अदत्तादान विरमण स्वप्नार सतोष तथा इच्छा परिमाण ।<sup>३</sup> थावका के आचार का प्रतिपादन सूत्रकृताग<sup>४</sup> उपासक दशाग<sup>५</sup> आदि आगम ग्रन्थों में बारह व्रतों के आधार पर किया गया है । इन बारह व्रतों में क्रमशः पाँच अणुव्रत और शेष सात शिखा व्रत हैं । तीन गुण व्रतों और चार शिखाव्रतों का ही सामूहिक नाम शिखा व्रत है ।

### उत्तर गुणव्रत

समराइच्च कहा में उल्लिखित है कि थावक अतिचारों से दूर रहता हुआ निम्नलिखित उत्तर गुणों को स्वीकार करता है । उर्ध्वादिगुणव्रत, अधादिगुणव्रत, तिर्यक आदि गुणव्रत भागापभाग परिणाम लक्षण गुणव्रत उपभोग और परिभोग का कारण स्वर और कम का त्याग, बुरे ध्यान से आचरित विरति गुणव्रत प्रमाद से आचरित विरति गुणव्रत, पापकर्मोपदेय लक्षण विरतिगुणव्रत, अन्य दण्ड विरति गुणव्रत, सावद्ययोग का परिवर्जन और निवद्ययोग का प्रति-नेवन रूप सामयिक शिक्षाव्रत और दिकव्रत से ग्रहण किया हुआ दिशा के परिणाम का प्रति दिन प्रमाण करण, आत्मकाशिक शिक्षाव्रत आहार और शरीर के संस्कार से रहित ब्रह्मचर्यव्रत का संवन व्यापार रहित पीपथ शिक्षाव्रत का संवन तथा पापपूर्वक अर्जित एवं कल्पनीय अन्न-पान आदि द्रव्यों का दश-काल श्रद्धा संस्कार से युक्त तथा परमभक्ति से आत्म शुद्धि के लिए साधुओं को दान और अतिथि विभाग शिक्षाव्रत आदि सभी उत्तर गुणों के रूप में स्वीकार किये गये हैं ।<sup>६</sup>

१ सम० क० ७, प० ६१८ ।

२ वही ३ प० २२८ ५ पृ० ४७३, ४८०, ८, पृ० ८१२ १३, ९, प० ९५३ ।

३ कैलाशचन्द्र नास्त्री—जन धर्म, प० १८४—१९५ हीरालाल जन—भारतीय संस्कृति में जन धर्म का योगदान, प० २५५ से २६० मोहनलाल मेहता—जनाचार पृ० ८६—१०४ ।

४ सूत्रकृताग श्रुत २ अ० २३, सूक्त ३ (—सील वय गुणविरमण पञ्च वरवाणणसहोव वासहि अप्पाण भावे भाणा एव चरण विहरह ) ।

५ उपासक दशाग अध्याय १ सूक्त १२ सूक्त ५८ (—पचारगुणव्रतिय सत्तसिक्खावईय दुवालसविह मिहिधम्म ) ।

६ सम० क० १, पृ० ६२ ।

उपासक दशाग में थावका को पांच अणुव्रत और सात शिक्षा व्रता का नाम गिनाया गया ।<sup>१</sup> यहाँ तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों को ही सामूहिक रूप से शिक्षाव्रत कहा गया है ।

समराञ्च कहा में थावकाचार के अंतर्गत पाँच अणुव्रता के साथ-साथ तीन गुण व्रतों का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।<sup>२</sup> इन्हें गुणव्रत इसलिए कहा गया है कि इनसे अणुव्रत रूप मूल गुणों की रक्षा तथा विकास होता है । धार्मिक क्रियाओं में ही जिन यत्नीत करना पौषघोषवास व्रत कहलाता है । इसे गृहस्थ का यथाशक्ति प्रत्येक पक्ष की अष्टमी चतुदशी को करना चाहिए जिसमें उसे भूख-व्यास आदि पर विजय प्राप्त हो । चौथे अपने गृह पर आये हुए मुनि आदि को दान देना आतिथि सविभाग व्रत है ।

### आवक-अतिचार

समराञ्च कहा में गृहस्थ थावकों के लिए कुछ अतिचारा का गिनाया गया है जिनका पालन करना उनके लिए आवश्यक माना जाता था । सासारिक भ्रमण अथवा सासारिक दुखों के कारणभूत अतिचार इस प्रकार है—बन्ध बध, किसी अंग का काटना, जानवरों पर अधिक बाँझ लादना किसी को भोजन-पानी में बाधा डालना, सभा में किसी की निन्दा करना या किसी की गुप्त बात का प्रकट करना, अपनी पत्नी की बात दूसरों में कहना, अथवा किसी का गूँठा उपदेश देना जाली लल्ल लिङ्गा अथवा चारी स लायी हुई वस्तु खरीदना या चारा से किसी का घन चुरवा लेना, राज्य व कानूनों को भंग करना, नकली तराजू बाट रखना, "दूनाधिक तालना या इस प्रकार के अन्य व्यवहार, "अभिचारिणा स्त्री से सम्पक स्थापित करना या अविवाहिता स्त्री से संसर्ग करना, काम क्रीडा, दूसरे का विवाह करना काम की तीव्र अभिलाषा, क्षेत्र और वस्तु की सीमा का उल्लंघन, द्विपद या चतुष्पद व प्रमाण का उल्लंघन, मणि आदि के प्रमाणा का उल्लंघन या इस प्रकार के अन्य काय एवं पदार्थ जो ससार में भ्रमण के निमित्त हैं ।<sup>३</sup>

आवक के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत इन सभी के पांच-पाँच अतिचार हैं ।<sup>४</sup>

१ उपासक दशाग अध्याय १, सूक्त १२, सूक्त ५८ (—पञ्चाणुव्व्रतिय सत्त सिक्खावइय दुवालस्सविह गिहिघम्म—) ।

२ सम० क० १, प० ५७, देखिए—हीरालाल जन-भारतीय सस्कृति में जन घम का मागदान, पृ० २६१ ६२, मोहनलाल मेहता—अनाचार, पृ० १०४ ५ ।

३ सम० क० १ प० ६१ ६२ ।

४ माहनलाल मेहता—अन आचार, पृ० ८९ से १२४ ।

स्थूल अहिंसा अथवा स्थूल प्राणातिपात विरमण के पाँच मुख्य अतिचार ह—वध, वध छविच्छद (किसी भी प्राणी को अगापाग काटना), अतिभार तथा अनपान निराध, स्थूल मृपावान् विरमण व अतगत—भहसा अभ्यासान्, रहस्य अभ्यासान्, स्वनार अथवा स्वपति मन्त्रभेत्, मृपा उपदेश तथा कूट लेख करण (झूठा लेख तथा लेखा जोखा लिखना लिखवाना) स्थूल अदत्तादान विरमण व अतगत स्तेनाहूत (चोरी का माल लेना) तस्कर प्रयोग राज्यादि विरुद्ध कम कूट तौल कूट माप तथा तत्प्रतिरूपक व्यवहार (वस्तुओं में मिला बट करना), स्वनार सतोष व अतगत इत्वरिक परिगृहीता गमन (इत्वर का अध अल्पकाल स लगाया गया ह अर्थात् अल्पकाल के लिए स्वीकार की हुई स्त्री के साथ काम भोग का सेवन करना) अपरिगृहीता गमन (अपने लिए अस्वीकृत स्त्री के साथ काम भोग का सेवन) अनग क्रोडा पर विवाहकरण तथा काम भाग की सात्राभिलाषा इच्छा परिमाण के अतगत—क्षत्र वस्तु परिमाण अतिक्रमण हिरण्य सुवर्ण परिमाण अतिक्रमण घन धातु परिमाण अतिक्रमण, द्विपद चतुष्पद परिमाण अतिक्रमण तथा कुप्य परिमाण अतिक्रमण आदि अनिचार गिनाए गये । इसी प्रकार गुण वृत्ता म दिशा परिमाण के अतिचार—ऊर्ध्व दिशा परिमाण अतिक्रमण अधोदिशा परिमाण अतिक्रमण त्रियगदिशा परिमाण अतिक्रमण, क्षत्रवृद्धि, स्मृत्यन्तर्धा (विस्मृति के कारण खुन गया हो अथवा कोई वस्तु प्राप्त हुई हो ता उसका भी परित्याग करना) उपभोग परिभोग परिमाण के अतगत—सचित्ताहार सचित्त प्रतिबद्धाहार, अपक्वाहार दुष्पक्वाहार तथा तुच्छौदवि भक्षण अनधदण्ड विरमण के अतगत व दप (विकार वधक वधन बालना या सुनना) कौस्तुच्च (विकार वधक चेष्टा करना या दखना) मौग्य (असम्बद्ध एवं अनावश्यक वधन बोलना), समुक्तधिकरण (जिन उपकरणा के समान स हिंसा की सभावना बढ जाती ह) और उपभोग परिभोगातिरिक्त (आवश्यकता म अधिक उपभाग एवं परिभोग की सामग्री का सग्रह) आदि अतिचार गिनाये गये ह । शिखाव्रत के अतगत गिनाये गये अतिचारा म सामयिक शिखाव्रत के मनोदुष्प्रणिधान वाम्दुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान, स्मृत्यकरण, अनवस्थितकरण (समय पूरा हुण बिना ही सामायिक पूरी कर लेना) दशावकाशिक व अन्तगत आनयन प्रयोग (मर्यादित क्षेत्र क बाहर की वस्तु लाना या भेजवाना), प्रेपण प्रयाग (मर्यादित क्षेत्र से बाहर वस्तु भेजना तथा ले जाना आदि), शब्दानुपात (किसी का निर्धारित क्षेत्र से बाहर खडा देख कर शब्द सबेत्तों स बुलाने का चेष्टा करना), रूपानुपात (सामित क्षत्र के बाहर के लोगों का हाथ, मुँह, मिर आदि का सक्त दकर घुसाना) और पुद्गल प्रक्षेप (मर्यादित स्थल से बाहर व व्यक्ति को अपना अभिप्राय जतान व

लिए कागज, ककण आदि फक कर जताना ), पीपघोषवास व अतगत अप्रति लेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्यासस्तारक ( मकान और बिछौना का निराक्षण ठीक ढग स न करना ), अप्रमाजित-दुष्प्रमाजित शय्यासस्तारक ( बिना झाड़े पोछ विस्तर आदि काम में लाना), अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित उच्चारप्रसवण भूमि ( मल मूत्र की भूमि का बिना देखे उपयोग करना ) और पीपघोषवास सम्यगनुपालनता (आरमपापक मत्तों का भलीभाँति संवत न करना ) अतिथिमन्त्रिभाग व अतगत सचित्तनिष्ठा ( कपटपूर्वक माधु का देने योग्य आहार आदि का सचेतन वनस्पति आदि पर रखना ) सचित्तपिधान ( आहार आदि का सचित्त वस्तु से ढँकना ) कालानिक्रम परम्परा ( न दन की भावना से अपना वस्तु को पराई कहना अथवा पराई वस्तु देकर अपना उचा लेना आदि ) और मारसय ( श्रद्धापूर्वक दान न देत हुए दूसरे व दान गुण की इर्ष्या से दान दना ) आदि अतिचार गिनाये गये हैं जिनका पाठन करना थावका व त्रिं अति आवश्यक बताया गया है ।

ऊपर समराइच्च कहा में उल्लिखित अतिचारा का जनाचार के अनुमार पाँचा अणुव्रतों व अतगत ही रखा जा सकता है । वध वध, किसी अंग का काटना जानबरा पर अधिक बोझ ठादना तथा किसी का भोजन पानी में बाधा पहुँचाना आदि अतिचार स्थूल अहिंसा अथवा स्थूल प्राणहतिपात विरमण व अतगत गिनाए गए हैं । इसी प्रकार सभा में किसी की निंदा करना, किसी की गुण बात को प्रकट करना अपनी पत्नी की बात दूसरों से कहना किसी का झूठा उपदेश देना तथा जाती लेख लिखना आदि स्थूलमृपावा व अतगत चारी स लाई हुई वस्तु का खरीदना चारों ने किसी का धन चुरवा लेना राज्य के कानून को भंग करना नकली तराजू बान रखना, न्यूनधिक तोलना या इस प्रकार के अंग व्यवहार का स्थूल अदत्तादान विरमण के अतगत व्याभिचारिणी स्त्री के साथ सम्भोग स्थापित करना अविवाहिता स्त्री से संसर्ग करना काम क्रीडा, दूसरे का विवाह करना तथा काम की तीव्र अभिलाषा आदि स्वदार मक्षीप के अतगत, क्षेत्र और वस्तु की सीमा का उल्लघन द्विपद या चतुष्पद के प्रमाण का उल्लघन और मणि आदि के प्रमाणों का उल्लघन आदि अनिचार इच्छा परिमाणवन के अतगत गिनाए गये हैं । यहाँ समराइच्च कहा में केवल पाँचों अणुव्रतों व ही अतिचारा का गिनाया गया है जब कि जनाचार में पाँचा अणुव्रतों व साथ साथ तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत व भी पाँच-पाच अनिचारों की याददा दी गयी है ।

### धर्मणत्व-आचरण

प्रजया ग्रहण करने के पश्चात् धर्मणवर्या के लिए कुछ नियम-समय तथा



घन आदि आचरणा का पालन करना पड़ता था। समराड्चक्कहा में श्रमणा के आचरण सम्बन्धी कुछ नियमों का उल्लेख है। ये आचरित नियम हैं—“यु मित्र का समानभाव से देखना प्रमाद से झूठा भाषण न देना अदत्त वजना, मन वचन और शरीर से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना बस्त्र पात्र आदि में प्रेम न रखना रात्रि में भोजन न करना विशुद्ध पिण्ड ग्रहण सयाजन आदि पच दाप रहित मित काल भोजन ग्रहण, पच समित्व त्रिगुणता ईर्ष्या समित्यादि भावना अनशन, प्रायश्चित्त विनय आदि से बाह्य तथा आभ्यन्तर तपविधान मासादिक अनक प्रतिष्ठा, विचित्र द्रव्य आदि का ग्रहण स्नान न करना, भूमि शयन केश लम्ब निःप्रति-कम शरीरता सबन्धगुह निर्देश पालन भूत-भ्यास आदि की महनशक्ति, श्रियाणि उत्तम विजय लब्ध अलंघ्य वृत्तिता आदि।” अतः मन, वचन और शरीर से अहिंसा तथा मन-वचन और शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ध्यान एवं अध्ययन में रत रहने का विधान था।<sup>१</sup>

श्रमणा का योग्य व्रता की साधना कर्मों का क्षय रूप निजरा कराने वाली है। तप साधना ही निजरा का लिए विशेषरूप से उपयोगी मानी गयी है जिनके मुख्यतया दो भेद माने गये हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। अनशन अब मौन्य वृत्ति परिमार्गान रस परित्याग विविक्त शय्यासन एवं कायकेश ये छ प्रकार के बाह्य तप हैं। आभ्यन्तर तप भी छ प्रकार के बताये गये हैं—प्रायश्चित्त विनय वयावृत्त स्वाध्याय, व्युत्सग और ध्यान।<sup>२</sup>

समराड्चक्कहा की भाँति भगवती सूत्र में भी श्रमणा का लिए दो प्रकार के तप बाह्य और आभ्यन्तर गिनाये गये हैं।<sup>३</sup> बाह्य तप के अतगत अनशन, अवमोन्त्रिका (अवमोन्त्र्य) भिन्नाधर्या रसत्याग (दूध, घी आदि का त्याग) कायकेश प्रतिसलीनता ये छ प्रकार के तप गिनाये गये हैं तथा आभ्यन्तर तप के अतगत प्रायश्चित्त विनय वयावृत्त, स्वाध्याय ध्यान और “युत्सग आनि नाम गिनाये गये हैं।

अतः स्पष्ट होता है कि धार्मिकों का आचरण ही भिन्न श्रमणों के लिए विहित तपश्चर्या का अतगत बाह्य और आभ्यन्तर ये दो प्रकार के तप माने गये हैं जिनके भेद प्रमेणा से बारह प्रकार के तप कहे गये हैं। इन दो प्रकार के तपों का अलावा दशकालिक सूत्र में श्रमणा के लिए हिंसा असत्य भाषण, चौर

१ सम० क० १ प० ६६ ६७, ३ प० १९७ ९८ ६ प० ५८५ ८६।

२ सम० क० २ प० १४० ४१, ४ प० २८८, ८ प० ७८० ७९०।

३ हीरालाल जन—भारतीय संस्कृति में जन धर्म का योगदान, पृ० २७१।

४ भगवती सूत्र २५।७।८०२।

कम सभोग, सम्पत्ति रात्रिभोजन गतिगरीरो-जीवोत्पीडन, वानस्पतिक जीवोत्पीडन, जगमजीवोत्पीडन, वज्रिनवस्तु गृहस्थ के पात्रों में भक्षण पयक प्रमोग, स्नान और अलवार आदि वज्रित बनाये गये हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र में भी उत्स्लाग निषेध, समय, परनिष्ठा निषेध, अनुशासन क्षीलता लोभ निषेध तथा सत्यभाषण आदि नियमों का उल्लेख है।<sup>२</sup> ये सभी आचरण सम्बन्धी नियम शुद्ध ज्ञान तथा भोग प्राप्ति में सहायक माने जाते थे जो साधारण व्यक्तियों के अभ्यास से परे की बात समझी जाती थी।

### श्रमणत्व-आचरण प्रभाव

समराइज्व कहा के अनुसार विमक्त ज्ञान युक्त श्रमण भणि मुक्ता-वचन आदि की तुल्य के समान मानते थे।<sup>३</sup> धर्माचरण का पालन करते हुए श्रमणत्व से ही अजरता और अमरता की प्राप्ति में विश्वास किया जाता था।<sup>४</sup> तप-सयम<sup>५</sup> आदि का पालन करते हुए भमता आदि दुख मूल का नाश, सभी जीवों में मन्त्री भाव, पूष-दुष्टित के प्रति शुद्ध भाव से जुगुप्सा, ज्ञान दशन चरित्र आदि का पालन तथा प्रमाद-वजना का आचरण करते हुए ही परमपण (मार्ग सुख) की प्राप्ति संभव मानी जाती थी।<sup>६</sup> एकान्त स्थान में स्वाध्याय, याग, तप, सयम आदि के द्वारा सम्यक ज्ञान की प्राप्ति ही श्रमणत्व का सार माना जाता था।<sup>७</sup> चित्त का एकाग्रता तथा याग और सयम में कायोत्सव भी कर डालते थे।<sup>८</sup> अतः कभी कभी ध्यान योग के समय ईर्ष्यालु अथवा दुष्टों द्वारा श्रमणों का जिन्ना जला कर मार डालने का भी संकेत मिलता है किन्तु मर कर भी वे अपना ध्यान नहीं तोड़ते थे।<sup>९</sup> इस प्रकार स्वाध्याय ध्यान, योग में रत श्रमण क्षमा क्षील भी होते थे।<sup>१०</sup> अतः शुद्धाचरण व परिणाम स्वरूप ही नागरिकों द्वारा

१ द्वावकालिक सूत्र ६।८।

२ उत्तराध्ययन सूत्र ११।५।

३ सम० क० ५, प० ४११ ७, पृ० ६२६।

४ वही ७ पृ० ६७५।

५ वही ६ पृ० ५७०, ९ पृ० ७३७।

६ वही ५, पृ० ४९७, ६, पृ० ५९८, ७ पृ० ७२१।

७ वही ६, पृ० ५७२, ५७७, ५७९।

८ वही ४ प० ३५५ ५६।

९ सम० क० ४ प० ३५४ ५५ ५६।

१० वही ४. प० ३३० ३१।

श्रमणों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था ।<sup>१</sup> उन्हें कष्ट पहुँचाने वालों को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था तथा उन्हें अपने दुष्कृत्या के लिए श्रमणों से क्षमा याचना करनी पड़ती थी ।<sup>२</sup>

नायाधम्म कहा में श्रमणों का जीवन तलवार की धार क समान कठिन बताया गया है ।<sup>३</sup> बहत्कल्पभाष्य से पता चलता है कि श्रमण व्रत भग करने की अपेक्षा अग्नि में प्रवेश करना अधिक उपयुक्त समझते थे ।<sup>४</sup> अतः स्पष्ट होता है कि हरिभद्र के काल में भी सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन और सम्यक चरित्र का पालन करते हुए श्रमण लोग समाज के शुभचिन्तक समझे जाते थे तथा वे समाज के अ्य लोगों का उपदेन, प्रवचन प्रव्रज्या आदि के द्वारा शुभ काम में लगाने का प्रयास करते थे । इन्हीं सात्विक कारणा से उन्हें समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था ।

### श्रमण विहार

समराइच्च कहा के अनुसार सकल जनोपकारी श्रमण विकार रहित, सकल सगत्यागी, ध्यान योग तथा तप में लीन तथा नियम एवं समय से विहार भी करते थे ।<sup>५</sup> श्रमणाचार के अन्तर्गत विहार का अत्यधिक महत्त्व समझा जाता था । विहार शब्द का तात्पर्य विहरण अर्थात् श्रमण से लगाया जाता था । अतः श्रमण तथा श्रमणाचार्य सभी का धर्म प्रचार कर लोगों के दुःख को दूर करने वाले जनाचार से अवगत कराना था । श्रमणाचार के अन्तर्गत ग्राम में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि अकेले ही विहार करने का विधान था ।<sup>६</sup> इस प्रकार की विधि से शिक्षा-दीक्षा द्वारा विहार करते हुए वर्षावास एक ही स्थान पर करते थे ।<sup>७</sup> वर्षा ऋतु आ जाने पर अनेक जीव जन्तुओं की उत्पत्ति होती है । अतः उस समय विहार करने से अनेक हिंसादि दोषों का भागी बनना पड़ता था जिसके कारण एक ही स्थान पर वर्षावास का विधान था । उपधान धृत में बताया गया है कि महावीर प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् विहार (पदयात्रा)

१ सम० क० ३ पृ० २२७ ।

२ वही ६, प० ५७० ७१ ७२ ।

३ नायाधम्म कहा—१।२८ ।

४ बहत्कल्पभाष्य—५।४९४९ ।

५ सम० क० १ प० ४३ ६ प० ५७० ७, पृ० ६२३, ८ पृ० ८४६, ८४८ ८५० ८५७ ९ पृ० ९५९ ।

६ वही ४ पृ० ३५३ ७ पृ० ७२७ ।

७ वही १ पृ० ४८ ४९ ।

के लिए तुरत चल पड़े।<sup>१</sup> निग्रथ थमण वर्षा ऋतु में एक स्थान पर रहते थे तथा गेप ऋतुओं में पदयात्रा करते हुए स्थान-स्थान पर घूमते रहते थे।<sup>२</sup>

दश प्रकार की शुद्धियों से युक्त मुनि का गोभानुगामी बताया गया है, उन दश प्रकार की शुद्धियों में विहारशुद्धि भी एक है।<sup>३</sup> आचारागसूत्र में विहार करने के सम्बन्ध में बताया गया है कि भिक्षु या भिक्षुणी को जब मालूम हो जाय कि वर्षा ऋतु का आगमन हुआ गया है एवं वर्षा के कारण विविध प्रकार के जीवों की सृष्टि हो चुकी है तथा मार्गों में अकुर आदि के कारण गमनागमन दुष्कर हुआ गया है, तब वह किसी निर्दोष स्थान पर वर्षावास अर्थात् चातुमसि करके रुक जाय लेकिन जहाँ स्वाध्याय आदि की अनुकूलता न हो वहाँ न रहे।<sup>४</sup> समराहुच्च बह्म के उल्लेख से पता चलता है कि भिक्षा आदि के लिए गुरु की आज्ञा लेनी पड़ती थी।<sup>५</sup> श्रमणाचार्य भी शिष्यों के साथ मासकल्प विहार करते तथा चत्या में विश्राम करते थे।<sup>६</sup> मासकल्प विहार के पश्चात् वे अन्यत्र प्रस्थान करते थे।<sup>७</sup>

### श्रमण भोजन-वस्त्र

श्रमणाचार के अन्तर्गत भिक्षा वृत्ति से दिन में एक बार ही भोजन करने का विधान था।<sup>८</sup> मौचरा के लिए प्रस्थान करने के पूर्व श्रमणों को आचार्य की आज्ञा लेनी पड़ती थी।<sup>९</sup> कभी-कभी तो वे हैं बिना भिक्षा प्राप्त किये ही वापस लौट आना पड़ता था।<sup>१०</sup> अधिकतर लोग थक्का और भक्ति से श्रमणों को भिक्षा प्रदान करते थे।<sup>११</sup> अन्न भिक्षा माग कर वे (श्रमण) यथा विधि नियमित एवं समयित भोजन करते थे।

१ उपधान श्रुत १ १ ।

२ मोहनलाल मेहता—जनाचार पृ० १७६ ।

३ वही, पृ० ७२ ।

४ आचाराग सूत्र २ १, ३ ।

५ सम० क० ६, पृ० ५७१ ।

६ वही २ पृ० १२०, ३, पृ० १८१, ५, पृ० ४८८ ९, पृ० ९३८ ।

७ वही ३ पृ० २२४ ।

८ वही ३, पृ० २२८, ७ पृ० ६७५ ।

९ वही ४, पृ० ३४०, ३५३, ७, पृ० ६२४ ।

१० वही ४, पृ० ३५९ ।

११ वही ८ पृ० ८०७ ।

श्रमणों को सांसारिक वस्तुओं के प्रति मोह से वर्जित किया गया था। कही कही रत्न रूपी गुणा से युक्त श्वेत वस्त्रधारी श्रमणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>१</sup> आचाराग में बताया गया है कि निग्रथ निग्रथियों को अलावू, काष्ठ व मिट्टी के पात्र रखना अवलम्ब्य है, उन्हें बहुमूल्य वस्त्र की तरह बहुमूल्य पात्र भी न रखने का विधान था।<sup>२</sup> आवश्यक सूत्र में मुनि के ग्रहण करने योग्य चौदह प्रकार के पदार्थों का उल्लेख है यथा—(१) अन्न, (२) पान, (३) छादिम (४) स्वादिम (५) वस्त्र (६) पात्र (७) कम्बल (८) पाद-पाछन (९) पीठ (१०) फलक (११) शय्या, (१२) सस्तारक (१३) औषधि और (१४) भोजन।<sup>३</sup> यहाँ समराह्चकहा में श्वेताम्बर श्रमण सम्प्रदाय का स्पष्ट वर्णन मिलता है, जिनको श्वेत वस्त्रधारी बताया गया है। साय-साय आचाराग तथा आवश्यक सूत्र के उल्लेखों से भी स्पष्ट होता है कि श्रमण अपने पास वस्त्र, भिक्षापात्र, कम्बल, पाद पाछन आदि लिए रहते थे तथा ग्राहरी (भिक्षा माग कर) द्वारा अपनी जीविका चलाते थे।

### श्रमणाचार्य

जिन श्रमणों के गुरु व आचार्य को श्रमणाचार्य कहा जाता था। गुरुत्व अर्थात् श्रेष्ठ ज्ञान युक्त श्रमण को आचार्य के योग्य समझा जाता था। वे तप, ज्ञान योग, समय से युक्त भूत, भविष्य वतमान के अवधि पाता होते थे तथा शिष्यों से घिरे रहते थे।<sup>४</sup> व परलोक ज्ञान से युक्त<sup>५</sup> तथा अनेक पान पिपामु श्रमणों से घिरे हुए क्षमा मादक-आजन मुक्ति-तप समय, सत्य, शौच तथा ब्रह्मचर्यान्वि<sup>६</sup> गुणा के अनुगामी होते थे।

समराह्चकहा में श्रमणाचार्य के लिए एक प्रकार के समय में रत, दो प्रकार के असत ध्यान से रहित त्रिदण्डरहित क्रोध मान माया और लोभ का भजन, पचेन्द्रियो का निग्रह, छ जीव निकायों पर दया करना, सात प्रकार के भय से मुक्त आठ प्रकार के मद स्थान से रहित नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य व गुण, दश प्रकार के धर्मों में स्थिर चित्त एवं दशांग का ज्ञान तथा बारह प्रकार के

१ सम० क० ३ पृ० १७० ७, प० ६०९।

२ आचाराग २ १६।

३ माहनलाल मेहता—जनाचार, पृ० १६५ में उद्धृत।

४ सम० क० १ पृ० १०३, ५, पृ० ३६-६६५, ६, पृ० ५६६, ८, पृ० ७७८।

५ वही १ पृ० ५० ५१।

६ वही २ पृ० १०१, ७ पृ० ७०९ १०।

तपाचरणों का पालन करना आवश्यक बताया गया है।<sup>१</sup> व्यवहार सूत्र में बताया गया है कि जो कम से कम पाँच वष की दीक्षा पर्याप्त वाला है, श्रमणाचार में कुशल है, प्रवचन में प्रवीण है, यावत् दशाश्रुत स्वयं, कल्प अर्थात् बृहत्कल्प एवं व्यवहार सूत्रों का ज्ञाता है उस आचार्य अथवा उपाध्याय के पद पर प्रतिष्ठित करना कल्प्य है।<sup>२</sup> आठ वष की दीक्षा पर्याप्त वाला श्रमण यदि आचार कुशल प्रवचन प्रवीण एवं असविलम्बना है तथा कम से कम स्थानाग व समवायाग सूत्रों का ज्ञाता है उसे आचार्य उपाध्याय, स्थविर, गणी, गणावच्छेदक आदि की पदवी प्रदान की जा सकती है।<sup>३</sup> अतः स्पष्ट होता है कि समराष्ट्रच कहाँ में उल्लिखित आचार्य श्रमण सध में अपने आचरण प्रभाव के कारण सबसे श्रेष्ठ समझे जाते थे। उन्हें उपाध्याय स्थविर गणी गणावच्छेदक आदि पदवियों से सम्बोधित किया जाता था। ये अन्य श्रमणा व गुरु होते थे और इनकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक समझा जाता था।

आचार्य लोग मानवकल्याण के लिए अपने धर्म का शिक्षा-दीक्षा दत्त हुए शिष्य मंडली के साथ मास कल्प विहार<sup>४</sup> करते तथा चर्या में आराम करते थे। सबसाधारण से लेकर राजा महाराजाओं तक के लिये उनका भव्य स्वागत करते थे।<sup>५</sup>

### गणघर

श्रमण परम्परा में अनेक गच्छा के समूह का, कुल अनेक कुलों के समूह को गण तथा अनेक गणों के समुदाय को सघ कहा गया है।<sup>६</sup> गच्छ के विभिन्न वर्गों के साधु-साध्वियों को गच्छाचार्य कुल के नायक वा कुलाचार्य तथा गणों के नायक को गणाचार्य अथवा गणघर कहा जाता था। इसी प्रकार अनेक गणा के समुदाय को सघ कहा जाता था जिसका अध्यक्ष सघनायक सघाचार्य अथवा प्रधानाचार्य कहा जाता था। गणघर का मुख्य काम अपने गण का सूत्राय देना अर्थात् शास्त्र पढ़ाना तथा भ्रमण करते हुए चातुर्मास युक्त साधुओं के साथ धर्मोपदेश देना था।<sup>७</sup>

१ सम० क० ३, पृ० १६६-६७।

२ वही, पृ० २०१ में उद्धृत।

३ माहनलाल मेहता—जनाचार प० २०१।

४ सम० क० २, पृ० १२० ३ पृ० १८१, ५, पृ० ४८१, ४८८।

५ वही ३, पृ० १६६ ६७ ८, पृ० ७८८ ८९, ९ पृ० ९३८।

६ मोहनलाल मेहता—जनाचार, पृ० २०१।

७ सम० क० २, पृ० ११८, ७, पृ० ७१९ २०, ७२६।

गण में सम्मिलित होने के लिए साधु की अटूट-श्रद्धा विश्वास, मेधा, ममता अपरिग्रह एवं बहुश्रुत होना आवश्यक था ।<sup>१</sup> पुन कोई साधु ३ मास के भीतर अपने गण को बदल भी नहीं सकता ।<sup>२</sup> अगर कोई गण छाड़ना भी चाहता था तो उसे आचार्य से आज्ञा लेनी पड़ती थी और गण त्याग की आज्ञा तभी मिल सकती थी जबकि वह साधु उच्चतर ज्ञान एवं विहार प्रतिभा आदि के लिए प्रयाशी हो ।<sup>३</sup> यह गण सध के प्रति उत्तरदायी था और सम्पूर्ण सध अर्थात् निग्रय निग्रंथी आदि का उत्तरदायित्व सधाचार्य के ऊपर निभर रहता था ।

### श्राविका

समराङ्गच कहा ५ विवरणों में पता चलता है कि हरिमद्र ५ काल में जन धर्मावलम्बियों में पुरुषों की भांति स्त्रियाँ की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी । श्रावकों की भांति स्त्रियाँ में भी श्राविका या श्रमणोपासिका (साध्वी) अणुव्रताचरण का पालन करती हुई श्रमणियाँ की उपासना व चरना करती थी ।<sup>४</sup> ये श्राविकाएँ गृहस्थाश्रम में रह कर श्रावकों का सा आचरण करती थी ।<sup>५</sup>

### श्रमणी

जन परंपरा में जहाँ श्राविकाएँ श्रावकों का सा आचरण करती थी, वही श्रमणी या श्रमणों का सा आचरण करती थी । समराङ्गच कहा से पता चलता है कि नारी बग भी माता पिता अथवा पति की आज्ञा लेकर जन धर्माचरण के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करती थी ।<sup>६</sup> एक विद्याधर श्रमणी ने अनेक साध्वी स्त्रियाँ तथा पुरुषों को दीक्षित किया था ।<sup>७</sup> गणिनी द्वारा भी धर्म कथा का श्रवण कर नारी बग श्रमणाचार का पालन करने के लिए प्रव्रजित होता था ।<sup>८</sup> श्रमणियों के लिए भी वही तप-समम-व्रत आदि आचार बताए गये हैं जो श्रमणों के लिए थे । श्रमणों की भांति श्रमणियाँ भी विहार तथा गोचरी करती थी ।<sup>९</sup>

१ स्थानाग पृ० ३५२ ।

२ समवायाम पृ० ३९४० ।

३ स्थानाग टीका—पृ० ३८१ ।

४ सम० क० ७ पृ० ६०९ ।

५ मोहनलाल मेहता—जनाचार श्रावकाचार में श्राविका ।

६ सम० क० ४ पृ० ३४६ ४७ ।

७ वही २ पृ० १५५ ५६ ।

८ वही ८ पृ० ८३७ ३८ ३९ ।

९ वही ८, पृ० ८०९ ।

## गणिनी

श्रेष्ठ धर्मणियों का गणिनी कहा जाता था तथा उनसे धर्मकथा का ध्रमण कर पुरुष एवं स्त्रियाँ वगैरे लोग शिक्षित एवं प्रबुद्ध होते थे।<sup>१</sup> 'धर्म से ही साध्वत् शिव सौख्य की प्राप्ति संभव है' इस प्रकार की धर्म कथा सुना कर लोगों को जन धर्माचरण के लिए प्रोत्साहित करती थी।<sup>२</sup> सत्कालीन जन समूह भी गणिनी का सम्मान एवं वन्दना द्वारा नमस्कार पूर्वक श्रृंगार, गुणव्रत और शिष्टाश्रित का ग्रहण कर ध्रमणत्व का आचरण करता था।<sup>३</sup> गणधर की ही भाँति साध्वी धर्मणियों के गणा की नायिका को ही गणिनी कहा जाता था। पूरे ध्रमण सभ में आस्थान आचार्य का होता था वही स्थान निर्णय सभ में प्रवर्तिनी का होता था। उसकी योग्यता भी आचार्य के बराबर थी अर्थात् आठ वय की दीक्षा पयायवाली साध्वी आचार्य कुशल, प्रवचन प्रवीण तथा अमवलम्बित वित्तवाली एवं म्यानाग, समवायाम की जाता होने पर प्रवर्तिनी के पद पर प्रतिष्ठित की जा सकती थी।<sup>४</sup> यहाँ प्रवर्तिनी के सभी प्रकार के गुण-समराइच्य कहा में उल्लिखित गणिनी से मिलते जुलते दिखाई देते हैं। जन ग्रंथों में प्रधान-साध्वी के लिए गणिनी शब्द का भी प्रयोग हुआ है।<sup>५</sup>

## तीर्थंकर धर्म चक्रवर्ती

हरिभद्र के अनुसार त्रिदशनाथ भगवान् धर्मचक्रवर्ती भारत वष में प्रथम धर्मचक्रवर्ती माने जाते हैं।<sup>१</sup> उनसे पहले यहाँ धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं। अतः प्रथम धर्मचक्रवर्ती आदि तीर्थंकर अर्थात् जगत गुरु त्रिलोक्य वन्द्य ने ही विवाहादि क्रिया दान-शील-तप भावना आदि विविध धर्म का प्रवर्तन किया तथा जिन्हें विविध कलाकार शिल्पियों तथा सुरासुर का सम्मान प्राप्त है।<sup>२</sup> भगवान् तीर्थंकर ही भारत में प्रथम धर्म संस्थापक माने जाते हैं। परिणामतः त्रिभुवन नाथ गुरु को भाव्यता प्रदान कर भगवान् जिन देव, भवनवासी देव,

१ सम० क० ७, पृ० ६१३, ६३०, ७१२ ८, प० ८०७, ८४० ४१।

२ वही ८, पृ० ८०९ १०, ८१३, ८१५ १६ १७ १८ १९।

३ वही ८, ८३७ ३८-३९।

४ मोहनलाल मेहता—जनाचार, पृ० २०७।

५ वही पृ० २०७।

६ सम० क० ९, पृ० ९३९ ४०।

७ वही ९, पृ० ९४३, ९४९ ९५०।



‘यतर सुर तप-सयम युक्त गणधर एव साधु गणा द्वारा पूजे जाते थे ।’ तीर्थंकर भाषित धर्म को ही शिव सौख्य जनक माना जाता था ।<sup>२</sup> पहाड पुर अभिलेख (गुप्त सवत १५९) में जन विहार में तीर्थंकर की पूजा निमित्त भूमि दान का विवरण है जिसकी आय गध, घूप दीप, नवेल आदि के लिए व्यय की जाती थी ।<sup>३</sup> चाहमान अभिलेख में भी तीर्थंकर गतिनाथ की पूजा व निमित्त आठ द्रम (सिकक) के दान का वर्णन है ।<sup>४</sup>

‘मोक्ष’

कर्म राशि के क्षय तथा शुभ परिणाम की वृद्धि से ही केवल नान और तत्पश्चात् जन्म जरा मरण रोग शाक आदि से रहित हुआ जीव मोक्ष पद का अनुगामी माना जाता था ।<sup>५</sup> इसी प्रकार समराइच्च कहा में अय स्थानों पर मोक्ष के विवेचन में बताया गया है कि निर्वाण प्राप्ति से जीव जन्म, जरा मरण रोग, शोक, इष्ट विद्योग अनिष्ट संयोग भूत, व्यास राग, द्वेष क्रोध, मान माया लोभ तथा अय उपद्रवों से रहित सवग सबदर्शों एवं निरुपम सुख सम्पन्न होकर मोक्ष पद प्राप्त करता है ।<sup>६</sup> तत्त्वार्थ सूत्र में मोक्ष के पूर्व केवल ज्ञान व प्रकट होने के लिए मोहनीय कर्म क्षय तथा ज्ञानावरणीय, दशनावरणीय और अतराय कर्म का क्षय होना आवश्यक बताया गया है ।<sup>७</sup> इसी ग्रंथ में आगे बताया गया है कि बन्ध हेतु के अभाव से और निजरा से कर्मों का अत्यधिक क्षय होता है और सम्पूर्ण कर्मों के क्षय को ही मोक्ष कहा गया है ।<sup>८</sup>

भगवती सूत्र में उल्लिखित है कि सम्यक् दृष्टि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र<sup>९</sup> से ही भाव व्युत्सग (विचारों का त्याग) तथा द्रव्ययुत्सग<sup>१०</sup> (सासारिक पदार्थों का त्याग) द्वारा आत्मा पूर्णता का प्राप्त होता है । एक अय स्थान पर आया है कि जब आत्मा के सभी कर्मांश समाप्त हो जाते हैं तो वह कर्मों से

- १ सम० क० ६, प० ५७६ ८ प० ७८४, ७८६ ७८८ ८९ ९ प० ९२७ ।
- २ वही ७, प० ६२९, ८, पृ० ८१० ।
- ३ वासुदेव उपाध्याय—प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन प० १०३ ।
- ४ वही, प० १०३ ।
- ५ सम० क० १ पृ० ४९५०, ७ प० ७२० ७२३ ८ प० ८५५ ।
- ६ वही २, पृ० १५८ ८ पृ० ७८० ९, प० ८७१ ९१७ ।
- ७ तत्त्वार्थ सूत्र १०।१—मोक्षायज्ज्ञानशान वरणा नरायक्षयाच्च केवलम् ।
- ८ वही १०।२ ३—‘बन्ध हेतु भाव निजराभ्याम् । कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष ।
- ९ भगवती सूत्र—८।१०।३५५ ।
- १० वही २५।७ । ८०३ ।

छुटकारा पाकर ऊपर मोक्ष पद वा अनुगामी होता है।<sup>१</sup> सबदशन सग्रह में आसव (आत्मा में कर्मों का प्रवेश) का ससार भ्रमण का कारण तथा सवर (आत्मा में कर्मों के प्रवेश का क्षय) को मोक्ष का कारण बताया गया है।<sup>२</sup>

अतः जन विचार धारा के अनुसार जब समुचित साधना से सम्पूर्ण ब्रह्म समाप्त हो जाते हैं और जीव सव्यता की स्थिति में पहुँच जाता है तब वह मुक्त हो जाता है और मृत्यु के पश्चात् लोकाकाश में पहुँच कर सदा के लिए शान्ति और आनन्द की अवस्था में स्थित हो जाता है,<sup>३</sup> अर्थात् जन्म जरा मरण, रोग शोक आदि से मुक्त हो जाता है। इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि तप, सयम, नियम, व्रत आदि के द्वारा ही भवोपग्राही ब्रह्मों का नाश करके केवल ज्ञान की प्राप्ति और केवल ज्ञान से ही इस भौतिक देह पजर का त्याग करके परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति करना ही जन धर्म का धर्म लक्ष्य माना गया है।

### वैदिक धर्म

समराइच्च कहाँ में जन धर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है फिर भी कथा प्रसंग में यत्र तत्र वैदिक धर्म का भी उल्लेख है। उस काल में वैदिक तपस अधिकतर आश्रम बना कर जंगलों में रहते थे।<sup>४</sup> समराइच्च कहाँ में कुछ तपस्वी जनों का संकेत विध्यारण्यवासी के रूप में मिलता है जो गिरि कन्दराओं में तपस्या करते तथा कन्दमूल आदि खाकर अपनी जीविका चलाते थे।<sup>५</sup> मुनि सेवित धर्म का परलोक का बन्धु माना जाता था।<sup>६</sup> परिणामतः तपोवन का सेवन करने वाले तपस्वी आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।<sup>७</sup> एकान्त स्थान में रहकर यज्ञ, हवन, गव्य व्रत आदि के द्वारा तप का आचरण करने के कारण ही इन्हें तपोवनवासी कहा गया है।<sup>८</sup> सर्वप्रथम वैदिक कालीन ऋषियों के लिए

१ भगवद्गीता ७।१।२२५।

२ सबदशन सग्रह पृ० ३९—'आसवा भवहेतु स्यात् सवरो मोक्ष कारणम्।

३ यम० हिरियन्ना—भारतीय दशन की रूपरेखा, पृ० १७४।

४ सम० क० ५ पृ० ४१८, ४१८, ४२२।

५ वही २ पृ० ७९९ ८००।

६ वही १ पृ० ११।

७ वही १, पृ० ३८, २, पृ० ८४ ५ ३९२, ७ पृ० ६६४।

८ वही १ पृ० १२, १४, १६, १७, २३, २४, ४०, ५ पृ० ४२३, ४२४, ४४७ ७, पृ० ६६२, ६६३, ६६४, ६६६।

श्रुवेत् में बखानस शब्द का प्रयोग हुआ है।<sup>१</sup> तैत्तिरीय आरण्यक में बखानस शब्द का सघघ प्रजापति के नखा से लगाया गया है।<sup>२</sup> मनुस्मृति में वानप्रस्थ<sup>३</sup> तथा परिव्राजक<sup>४</sup> का उल्लेख है तथा दानों के लिए समान नियम व्यवस्थित किये गये हैं। वानप्रस्थ ही बाद में चल कर सयासी हो जाता है तथा दानों को ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, भोजन नियम आदि का पालन करना पड़ता था तथा ब्रह्मज्ञान के लिए यत्न करना पड़ता था।<sup>५</sup> वानप्रस्थी अपनी स्त्री को भी साथ में रख सकता था, किन्तु सयासी के लिए ऐसा सम्भव नहीं था। रतिलाल मेहता के अनुसार बौद्ध धर्म के उत्थान के पूर्व ही ब्राह्मण धर्म के अतगत श्रमण और तापस इन दानों का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>६</sup> इस धर्म के अतगत तपस्वी लोग जंगलों में रहकर तपस्या करते तथा यज्ञ, हवन आदि का विधान करते थे।<sup>७</sup> धर्मसूत्रों में भी समराइच्च कहा की भांति घोर अजिनधारी, ग्राम से बाहर रहने वाले मूल फल आदि खाने वाले और अग्नि में हवन करने वाले वानप्रस्था का उल्लेख है।<sup>८</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वानप्रस्था के लिए मूल फल, पण और तण से आरम्भ कर अप, वायु और आकाश के सहारे जीवित रहने का अभ्यास करना बताया गया है।<sup>९</sup> ये सभी साक्ष्य समराइच्च कहा में उल्लिखित तपस्वी जनों के आचरण तथा रहन-सहन का समर्थन करते हैं।

### तपाचरण

समराइच्च कहा के उल्लेख से पता चलता है कि उस समय के धार्मिक साधु सयासी सध्यापासना व्रत<sup>१०</sup> तथा नुसुम, समिधा आदि में यज्ञ हवन आदि का भी विधान करते थे।<sup>११</sup> ये तपस्वी पद्यासनापविष्ट, एकग्रचित्त होकर तथा ध्यान

१ पा० वा० वाणा—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ४८२।

२ तैत्तिरीय आरण्यक १।२३।

३ मनुस्मृति ६।२५ २९।

४ वही ६।३८, ४३ ४४।

५ पी० बी० काणो—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ४८९।

६ रतिलाल मेहता—श्री बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० ३३७।

७ वही, पृ० ३३७ ३८।

८ वशिष्ठ धर्मसूत्र—अध्याय ८।

९ आपस्तम्ब धर्मसूत्र—२।९।२२।

१० सम० क० ७, पृ० ६६२ ६३, ६४।

११ वही ५ पृ० ४२४ ७, पृ० ६८४ ८५।

लगाकर मंत्रजाप करते एवं रुद्राक्ष माला घुमाते थे ।<sup>१</sup> कर्मा-बन्धों तदियों के तट पर स्थित महप में भी पूजा-भाठ एवं ध्यान लगाते थे ।<sup>२</sup> वैदिक धर्माचरण के अनुसार समराइच्च कहा में माधु मयासिया को स्त्री दशन तथा अलोक वचन बोलने का निषेध था ।<sup>३</sup> इसके साथ-साथ अनाथ एवं दुबल जीवों पर दया भाव, गन्धु मित्र में समान भाव तथा मणि-भुक्ता को तुण व समान मानते थे ।<sup>४</sup>

समराइच्च महा में उल्लिखित वैदिक मयासिया के उपाचरण का उल्लेख स्मृतिया में भी किया गया है । मनु एवं गौतम स्मृतिया में स यासी वा ब्रह्मचारी होना बताया गया है और उसे सदाव ध्यान एवं आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति भक्ति भाव रखना तथा इन्द्रिय सुख एवं आनन्दप्रद वस्तुओं से दूर रहना उचित बताया गया है ।<sup>५</sup> उसे जीवों को कष्ट नहीं देना चाहिए तथा क्राधी एवं अस-ह्यभाषी नहीं होना चाहिए ।<sup>६</sup> मनु एवं याज्ञवल्क्य के अनुसार सयासी को प्राणायाम तथा अन्य योगागों द्वारा मनको पवित्र करना चाहिए ।<sup>७</sup> कवल वदिक मंत्रों के जप का छाड कर उसे साधारणतया मौन श्रत रखना चाहिए ।<sup>८</sup> तत्तिरीय उपनिषद के अनुसार उस यज्ञ देवों एवं दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित वदिक वार्ता का अध्ययन एवं उच्चारण करना चाहिए ।<sup>९</sup> सत्य की अप्रवचना, ब्रोधहीनता विनीतता, पवित्रता, अच्छे बुरे का भेद, मन की स्थिरता, मन नियन्त्रण, इन्द्रिय निग्रह तथा आत्मज्ञान आदि गुण स्मृतिया में सयासियों के लिए आवश्यक बताये गये हैं ।<sup>१०</sup> समराइच्च कहा के समथन में स्मृतियों में ज्ञान प्रस्था द्वारा यज्ञ करने के विधान का उल्लेख किया गया है । मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में उल्लिखित है कि ज्ञानप्रस्थों को पूर्णमा के दिन श्रौत यज्ञ करना चाहिए ।<sup>११</sup> एक अन्य स्थान पर मनु ने ज्ञानप्रस्था के लिए अग्नि प्रज्वलित कर आहुति देने की आज्ञा कही है ।<sup>१२</sup>

१ सम० ४० १, प० १२ १८ ।

२ वही १, पृ० ३९ ।

३ वही ७, प० ६६३ ।

४ वही १, प० ३५ ३९ ।

५ मनु० ६।४१ एवं ४९, गौतम० ३।११ ।

६ मनु० ६।४०, ४७ ४८, याज्ञवल्क्य० ३।६१ गौतम० ३।२३ ।

७ मनु० ६।७० ७५, ८१, याज्ञवल्क्य० ३।६२, ६४ ।

८ मनु० ६।४३, गौतम ३।१६ बौधायन धर्मसूत्र २।१०।७९ आपस्तम्ब धर्म सूत्र २।९।२१।१० ।

९ तत्तिरीय उपनिषद २।१ ।

१० मनु० ६।६६, ९२ ९४, याज्ञ० ३।६५ ६६ वशिष्ठ० १०।३० ।

११ मनु० ६।४, याज्ञवल्क्य० ३।४५ ।

१२ मनु० ६।९ ।

ऋग्वेद में बखानस शब्द का प्रयोग हुआ है।<sup>१</sup> तत्तिरीय आरण्यक में वैखानस शब्द का समर्थ प्रजापति के नामों से लगाया गया है।<sup>२</sup> मनुस्मृति में वानप्रस्थ<sup>३</sup> तथा परिव्राजक<sup>४</sup> का उल्लेख है तथा दोनों के लिए समान नियम व्यवस्थित किये गये हैं। वानप्रस्थ ही बाद में चल कर स यासी हुआ जाता है तथा दानों को ब्रह्मचर्य इन्द्रिय निग्रह, भोजन नियम आदि का पालन करना पड़ता था तथा ब्रह्मज्ञान के लिए यत्न करना पड़ता था।<sup>५</sup> वानप्रस्थों अपनी स्त्री का भी साथ में रख सकता था, किन्तु स यासी के लिए ऐसा सम्भव नहीं था। रतिलाल महता के अनुसार बौद्ध धर्म के उत्थान के पूर्व ही ब्राह्मण धर्म के अतगत धर्मण और तापस इन दोनों का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>६</sup> इस धर्म के अन्तर्गत तपस्वी लोग जंगल में रहकर तपस्या करते तथा यज्ञ, हवन आदि का विधान करते थे।<sup>७</sup> धर्मसूत्रों में भी समराइच्च कहा की भाँति चौर अजिनधारी, ग्राम से बाहर रहने वाले मूल फल आदि खाने वाले और अग्नि में हवन करने वाले वानप्रस्थों का उल्लेख है।<sup>८</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वानप्रस्थों के लिए मूल फल, पण और तण से आरम्भ कर अप, वायु और आनास के सहारे जीवित रहने का अभ्यास करना बताया गया है।<sup>९</sup> ये सभी साध्य समराइच्च कहा में उल्लिखित तपस्वी जनों के आवरण तथा रहने सहने का समर्थन करते हैं।

### तपाचरण

समराइच्च कहा के उल्लेख से पता चलता है कि उस समय के बौद्ध साधु सत्यामी सत्यापासना करते<sup>१०</sup> तथा कुसुम, समिधा आदि से यज्ञ, हवन आदि का भी विधान करते थे।<sup>११</sup> ये तपस्वी पद्यासनापविष्ट, एकाग्रचित्त होकर तथा ध्यान

१ पी० वा० वाणा—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४८२।

२ तत्तिरीय आरण्यक १।२३।

३ मनुस्मृति ६।२५ २९।

४ वही ६।३८, ४३, ४४।

५ पी० वा० वाणा—धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ४८९।

६ रतिलाल महता—श्री बुद्धिस्ट इंडिया पृ० ३३७।

७ वही, पृ० ३३७ ३८।

८ वशिष्ठ धर्मसूत्र—अध्याय ८।

९ आपस्तम्ब धर्मसूत्र—२।९।२२।

१० सम० क० ७, पृ० ६६२ ६३, ६४।

११ वही ५ पृ० ४२४ ७ पृ० ६८४ ८५।

लगाकर मंत्रजाप करते एवं रुद्राक्ष माला घुमाते थे ।<sup>१</sup> कभी-कभी नदिया के तट पर स्थित मठ में भी पूजा-पाठ एवं ध्यान लगाते थे ।<sup>२</sup> वैदिक धर्माचरण के अनुसार समराइच्च कहा में साधु स-यासियों को स्त्री दशन तथा अलीक वचन बोलने का निषेध था ।<sup>३</sup> इनके साथ-साथ अनाथ एवं दुबल जीवों पर दया भाव, शत्रु मित्र में समान भाव तथा मणि-मुक्ता को तुण के समान मानते थे ।<sup>४</sup>

समराइच्च कहा में उल्लिखित ब्रह्मिक स-यासियों के तपाचरण का उल्लेख स्मृतियों में भी किया गया है । मनु एवं गौतम स्मृतियों में स यासी का ब्रह्मचारी होना बताया गया है और उस सद्व ध्यान एवं आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति भक्ति भाव रखना तथा इन्द्रिय सुख एवं आनन्दप्रद वस्तुओं से दूर रहना उचित बताया गया है ।<sup>५</sup> उन्हे जीवों को कष्ट नही देना चाहिए तथा क्राधी एवं असत्यभाषी नही होना चाहिए ।<sup>६</sup> मनु एवं याज्ञवल्क्य के अनुसार स यासी का प्राणायाम तथा अथ योगार्गों द्वारा मनको पवित्र करना चाहिए ।<sup>७</sup> ब्रह्म ब्रह्मिक मंत्रों के जप का छाड कर उन्हे साधारणतया मोन व्रत रखना चाहिए ।<sup>८</sup> तत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार उसे यज्ञा, देवों एवं दाशनिक विचारों से सम्बन्धित ब्रह्मिक वार्ता का अध्ययन एवं उच्चारण करना चाहिए ।<sup>९</sup> सत्य की अप्रवचना, ब्राह्महीनता विनीतता, पवित्रता, अच्छे वुरे का भेद, मन की स्थिरता, मन नियमन, इन्द्रिय निग्रह तथा आत्मज्ञान आदि गुण स्मृतियों में स-यासियों के लिए आवश्यक बताये गये हैं ।<sup>१०</sup> समराइच्च कहा के समथन में स्मृतियां म धान प्रस्थों द्वारा यज्ञ करने के विधान का उल्लेख किया गया है । मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में उल्लिखित है कि धानप्रस्थों को पूर्णिमा के दिन श्रौत यज्ञ करना चाहिए ।<sup>११</sup> एक अन्य स्थान पर मनु ने धानप्रस्था के लिए अग्नि प्रज्वलित कर आहुति देने की बात कही है ।<sup>१२</sup>

- १ सम० क० १ पृ० १२ १८ ।
- २ वही १, प० ३९ ।
- ३ वही ७, प० ६६३ ।
- ४ वही १ पृ० ३५ ३९ ।
- ५ मनु० ६।४१ एवं ४९, गौतम० ३।११ ।
- ६ मनु० ६।४०, ४७ ४८ याज्ञवल्क्य० ३।६१ गौतम० ३।२३ ।
- ७ मनु० ६।७० ७५, ८१, याज्ञवल्क्य० ३।६२, ६४ ।
- ८ मनु० ६।४३, गौतम ३।१६ बोधायन धर्मसूत्र २।१०।७९ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।१।२१।१० ।
- ९ तत्तिरीय उपनिषद् २।१ ।
- १० मनु० ६।६६ ०२ ९४, याज्ञ० ३।६५ ६६ वसिष्ठ० १०।३० ।
- ११ मनु० ६।४, याज्ञवल्क्य० ३।४५ ।
- १२ मनु० ६।९ ।

### तापस

समराइच्च कहा के उल्लेखानुसार ध्यान योग आदि का आचरण करने वाले दयालु स्वभाव के तपोवन वासी ऋषि धर्म समझे जाते थे।<sup>१</sup> तत्कालीन तपाचरण करने वाले वैदिक साधु स यासियों की दो श्रेणियाँ थी—प्रथम साधारण तापस तथा दूसरे कुलपति। उत्तम विधि मुहूर्त में कुलपति द्वारा तपस्वियों को आश्रम में दीक्षित किया जाता था। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ये तपस्वी कुलपति की सेवा करते हुए तप व्रत धर्म आदि का आचरण करते थे।<sup>२</sup> अतः वे वनवासी (आश्रम में कुलपति की सेवा करते हुए तपाचरण करने वाले) तापस कहे जाते थे।<sup>३</sup> उन तपावन का संवन करने वालों में वात्रक मुनि<sup>४</sup> तथा मुनि कुमार<sup>५</sup> का भी उल्लेख मिलता है। महाभाष्य में वानप्रस्थ के लिए तपस्वी शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका लक्ष्य ही तपाचरण<sup>६</sup> करना था।

काशिकाकार के अनुसार अस्थिचर्मर्वाशिष्ट तापस स्वर्ग प्राप्ति के लिए तप करता है।<sup>७</sup> तप, श्रद्धा, दीक्षा आदि जीवन के अमित्र अङ्ग थे तथा भाजन पर नियन्त्रण रखना तपस्या के लिए एक महत्वपूर्ण अङ्ग माना जाता था।<sup>८</sup> तपस्वी जनों की तपश्चर्या तथा उनके रहन सहन का उल्लेख धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में किया गया है जिसका विवरण पीछे दिया जा चुका है।

### कुलपति

वैदिक तपस्वियों में श्रेष्ठ तथा आश्रम के आचार्य को कुलपति कहा जाता था। ये दश प्रकार के यतिधर्म पालन में निपुण एवं दिव्य ज्ञान युक्त होते थे।<sup>९</sup> वे आश्रम में रहने वाले सभी तपस्वियों के आचार्य व गुरु होते थे।<sup>१०</sup> अन्य तपस्वियों से लेकर साधारण गृहस्थ तक के लोग उन्हें वन्दना-पूजा आदि के

१ सम० क० १, पृ० ३८ ५ प० ३९२ ७, प० ६६४, ६६७।

२ वही १ पृ० १४।

३ वही १ पृ० १२, १४, १७, २६ ३६-४०।

४ वही १, पृ० ४२-४३।

५ वही १ पृ० १६ ५, पृ० ४२०, ४२२ २३।

६ महाभाष्य—३।१।१५ पृ० ५५।

७ काशिका० ३।१।८८।

८ महाभाष्य २।३।३६, पृ० ३९०।

९ सम० क० ५, पृ० ४१७।

१० वही ५, पृ० ४१५, ४१८, ४२२।

साय सम्मान प्रदान करते थे।<sup>१</sup> इस प्रकार के कुलपति को ऋषि अथवा महर्षि<sup>२</sup> कहा जाता था जिनकी वाणी अमोघ समझी जाती थी।<sup>३</sup> तपस्वी-जन सम्पूर्ण प्राणि वग की जननी के सदृश व्यवहार करते थे।<sup>४</sup> यहाँ सम्राट्त्व कहा मैं ऋषि को (आश्रम के आचार्य को) ही कुलपति कहा गया है।

कुलपति का उल्लेख रघुवश<sup>५</sup> तथा उत्तररामचरित<sup>६</sup> में भी किया गया है। बाणभट्ट ने कादम्बरी में महा मुनि अश्वस्त<sup>७</sup> तथा शरीर में भस्म लगाये एवं मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगाये महर्षि जावालि<sup>८</sup> का उल्लेख किया है जो अपने आश्रम में रहते हुए न य मुनिजनों से सेवित तथा धर्म पालन में निपुण समझे जाते थे। वशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है कि मुनिजन सबको अभय प्रदान करते चलते हैं, इसलिए उसे किसी से भय नहीं होता।<sup>९</sup>

### तापसी

वदिक धर्माचरण करने वाले तपस्वियों की भाँति कुलपति के आश्रम में नारी तापसी भी हाँसी थी। वे तापसी पुत्रजीवक माला गले में धारण करती, बल्कल वस्त्र पहनती तथा हाथ में कमण्डलु लिए रहती थी।<sup>१०</sup> वे तापसी तपाचरण से कृशागत कन्दमल फल आदि खाकर अपनी वृत्ति चलाती थी।<sup>११</sup> वे कुलपति की आज्ञानुसार आचरण करती तथा उनकी वन्दना पूजा करती हुई तप-सयम आदि का आचरण करती थी।

सम्राट्त्व कहा के इन उल्लेखों का समयन वदिक परंपरा के ग्रंथों से भी होता है। पतञ्जलि ने ऋकरा नाम की परिव्राजिका का उल्लेख करते हुए कहा है

- १ वही १ पं १६ १७ २१-२२-२३-२४ २६, ३१, ३३ ४१ ५  
पुं ४१४ ४१८, ४४७ ७, पं ६६६ ६८९ ६९०।
- २ वही १ पं १३, ५ पं ४३६ ४३८ ६ पुं ५६६ ९ पुं ९२०  
९२२।
- ३ वही ४ पं २७२ ५ पुं ४२३।
- ४ वही ५, पुं ४३७।
- ५ रघुवश १। ५।
- ६ उत्तररामचरित ३।४८।
- ७ कादम्बरी, अनुच्छेद १७
- ८ वही अनुच्छेद ३८।
- ९ वशिष्ठ धर्मसूत्र २।११।२५।
- १० राम० क० ५ पुं ४१०-११, ४२३-२४।
- ११ वही ५, पं ४२३।



कि कुणखाडव उसे शकरा कहते ह ।<sup>१</sup> वानप्रस्थों में कुमार और कुमारियाँ रहती थी ।<sup>२</sup> कुछ लोग विना गृहस्याश्रम में प्रविष्ट हुए सीधे बखानस व्रत ले लते थे । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इस प्रकार का विधान ह ।<sup>३</sup> इसीलिए अभिनान शाकुंतल में दुष्यंत शकुंतला के विषय में जिज्ञासा करते ह कि क्या वह विवाह हाने तक ही वैखानस व्रत का पालन करेगी अथवा यावज्जीवन ।<sup>४</sup> पाणिनी ने कुमार श्रमणानिभि<sup>५</sup> के श्रमणादिगण में पठित श्रमण, तापसी, प्रजिता शब्द का उल्लेख किया ह जिनका कुमार (कुमारी) शब्द के साथ तत्पुरुष-समास का विधान किया गया ॥ ।<sup>६</sup> कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में पण्डिता कौशिकी का उल्लेख स्यासी के रूप में किया ह ।<sup>७</sup> इस प्रकार हम देखते ह कि समराइच्च कहा में हरिभद्र व अनुसार जन श्रमण सघ की भाँति बहिक तपस्वियों के आश्रम में भी स्त्रियों के प्रवेश का जो उल्लेख ह वह बहिक परम्परा का उपयुक्त विवरण ह ।

### तापस भोजन-वस्त्र

समराइच्च कहा में उल्लिखित तपोवनवासी बल्कल वस्त्र पहनते<sup>८</sup> त्रिपुण्ड्र भस्म<sup>९</sup> (हवन की राख) लगाते तथा कमण्डलु लिए रहते थे ।<sup>१०</sup> वे कदमूल फलादि<sup>११</sup> खाते तथा मास पारण व्रत रहा करते थे<sup>१२</sup> (मास में एक बार भोजन करने तथा पारण के दिन प्रथम प्रविष्ट घर से ही भोजन मिलन अथवा न मिलने पर वापस लौट आने का विधान था) । पारण अथवा पारणा शब्द पार' में निकला है जिसका अर्थ किसी काय अथवा धार्मिक क्रिया विधि को पार करना

- १ मन्नाभाष्य ३।२।१४ पृ० २१२ ।
- २ अष्टाध्यायी २।१।७० (श्रमणादिगण) ।
- ३ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।१।२१।१८, १९ ।
- ४ अभिनान शाकुंतल १।२७ ।
- ५ अष्टाध्यायी २।१।७० ।
- ६ वही २।१।७० ।
- ७ मालविकाग्निमित्र १।१४ ।
- ८ सम० क० ५ पृ० ४१०, ४२४ ।
- ९ वही १ पृ० १२ ।
- १० वही १, पृ० १२ ५ पृ०, ४१०, ४११ ४२३, २४ ।
- ११ वही ५ पृ० ४१०-४११, ४२३-२४ ।
- १२ वही १ पृ० १४ २५, २९-३१, ३३ ।

अर्थात् समाप्त करना है।<sup>१</sup> विष्णुधर्मोत्तर में उल्लिखित है कि पारणा के साथ ही व्रत का अन्त करना चाहिए और उस समय ब्राह्मण का भोजन करना चाहिए।<sup>२</sup> यहाँ समराइच्च कहाँ में मासपारणा व्रत का उल्लेख है जो महीने भर का व्रत था जिसका अन्त महीने के अन्त में पारण (भाजन ग्रहण) के साथ समाप्त किया जाता था। कभी-कभी शरीर त्याग के लिए लोग महा-उपवास व्रत का भी पालन करते थे।<sup>३</sup> धर्मसूत्रा में भी सत्यासियों के भाजन-वस्त्र आदि का उल्लेख है। बौधायन धर्मसूत्र से पता चलता है कि सत्यासी को सिर दाढ़ी तथा शरीर के सभी अङ्गों के बाल धुना कर सोन दण्डों का एक में जाड़कर, एक वस्त्र गण्ड (जल छानने के लिए कपड़ा) एक कमण्डलु एवं एक भिक्षापात्र लेकर जप, ध्यान आदि में सलग्न रहना चाहिए।<sup>४</sup> स्मृतियों में आया है कि सत्यासी को अपने पास कुछ भी एकत्र नहीं करना चाहिए। उसके पास केवल जीणन्दीण परिधान जलपात्र तथा भिक्षापात्र होना चाहिए।<sup>५</sup> महाभाष्य में इयामाक कण और बेर आदि अकृष्टपण्य अन्न तथा फलादि खाने का उल्लेख है।<sup>६</sup> वे सत्यासी ब्राह्मण आदि व्रत का पालन करते थे।<sup>७</sup> सूत्रकार ने अनुताप का भी तप कहा है। यह मासिक अर्थात् मास में पूरा होने वाला व्रत था। काम्बरी के उल्लेख से भी पता चलता है कि साधु लोग उम समय चीर और चक्कल धारण करते त्रिपुण्ड्र भस्म लगाते तथा रुद्राक्ष माला लिए रहते थे।<sup>८</sup>

ये सभी साध्य समराइच्च कहाँ में उल्लिखित तपस्वियों के भाजन-वस्त्र एवं तपाचरण का समर्थन करते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि तपस्वाजन आश्रमों एवं जंगला में रहते, बिल्कुल पहनते, त्रिपुण्ड्र भस्म आदि लगाने, कमण्डलु तथा भिक्षापात्र लिए रहते एवं फल-फूल, भिक्षा आदि पर अपना जीवन निर्वाह करते हुए तपाचरण में लीन रहते थे।

१ पी० बी० कार्ण—हिस्ती आक धर्मशास्त्र, बालूम ५ पाट १, पृ० १२०।

२ वही पृ० १२०-२१ में उद्धृत।

३ वही १, पृ० ३५ ४०।

४ बौधायन धर्मसूत्र २।१०।११-३०।

५ मनु० ४।४३-४४, शौतम ३।१०, वगिष्ठ० १०।६।

६ महाभाष्य १।४।३ प० १३१।

७ वही ५।१।७२ पृ० ३३७।

८ काम्बरी, अनुच्छेद १७, ३६ ३७, ३८।

## जैन दशन

दशन शब्द का अर्थ साधारणतया 'दृष्टि' अर्थात् वाह्य चक्षु से लगाया जाता है। किन्तु सर्वसाधारण लोग जहाँ दृष्टि का अर्थ वाह्य चक्षु से लगाते हैं वही विद्वान विचारक इसका अर्थ आंतरिक चक्षु से लगाते हैं। स्पष्टतया जैन कर्मों भी हम किसी समस्या के समाधान के लिए साधना प्रारम्भ करते हैं वही दशन प्रारम्भ हो जाता है।

समराइच्च कहा में जन दान का प्रधान लक्ष्य आत्मा का सांसारिक मायाजाल से मुक्त कराकर अनन्त सुख (मोक्ष) की प्राप्ति कराना है। इस ग्रन्थ में श्रमण और श्रमण आचार्य के अतिरिक्त कुछ दार्शनिक विचारों का भी विवेचन किया गया है जिससे अतृप्त लाव परलोक, जीव गति, कम गति आदि का विश्लेषण किया गया है।

## ससार गति

समराइच्च कहा ये ससार गति का दारुण बताया गया है।<sup>१</sup> यहाँ इस ससार गति का हेतु मानव जीवन के कर्मों की परिणति है।<sup>२</sup> अतः जीव कम समुक्त पाप से दुःख तथा धर्म कृत्य से सुख प्राप्त करता है।<sup>३</sup> भगवती सूत्र में इस ससार का शाश्वत बताया गया है।<sup>४</sup> भगवान महावीर के अनुसार लोक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। अतः वह नित्य है ध्रुव है, शाश्वत है एवं अरिवतन शील है। यहाँ रहने वालों की कमगति के अनुसार कभी सुख की मात्रा बढ़ जाती है तो कभी दुःख की।

इस ससार में जीव और अजीव नाम की दो वस्तुयें दिखाई देती हैं जो किसी के द्वारा नहीं बनायी गयी हैं।<sup>५</sup> अतः यहाँ सभी प्राणी अपने कृत्यों के परिणामस्वरूप ही ससार गति के हेतु बनते हैं।<sup>६</sup> जन दशन में जीव दो तरह के माने गये हैं—ससारी जीव और मुक्त जीव। ससारी जीव अपने कर्मों के अनुसार बार बार इस ससार के हेतु बनते हैं किन्तु मुक्त जीव अपने कम बर्धन से मुक्त होकर निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति होते हैं।<sup>७</sup>

१ सम० क० ४, प० ३१४८ पृ० ८२६।

२ वही ४ पृ० ३४२ ५ प० ३९६ ४७५, ४८६ ॥ पृ० ६२३।

३ वही १, पृ० १३, ३७, ५, प० ४९० ७, प० ७११ ८ पृ० ७८९।

४ भगवती सूत्र ९।३३।३८७।

५ सम० क० २ पृ० १०९।

६ वही ७ प० ६२१ ८, पृ० ८५१।

७ जवाबी—स्टडीज इन जैनिज्म पृ० २०।

## परलोक

समराइच्च कहा में इहलोक के साथ-साथ परलोक की स्थिति पर भी विवेचन किया गया है। भूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से भिन्न चेतन स्वरूप जीव परलोक गामी होता है।<sup>१</sup> चेतन का अचेतन से भेद माना जाता था। अतः भूत अर्थात् देह से भिन्न चैतन्य की सिद्धि पर यह विश्वास किया जाता था कि परलोक भी है।<sup>२</sup> हर प्राणी की मृत्यु के पश्चात् उसका अस्तित्व रूप जीव परलोक गामी होता है। कर्म की सत्ता स्वीकार करने पर तत् फलस्वरूप परलोक और पुनर्जन्म की सत्ता भी स्वीकार करनी पड़ती है।<sup>३</sup> जसा कि सबविदित है ब्राह्मण एवं बौद्धों में भी परलोक (स्वर्ग एवं नरक) की सत्ता में विश्वास किया जाता था।<sup>४</sup>

जन दार्शनिक विचारधारा के अनुसार जीव नौ प्रकार के माने गये हैं—ससारी जीव और मुक्त जीव। मुक्त जीव में कोई भेद नहीं माना गया है किन्तु ससारी जीव चार प्रकार के माने गये हैं—नारक, त्रियक, मनुष्य एवं देव। इस पृथ्वी के नीचे सात नरक की सत्ता स्वीकार की गयी है, उनमें जो जीव निवास करते हैं वे नारकीय कहलाते हैं। ऊपर स्वर्ग में जो निवास करते हैं वे देव, मनुष्य और पशु पक्षी कीड़े, मकोड़े आदि त्रियक कहे गये हैं।<sup>५</sup> इन चारों विभेदा से भी परलोक की सत्ता स्पष्ट होती है।

समराइच्च कहा में परलोक की गति का विवेचन करते हुए बताया गया है कि जीव के अनैतिक कर्मों का परिणाम (मृत्यु के पश्चात्) नरक वास है। नरक लोक के सदस्य में स्पष्ट करते हुए हरिमद्र सूरि ने बताया है कि महान अपराध करने वाला पुरुष जो 'यापी राजा की आगा से गृहीत है, भयकर जेल रखकों के द्वारा लाहे की साकल से जकड़ा हुआ शरीर वाला है, धार अधकार रूपी जेल में रहने वाला है तथा परतप्त है जिससे अत्यन्त स्वजन वर्गों का वह देख भी नहीं सकता शिखा देने की सो दात ही दूर है।<sup>६</sup> अतः पाप कृत्य करने वाले प्राणी नरक लोक में अपने कृत्या का परिणाम भागते हैं। इसी प्रकार नरक-

१ सम० क० ३ पृ० २०४।

२ वही १, पृ० ६० ३ पृ० २०५।

३ मोहन लाल मेहता—जन दर्शन, पृ० ३५७।

४ वामुदेव उपाध्याय—सांख्यारिजस कन्दोशन आफ नाथ इन्दिया, पृ० १८५।

५ मोहन लाल मेहता—जन दर्शन, पृ० ३५७।

६ सम० क० ३ पृ० २०८९।



## जीव गति

समराइच्च कहा में जन दशन के प्रभावस्वरूप जीव गति का भी उल्लेख प्राप्त होना है, जिसका विश्लेषण इस प्रकार है—

चित्त, चेतना, मना विमान धारणा तथा बुद्धि ईहा, गति एव वित्तक य सब जीव है ।<sup>१</sup> जिस प्रकार शब्द का कोई रोक नहीं सकता उसी प्रकार जीव को भी रोक नहीं जा सकता ।<sup>२</sup> जीव की स्थिति के बारे में उल्लिखित है कि वह जीव भूत (पंचेंद्रिय) से भिन्न शरीर में उसी प्रकार अस्थिर रहता है जैसे अरणि में अग्नि विद्यमान रहती है ।<sup>३</sup> अतः मृत्यु के पश्चात् वह से भिन्न चेतन स्वरूप जीव परलोकगामी होता है तथा उसका स्वरूप सूक्ष्म एवं अनिन्द्रिय है ।<sup>४</sup> इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है कि जीव इन्द्रियों का विषय नहीं है और न तो साधारण चम चक्षु से देखा ही जा सकता है अपितु मित्र सबन तथा पाना साधुगण ही गानरूपी प्रकाश से देखते हैं ।

इस चतुर्थ युक्त जीव की निश्चित पहचान व्यवहार में पांच इन्द्रियों, मन वचन काय रूप सीना बलों तथा आसोच्छ्वास और आयु आदि इन दश प्राण रूप लक्षणों की हीनाधिक सत्ता के द्वारा की जा सकती है ।<sup>५</sup> जीव के और भी अनेक गुण हैं । उनमें कतृत्व शक्ति है और उपभाग का सामर्थ्य भी है तथा वह आमृत है ।<sup>६</sup> ससार में इस प्रकार के जीवों की संख्या अनन्त है । प्रत्येक शरीर में विद्यमान जीव अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और उस अस्तित्व का कभी ससार में या मास में विनाश नहीं हो सकता ।<sup>७</sup>

समराइच्च कहा में जीव के दो भेद बताये गये हैं—स्थायर और जगम । पृथ्वी, जल, ज्वलन, मास्त और वनस्पतिकाय का स्थावर तथा कृमि, कीट, पतंग महिष, गा तथा वृषभ आदि का जगम बताया गया है ।<sup>८</sup> स्थावर से जगमत्व दुर्लभ है । जीव यदि जगमत्व का प्राप्त करता भी है तो अनेक भेद

१ सम० क० ३, पृ० २१३ ।

२ वही ३, पृ० २११ ।

३ वही ३ पृ० २०५, २१३ ।

४ वही ३ पृ० २०४ २०५ ।

५ गान्धर्व सार—जीवकाण्ड—१२९ (पंच वि इन्द्रियाणा मन वचकायेसु तिष्ठिबलयाणा । आणव्याणव्याणा आत्मयाणेण ह्येति दस पाणा) ।

६ हीरालाल जन—भारतीय संस्कृति में जन धर्म का योगदान पृ० २१८ ।

७ वही पृ० २१८ ।

८ सम० क० ४ पृ० ३४७ ।

वाले कुमि कीट पतंग आदि योनियों में चला जाता है और फिर उनमें घूमते घूमते पचेन्द्रियत्व को प्राप्त करता है। उन पचेन्द्रिय जीवों में गी, ऊँट आदि योनिया में भ्रमण करते हुए संयोगवश मनुष्यत्व को प्राप्त करता है।<sup>१</sup>

भगवती सूत्र में जीव की पहचान रगरहित, गघरहित स्वादरहित स्पर्श हीन, अरूप, शाश्वत और ब्रह्माण्ड में सदा स्थित रहने वाले चतुर्थ से की गयी है जिसे जाव जीवास्तिकाय, प्राण भूय सत्य बिन्दु, सेया जेया और आया आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है।<sup>२</sup> जीव को इस परिभाषा के फलस्वरूप यह स्वाकार किया जाता है कि चतुर्थ रूप जीव किसी रूप में सास लेता है और किसी रूप में सास नहीं भी लेता है।<sup>३</sup> अतः समराइच्च कहा की भाँति यहाँ भी जीव का अमर एवं शाश्वत बताया गया है। अर्थात् न इसे कोई मार सकता है और न जला सकता है।<sup>४</sup> जीव के दो भेद बताये गये हैं—ससारी और मुक्त जीव। यहाँ ससारी जीव के भी दो भेद बताये गये हैं—वस (चलने फिरने वाले) और स्यावर (अचल)। समराइच्च कहा में उल्लिखित जगम को वस कहा गया है। इन्द्रियों की गणना के अनुसार इन दोनों में भी कई भेद बताये गये हैं। स्यावर को पाँच भागों में विभाजित किया गया है—पथ्वीकाय अपकाय (जलकाय) वायुकाय, तेजकाय और वनस्पतिकाय।<sup>५</sup> इसी प्रकार वस के भी चार भेद माने गये हैं—द्विन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव।<sup>६</sup>

समराइच्च कहा में जीव का परिणाम भी मल एवं कलक मुक्त स्वर्ण की भाँति शुद्ध बताया गया है।<sup>७</sup> इस प्रकार का जीव स्वभाव से उचित कर्मों के विपाक को जानकर अपराध करने वाले पर भी उपशम के कारण कभी क्रोध नहीं करता है और जीव भाव से इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख को दुःख ही मानता हुआ वह मुक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की प्राप्ति नहीं करता।<sup>८</sup> ममत्व रूपी विषयों से रहित होता हुआ निर्बन्ध के द्वारा नारक तिर्यक, नर और देव

१ सम० क० ४, पृ० ३४७-४८।

२ भगवती सूत्र—२०।२।६६५।

३ वही ६।१०।२५६।

४ वही ८।३।३२५।

५ वही ३३।१।८१४।

६ भगवती सूत्र—३३।१।८१४।

७ सम० क० १, पृ० ६०।

८ वही १, पृ० ६०।

भवा में वास का वह दुःख ही मानता है तथा वह जीव भयकर भवसागर में दुःख से पीड़ित प्राणी समुदाय को देखकर सामान्य रूप से अपनी शक्ति के अनुसार बाहर और भीतर से अनुकम्पा करता है।<sup>१</sup>

इस प्रकार वह प्राणी (जीव) अपरिमित परिग्रह से दूर रहता है तथा देश विरति परिणाम से युक्त अणुव्रतों को स्वीकार करके अतिचारा को नहीं करता। भाव में भी उसके परिणाम का पतन नहीं होता और आचरण के प्रभाव से जीव अन्त में परम पद (मोक्ष का अनुगामी) का भागी हो जाता है। भगवती सूत्र के अनुसार भी भावव्युत्सर्ग (विचारों का त्याग) तथा द्रव्यव्युत्सर्ग (शरीर, काम सत्कार एवं अन्य प्रकार के सासारिक बंधन से युक्त कर्मों का त्याग) से यह जीव मोक्ष का प्राप्त होता है।<sup>२</sup> इस प्रकार सत्यक-ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र से पूर्णता को प्राप्त होकर वह अन्त सुख का भागी होता है।

### कमगति

समराइच कहाँ में जीव ने सुख-दुःख तथा पाप पुण्य आदि का कारण कम परिणति बताया गया है।<sup>३</sup> इस सत्कार में व्यक्ति पूर्ववृत्त कम के प्रभाव से ही क्लेश का भाजन बनता है दारिद्र्य दुःख का अनुभव करता है अथवा सुख समृद्धि का हेतु बनता है। इस प्रकार जीव अनादि कम समुक्त पाप से दुःख तथा धम काय से सुख का अनुभव करता है।<sup>४</sup> कम की महत्ता स्वीकार करते हुए हरिभद्र ने इसकी आठ मूल प्रकृतियाँ बतायी हैं। इन्हीं आठ मूल कम प्रकृतियों के ही परिणामस्वरूप अनुकूल एवं प्रतिकूल फल प्राप्त होते हैं। ये आठ मूल प्रकृतियाँ हैं—जानावरणीय (जीव के सभी ज्ञान पर परदा डाल कर उसका घात कराने वाली), वदनीय (सुख दुःख का अनुभव कराने वाली) मोहनीय, (आध, मान, माया लाभ, मोह और चरित्र आदि में आत्मा का बंध करके उसका घात करने वाली) आयु (देवायु, मनुष्यायु प्रियवायु और नरकायु में भ्रमण करने वाली), नाम (शुभ और अशुभ नाम प्रकृत बंध द्वारा आत्मा का घात कराने वाली) मात्र (उच्छ्वसोत्र और निम्नोत्र के बंधन द्वारा आत्मा का घात कराने वाली) और अन्तराय (दान लाभ एवं भोग उपभोग आदि से दूर रख कर आत्मघात कराने वाली)<sup>५</sup>। इन आठों मूल कम प्रकृतियों की स्थिति दो प्रकार

१ सम० क० १ पृ० ६० ६१।

२ भगवती सूत्र—२५।७।८०३।

३ सम० क० ४ पृ० ३४२ ५ पृ० ३९६ ४७५, ४८६, ७ पृ० ६२३।

४ वही १ पृ० १३ ३७ ५ पृ० ४९० ७ पृ० ७११, ८ पृ० ७९८।

५ वही १, पृ० ५८, ९, पृ० ४४५-४६ ४७।



की बतायी गयी है—उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति । उत्कृष्ट स्थिति नानावरणीय, दशनावरणीय वेदनीय और अन्तराय की तीस कांडा कोडी सागरापम, नाम और गात्र की वास कोडा कोडी सागरापम, मोहनीय का सत्तर कोडा-कोडी सागरापम और आयु की तैनीस सागरापम की स्थिति मानी गयी है ।<sup>१</sup> जघन्य स्थिति वेदनीय का बारह मुहूत नाम गोत्र की आठ मुहूत और शेष की अन्तर मुहूत है ।<sup>२</sup>

साधारणतया जन ज्ञान में कर्मों की यह स्थिति जीव के परिणामस्वरूप तीन प्रकार की मानी गई है—जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट । नानावरणीय दशनावरणीय और अन्तराय इन तीन कर्मों की जघन्य अर्थात् कम से कम स्थिति अतमुहूत और उत्कृष्ट अर्थात् अधिक से अधिक स्थिति तीस कोडा-काडी सागर की होती है । वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूत और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-काडी सागर की है । मोहनीय कम की जघन्य स्थिति अतमुहूत और उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडा-कोडी सागर की है । आयु की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति क्रमशः अतमुहूत और तैनीस सागर की तथा नाम और गात्र दोनों की अतमुहूत और तीस कांडा कोडी सागर की कही गयी है । जघन्य और उत्कृष्ट के बीच की समस्त स्थितियाँ मध्यम कहलाती हैं ।<sup>३</sup>

समराइच्चकहा की भाँति भगवती सूत्र में भी कम वध का चार प्रकार का बताया गया है—प्रकृति वध स्थिति वध अनुभाग वध और प्रदेश वध ।<sup>४</sup> इनकी प्रकृति के अनुसार कम की आठ मूल प्रकृतियाँ बतायी गयी हैं—ज्ञानावरणीय दशनावरणीय वेदनीय मोहनीय आयु नाम, गात्र और अन्तराय ।<sup>५</sup> भेद प्रभेद से इन्हें एक ही अट्ठावन प्रकार का बताया गया है ।<sup>६</sup> जिस प्रकार भोजन शरीर में पहुँच कर विभिन्न रूपों में परिवर्तित हो जाता है और उसके (शरीर के) विकास में सहायक होता है इसी प्रकार कम के गुण भी आत्मा में

१ सम० क० १ प० ५८ ।

२ वही १ प० ५८ ।

३ हारालाल जन—भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान प० २३४ २५ (एक मुहूत का प्रमाण आधुनिक कालगणना के अनुसार अठतालीस मिनट होता है तथा सप्ताहीत वर्षों के काल को सागर कहते हैं ) ।

४ भगवती सूत्र १।४।३८ ।

५ वही १८।३।६२१ ।

६ जे० सी० सिकदार—स्टडीज इन दी भगवती सूत्र, प० ६०० ।

मिलकर उसे मूल रूप में आठ प्रकार से बाधित करते हैं।<sup>१</sup> प्रत्येक कम प्रवृत्ति की कुछ निश्चित अवधि होती है जिसके अन्तर वह अपना प्रभाव दिखाती है और अवधि समाप्त होने पर पुन आत्मा से अलग हो जाती है।<sup>२</sup>

समराइच्च कहा में कम के संयोग से दुःख तथा कम की निवृत्ति से सुख की प्राप्ति बताया गया है।<sup>३</sup> जरा दुःख है उसकी निवृत्ति सुख है मरण दुःख है और उसकी निवृत्ति सुख है, बलेश दुःख है उसकी निवृत्ति सुख प्रिय दुःख है और उसकी निवृत्ति सुख है। अतः अनादि कम संयोग से ये प्राणा गण सुख के स्वरूप को नहीं जानते। इसी प्रकार जन्म, जरा मरण राग, इच्छा प्रिय संश्लेश आदि का भी समझना चाहिए।

उपरान्त प्रकार के परिणाम का प्राप्त होने पर कोई जीव ऐसा होता है जो इसका भेदन करता है और कोई ऐसा भी है जो इसका भेदन नहीं करता है।<sup>४</sup> कम भेदन के परिणाम स्वरूप जीव सम्यक्त्व का प्राप्त होता है तथा वह बहुकम मलमुक्त होकर अपने स्वरूप भाव का प्राप्त होकर प्रसन्न, दयावान्, तथा संसार से उद्विग्न हो सभी भवापघाही कमाश का नाश करके और जन्म, जरा, मरण, रोग शोक आदि से रहित होकर परम पद को प्राप्त करता है।<sup>५</sup> समराइच्च कहा की भोति भगवती सूत्र में भी जीव का विभिन्न गतियों का कारण कमबाध ही बताया गया है और जीव इन कम के गुणों से मुक्त होकर पूर्णता का प्राप्त होता है।<sup>६</sup> यही पूर्णता की स्थिति सर्वाय सिद्धि (माय) की स्थिति जानी जाती है जिस प्राप्त कर लेने पर जीव का पुन जन्म नहीं लेना पड़ता।

वे धर्मों से मुक्त जीव पूर्णता को प्राप्त होकर मुक्ति (आत्मा गमन से रहित) का प्राप्त होता है।<sup>७</sup> जब आत्मा के समस्त कम अलग हो जाते हैं तब जीव कममलमुक्त होकर माय को प्राप्त होता है।<sup>८</sup>

### धार्मिक दशम-जीव

हरिभद्र सूरि ने समराइच्च कहा के तीसरे भाग में आस्तिकवाद के साथ

१ जकोवी—स्टडोज इन जनिज्म, पृ० २५ २६।

२ वही पृ० २६।

३ सम० क० ३, पृ० २१७।

४ वही १, पृ० ५९।

५ वहा १, पृ० ५९ ६० ६५, ४, पृ० ३३३ ९, पृ० ६९३।

६ भगवती सूत्र ७।१।२५५।

७ जकोवी—स्टडोज इन जनिज्म, पृ० २०।

८ माहेश्वर महता—जन्म दशम, पृ० ३४८।

साय नास्तिकवाद का भी उल्लेख किया है। नास्तिकवाद को चावकि सिद्धान्त माना जाता है जिसका सिद्धान्त सामाजिक सुखों का पुनर्त उपभाग करना था। क्योंकि उनके अनुसार इस भौतिक जीव का पुनर्जन्म नहीं होता।

चावकि गण का व्युत्पन्नार्थ—चार अर्थात् मनोरम तथा वाक अर्थात् उपदेशमय वचन से सजाया जाता है। निसर्ग से ही प्राणी को परोक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष सुख की प्राप्ति के लिए तथा प्रत्यक्ष दुःख से निवृत्ति पाने के लिए प्रवृत्ति होती है।<sup>१</sup> चावकि के दार्शनिक सिद्धान्त में एकमात्र अजड तत्त्व की मान्यता है।<sup>२</sup> इसके सिद्धान्त में भूमि, जल अग्नि और वायु ये ही चार तत्त्व प्रमथ रूप में स्वीकृत किये गये हैं। इन्हीं चार भूतों का संघटित मात्रा में संयोग होने से स्वभावतः चेतना उत्पन्न हो जाती है जिस प्रकार किष्कान्ति तथा गुड और महुआ आदि मादक द्रव्यों का संयोग होने पर मादकता<sup>३</sup> एवं चूना, पान-मुषारी के एकत्र होने पर रक्तिमा का उत्पत्ति हो जाती है।<sup>४</sup> इस सिद्धान्त के अनुसार मैं स्थूल हूँ, मैं जग हूँ आदि साधारण उक्तियाँ से तथा स्थूलता और कषता आदि विशेषणों के योग से देह के अतिरिक्त अन्य किसी भी अतीन्द्रिय आत्मा की सिद्धि नहीं होती है।<sup>५</sup>

समराइच्च कहा में चावकि विचारधारा के अनुसार पांच भूतों अर्थात् पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश के मेल से ही पैदा हुए चतुर्ध को जीव कहा गया है और जब ये भूत नष्ट हो जाते हैं तो यह कहा जाता है कि जीव मर गया।<sup>६</sup> ऊपर के उल्लेखानुसार चावकि मत में चार तत्त्वों की ही प्रधानता बतायी गयी है जब कि समराइच्च कहा में आकाश नामक तत्त्व का भी जोड़ दिया गया है। पृथ्वी जल, तेज, आदि भूतों में एक ऐसी परिणाम की विचित्रता पायी जाती है जिससे चेतनता सारों में ही आती है अन्यत्र नहीं।<sup>७</sup> नास्तिकवाद जहाँ यह मानता है कि ये भूत अचेतन हैं जो शरीर रूप में परिणत होने पर प्रत्यक्ष रूप में चेतना नहीं आने देते, क्योंकि जो वस्तु जिनके अन्तर्ग रहने में नहीं पायी जाती वह उनके समूह में भी नहीं पायी जा सकती। अर्थात् उनके अनुसार इस

१ सर्वानन्द पाठक—चावकि दर्शन की शास्त्रीय मभाषा पृ० ८।

२ वाहस्पत्य सूत्र २३।

३ वही पृ० ४।

४ गकराचार्य—सर्व सिद्धान्त संग्रह ७।

५ सर्वानन्द पाठक—चावकि दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, पृ० २७।

६ सम० क० ३, पृ० २०१-२०४।

७ सम० क० ३ पृ० २०६।

अचेतन भूत के अतिरिक्त चैतन्य जीव का अस्तित्व है।<sup>१</sup> जब कि नास्तिकवाद के अनुसार इन्द्रियों का गुण ही जीव है तथा उसकी अधिमायता में शरीर से भिन्न जीव नाम की दूसरी वस्तु नहीं है।<sup>२</sup> आदि पुराण में चार्वाक मत की व्याख्या में बताया गया है कि पाप, पुण्य तथा परलोक आदि सत्य नहीं हैं। शरीर के विनष्ट होते ही आत्मा भी नष्ट हो जाती है।<sup>३</sup> अर्थात् यहाँ भी शरीर से भिन्न जीव नामकी कोई वस्तु नहीं मानी गयी है।

### लोक परलोकवाद

प्राचीन नास्तिकवाद के अनुसार जहाँ लोक तथा परलोक में विश्वास किया जाता था, वही नास्तिकवाद मात्र भौतिक लोक में विश्वास करता था। नास्तिक मत में स्वर्ग-नरक आदि कोई वस्तु नहीं है क्योंकि पंचभूतों के मेल से उत्पन्न चैतन्य को ही जीव कहते हैं और भूतों के नष्ट हो जाने पर वह जीव भी शरीर के साथ नष्ट हो जाता है, जिसके लिए स्वर्ग-नरक आदि परलोक गमन का प्रश्न ही नहीं उठता।<sup>४</sup> नास्तिकवाद का यह भी विचार था कि कोई भी जीव मृत्यु के पश्चात् लौट कर अपना स्वरूप नहीं दिखलाता जिससे यह सिद्ध होता है कि परलोक नाम की कोई वस्तु है ही नहीं।<sup>५</sup> अतः नास्तिक विचारधारा के अनुसार यह ससार ही सब कुछ है जहाँ जीव का हर प्रकार के भोगोपभोग का सेवन करना चाहिए।

महाभारत में भी चार्वाक मत के प्रतिपादन में परलोक में अविश्वास किया गया है। यहाँ तपस्वी श्रेष्ठधारी चार्वाक ने मुधिष्ठिर से पारलौकिक सुख को बयान बताते हुए कहा है कि परलोक नाम की कोई बात है ही नहीं तथा परलोक सुख कहाँ से सम्भव है।<sup>६</sup> चार्वाक मत के अनुसार यदि आत्मा का परलोक गमन मयाय है तब कभी कभी या धर्मों के स्नेह से आवृष्ट होकर वह परलोक में लौट भी आता है पर ऐसा नहीं होता है। अतएव आगत परलोकिया के अभाव में परलोक की सत्ता सिद्ध नहीं होती जिससे स्पष्ट होता है कि यह सम्प्रदाय अपर लोकागामी है।<sup>७</sup> इस तथ्य का समर्थन समराश्चव कहा से भी होता है।

१ सम० क० ३, पृ० २०४, २०६।

२ वही ३, पृ० २०८ २१० ११।

३ आदि पुराण ५।६५ ६८।

४ सम० क० ३ पृ० २०२।

५ वही ३, पृ० २०२।

६ महाभारत—नान्तिपत्र ३८।२२ २७, ३९।३ ५।

७ सर्वानन्द पाठक—चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय ममीमा पृ० २७।

वाहस्पत्यसूत्र में उल्लिखित है कि इस चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा अनुभूयमान लोक के अतिरिक्त किसी भी परलोक की सत्ता नहीं है।<sup>१</sup> व्यय में स्वयं की कामना कभी भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि स्वयं नामक पन्था का वही भी अस्तित्व नहीं है।<sup>२</sup> इन सभी उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि नास्तिकवाद की विचारधारा में जो पदार्थ दृष्टिगत होते हैं वे ही सत्य हैं। चक्षु हो तो दृष्टि का उत्कृष्टतम साधन है।

पुराणों में भी वही-वही नास्तिकवाद की व्याख्या में परलोक की सत्ता का अविश्वास प्रकट किया गया है। पद्मपुराण में एक जगह उल्लिखित है कि न वही स्वयं का अस्तित्व है और न किसी प्रकार के मोक्ष का व्यय ही लोग इनकी उपलब्धि के लिए कष्ट उठाते हैं।<sup>३</sup> रामायण में भी पिता की मृत्यु के पश्चात् शाव में व्याप्त राम को आश्वासन देते हुए जाबालि नामक एक द्विज ने नास्तिकवादी परंपरा के विचारों को ही व्यक्त करते हुए कहा है कि हे महामते ! वास्तव में इस प्रत्यक्ष लोक के अतिरिक्त अन्य परलोक आदि कुछ नहीं है। अतः जो प्रत्यक्ष है उस ग्रहण कीजिए और जो परलोक है उसे उपेक्षित कीजिए।<sup>४</sup> सब सिद्धान्त सग्रह में भी कहा गया है कि इस प्रत्यक्ष दृश्यमान संसार के अतिरिक्त अन्य कोई भी लोक (स्वयं नरक आदि) सत्य नहीं है।<sup>५</sup>

हरिमन्न सूरि ने पद्मपुराण समुच्चय में लोकायत मत के सिद्धांतों को प्रस्तुत करने में परलोक का खण्डन करते हुए कहा है कि जितना स्पृशान रसन, घ्राण, चक्षु, और श्राव इन इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यगाचर रहा है उतना ही दूभर है और यदि कहा जाय कि परलोक की भी सत्ता है तो वह केवल दशक के शृंग तथा बच्चा के पुत्र के ही समान है। आगे बताया गया है कि वह परलोक सत्ता युक्त पद के समान है। माना जा मयाध में प्रकृत युक्त पद का चिह्न न होकर कृत्रिम मात्र है, अर्थात् राजमाग की धूलि में अपनी अगुलियां से चित्रित एक कृत्रिम युक्त का चिह्न निमित्त कर कोई लोक प्रतिष्ठित अनुभवी पंडित लागा को उसे दिखला कर यह कहता है कि रात में एक बुक आया था उसी का यह पत्र चिह्न है और अन्य लोग भी इस पर विश्वास कर लेते हैं।<sup>६</sup>

<sup>१</sup> वाहस्पत्य सूत्र २९ (नास्ति परलोक) देखिए—त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित १।१।३३०।

<sup>२</sup> वाहस्पत्य सूत्र १२ (नत्र दियाच्च)।

<sup>३</sup> पद्मपुराण—सृष्टि खण्ड १३।३२३।

<sup>४</sup> रामायण २।१०९।१७ (स नास्ति परमित्येत कुरु वृद्धि महामते। प्रत्यक्ष यत्तदातिष्ठ परोक्ष पठन कुरु)।

<sup>५</sup> शंकराचार्य—सर्वमिदं सग्रह ८।

<sup>६</sup> पद्मपुराण समुच्चय बलाक ८१।

उपराक्त उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि चार्वाक विचार धारा के लोग परलोक की सत्ता में विश्वास नहीं करते थे। उनका विचार था कि जब तक जीवन है तब तक शरीर का हर प्रकार से सुख देना ही उचित है।

### मृत्यु

आस्तिक विचारकों के अनुसार मृत्यु हमें मा मारने के लिए तैयार रहती है,<sup>१</sup> जिसे नास्तिक चिन्तकों ने निराधार माना है। उनका विचार है कि क्या घर छाँट कर साधु बनने वाला के पास मृत्यु नहीं जाती। उनके अनुसार जगत की स्थिति ही ऐसी है कि मूल, पण्डित, साधु, गृहस्थ आदि सभी का मरना पड़ता है और अंत में मरकर श्मशान जाना ही पड़ता है। इसलिए आरम्भ से ही श्मशान वास करना उचित नहीं।<sup>२</sup> पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) के नष्ट हो जाने पर शरीर के साथ ही साथ जीव भी नष्ट हो जाता है।<sup>३</sup> चार्वाक विचारधारा के अनुसार घड़े में रहने वाली बिड़िया की भाँति कोई आत्मा शरीर में नहीं रहती जो मृत्यु के पश्चात् परलोक की यात्रा करे।<sup>४</sup> आदिपुराण में भी चार्वाक मत के सदस्य में उल्लिखित है कि शरीर के नष्ट होते ही आत्मा भी नष्ट हो जाती है। इसलिए जो पंक्ति प्रत्यक्ष का मुग्न छाड़कर परलोक की कामना करता है वह इस लोक के भी सुखों से वंचित हो जाता है।<sup>५</sup> शरीर की स्थिति प्राणमय है। अतः प्राणवायु के निकल जाने पर शरीर और इन्द्रिय समूह मृत हो जाते हैं तथा प्राणवायु के रहने पर शरीर जीवित रहता है।

देह इन्द्रिय, मन और प्राण ये भौतिकवाद पर आधारित हैं। भूतों में ही इस मत के समस्त विचार निहित हैं। इन स्थूल भूतों के आने जाने पर भौतिकवादी दृष्टि असमय हो जाती है। उपनिषदों आदि में कालवाद, नियतिवाद, स्वभाववाद, यदुच्छावाद, भूतवाद और पुरुषवाद आदि का प्रसंग मिलता है।<sup>६</sup> मृत्यु अर्थात् इस जड़ तत्त्व विनिर्मित देह का नाश ही मोक्ष है।<sup>७</sup> इस प्रकार चार्वाक दर्शन में इन पंचभूतों के (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) संयोग से ही जीव की उत्पत्ति होती है तथा इनके नष्ट हो जाने पर मृत्यु की सत्ता

१ सम० क० ३ पृ० २०२।

२ वही ३, पृ० २०२।

३ वही ३, पृ० २०१।

४ वही ३, पृ० २०१।

५ आदि पुराण ५।६५ ६८।

६ श्वेताश्वरोपनिषद्—(शुक्ल भाष्य सहित-गीता प्रेस) १।२।

७ बाह्यस्पष्ट सूत्र ८ (मरणमेवापवस)।

स्वीकार की जाती ॥ १। चार्वाक सिद्धान्त मृत्यु के पश्चात् परलोक (स्वर्ग-नरक) तथा मोक्ष आदि में विश्वास नहीं करता, क्योंकि वह दृश्य नहीं ॥ १।

### विषय-सुख

आस्तिक चिन्तकों के अनुसार जहाँ विषय परिणाम भयानक माना जाता था वही नास्तिक विचारधारा के लोग यह कह कर विषयों के उपयोग की स्वीकृति देते हैं कि आहार का परिणाम भी तो भयानक है तो क्या इस भी छाड़ देना चाहिए १ उनका विचार में जगत की स्थिति ऐसी है कि उपाय जानने वालों के लिए दारुणत्व का संभावना नहीं है । जीव भूता का मिथित चतन्य रूप है । जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसके नरक-स्वर्ग आदि लोक में जाने का प्रश्न ही नहीं उठता । इस भस्मीभूत शरीर का पुनर्गमन नहीं होता । अतः विषयों का सेवन उचित है, क्योंकि सुख सेवन में ही सुख की उपलब्धि होती है न कि तप, व्रत, सत्य आदि कष्टों से १२

आस्तिकवादी संप्रदाय में धर्म अथ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं, पर नास्तिकवादी एक मात्र काम अर्थात् विषयासक्ति को ही पुरुषार्थ मानते हैं १३ वाहस्पत्य सूत्र में एक स्थान पर कहा गया है कि एक मात्र काम क्रीडा ही प्राणियों की उत्पत्ति का कारण है १४ मत्तमत्त तथा कामिना सुन्दरियों का संगम करने में सक्ताच नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसमें सद्य तथा अत्यक्ष आनन्द अनुभूति होती है १५ और सुन्दरी तथा मदमाती कामिनिशा का दर्शन करना चाहिए क्योंकि इससे प्रत्यक्ष मानसिक प्रसन्नता प्राप्त होती है १६

आचार्य वात्स्यायन ने विषय-सुख का चयन उचित बताया है । उनके अनुसार कामाचार भी दैनिक आहार के समान ही सेवनीय है । जिस प्रकार दैनिक आहार का अजीर्णादि दोषों के उत्पादक होने पर शरीर की रक्षा के लिए उपयोगी मानकर सेवन किया जाता है उसी प्रकार कामाचार का भी सेवन करना विधेय

१ सम० क० ३ प० २०२ ३ ।

२ वही ३ प० २०२ ३ ।

३ वही ३ प० २०२ २०४ ।

४ वाहस्पत्य सूत्र ५ (काम एवक पुरुषार्थ) ।

५ वही १६ (काम एव प्राणिना कारणम्) ।

६ वही १५ (मत्त कामिन्य सेया) ।

७ वही १६ (दिव्य प्रमत्तादक्षतन्त्र) ।

है। कामाचरण के सबया परित्याग से उन्मादि आदि दोषों की उत्पत्ति की सम्भावना रहती है, जिसमें शरीर की स्थिति भी उपद्रवित हो सकती है।<sup>१</sup>

सवसिद्धान्तसंग्रह में चार्वाक दर्शन के विवरण के अनुसार पौडमी कामलागी रमणी का सगम सुन्दर वस्त्र तथा सुगन्धित माला का धारण और श्वेत चदन के अनुलेपन में ही स्वर्ग सुख की अनुभूति होती है। शत्रुणा के अस्नघात जनित पीडा आदि उपद्रवा में ही नरक अर्थात् दुःख की अनुभूति होती है और प्राणवायु का निकल जाना अर्थात् मृत्यु ही मोक्ष है।<sup>२</sup> प्रवाच चन्द्रान्य में बताया गया है कि 'विषय सगम जनित अनुपम सुख दुःख मिश्रित होने के कारण त्याग्य है यह मूर्खों का विचार है। भला ऐसा कौन आत्महितपा व्यक्ति होगा जो स्वयं भूखी से छिपे श्वेत-स्वच्छ और उत्तम तण्डुल कणों से युक्त घात अन्न का त्यागना भी चाहेगा।'<sup>३</sup>

### मनुष्यत्व

आस्तिक वा नहि धर्म अथ-काम मार मान इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति को ही मनुष्यत्व का आधार मानता है तथा उभ सुकृत कम का परिणाम बताता है वहीं नास्तिकवाद मनुष्यत्व का भूतों अर्थात् पश्वी जल तेज वायु और आकाश की ही परिणति बताता है।<sup>४</sup> बाहस्पत्यसूत्र में बताया गया है कि अथ अर्थात् धनापाजन तथा कामाचरण—ये ही पुरुषार्थ मान्य हैं अर्थात् यहा धर्म और मान का मान्यता नहीं दी गई है।<sup>५</sup> इस प्रकार चार्वाक विचारधारा में मनुष्यत्व का प्राप्ति सुकृत अथवा दुष्कृत कम का परिणाम न होकर पंच भूतों का ही परिणाम है जिसकी सायकता धनापाजन तथा कामाचरण में ही है।

### धर्मकृत्य और विश्वास

#### दान

समराइच्च नहि में व्यक्ति का महानतम लक्ष्य परमाय की सिद्धि बताया गया है। इस परमाय की सिद्धि के लिए दान, शील और तप ये तीन प्रमुख

१ वात्स्यायन-कामसूत्र—अथ मगला टीका १।१।४६।

२ शंकराचार्य—सवसिद्धान्त संग्रह ९, १०।

३ चन्द्रोप २।५०।

४ सम० क० ३, पृ० २०२।

५ बाहस्पत्य सूत्र २७ (अथकामो पुरुषार्थः)।



साधन माने गये ह ।<sup>१</sup> इसी ग्रन्थ में आगे यहाँ तक उल्लेख ह कि दान और परोपकार रहित सम्पत्ति का उपभोग करना लोक विरुद्ध ह ।<sup>२</sup> अतः स्पष्ट ह कि तत्कालीन समाज में दान देने की प्रवृत्ति अधिक थी । व्यापारिक वर्ग के लोग तो निज भुजोपाजित धन से महादान देते थ ।<sup>३</sup> काण के अनुसार दान उसे कहते ह जिसके द्वारा किसी दूसरे का अपनी वस्तु का स्वामी बना दिया जाता ह ।<sup>४</sup> देवल ने शास्त्रोक्त दान की परिभाषा इस प्रकार दी ह—शास्त्र द्वारा उचित ठहराये गये व्यक्ति को शास्त्रानुमादित विधि से प्राप्त धन का दान कहा जाता ह ।<sup>५</sup>

दान की महत्ता के प्रमाण वैदिक काल से प्राप्त होते ह । वैदिक काल में विविध प्रकार के दानों का उल्लेख है, यथा—गौ दान, अश्व दान, रत्न दान, ऊँट दान, नारा दान, (दासी के रूप में) तथा भोजन दान आदि ।<sup>६</sup> ऋग्वेद में आया ह कि—जा गायो का दान करता ह वह स्वयं में उच्च स्थान पाता ह, जो अश्व दान करता है वह सूर्य लोक में निवास करता ह, जो स्वर्ण दान करता ह वह देवता हाता ह, जो परिधान का दान करता ह वह दीर्घ जीवन प्राप्त करता ह ।<sup>७</sup> तत्तिरीय ब्राह्मण में साने, परिधान गाय अश्व मनुष्य पयक एवं अन्य कई प्रकार की वस्तुओं का दान देने का उल्लेख ह ।<sup>८</sup> तत्तिरीय संहिता में उल्लेख ह कि व्यक्ति जो अपना सबस्व दान कर देता ह तो वह भी एक प्रकार का तप ही ह ।<sup>९</sup> बृहदारण्यक उपनिषद् में दान और दान नामक दोन विशिष्ट गुणों को गिनाया गया ह ।<sup>१०</sup> छांदोग्य उपनिषद् में बताया गया है कि जानधुति ने साम्बन विद्या के अध्ययन हेतु रैक्व को एक सहस्र गाय एक सोने की सिक्की एक रथ जिसमें खच्चर जुते थे, अपनी कन्या (पत्नी के रूप) एवं

१ सम० क० ५, प० ४४० ।

२ वही ८ पृ० ७४७ ।

३ वही ६, पृ० ४९७ ।

४ पी० बी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० ८४८ ।

५ देवल—अपराक, प० २८७ दान क्रिया कौमुदी, प० २ हेमाद्रि दान खण्ड, प० १३ आदि (काणों—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४४७ में उद्धृत) ।

६ पी० बी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १ पृ० ४४७ ।

७ ऋग्वेद १०।१०।२७ ।

८ तत्तिरीय ब्राह्मण २।२।५ ।

९ तत्तिरीय संहिता ६।१।६।३ ।

१० बृहदारण्यक उपनिषद् ५।२।३ ।

कुछ गांव दान में दिये थे ।<sup>१</sup> महाभारत के प्रायः सभी पर्वों में दान का उल्लेख है ।<sup>२</sup> पुराणों में भी दान के महत्त्व आदि का उल्लेख प्राप्त होता है ।<sup>३</sup>

पतञ्जलि ने भी परलोक के साधनों में यज्ञ यागादि का उल्लेख किया है और कहा है कि दान और तीर्थ स्वर्ग प्राप्ति में सहायक समझे जाते हैं । महाभाष्य में गोदान का उल्लेख कई बार आया है ।<sup>४</sup> पुत्र जन्म के अवसर पर दस सहस्र तक गायें दान किये जाने का उल्लेख है ।<sup>५</sup> भोजन दान बड़ा ही पुण्य कृत्य माना जाता था । दूसरों को भोजन करने से स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है ।<sup>६</sup> बृहस्पति स्मृति में भूमि दान का उल्लेख है जिसमें बताया गया है कि इस दान से या तो स्वर्ग अथवा राजपद प्राप्त होता है ।<sup>७</sup> अत्रि संहिता के अनुसार दक्षता भी भूमि दान देने वालों की प्रशंसा करते हैं ।<sup>८</sup>

इस साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि दान का महत्त्व वैदिक काल से चला आ रहा है । प्राचीन काल में दान को हम लोक तथा परलोक में सुख एवं समृद्धि का हेतु समझ कर अत्यधिक महत्त्व दिया गया था । उत्सव महाउत्सव आदि के अवसर पर दान का विधान था जिसका उल्लेख आगे किया गया है ।

### दाता तथा ग्राहक

समराइच्च कहा में दान देने वाले तथा दान लेने वाले के गुण-अवगुण का भी उल्लेख है । शुद्ध दान देने वाला मनुष्य उसी प्रकार अमर तथा शिव सुख सम्पत्ति का जनक माना जाता था जैसे उत्तम क्षेत्र में बोया हुआ बीज अधिक फलदायक होता है ।<sup>१</sup> इसी प्रकार विशुद्ध ग्राहक उसे ही स्वीकार किया जा सकता है जो नियमित पांच महाव्रता को धारण करने वाला, गुरु सेवा में रत

- १ छान्ोग्य उपनिषद् ४।२।४-५ ।
- २ ऋग्वेद—महाभारत-सभाष्य वन पर्व विराट पर्व आदि ।
- ३ अग्नि पुराण, अध्याय २०८, २१५ तथा २१७, मत्स्य पुराण अध्याय ८२ ९१ तथा २७४ २८९, ब्राह्म पुराण-अध्याय ९९ १११ ।
- ४ महाभाष्य—२, ३ ६९ पृ० ४५५ ३ ३, १२ पृ० २९१ ।
- ५ वही—१, ४, ३, पृ० १३१—यस्मिन् दस सहस्राणि पुत्रे जात गवां ददौ ।
- ६ वही ३ ३, ७, पृ० २८७ ।
- ७ बृहस्पति स्मृति १३।१५— स नरः सर्वदा भूय यो ददाति वसुधराम । भूमि दानस्य पुण्येन फलं स्वर्ग पुरंदर ।
- ८ अत्रि स्मृति—दानफलवर्णन, श्लोक ३३५—आदित्यो वरुणा विष्णु-ब्रह्मा सोमो हुताशन । शूल पाणिस्तु भगवानभिनन्दन्ति भूमिदम ।
- ९ सम० व० ३, पृ० १९१ ।

तथा ध्यान में चित्त लगाने वाला हो।<sup>१</sup> समराइच्च कहा के इस उल्लेख में जन प्रभाव दिखाई पड़ता है। महाव्रतों के उल्लेख से सूचित होता है कि अन्न धर्मों के अनुयायी श्रेष्ठ यात्रा के रूप में नहीं स्वीकार किये गये। दान के सुपात्र तथा कुपात्र ग्राहक का विवेचन करते हुए समराइच्च कहा में बताया गया है कि कुपात्र को दिया गया शुभ दान उसी प्रकार अशुभभायक हो जाता है जैसे मूष को पिलाया हुआ दूध विष के रूप में परिणत हो जाता है तथा सुपात्र को दिया गया अल्प दान भी उसी प्रकार फलवान होता है जैसे गाय को दिया हुआ तृण दध में बदल जाता है।

दान के दाता और ग्राहक के गुण-अवगुण तथा सुपात्रता एवं कुपात्रता का उल्लेख अन्नधर्म भी मिलता है। जन ग्रन्थ तत्त्वाय सूत्र में भी दान की विधि, देय वस्तु, दाता और ग्राहक की विनियमिता पर उल्लेख दिया गया है। दान लेने वाले पात्र के प्रति श्रद्धा का होना और तिरस्कार या असूया का न होना तथा दान देते समय या वाक्य में विवाक्य न करना इत्यादि बातें दाता के गुणों के अन्तर्गत आती हैं।<sup>२</sup> दान लेने वाले का सत्पुरुषात् आगच्छ रहना पात्र का विशेषता है।<sup>३</sup> जन ग्रन्थ के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में भी दाता और ग्राहक के गुण-अवगुण का उल्लेख प्राप्त होता है। देवल के अनुसार दाता को पाप रोग से हीन धार्मिक दिक्षु (श्रद्धालु) दुर्गुणहीन, शुचि तथा निम्नित-यवसाय से रहित होना चाहिए।<sup>४</sup> दम्भ ने लिखा है कि माता पिता गुरु, मित्र चरित्रवान-यक्ति, उपकारी, दरिद्र, असहाय तथा विशिष्ट गुण वाले व्यक्ति का दान देने से पुण्य प्राप्त होता है, किन्तु धूर्तों वदिया (धन्दना करने वाले) मरुगे (कुबली लड़ने वाले) कुबच्चों, जुआरियों बच्चों चाटा, चारणों और चोरों को दिया गया दान निष्फल होता है।<sup>५</sup> मनु स्मृति<sup>६</sup> तथा विष्णु धर्मसूत्र<sup>७</sup> में कपटी तथा धेदन जानने वाले ब्राह्मणों को दान का पात्र नहीं बताया गया है। दक्ष ने तो एक अन्न स्थान पर बताया है कि अयोग्य व्यक्ति को दान देने से उस दान का पुण्य नष्ट हो जाता है।<sup>८</sup>

१ सम० क० ३ पृ० १९०-१९२।

२ वही ३ पृ० १९३।

३ तत्त्वाय सूत्र-विवचन महित ८० २७८।

४ वही पृ० २७८।

५ पी० बी० कर्णे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ४५०।

६ दम्भस्मृति ३।१७ १८।

७ मनु० ४।१९३ २००।

८ विष्णु धर्मसूत्र ९३।७ १३।

९ दम्भ० ३।२९—विधि हीने तथाऽप्राप्ते गो-ददाति प्रतिग्रहम्। न केवल हि तद्दान गोपमप्यस्य नस्यति।

ब्राह्मण धर्म की परम्परा में गान के ग्राहक बहुधा विद्वान् ब्राह्मण ही हुआ करते थे।<sup>१</sup> कलचुरी के दान पत्र में वदशास्त्र जानने वाले ब्राह्मणा को ही दान का योग्य पात्र (ग्राहक) बताया गया है।<sup>२</sup> प्राचीन काल में दान दते समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि गान में दी गई वस्तु का दुरुपयोग न होकर उसका सदुपयोग हो। सुपात्र ही दान में प्राप्त वस्तु आदि का सदुपयोग कर सकते थे इसलिए विद्वान् ब्राह्मण तथा श्रमण आदि का दान दिया जाता था। ब्राह्मण तथा जन श्रमियों के उल्लेख इस बात को स्पष्ट कर दते हैं कि प्राचीन काल में अधिकतर योग्य (विद्वान् आदि) तथा चरित्रवान् व्यक्ति ही दान का सुपात्र ग्राहक था।

### समय

सम्राट्त्व वहाँ में गान देने के विभिन्न अवसरों का उल्लेख प्राप्त होता है। पुत्र के जन्मोत्सव पर<sup>३</sup> विवाह<sup>४</sup> सस्कार के समय तथा प्रसूया ग्रहण करते समय<sup>५</sup> राजा महाराजा तथा धनी सम्पन्न वय के लोग दान देते थे। इसके अतिरिक्त महाकांतिकी महात्मव<sup>६</sup> के अवसर पर तथा तपस्वी जनों के देहोपचार (आवश्यकानुसार भोजन वस्त्र आदि से सेवा करना) के समय अत्यन्त विशुद्ध समयानुसार दिया हुआ दान उन्नी प्रकार महाफलदायक माना जाता था जिस प्रकार समय पर किया गया कृपिक्रम अधिक फलदायक होता है।<sup>७</sup> जन तथा ब्राह्मण श्रमियों में दान के उचित अवसरों की महत्ता का प्रतिपादन है। पूर्व मध्य कालीन अभिलेखों से पता होता है कि जात-क्रम (पुत्र जन्मोत्सव), नाम कर्म, तथा श्राद्ध (मृतक सस्कार) आदि सस्कारों के समय तथा धार्मिक उत्सव एवं त्योहारों के अवसर पर दान वितरित किया जाता था।<sup>८</sup> याज्ञवल्क्य स्मृति में

- १ वासुदेव उपाध्याय—दी सासियो—रिलिजस कन्डीशन आफ नाथ इंडिया पृ० ३०३।
- २ इपि० इडि० ११ पृ० १९२८।
- ३ सम० क० ४, प० २८७, ६ प० ४९७, ७, प० ६४४।
- ४ वही ९ प० ८९७।
- ५ वही १, प० ६८ ३, पृ० २२१ २२, ४, पृ० ३४६ ३५३ ५, पृ० ४७५, ४७८, ६, पृ० ५६४, ८ प० ८३७, ८४५ ९, पृ० ८९७ तथा ९७८।
- ६ वही ४ पृ० २३९ (प्रति वय कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन महोत्सव मनाया जाता था तथा उक्त अवसर पर सुशी म लोग दान देते थे)।
- ७ वही ५, पृ० १९३।
- ८ वासुदेव उपाध्याय—दी सासियो—रिलिजस कन्डीशन आफ नाथ इण्डिया, पृ० ३११।

उल्लेख है कि प्रतिदिन के दान-कर्म से विशिष्ट अवसरों के दान कम अधिक सफल एवं पुण्य कारक माने जाते हैं।<sup>१</sup> विष्णु धर्म सूत्र में पूर्णिमा के तिन विभिन्न प्रकार के पदार्थों के दान करने से उत्पन्न फला की चर्चा है।<sup>२</sup>

पूर्व मध्य काल में पुत्र जन्मोत्सव के समय दान देने का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>३</sup> गाहड़वाल वंशीय राजा जयचन्द ने अपने पुत्र के नामकरण के समय दान गार्वा का दान किया था।<sup>४</sup> दश के गावि चन्द नामक शासक ने श्राद्ध के समय दान की स्वीकृति ली थी जो अश्विना कृष्ण पक्ष के पन्द्रहवें दिन पड़ता था।<sup>५</sup> कलचुरी दान-ग्रन्थ में भी राजा<sup>६</sup> और रानी<sup>७</sup> के श्राद्ध के अवसर पर दान करने का उल्लेख है। प्राचीन धार्मिक विद्याओं के आधार पर सूर्य ग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण के अवसर पर दान दिया जाता था।<sup>८</sup> इमके अतिरिक्त अक्षय तृतीया (वशात् शुक्ल पक्ष तृतीया माघ की पूर्णिमा, श्रावण पूर्णिमा तथा कार्तिक पूर्णिमा<sup>९</sup> के अवसर पर भी दान दिये जाते थे।

### दान के भेद

समराइच्च कहा व कथा प्रसंग में दान के तीन भेद गिनाये गये हैं। य है—  
ज्ञान ज्ञान अभय दान और धर्मोपग्रह दान<sup>१०</sup>। जन परम्परा में त्रि प्रकार के दान गिनाये गये हैं यथा—अनुकम्पा दान सग्रह दान, भयान काश्य दान

१ याज्ञवल्क्य स्मृति १।२०३।

२ विष्णु धर्मसूत्र—अध्याय ८९।

३ जनल आफ दौ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल ७ पृ० ४० इपि० इडि० ४, पृ० १२८।

४ इडि० गेंटी० १८ पृ० १३० राजपुत्र श्री हरिश्चन्द्र नामकरण।

५ वही १०, पृ० ३५१ इपि० इडि० ४ पृ० ९८ तथा १०५।

६ इपि० इडि० २ पृ० ३१०—गागेय देवस्य सवत्सर श्राद्धे।

७ इडि० गेंटी० १६, पृ० २०५—आत्मीय मातु रानि श्री सवत्सरीके।

८ इपि० इडि० ३ पृ० ३५५, १३ पृ० २० २१, पृ० २१२, देखिए—  
इडि० गेंटी १८ पृ० १५।

९ इडि० गेंटी० १६, पृ० २०१ ६।

१० वही १५, पृ० ६ इपि० इडि० ४ पृ० १०७ ८, पृ० १५२।

११ इपि० इडि० ४, पृ० ११०।

१२ वही २६ पृ० ७२, १० पृ० ७५।

१३ सम० क० ३ पृ० १८८।

लज्जा दान गौरव दान अधम दान घम दान करिष्यति तान और कृत दान<sup>१</sup> ।  
जिनका तुलनात्मक विश्लेषण इस प्रकार है—

### ज्ञान दान

सम्राट्श्व कहा मैं ज्ञान दान का अथ दानों में श्रेष्ठ बताया गया है, क्योंकि ज्ञान ही निवृत्त सुख सम्पत्ति का बीज होने के साथ साथ परम निर्वाण की प्राप्ति का प्रमुख साधन माना जाता था ।<sup>२</sup>

स्मृतिकार वशिष्ठ ने ज्ञान भूमिदान तथा विद्या दान (ज्ञान दान) में ज्ञान दान को श्रेष्ठ बताया है ।<sup>३</sup> महाभारत<sup>४</sup> में इन तीनों प्रकार के दानों में भूमि दान का श्रेष्ठत्व बताया गया है जबकि अत्रि ने वशिष्ठ के समय में ज्ञान दान का ही महत्ता स्वीकार का है ।<sup>५</sup> मानव जीवन की सारी क्रियाएँ मस्तिष्क से उत्पन्न बुद्धि के अनुसार संचालित होती हैं । ज्ञान के आधार पर किया गया काम श्रेष्ठ होता है जो कि जीव का शाश्वत सुख की ओर ले जाता है । चूँकि परमानन्द की प्राप्ति ही जीव का नरम लक्ष्य है इसलिए ज्ञान दान का सभी लोगों से श्रेष्ठ कहा जा सकता है ।

### धर्मोपग्रह दान

सम्राट्श्व कहा मैं नवकाटि<sup>६</sup> से परिगृह तथा आचार के अनुकूल धार्मिक जनों को दिया गया द्रव्य तथा बुद्धिमानों का दिया गया अन्न-पान वस्त्र, पात्र, याग औपधि और उत्तम आसन आदि धर्मोपग्रह दान बताया गया है ।<sup>७</sup> धर्मोपग्रह दान के भी दान भेद गिनाये गये हैं—प्रथम साधारण द्रव्यादि दान तथा दूसरा महान्न । देवी-देवताओं के पूजन के अवसर पर दिया गया द्रव्य

१ जन मिद्धात वाठमग्रह तृतीय भाग पृ० ४५० ।

२ सम० क० ३, पृ० १८८ ।

३ वशिष्ठ स्मृति १९।२०—विद्याहुरतिनानि गात्र पृथ्वी सरस्वतोम् । अतिज्ञान हिरण्याना विद्याज्ञान ततो अधिकम् ।

४ महाभारत अनुशासन पर्व ६२।११—अतिज्ञानानि मवाणि पृथ्वीज्ञान उच्यते ।

५ अत्रि० दानफल वणन, श्लोक ३३८—‘मर्त्येयामेव दानाना विद्याज्ञान ततो अधिकम् ।’

६ मन वचन और काया (गरीर) से हिंसा न करना, न कराना तथा न ता करने वाले का समय करना ही नव-काटि से परिगृह कहा गया है ।

७ सम० क० ३, पृ० १९० ।

दान साधारण दान की श्रेणी में रखा गया है।<sup>१</sup> विवाह के अवसर पर दिया गया दान<sup>२</sup> किमी गुणी तथा कलाकार की बना पर प्रसन होकर दिया हुआ दान<sup>३</sup>, साधारण दान कहा जा सकता है। दूसरा धर्मोपग्रह दान महादान बताया गया है जिसका विवचन आगे किया गया है। जैन परम्परा में पात हाता है कि धर्म कार्यों में दिया गया दान धर्म दा कहलाता है।<sup>४</sup> जिनके लिए तुण, मणि माती आदि एक समान है एम सुपात्रों को जो दान दिया जाता है वह धर्मदान कहा जाता है और वह दान कभी व्यय नहीं जाता क्योंकि वह अनन्त सुख का कारण होता है।<sup>५</sup> धर्मोपग्रह दान धार्मिक तथा गानी जनों को दिया जाता है जिसका सदुपयोग महत्त्व व कार्यों में होता है। इसलिए इसे अन्य प्रकार के दानों से भिन्न किन्तु जान दान से निम्न बताया जा सकता है।

### अभयदान

सम्राट्चक्र कहा में तीसरे प्रकार का दान अभय दान बताया गया है। जीवों पर दया करके उन्हें अभय दान देना धन दौलत रत्न तथा द्रव्यादि दान से भिन्नतर बताया गया है।<sup>६</sup> अभय दान का विश्लेषण करते हुए सम्राट्चक्र कहा में जीव हिंसा का विरोध दर्शाया गया है जिससे यही जन प्रभाव स्पष्ट होता है। वचन में उल्लिखित है कि जिनमें जल तेज, वायु तथा धनस्पति जीवों की और इन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा पचन्द्रियों का सम्मिश्रण वचन और वाया के योग से हिंसा नहीं हाता वही अभय दान है।<sup>७</sup> जन परम्परा से पता चलता है कि नाकग्रस्त जीवों का दया दान देना कारण्य दान है।<sup>८</sup> प्राणियों पर कृपा करके तथा उन्हें कष्ट न देकर निभय कर देना हा अभय दान कहा जा सकता है।

### महादान

सम्राट्चक्र कहा में साधारण दान के अतिरिक्त महानान का भी उल्लेख है।

१ सम० क० ३ पृ० १७३।

२ वही ६ पृ० ५७८, ० पृ० ८९६।

३ वही ८, पृ० ७४६ ४७।

४ जैन विद्वान् बोल मग्रह तृतीय भाग पृ० ४५२।

५ वही पृ० ४५२।

६ सम० क० ३, प० १८८-९ ४, प० ३२४ ५ पृ० ४४१, ० पृ० ९५६।

७ सम० क० ३ पृ० १८९।

८ जैन विद्वान् बोल मग्रह तृतीय भाग, पृ ४५१।

यह महादान क्रिया कार्तिक पूर्णिमा के दिन महाकार्तिकी महात्मव पर<sup>१</sup>, विवाह के अवसर पर<sup>२</sup>, पुत्र के भावी कुशल छेम के लिए उसके जन्मात्सव पर<sup>३</sup> देवपूजन के अवसर पर<sup>४</sup>, प्रव्रज्या ग्रहण करते समय<sup>५</sup>, स्वयं उपाजित धन से अथ 'गुप्त' अवसरों पर<sup>६</sup> सम्पन्न की जाती थी। सम्राट्त्वं वहाँ में महान्तान का विधि आदि का उल्लेख नहीं है। किन्तु ब्राह्मण ग्रंथों में महादान के भेद, विधि आदि पर प्रकाश डाला गया है।

अग्नि पुराण में दस महादानों का उल्लेख है यथा—साना, अश्व, तिल, हाथा, दासियाँ, रथ, भूमि, घर दुल्हिन (पत्नी रूप में स्त्री) एवं कपिला गाय।<sup>७</sup> धर्मशास्त्रकार के अनुसार पुराणों में महादानों की संख्या सातह दी गयी है—तुला पुरुष (पुरुष के बराबर साना या चाँदी सोल कर ब्राह्मणों का बाँट देना), हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्ड कल्पवृक्ष, गान्धर्व कामधेनु हिरण्याश्व हिरण्याश्वरथ (या केवल रथ) हेम हस्ति रथ, पचलागल, धरा दान (या हर्मधरा दान), विश्वकर्मा कल्पलता (या बृहत्कल्प) सप्त सागर रत्नधेनु और महा भूतघट।<sup>८</sup> महाभारत में महादानानि<sup>९</sup> शब्द का उल्लेख आया है। कर्लिंगराज खाल्ल के हाथी गुम्फा अभिलेख में कम्पवृक्ष दान का नाम आया है।<sup>१०</sup> अन्य अभिलेखों में भी तुलापुरुष<sup>११</sup> नामक महादान का उल्लेख कई बार आया है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा तथा धनिक लोग महादान में ग्रहीता का उसका वंश के बराबर स्वर्णदान करते थे। इस प्रकार का महादान तुलापुरुष दान<sup>१२</sup>

१ सम० क० ४, पृ० २३९।

२ वही ९ प० ८९७।

३ वही ४ पृ० २८७ ६, पृ० ४९७, ७, पृ० ६४४।

४ वही ८, पृ० ८१५।

५ वही १, प० ६८ ३, पृ० २२१ २२ ४, पृ० ३४६, ३५३, ५ प० ४७५, ४८७ ६ पृ० ५६४ ८, पृ० ८३७, ८४५, ९, प० ८९७ ९७८।

६ वही ८, पृ० ७६५।

७ अग्नि पुराण २००।२३-२४।

८ पी० वी० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १ प० ४६०।

९ महाभारत—आश्रमवासि पर्व ३।३१ १३।१५।

१० इपि० इडि० २० प० ७९।

११ वही ७ प० २६ १०, प० ११२, ९, पृ० २४, ११, प० २० १४, प० १९७।

१२ इडि० ऐंटी० १८ पृ० १५।



हेमात्मतुल्यता<sup>१</sup> तथा वनकतुलापुरुष तान<sup>२</sup> कहा जाता था ।

समराइच्च कहा में उल्लिखित महादान का समयन ब्राह्मण ग्रन्था तथा अभिलेखा में होता है । महादान का शास्त्रिक अर्थ सबसे बड़ा दान है । प्राचीन काल के लोग धार्मिक भावना से प्रेरित होकर गुप्त अवसरों पर कभी-कभी प्रसन्नता से अपना सर्वस्व दान कर देते थे । उस समय अपनी संपन्न मूल्यवान् वस्तु यथा—साना, चाँदी अन्न, रत्न, गौ आदि का अधिक संख्या या मात्रा में दान करना महान्ता कहा जाता था । महान्तान के समय दाता प्रेम की चिन्ता न कर श्रेय को ही प्राथमिकता देता था ।

### कर्मपरिणाम

समराइच्च कहा से पता होता है कि उस काल में कर्मवाद के सिद्धांतों में काफी विश्वास किया जाता था । तत्कालीन समाज में यह धारणा थी कि प्रमाद चेषित्त कर्म की परिणति बड़ी हो दारुण होती है ।<sup>३</sup> अशुभ कर्म परिणाम से शीतल जल भी अग्नि का रूप ले लेता है जब प्रमा की ध्वलता अधिकार रूप में बदल जाता है मित्र शत्रु के रूप में परिणत हो जाता है और अर्थ की बात अनर्थ के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।<sup>४</sup> अतः प्रमाद चेषित्त कर्म उभयलाक विरुद्ध माना जाता था ।<sup>५</sup> जहाँ प्रमान् चेषित्त कर्म उभय लाक विरुद्ध था वही अप्रमाद चेषित्त कर्म के आचरण का परिणाम गुप्त माना जाता था । मुख एव आनन्द के हेतु गुप्त काय से विप भी अमृत हो जाता है अयश भी सुयश में परिणत हो जाता है एवं दुर्वचन भी सुवचन का रूप ले लेता है ।<sup>६</sup> सुकृत के ही आधीन उपभाग एवं परिभाग रूपी सुख समझे जाते थे ।<sup>७</sup> भगवती सूत्र में धार्मिक कृत्यों एवं विचारों से युक्त कर्म का मत कर्म बताया गया है जिसका परिणाम गुप्त दायक माना जाता था ।<sup>८</sup> इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि अपने किये गये पाप कृत्यों के ही परिणाम स्वरूप लोग दुःख के

१ इपि० इडि० ४ प० ११८, १३ प० २१८ ।

२ वही १४, पृ० २७८ ।

३ सम० क० ७ प० ७२१, ८ प० ८११, ८२५, ९, प० ९५५ ५६ ।

४ वही ७ पृ० ६११ ।

५ वही ७ प० ७१९ २० ७२२ ७२४, ९, प० ९३० ।

६ वही ७ प० ६१२ ७२२ ।

७ वही ६ पृ० १८७ ८८, ९ पृ० ८६२ ६३ ९४१ ।

८ भगवती सूत्र १२।२।४४३ ।

भागी बनते हैं और इन पाप पुण कृत्या का नष्ट हो जान पर ही सुख का उपलब्धि कर सकते हैं।<sup>१</sup>

कर्मवाद की भावना अति प्राचीन काल में ही चली आ रही है। रामायण में भी कर्म का वर्णन प्राप्त होता है। जिस तरह का कर्म होगा परिणाम भी उसी तरह का भागना पड़ेगा। यहाँ बताया गया है कि कौमल्या की पुत्र वियाह सम्भवतः इसलिए हुआ होगा कि उन्होंने पूव जन्म में स्त्रियों का पुत्रों में विद्रोह कराया होगा।<sup>२</sup> महाभारत में भी बताया गया है कि जो दाना लोको (यह लोक तया परलोक) का प्राप्ति करने का आकांक्षी है। उस धर्मचरण में मन लगाना चाहिए।<sup>३</sup> अष्टाध्यायी में भी पता चलता है कि सुकर्म में पुण्य फल मिलता है।<sup>४</sup> अष्टे-बुरे कर्म करने वालों के लिए विनैष शब्द से यथा—पुण्यकृत सुकर्मकृत, पापकृत आदि।<sup>५</sup> माकण्डेय पुराण में उल्लिखित है कि कर्म की शक्ति मानव की सबसे बड़ी शक्ति है। यही उसकी सबसे बड़ी विजय है तथा इसीलिए तो स्वर्ग का देवता भी पृथ्वी पर मनुष्य वह में जन्म लेना चाहता है।<sup>६</sup> जागे यह भी कहा गया है कि जिन मनुष्यों का चित्त, इन्द्रिय और आत्मा अपने धर्म में है। एव जो कर्म करने में उद्यत है उसका लिए स्वर्ग में या पृथ्वी में कुछ भी ऐसा नहीं है जो ज्ञान और कर्म की उपलब्धि से बाहर है, जिस का चाहें तो न जान सकें या न पा सकें अथवा न पहुँच सकें।<sup>७</sup> जो मानव कर्म कदगा में प्रवृत्त है, जिसमें अभिमन्यु या कपट का भाव नहीं है उसमें कर्म का व फल नहीं होता। उस करने वाले मनुष्य की आत्मा भा गुह्य हो जाती है।<sup>८</sup> अभिज्ञा से भी गत होता है कि सातवीं से बारहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में पुण्य अपुण्य कृत्या का परिणाम स्वर्ग लोक एव नरक लोक प्राप्ति माना जाता था।<sup>९</sup> इस प्रकार कर्मवाद का सिद्धान्त प्राचीन काल का अनुपम उपलब्धि है।

१ भगवती सूत्र १०।२।३९६।

२ रामायण २।५३।१०, नून जात्यनर तात स्त्रिय पुत्रवियाजिता । जनया मम सीमित्रे तदद्यस्तपस्वितम ।

३ सुवमय भट्टाचार्य—महाभारत कालीन समाज पृ० २७२।

४ अष्टाध्यायी ६।२।१५२।

५ वामुदवशरण अग्रवाल—याज्ञिक कालीन भारतवर्ष, पृ० ३७९।

६ माकण्डेय पुराण ५।७।६२ ६३।

७ वहा २०।३६-३७।

८ वही ९५।१५।

९ वामुदेव उपाध्याय—साहित्य-रहितजन्म का दीक्षान आफ साथ इन्द्रिया पृ० १८५।

## परलोक (देवलोक तथा नरवलोक)

हरिभद्र के काल में कम की परिणति ही परलोक की आधारगिरी समझी जाती थी। समराइच्चवहा में उल्लिखित है कि पुण्यकर्म में चक्री, दैवता तथा सिद्धिगामी महान् सुगन्ध भागत हैं।<sup>१</sup> यहाँ सुकन कम के परस्वरूप मृत्योपरांत जिस देवलोक की प्राप्ति<sup>२</sup> में विश्वास किया जाता था उस देवलोक का वर्णन इस प्रकार से किया गया है—वहाँ किरण युक्त सुन्दर महल दानवीय हैं, गोपीय, सरस रत्न चत्वन, नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्प वहाँ भरे पड़े हैं, काला अमरु तथा अन्य सुगन्धित घूप वहाँ सुगन्ध फैलाते रहते हैं जगह-जगह पर उत्तम देव वृक्ष तथा पुष्प मालाएँ वहाँ दिखाई देती हैं, वहाँ के देव मनाहर स्वरूप महान् ऋद्धि वाले धृतिमान योगस्वी, बलवान् प्रतापी, सुखी उत्तम वस्त्र एवं आभूषण वाले शिष्य शरीर वाले उत्तम वर्ण तथा गन्ध वाले तथा अपन तेज से दशों दिशाओं का प्रकाशित करने वाले हात हैं संगीत नाटक आदि से युक्त दिव्य भागा को भोगने हुए आनन्द में रहते हैं, वहाँ का आकाश गीतल, मन्द सुगन्ध वायु से व्याप्त तथा कोचड़ एवं अधकार से रहित होता है, जल और वृक्ष सदा पुष्पित रहते हैं वहाँ इन्द्रियों के विषय मनोज्ञ होते हैं शृंगार युक्त सुन्दर देवियों के साथ क्रीडा करते हुए वहाँ के देव गतागत समय का भी नहीं जानते।<sup>३</sup>

समराइच्चवहा में स्वर्गलोक के साथ नरक लोक में भी विश्वास प्रकट किया गया है। तत्कालीन समाज में जहाँ सत्कर्म की परिणति (मृत्यु के पश्चात्) देवलोक मानी जाती थी वही पाप कर्म की परिणति नरक लोक की प्राप्ति समझी जाती थी।<sup>४</sup> अतः गुण्ड भाव से तपस्या एवं उत्तम कर्म न करने पर नरक की प्राप्ति में विश्वास किया जाता था।<sup>५</sup> यहाँ हरिभद्र सूरि ने पाप कर्म कम दाय से नरक लोक में विभिन्न प्रकार की यातनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है—वहाँ नारकी का कभी वज्रशिला पथी पर विदीर्ण किया जाता था तो कभी नित्य दीपित कुम्भीपाक तथा लौह के कड़ाहों में पकाया जाता था पर्वत यन्त्रों से आराधित तथा अन्य तज शस्त्रों से चीरा जाता था, भयकर त्रिशूल से भेजा जाता था वज्रतुण्ड वाली पत्निया से नाचा जाता था तपे हुए बड़ बड़े रथों में

१ सम० क० ३, पृ० २२१।

२ वही ६, प० ५३३ ५८३, ८ पृ० ८१४।

३ वही ९ प० ९६६ स ९६९ तक।

४ वही ३, प० २२१ ५ पृ० ३८६, ७, प० ७२२, ८, प० ८०५।

५ वही ८, प० ८५३ स ८५५।

आँखों का निकाल कर जाड़ा जाता था नरकपालों द्वारा नारकी के हिंसात्मक कार्यों के प्रतिफल में शरीर के तिल के बराबर-बराबर टुकड़े काटकर पक्षिया को लुटा दिया जाता था, झूठ बोलने का फल जिह्वा छेदन था पर द्रव्य हरण करने का फल अस्तिचक्र से शरीर का काटकर गूदा का लुटाना था परस्त्री गमन का फल नरकाग्नि में सतप्त समर के वृक्ष से आलिंगन कराकर यन्त्रा में अधिक कष्ट पहुँचाया जाता था, परिग्रह आदि दापों के फलस्वरूप बीए कुत्ते और गूदों से शरीर का मांस नाचा जाता था, मांस भक्षण के परिणाम स्वरूप स्वर्गशरीर का ही मांस काटकर उस ही लिलाया जाता था और मद्यपान के फलस्वरूप शीस का तपा कर पिलाया जाता था ।<sup>१</sup> यहाँ हम व्रणन में स्पष्ट रूप से जन प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

समराहृच्च कहा में नारकी की यातनाओं के साथ-साथ नरकलाग के स्वल्प का भी उल्लेख है । नरकलाक अन्दर में गालाकार और बाहर से चौरस है नाचे उस्तरे के समान है, नित्य अधकारयुक्त चन्द्र और सूर्य की ज्वालि में रहित होता है, चर्वी श्चिर तथा पिव के कीचड़ से उसका तन्म लिये रहता है, वह नरक अशौच पदार्थों की सन्न, परम दुग्ध वाला कबूतर और अग्नि के वण वाला अत्यन्त ही दुःसह तथा मय स्पग वाला हाता है विम विम शब्द वाले शार जल चर-चर गगन वाला ठण्डी रत धर धर गगन वाले चर्वी का कीचड़, किम किम गगन वाले पिव कीटा में व्याप्त श्चिर के झरने, जलती हुई चिनमारियाँ वण-वण दाग से युक्त अमि के वृक्ष फकार करने वाले भयकर मय रैन मिश्रित आंधा और कर-कर करते दृग यत्र वर्ण अपना स्वच्छन्द प्रग्नन करते रहते हैं इसके अतिरिक्त नरक में तीक्ष्ण गोम्वर के कांटे से भरे हुए विषमाग हाने हैं अमि, चक्र भाला वहाँ त्रिगूल आदि वहाँ प्रचुर मात्रा में भरे रहते हैं वह स्थान काँटा के बन माला शुगंधित तथा दूषित रैन वाला कठार स्पग वाला और दुष्ट गगन से युक्त होता है । यहाँ समराहृच्च कहा में नरकलाग के स्वल्प के साथ ही नारकी के स्वल्प का भी व्रणन इस प्रकार किया गया है—नारकी वण से 'अत्यन्त वाले बले-बले राम वाले भयकर भय पग करने वाले हाते हैं । वे सग डरते रहते हैं मग उद्विग्न रहते हैं तथा मग परम अगुद्ध मम्बद्ध नरक के भय का अनुभव करते रहते हैं नरक की वग नाएँ विविध वम जनित और दाग्न हानी हैं यथा—उत्तमागा का छेन गुलबेध, विषम जिह्वा रोग, अमचि छेन, तप दृग ताँजे आदि का पान वञ्चतुण्डों ॥ भग्न अगा का छेन, गर्बलि हिमक जावों का भय हन्धी निक्कागना, तपाई

१ सम० व० ८ पृ० ८५३ से ८५५ तक ।

२ वही ०, प० ०६५-६६ ।

हुड़ लोहे की स्त्री से आलिंगन, चारों नरक से आस्त्राघात, जलती हुई शिला पर गिराया जाना तथा इसके अतिरिक्त और भी अतुल्यनाय उष्ण और शीत की वेष्मना होती है।<sup>१</sup>

प्राचीन भारतीय परम्परा में बल्कि काल से ही परलोक में विश्वास किया जाता था। ऋग्वेद में एक स्थान पर ग्यारह देवों का स्वर्ग का देवता बताया गया है।<sup>२</sup> इसी प्रकार अथर्ववेद में भी स्वर्ग तथा पृथ्वी पर रहने वाले देवों का कल्पना की गयी है।<sup>३</sup> बल्कि काल के विचारों में परलोक की कल्पना का आभाव होता है जिसमें स्पष्ट होता है कि उस समय के लोगों में लोक-परलोक की भावना विद्यमान थी। सभी आस्तिक सम्प्रदायों में इस लोक के अतिरिक्त परलोक में भी विश्वास किया जाता था। जीव अपने पूर्व कृत कर्म के अनुसार सुख एवं दुःख को प्राप्त होता है।<sup>४</sup> इसी विचार का लेकर जैन बौद्ध तथा बल्कि सम्प्रदाय में स्वर्ग-नरक की भावना स्वीकार की गयी है।

जैन मत में हिंसक परिग्रही लाली मुनि निम्न मिथ्याभाषी परस्त्री लम्पट तथा चार आग्नि नरक के पात्र माने गये हैं जिनके विभिन्न प्रकार के पापपूर्ण कृत्यों का फल समराइच्चबद्धा में गिनाया गया है जिसका वर्णन नरक गति के जातमन तत्त्वाय सूत्र में भी आया है कि नारकी और दवा का उपपात (देवता अथवा नारकी जिसे नियत स्थान में उत्पन्न होते हैं उसे उपपात कहा गया है) जन्म से होता है।<sup>५</sup> नारकी जीवों के निवास स्थान को नरक भूमि कहा गया है। उस भूमि के सात विभाग माने गये हैं यथा—रत्नप्रभा (रत्ना की अधिकता वाला भाग) शक्रा (ककण पत्थर वाला भाग) बालुका प्रभा एक प्रभा धूम्रप्रभा तथा तमप्रभा।<sup>६</sup> ये नरकवास निरन्तर अशुभतर लक्ष्या अशुभ तर परिणाम अशुभतर देह एवं पीडा वाले हैं।<sup>७</sup> उन नरकवासी में नारकी जीव परस्पर दुःख पशु करने वाले होते हैं।<sup>८</sup> इसी ग्रन्थ में दवा के चार निकाय

१ सम० क० ९ प० ९५६।

२ ऋग्वेद १।१३९।११ १०।१५८।१।

३ अथर्ववेद १०।९।१२।

४ ऋग्वेद १।१६४।१९ गण्ड पुराण २।१४।१८, महाभारत—दान पर्व ७१। ८१।

५ तत्त्वाय सूत्र २।३५।

६ वही २।१।

७ वही २।३।

८ वही २।४।

वताए गये हैं—व पोत्पन्नपयन्त चार निकाया के दवता अनुक्रम से दश, आठ, पाँच और बारह भेद वाले होते हैं।<sup>१</sup> आगे बताया गया है कि भवनपति से ईशानपयन्त तक के दव मनुष्य सन्तुष्ट शारीरिक सुख भोगने वाले होते हैं।<sup>२</sup> शेष देवा में दाना कृपवासी दव अनुक्रम से स्वर्ग रूप रस और सन्ध्या द्वारा विषय सुख भागते हैं।<sup>३</sup> व्याख्या प्रगति के छठे उद्देशक में नरकस्थ पृथ्वी कायिक जीव की सौधम आदि दवलाक में उत्पत्ति होने की चर्चा है तथा सातवें उद्देशक में स्वर्गस्थ पृथ्वी कायिक जीव की नरक में उत्पत्ति होने की बात कही गयी है।<sup>४</sup> इससे स्पष्ट होता है कि जन विचारधारा में परलाक व अन्तर्गत स्वर्ग एवं नरकलोक की मायता या जा क्रमशः पुण्य एवं अपुण्य कृत्या की परिणति समझी जानी थी।

महाभारत में भी कम के आधार पर परलाक के अस्तित्व में विश्वास प्रकट किया गया है।<sup>५</sup> गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि पापाचारी तथा नराधमा को मैं बार-बार घोर नरक में गिराता हूँ। अतः हे अर्जुन! काम क्रोध तथा लाभ यह तान प्रचार व नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं और इन तीनों विकारों से दूर हुआ जीव परम गति को प्राप्त होता है।<sup>६</sup> पुराणों में भी परलाक की बात पुष्ट होती है। माकण्डेय पुराण में महारौरव की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि वह तावे अमी लाल गल जलती हुई भूमि का लोक है निरंतर धूँधूँधता हुई अग्नि अपन ताप से उसे तपाया करता है।<sup>७</sup> स्वर्ग और नरक दोनों ही परलाक अन्तर्गत थे। पाणिनि ने भी महारौरव का उल्लेख किया है<sup>८</sup> जिसे नरकलाक माना गया है। पतञ्जलि ने भी ऐसी कार्यों को जो परलाक जप के साधन हैं स्वर्ग कहा है।<sup>९</sup> इसीलिए ब्राह्मण अधिक जप करते थे और अग्नि के ममक्ष

१ तत्त्वाय सूत्र ४।३।

२ वही ४।८।

३ वही ४।९।

४ जनसाहित्य का बहद् इतिहास भाग १ पृ० २०८।

५ सुखमय भट्टाचार्य—महाभारत कालीन समाज पृ० २७२।

६ गीता १६।२०-२१-२२।

७ माकण्डेय पुराण १।२।४-५।

८ अष्टाध्यायी ६।२।३८।

९ महाभाष्य ५।१।१११, पृ० ३४५।

१० वही ३।१।३२ पृ० ६४।

तप करत थे।<sup>१</sup> अभिलेखा से ज्ञात होता है कि सातवीं से बारहवीं शताब्दी में भी उत्तर भारत में स्वर्ग और नरकलोक के विचार विद्यमान थे।<sup>२</sup> उस समय स्वर्गलोक का महत्त्व इस लोक की अपेक्षा अधिक था। इसीलिए स्वर्ग प्राप्ति के लिए राजाओं द्वारा भूमि-दान किया जाता था।<sup>३</sup> धार्मिक कृत्य ही स्वर्ग प्राप्ति का कारण समझा जाता था।<sup>४</sup> किन्तु अनैतिक कृत्या का फल नरकलोक की प्राप्ति समझा जाता था।<sup>५</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस काल में परलोक का भावना विद्यमान थी। परलोक दो तरह का माना जाता था—स्वर्ग एवं नरकलोक। पुण्य एवं सत्कर्मों का फल स्वर्गलोक तथा अपुण्य एवं दुष्कृत्या का परिणाम नरकलोक था जहाँ जीव को नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते थे। समराइच्च कहा में नरक और नारकीय लोग का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि उस समय समाज में व्याप्त हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों की तरफ से धनापदा करने वालों की अहिंसा सत्य अचीय एवं सदाचार को आर आकर्षित करना था।

### शकुन

समराइच्च कहा के उल्लेखानुसार तत्कालीन समाज के लोग शुभ एवं अशुभ सूचक शकुन में भी विश्वास करते थे। पुष्प की दाहिनी भजा तथा दाहिनी आंगुल एवं स्त्री की बायीं आंगुल फटने पर शुभ शकुन की सम्भावना में विश्वास विश्वास किया जाता था।<sup>६</sup> इसके अतिरिक्त असमय में पुष्प का बिलना शास्त्रों के अनुसार अशुभ की सम्भावना में विश्वास किया जाता था।<sup>७</sup> जैन सूत्रों में अनेक शुभ एवं अशुभ शकुन का उल्लेख मिलता है। अनेक वस्तुओं का दान शुभ तथा अनेक का अशुभ माना जाता था। रोगी विकलांग आतुर वृद्ध वृष्या वस्त्रधारी धूल में धूसरित, मलिन गरीर वाला जीव वस्त्रधारी वार्य

१ महाभाष्य २।१।१५ पं० ५५।

२ वासुदेव उपाध्याय—बी सोसिया रिलिजस कंटीन ऑफ नाथ इण्डिया, पं० १८५।

३ इपि० इडि० ३ पं० २६६।

४ वही ११ पृ० ८१।

५ वही ४ पं० १३३ १२ पृ० २४।

६ सम० वं० २ पं० १२४ ४ पं० ३४० ८ पृ० ७६२ ५ पृ० ४०९—  
'एत्यन्तरमि फुरिय में दाहिण भुयाये। तथा मये चितिय। न अन्नहारि-  
मिवयण नि होयव्व मणेईण। अणुवूअ सउण संधाआ।

७ बृहत्सं० भाष्य १५४७ ४८ आधनियुक्ति भाष्य ८२-४।

हाथ से दायें हाथ की ओर जाने वाले स्नेहाम्यक्त श्वान कुञ्जर और बौने गभवती नारा बड्ड बुधारी ( जो बहुत समय तक कुमारी हा ), नाष्ठभार का बहत करने वाले आदि के ज्ञान की अशुभ माना जाता था जिनका दगन से बाय की मिट्टि में अविद्वान प्रकट किया जाता था । पक्षिया में जवूक, चाम मयूर भरद्वाज और बकुल शुभ माने जाने थे । यदि वे दक्षिण दिशा में लिखाई पड़े तो सब संपत्ति का लभ समझना चाहिए ।<sup>१</sup>

शकुन का उल्लेख स्मृतिया में भी किया गया है । दण स्मृति में गुणजनों का दगन, स्नान या घन में मुख दगन केन सधारना आँख में अजन लगाना तथा दूधस्निग्ध आग्नि मंगल सूचक बताया गया है ।<sup>२</sup> गोभिल स्मृति में बताया गया है कि यदि वेदा ब्राह्मण सीमाग्यवती स्त्री गाय, बंदी ( जहाँ आहुति के लिए अग्नि जलाई जाती हो ) आदि लिखाई पड़े तो विपत्ति से छुटकारा मिल जाना है ।<sup>३</sup>

पराशर ने भा वदिक यज्ञ करने वाले, कृष्ण पिंगल वण की गाय, राजा, सप्तमी तथा समुद्र की शुभ सूचक बता कर प्रतिदिन उनका दर्शन करने की बात कही है ।<sup>४</sup> इसी प्रकार गोभिल स्मृति में बहुत-सी वस्तुओं का दर्शन अशुभ माना गया है यथा—पापी, विधवा अछूत, तथा तथा नकटा आदि ।<sup>५</sup> यद्यपि सम्राट्चव कहा म पुरुष की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा तथा स्त्री की बायी आँख फट्फटा शुभ तथा अकाल क्रुमुमोद्गम अशुभ सूचक शकुन बताया गया है फिर भी उपरान्त साम्या से स्पष्ट होता है कि शुभ एवं अशुभ शकुन में लागा का विद्वान या चाहे वह किसी भी रूप में रहा है ।

### तत्र मत्र

हरिभद्र कालीन समाज के लोग तत्रमत्र में भी विश्वास करते थे । सम्राट्चव कहा में मत्र जाप से महाविद्या की मिट्टि में विश्वास प्रकट किया गया है ।<sup>६</sup> मत्र जाप में पिशाचिका का प्रकट होना इस बात की सिद्ध करता है कि उस समय के लोग भूत प्रेत में विश्वास करते थे । सम्राट्चव कहा में पिशाचिका

१ व्यवहारभाष्य १।२ ।

२ दणस्मृति २।३० ।

३ गोभिलस्मृति २।१६३-६५ ।

४ पराशर स्मृति १२।४७ ।

५ गोभिल स्मृति २।१६३-६५ ।

६ मम० व० ५ प० ४४३, ४४६ ४४९ ।



में उल्लिखित अजितवला विद्या से को आसवती है जिसकी सिद्धि से सम्पूर्ण आपत्तियों के समाप्त होने में विश्वास किया जाता था। उत्तराध्ययन टीका में एक अन्य स्थान पर बतायी विद्या का भी उल्लेख है। कहा जाता है कि इस विद्या का प्रभाव में अचेतन काष्ठ भी खड़ा हो जाना और चेतन की भाँति प्रवृत्ति करने लगता था। अशनिघोष विद्याधर अपनी कथा सुतारा को इस विद्या के द्वारा हरण करके लाया था।<sup>१</sup> वेगवना विद्या भी अपहरण करने के काम में प्रयुक्त समझी जाती थी।<sup>२</sup> इन सभी विद्याओं की सिद्धि के लिए मन्त्र का जाप करना पड़ता था। वशीकरण मन्त्र को पाणिनि ने 'बन्धन' नृपि अथान मन को बाधने वाला वेद मन्त्र कहा है।<sup>३</sup>

अभिलेखा से पता होता है कि ७०० ई० से १२०० ई० तक के काल में तन्त्र और मन्त्र का विनाश प्रचार था। समाज में लागू अनेक प्रकार के तांत्रिक पूजन एवं जादुई शक्ति में विश्वास करते थे।<sup>४</sup>

### गुरुमहत्त्व

समराइच्च कहा में गुरु की महत्ता में भी विश्वास प्रकट किया गया है। गुरु ही परलोकपकार का कारण तथा शाश्वत सिद्धि का हेतु समझा जाता था।<sup>५</sup> गुरु की निम्न अथवा उसकी आलाचना करना धर्म विरुद्ध समझा जाता था।<sup>६</sup> गुरु की वन्दना एवं पूजा धर्म लाभ का कारण समझा जाता था।<sup>७</sup> गुरु वंदना को मांगी करके समाज में विवाह आदि पुण्य सम्बन्ध स्थापित किये जाने थे।<sup>८</sup> गुरु की आज्ञा के अनुसार ही आचरण करने पर अलक्षणीय को भी लाभ जाने में विश्वास करता था।<sup>९</sup> गुरु ही ज्ञान का मुख्य कारण था जिसे ज्ञान का प्राप्त करने पर सभी अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकते थे।

१ उत्तराध्ययन टीका १८ पृ० २४२।

२ वही १८ पृ० २४७।

३ वासुदेवशरण अग्रवाल—पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ३७९।

४ दाम्पत्य उपाध्याय—दी मोसिसा रिलिजस कंटीनन आफ नाथ इण्डिया पृ० १८३।

५ सम० क० ७ पृ० ६१९ २० ६ पृ० ५७६ ७७।

६ वही ६ पृ० ५७५।

७ वही १, पृ० २२१ ५, पृ० ४०५ ४७० ६ पृ० ५६७ ७ पृ० ६३५ ८, पृ० ७५२ ८३६, ८४५ ९ पृ० ९१७ ६२८ ९७२।

८ वही ॥ पृ० ६७६ ७७ ९२।

९ वही ७ पृ० ६२६ ८ पृ० ८०२-३, ८१२ ९ पृ० ८९३ ९४।

गुरु महत्त्व एवं उमके आदर सत्कार का उल्लेख धर्मसूत्र में भी मिलता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित है कि गुरु का आन्तर ईश्वर की भाँति करना चाहिए।<sup>१</sup> मनु ने भी गुरु के प्रति आन्तर भाव रखने का बात कही है।<sup>२</sup> रामायण में गुरु को प्रज्ञा चक्षु प्रदान करने वाला बता कर उसे माता पिता से भी घेष्ठतर कहा गया है।<sup>३</sup> राम ने माता पिता की ही भाँति गुरु को भी अचना का पात्र बताया है।<sup>४</sup> जन न्न य भगवतीसूत्र में भी गुरु ( धर्मगुरु ) तथा जिन की पूजा का उल्लेख है।<sup>५</sup> ये सभी साक्ष्य समराइच्च कहा में उल्लिखित गुरु के महत्त्व एवं उमका पूजा का समर्थन करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है गुरु का महत्त्व सभी धार्मिक परम्पराओं में समान रूप से मिलता है। गुरु ही ज्ञान विज्ञान का कारण था जिसके सहार "यत्ति सदाचार का आचरण करते हुए लोक एवं पर लोक में सुख का भारी हाता था।

### आतिथ्य सत्कार

समराइच्च कहा के उल्लेखानुसार हरिभद्र के काल में अतिथ्य सत्कार का बहुत महत्त्व समझा जाता था। आगतुका का आसन प्रदान कर कुशल क्षेम पूछा जाता था।<sup>६</sup> साधु-माध्विया का स्वागत सत्कार उनकी वन्दना-पूजा आदि के साथ किया जाता था।<sup>७</sup> आतिथ्य सत्कार के साथ-साथ गणनागत की रक्षा को भी धार्मिक महत्त्व दिया जाता था।<sup>८</sup>

भगवती सूत्र में भी अतिथि सत्कार का उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है।<sup>९</sup> किसी साधु सन्तामी के आ जाने पर लाग उठकर अगवानी लेते तथा

१ आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।२।६।१३ ।

२ मनु० २।७२ ।

३ रामायण, २।११।३ ।

४ वही २।३०।३३ ।

५ भगवती सूत्र, १।३।३० ।

६ सम० ब० १ पृ० १२-१३, ५ प० ४०२३ ४४३ ६ प० ५४९ ५५२ ।

७ वही ३ प० १८१ २०० ४ प० २८२ ५ पृ० ३६६ ४७३ ६, प० ५६४ ७ पृ० ६१० ।

८ वही ५ पृ० २८५ ।

९ भगवती सूत्र १।२।१।४३८, १।५।१।५४१ १।५।१।५५७ ।

आपिशल शिष्या सूत्र—सम्पादक—युधिष्ठिर, भारतीय प्राच्य विद्या  
प्रतिष्ठान अजमेर म० २०२४ ।

आवश्यक चर्णी—जिनदास गणि कृत, रतलाम, १९२८ ।

आवश्यक सूत्र—भीका, मलय गिरि, रतलाम, १९२८ तथा आगमोप  
ममिति बम्बई, १९१६ ।

आवश्यक नियुक्ति दीपिका—सूरन १९२९, तथा चूर्णी रतलाम १९२८ ।

आदिपुराण—जिनमन कृत—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी—भाग १ १९५१  
तथा भाग २, १९६५ ।

औपपातिक सूत्र—टीका अभयदेवकृत—द्वितीय संस्करण, वि० स० १९  
उपमितिभवप्रपचा कथा—सिद्धार्थकृत—स० पी० पीटसन  
१८९९ ।

उत्तराध्ययन—म० ज० शार्पेण्टियर उपासला १९२२ ।

उत्तराध्ययन टीका—बम्बई १९३७ ।

उत्तररामचरित—भवभूति कृत—मोतीलाल बनारसीदास  
वाराणसी १९६३ ।

उवामक गीता—म० पी० एल० बन्, पूना १९  
१८८९ ९० ।

पेतरम ब्राह्मण—स० टी० आर्पेण्ट वान (ज  
विषय द्रम १९४२ ।

कठोपनिषद—निणय सागर प्रस बम्बई १९३० ।

कथाकोष—अनुवाक सा० एच० टाना लदन १८

कथा मरिसामर—सामदेवकृत—अनुवाक सी० ५

कागिका वृत्ति—बनारस १९३१ ।

कामगोपनीतिसार—स० गणपति ग्रास्त्री, १

कामसूत्र—वात्स्यायन कृत—जयमंगला टीका  
बम्बई १९०० ।

काश्मिरी—वाणभट्टकृत—चौधुरी सम्बृत्त १९१०  
१९५० ११ तथा अग्नेजा अनुवाद—मी०  
१८९६ ।

कुमारपात्र चरित—हमचन्द्र कृत पूना १९३६ ।

कुट्टीममतम—दामोदर कृत—बनारस १९२४ ।

कपूरमजरी—राजशेखरकृत—वैम्ब्रिज १९०१ तथा स० राजकुमार  
आचाय, बनारस, १९५५ ।

कूमपुराण—म०, नीलमणि मुखापाध्याय कल्कत्ता १८९० तथा भाग १  
और २ संस्कृत संस्थान बरेली, १९७० ।

कृत्यकल्पतरु—लक्ष्मीधर कृत—स०, व० बी० रंगस्वामी आयगर बडोदा  
१९४१ ५३ ।

कृवलयमाला कहा—उद्यातन सूरि बडोदा, १९२७ ।

कालिदास प्रथाबला—(रघुवंग, कुमारमभव, मघदूत अभिज्ञानशाकुन्तल,  
मालविकाग्निमित्र, विक्रमावली)—म० साताराम धनुर्वेदी अखिल  
भारतीय विक्रम परिपद, काशी, म० २००७ ।

किराताजुनीयम—भारविकृत—निणय सागर मुद्रणालय, बम्बई, १९५४ ।

कालिकापुराण—वैकुण्ठेश्वर प्रेम बम्बई ।

काव्य मीमांसा—राजशेखरकृत—स०, व० यस० रामस्वामी दास्नी  
बडोदा १९३४ तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ।

कल्पसूत्र—बम्बई १९३८ तथा श्री अमर जनाग्रम शोध संस्थान सिवाना  
१९६८ ।

कृत्य रत्नाकार—चण्डेश्वर कृत—कल्कत्ता १९२५ ।

कुमारपाल प्रतिबाध—जिनमण्डन कृत—गायकवाड आरियटल सीरीज  
१४, १९२० ।

गीतम धमसूत्र—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिम वाराणसी १९६६ ।

गापथ ब्राह्मण—कल्कत्ता १८७२ ।

गामिल स्मृति—आनन्दाधर प्रेस पूना १९०५ ।

गोष्मटसार—बाबू काण्ड—अग्रजी अनुवाद सहित—रामचन्द्र शास्त्रमाला,  
बम्बई, १९२७ २८ ।

घरक संहिता—भाग १ तथा भाग २—चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी  
१९६२ ।

छांदाग्य उपनिषद्—निणय सागर प्रेस बम्बई १९३० तथा गीता प्रेस  
गारसपुर स० १९९४ ।

जम्बूद्वीप प्रणप्ति—टीका—गान्धि चन्द्र कृत बम्बई १९२० ।

जन मित्रात बाल सग्रह—नृतीय भाग—जन पारमार्थिक संस्था बीकानेर  
(रात्रस्थान) वि० म० २००५ ।

जातक—वर्जिज यूनिवर्सिटी प्रेस लन्डन १८९५ १९०७ ।

तत्त्वाय सूत्र—विवेचन वर्ता ५० सुखलालजी सघदी—भारत जन मण्डल  
वर्धा तथा रायचंद जैन शास्त्रमाला बम्बई १९३२ ।

तिलोय पण्णति—सालापुर मस्करण ।

तिलक मजरी—घनपालकून—निणय सागर प्रेस बम्बई १९०३ ।

तत्तिरीय ब्राह्मण—स० राजेद्रलाल, कलकत्ता १८५५ ७० ।

तत्तिरीय संहिता—सायण भाष्य सहित, पूना १९४० ।

तत्तिरीयारण्यक—स० हरिारायण आप्टे पना १८९८ ।

तत्तिरीय उपनिषद्—भीता प्रस गारखपर स० १९९४ ।

थेरिगाथा—स० रिजडेविडस लंदन १९०९ ।

दशकुमार चरित—दण्डा कृत—चौखम्बा संस्कृत मीरीज आफिस, वाराणसी,  
१९४८ ।

दशकालिक चूर्णी—रतलाम १९३८ ।

दशवैकालिक सूत्र नियुक्ति सहित—बंबई १९१८ १९५४ ।

दान प्रकाश—जाम नगर विक्रम स० १९९७ ।

दियावदान—स० ई०वी० कावल तथा आर०ए० नील, कम्ब्रिज १८८६ ।

दीधनिकाय—पाली टेक्स्ट सासायटी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन  
१८९० १९११ ।

देशानाममाला—हेमचंद्र कृत—द्वितीय संस्करण—स० पी० वा० रामा  
नुज स्वामा, विजयानगरम् १९२८ ।

धम्मपद—आरियण्टल बुक सप्लाइंग एजेंसी पूना १९२३ ।

नायाधम्मकहा—आगमोदय समिति बंबई १९१९ ।

नाटयशास्त्र—भरत मुनिदृत—चौखम्बा संस्कृत सारोज आफिस, वाराणसी,  
१९२९ ।

नीतिवाक्यामृत—सामदेव सूरि कृत—प्रकाशक प० सुखलालशास्त्रा बिल्ली  
१९५० ।

नैपथीयचरित—श्रीहृपकृत—स०, यम० यम० पा० बंबई १९३३ ।

निनीय सूत्र—भाष्य तथा चूर्णी—स मनि नापीठ आगरा १९५७ ६० ।

पद्मपुराण—कलकत्ता १९५७ तथा गुरु महल ग्रंथ माला १८ ।

पन्नवन सुत्त—टीका मलय गिरि बंबई १९१८ १९ ।

प्रवच वितामणि—मेरुतुंग बंबई १९३२ तथा सिंधी जन ग्रंथमाला १ ।

प्रवोध चंद्रान्य—कृष्णमिश्र कृत—निणय सागर प्रेस बंबई १९०४ ।

प्रद्वन व्याकरण—टीका अभयदेव बंबई १९१९ ।

प्रनापना सूत्र—टीका, मलयगिरि, बंबई १९१२ १९ ।

प्रश्नोपनिषद्—गीता प्रेस गारखपुर, सवत १९९४ ।

प्रियदर्शिका—हृदयकृत, मद्रास १९३५ ।

पद्मवीराज विजय—अयानक कृत—मजमेर १९४१ ।

पराशर स्मृति—वक्त्रेश्वर प्रेस बम्बई १९५८ ।

पारस्कर गृह्यसूत्र—सम्पादक, गणपाल शास्त्री चौखवा सस्कृत सीरीज वाराणसी १९२६ ।

विद्वत्शाल भजिका—राजशेखर कृत—संपादक जितेंद्र विमल चौधरी कलकत्ता १९४३ ।

बृहद्वहारीत स्मृति—आनन्द सागर प्रेस, सस्कृत ग्रन्थमाला ४८ के अन्तर्गत ।

वैखानस स्मात सूत्र—म०, डा० कलेण्ड, कलकत्ता १९२७ ।

वैशाल्य श्रौत सूत्र—कलकत्ता १९४१ ।

बृहत्कथा कोष—हरिप्रेम कृत—बम्बई १९४३ ।

विविध तीर्थ कल्प—जिनप्रभ सूरि कृत—सिंघाजनग्रन्थ माला १ = १९३४ ।

वज्रयती—यादव प्रकाश—मद्रास १८९३ ।

बौधायन धर्मसूत्र—चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी १९३४ ।

„ स्मृति—आनन्द सागर सस्कृत ग्रन्थमाला ४८ के अन्तर्गत ।

वाहस्पत्य सूत्र—प्रकाशक—मातीलाल बनारसीदास ।

बृहदारण्यक उपनिषद्—गीता प्रेस, गारखपुर सवत २०१० ।

बृहन् कल्पभाष्य—सधर्माग गणि कृत—टीका मलयगिरि और क्षेम कीर्ति-स०, पुष्प विजय, आत्मानन्द जन सभा, भावनगर, १९३३ ३८ ।

बृहन् कल्पभाष्यवृत्ति—आत्मानन्द जन ग्रन्थमाला ।

बृहन् महिता—वाराणसी १९५९, तथा प्रकाशक सुधाकर द्विवेदा, बनारस १८९५ ९७ ।

ब्रह्माण्ड महापुराण—श्री वक्त्रेश्वर प्रेस बम्बई १९०६ ।

ब्रह्मववत पुराण—श्री वक्त्रेश्वर प्रेस बम्बई १९०६, तथा कलकत्ता १९५५ ।

बराह पुराण—बम्बई १९०२ ।

बृहस्पति स्मृति—आनन्द सागर सस्कृत ग्रन्थमाला ४८ के अन्तर्गत ।

वसिष्ठ स्मृति—आनन्द सागर सस्कृत ग्रन्थमाला ४८ के अन्तर्गत ।

व्यवहार भाष्य तथा टीका—मलयगिरि भावनगर १९२६ ।

बृहत् कथा मजगी—रामद्वेष्ट—बम्बई १९३१ ।

बृहन् कथा द्वाक संग्रह—बृहन्मामी कृत—पेरिय १९०८ १९२० ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति टीका—अभयदत्त कृत—आममान्य समिति, बम्बई १९२१ ।  
वेणी सहार—भट्ट नागयण कृत—स० जीवान द विद्या सागर, कलकत्ता,  
१८७५ ।

बास स्मृतियाँ—भाग १ तथा २, संस्कृत संस्थान बरली, १९६६ ।  
भक्त हरि शतक त्रयी—(नौति शतक शृंगार शतक तथा वराह्य शतक)  
बम्बई १९४६ ।

भगवती सूत्र—आगमोदय समिति बम्बई १९२१ ।  
भरद्वाज गृह्यसूत्र—स० जे० डब्लू० सलामनस १९१३ ।  
भक्तिसयत्त कहा—घनपाल कृत बडौला १९२३ ।  
भागवत पुराण—निणय सागर प्रेस, बम्बई १९४० ।  
मज्झिम निकाय—महाबाधि सभा, साग्नाथ वाराणसी १९६४ तथा  
लंदन १८८८, १८९९ ।

मनुस्मृति—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी १९६५ ।  
महाभारत—गीता प्रेस गोरखपुर तथा भण्डारकर आरियण्टल रिसच  
इंस्टीट्यूट, पूना १९३३, १९६६ ।

महाभाष्य पतञ्जलि कृत—स० आभ्यंगर शास्त्री पूना तथा स०, यफ०  
कीलहान, बम्बई १८९२ १९०६ ।

गानव धर्म शास्त्र—अमजी अनु० सर डब्लू० जास लंदन १८२५ ।  
गानव गृह्यसूत्र—स०, अष्टावक्र यफ० सेंटपीटर्सबर्ग १८२५ ।  
गालतीमाधव—भवभूतिकृत—निणय सागर प्रेस १९३६ ।  
गानसोल्लास—सामेश्वरकृत—खण्ड १ २—गायकवाड ओरियण्टल मीरीज,  
बटोवा १९२५ १९३९ ।

मेलिन्द पन्थ—आकमफाड यूनिवर्सिटी प्रेस, १८९० ।  
गण्डेय पुराण—अनु० पार्जिटर बगवासी एडिशन, कलकत्ता १९०४  
तथा संस्कृत संस्थान, बरली १९६७ ।

मत्स्य पुराण—कलकत्ता १९५४ तथा (भाग १ २)—संस्कृत संस्थान  
बरली, १९७० ।

महावग—स० अगदाग कश्यप, नालन्दा १९५६ ।  
महावग—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, हिन्दी संस्करण ।  
मेघदूत—कालिदास कृत—टीका मल्लिनाथ कृत गोपाल नारायण क०,  
बम्बई १९८९ ।

महावीरचरित—भवभूतिकृत—बम्बई १९०१ ।

मनुस्मृति (मेघातिथि भाष्य सहित)—कलकत्ता १९३२ ३९ ।

यजुर्वेद संहिता—बम्बई १९२९ ।

यशस्तिलक—(पूर्व खण्ड तथा उत्तर खण्ड)—निणय सागर प्रेस बम्बई १९०१ तथा १९०३ ।

यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य—महावार जन ग्रन्थमाला, वाराणसी १९६० ।

यागवल्क्य स्मृति—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफ्मि, वाराणसी १९६७ ।

युक्ति-पत्र—भाजकृत स० ईश्वरचन्द्र शास्त्री कलकत्ता १९१७ ।

योगिनीतन्त्र—प्रकाशक रसिक माहून षट्पाषाण्याय, कलकत्ता ।

रत्नावली—हृदयकृत—मद्रास १९३५ ।

राजतरंगिणी—कल्हणकृत—अनुवादक—आर० यस० पंडित, इलाहाबाद १९३५, तथा बम्बई १८९२ ।

राजप्रश्नाय सूत्र—जागमोदय समिति धूरत, तथा बम्बई १९२५ ।

रघुवश—कालिदास कृत—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी १९६१ ।

रामायण—वाल्मीकि कृत—कल्याण प्रेम, बम्बई १९५५ तथा स० वासुदेव लक्ष्मण गार्गा—निणय सागर प्रेस, बम्बई १९३० ।

रालविता—भास्कराचार्य—संपादक यश० सी० बनर्जी, कलकत्ता १८९३ ।

पास स्मृति—कलकत्ता, १८७६ ।

विनय पिटके महावग्ग—स० जगदीश कश्यप नालदा, १९५६ ।

विष्णु धर्मसूत्र—कलकत्ता तथा आक्सफोर्ड १८८१ ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण—बम्बई १९१२ ।

वायुपुराण—(प्रथम तथा द्वितीय खण्ड)—संस्कृत सस्थान बरेली १९६७ तथा गाँवा प्रेम नारसिंहपुर ।

विषाक सूत्र—टीका—अभयदत्त बडौदा, विक्रम संवत् १९२२ ।

वासुदेव हिण्डी—प्रकाशक आत्मानन्द समा, भावनगर ।

व्यवहार सूत्र—भाष्य सहित सम्पादक—वासिलाल मुनि ।

वाजसनेयी संहिता—संपादक—ए० बेवर, लंदन १८५२ ।

स्यानाडग—मलय गिरि टीका—बम्बई १९१९ ।

समवायान—जागमोदय समिति बम्बई सन् १९१८ २० ई० ।

मत्र दशन संग्रह—भण्डारकर ओरियण्टल रिसच इन्स्टीच्यूट, पूना, १९२४ ।

सदेगरासक—अल्लुल्लुमानकृत—बम्बई १९४५ ।

समरांगणसूत्रधार—भोजकृत—बडौदा, १९२५ ।



समराइच्च कहा—हरिभद्रसूरि कृत—प० भगवान्नास कृत सस्वृत छाया  
नुवाद सहित—जन सोमायटी, अहमदाबाद, भाग १, १९३८, भाग  
२, १९४२ ।

समराइच्च कहा—हरिभद्रकृत, स० हमन जकोवी कलकत्ता, १९२६ ।

समराइच्च कहा—हरिभद्र कृत स०, यम० सी० मानी अहमदाबाद १९३५,  
१९३६ ।

सुमगल बिलासिनी—पाली टक्स्ट सोसायटी लन्डन १८८६ १९३० ।

सौर पुराण—पूना १९२४ ।

स्कन्द पुराण—आनन्द आश्रम मुद्रणालय पूना १९२४ ।

संयुक्त निकाय—पाली टक्स्ट सोसायटी लन्डन १८८४ १९०४ ।

सूत्र कृताङ्ग टीका—वाराणसी, १९६४ ।

स्मृतिना समुच्चय—(अगिरा अत्रि स्मृति, अत्रि सहिता आपस्तम्ब औश  
नस गोमिल दक्ष देवल प्रजापति बृहस्पति, यम, लघुहारीत,  
वशिष्ठ, वेद-यास, गृह्यसंहिता, शास्त्र शतातप सम्बन्ध तथा बौध्दा-  
यन स्मृति आदि) संपादित विनयगणेश आष्टे, पूना १९२९ ।

श्रीमद्भागवत पुराण—गीताप्रेस गोरखपुर, तथा पैरिस १८४० ।

श्रीमद्भगवद्गीता—गीता प्रेस, गोरखपुर स० २०२२ ।

शङ्खामन धर्मसूत्र—भण्डारकर आरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ।

शतपथ ब्राह्मण—आक्सफोर्ड १८८२-१९०० ।

शक्तिमग्नम तत्र—गायकवाड आर्य टल सीरीज ।

श्वेताश्वरोपनिषद्—शंकर भाष्य सहित—गीता प्रेस गोरखपुर ।

षड्दशान समुच्चय—हरिभद्रसूरि कृत—एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल  
कलकत्ता, १९०५ ।

हृष्यचरित—वाणमट्ट कृत—अग्नेयी अनुवाद—ई० बी० वाबल तथा यफ०

ड०० यामस, लन्डन, १८९७, तथा निणय सागर प्रेस बम्बई १९१९ ।

हरिवंश पुराण—नानपीठ संस्करण, काशी १९६२ तथा क्षेमराज धेकटेक्षर  
प्रेम बम्बई, १९४७ ।

हरिभद्र सूरि चरितम्—हरिभाविन् दास कृत—जन विविध साहित्य शास्त्र  
माला ।

हितापदेश—संपादक काशीनाथ पाण्डुरंग परब, बम्बई ।

त्रिपष्टिसालाका पुरुष चरित—हेमचन्द्र कृत—प्रसारक समा भाव नगर,

१९०५ ६ तथा—यम० यम० जानसन द्वारा अनूदित, बडोदा

१९३१, ३७, ४९ ५४ ।

शातृपम कथा—गीता—अभयनेव कत—आगमोन्मय समिति वम्बई १९१९ई०  
तथा यन० सी० वद्य-पूना १९४० ।

ऋतु सहार—कालिन्गम कत—वम्बई १९३८ ।

ऋग्वेद संहिता—वदिक सशाधन मङ्गल पूना १९३६ १९४६ ।

### आधुनिक सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेवशरण—पाणिनिकालीन भारत वप विहार राष्ट्र भाषा  
परिपद्, पटना वि० सं० २०१२ ।

अग्रवाल वासुदेवशरण—बालम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन—बोखम्बा  
विद्या भवन वाराणसी १९५८ ।

अग्रवाल, वासुदेवशरण—हृषचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन—विहार राष्ट्र  
भाषा परिपद् पटना १९५३ ।

अग्रवाल वासुदेवशरण—प्राचीन भारतीय लाक्षधम गानादय ट्रस्ट  
अहमदाबाद, १९६४ ।

अग्निहारी, प्रभुदयाल—पतञ्जलि कालीन भारत, विहार राष्ट्रभाषा परिपद्  
पटना १९६३ ।

आचार्य पी० क०—आर्कोटक्कर आफ मानसार—आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी  
प्रेस, १९३५ ।

अल्तेकर ए०यस०—राष्ट्रकूटाज एण्ड दियर टाइम्स—आरियटल बुक  
एजेंसी पूना १९६७ ।

—प्राचीन भारतीय गानन पद्धति—भारतीय मण्डार, लीडर प्रेस,  
इलाहाबाद १९५९ ।

" , —स्ट एण्ड गवर्नमण्ट इन ऐसियट इण्डिया, दिल्ली, १९५८ ।

आमप्रकाश—फूड एण्ड ट्रिक्स इन ऐसियट इण्डिया—मुशीराम मनाहर  
काल ओरियटल बुक सेलस एण्ड पब्लिशस दिल्ली १९६१ ।

अवस्थी, ए०वी० यल०—स्टडीज इन स्वदपुराण कैलाश प्रकाशन  
लखनऊ १९६६ ।

इलियट एण्ड टाउसन—हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टाल्ड बाई हर ओन  
हिस्टोरियस वालूम न० १, ओर न० २, लंदन १८६६ ।

पाध्याय भरत सिंह—बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल—हिंदी साहित्य  
सम्मेलन, प्रयाग राक सं० १८८३ ।

उपाध्याय भगवतशरण—भारतीय कला और सस्कृति की भूमिका—  
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, चादनी चौक, दिल्ली, १९६५ ।

उपाध्याय वासुदेव—प्राचीन भारतीय अभिलेखा का अध्ययन, प्रज्ञा प्रकाशन  
पटना १९७० ।

, —सोसिओ रिलिजस कण्डीशन आफ नाथ इण्डिया चौखम्बा  
प्रकाशन वाराणसी १९६४ ।

कनिंघम, अलेक्जेंडर—अकियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया गेनरल रिपोर्ट स ।

—ऐसिय ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया लंदन, १८७१ ।

काणे पी०वी०—धर्मशास्त्र का इतिहास—हिंदी अनुवाद (अनुवादक  
अजुन चौत्रे कश्यप)—भाग १ २ तथा ३ हिंदी ममिति, सूचना  
विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ ।

काणे पी०वी०—हिंदूरी आफ धर्मशास्त्र बालूम १ स ५ तक भण्डारकर  
ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पुना १०३० ६२ ।

कुमार स्वामी, ए० के०—यन्त्राज, वाशिंगटन १९२८ ।

खरे सुशीला—प्राचीन भारतीय सस्कृति में सरस्वती काशी हिंदू विश्व  
विद्यालय वाराणसी १९६६ ।

—गापीनाथ कविराज अभिन दन ग्रंथ अखिल भारतीय सस्कृति परिषद्  
लखनऊ सितम्बर १९६७ ।

गुप्त, परमेश्वरीलाल—गुप्त साम्राज्य का इतिहास—विश्वविद्यालय प्रकाशन  
चौक वाराणसी १९७० ।

गोपाल लल्लन जी—इकोनामिक लाइफ आफ नादन इण्डिया मोतीलाल  
बनारसीदास दिल्ली पटना वाराणसी १९६५ ।

घोपाल यू० यन०—ए हिस्ट्री आफ इण्डियन पोलिटिकल एडिवाज आवस  
फाड यूनिवर्सिटी प्रेस १९५९, तथा १९६६ ।

घुर्मे केलिसिटेसन बालूम—संपादक के० यम० कपाडिया पापुलर बुक  
डिपार्ट बम्बई ३ ।

जन, गानुलचंद्र—यास्तिक का सांस्कृतिक अध्ययन—भारतीय ज्ञानपीठ ।

जन जगदीशचंद्र तथा मोहनलाल महता—जन साहित्य का बृहद् इतिहास,  
भाग २—बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, १९६६ ।

जन, जगदीशचंद्र—अनाम साहित्य में भारतीय समाज चौखम्बा भवन  
चौक वाराणसी १९६५ ।

जन हीरालाल—प्राचीन भारतीय सस्कृति में जन धर्म का यागदान—मध्य  
प्रदेश साहित्य परिषद् याख्याना माला भाषा १९६३ ।

जन, श्रीचन्द्र—हमारे पशु-पक्षी—आत्माराम एण्ड मस कश्मीरी गेट  
निली १९६७ ।

जन थाचन्द्र—जैन कथाया का सांस्कृतिक अध्ययन, बाहरा प्रकाशन,  
जयपुर, १९७१ ।

जन, कामलचन्द्र—जन और बौद्ध आगमा में नारी जीवन साहनलाल जन  
घम प्रचारक समिति, अमृतसर, १९६७ ।

जकोबी, हमन—स्टडीज इन जनिजम—जैन साहित्य संगोष्ठी कार्यालय  
अहमदाबाद ।

जकवर्ती, पी० सी०—आर्ट आफ वार इन गेंसियट इण्डिया यूनिवर्सिटी  
आफ काका १९४१ ।

जकवर्ती सी० यच०—जी तत्राज-स्टडीज इन दियर रिलिजन एण्ड-लिट  
रचर-पुथी पुस्तक कल्कत्ता १९६३ ।

जकलानार यच० सी०—सामल लाइफ इन ऐमियट इण्डिया—स्टडीज  
इन कामसूत्र—बृहत्तर भारत परिषद कल्कत्ता १९२९ ।

जन्, रामगोविन्द—प्राचीन भारत में स्त्री प्रतिमा, हिन्दी प्रचारक  
संस्थान वाराणसी १९६४ ।

जोधरी गुलाबचन्द्र—पॉलिटिकल हिस्ट्री आफ नाइन इण्डिया फ्राम जन  
सोमैज ( ६५० १३०० ), सोहनलाल जैन घम प्रकाशक समिति  
अमृतसर १९६३ ।

जान डब्लू० डब्लू०—ग्रीक इन ब्रिटिश एण्ड इंडिया कम्प्रेज १९५१ ।

डे०, यन० यल०—ज्यामिफिकल डिक्शनरी आफ ऐसियट एण्ड मेडिकल  
इंडिया, लन्दन १९२७ ।

टकाकुमू जे० ए०—रिकाड स आफ बुडिस्ट रिलिजन ऐज प्रविटज्ड इन  
इंडिया एण्ड मलाया आर्केपिलागो बाई इत्सिम आक्मपोड १८९६ ।

न्ता, बी० यन०—हिंदू ला आफ इमहेरिटेंस—कल्कत्ता १९६७ ।

दास गुप्त टी० सी०—ऐस्पेक्ट आफ बंगाली सोसायटी—कल्कत्ता १९३५ ।

दास बेचर—जन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग १ पाणवनाथ गोघ  
संस्थान वाराणसी १९६६ ।

दोशितार—आर्ट आफ वार इन गेंसियट इंडिया—मकमिलन एण्ड कम्पनी  
लिमिटेड—लन्दन १९४८ ।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद—प्राचीन भारत के कलात्मक मनाविज्ञान हिन्दी  
ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई १९५८ ।

मजूमदार आर० मी०—सुवर्णद्वीप, पाठ १—बाका १९३७ पाठ २, कलकत्ता १९३८ ।

मजूमदार जी० पी०—सोमिओ इकोनामिक हिस्ट्री आफ नादन इंडिया कलकत्ता—१९६० ।

मजूमदार ए० व०—चालुषयाज आफ गुजरात, भारतीय विद्या भवन बम्बई १९५६ ।

मलाल गखर—द्विशनरी आफ पाली प्रापर मन्स, इंडियन टक्स्ट सारीज, लन्डन १९३७ ३८ ।

मनि जिनविजय जी—हरिमद्रावायस्थ समय निणय जन साहित्य सशाधक समाज पुना ।

यम० हिरियना—भारतीय दशन की रूख्खा (हिन्दी अनुवाद)—राज कमल प्रकाशन, दिल्ली—१९६५ ।

मेहता, माहनलाल—जन आचार, पाश्चनाथ विद्याभ्रम शाध सस्यान बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी १९६६ ।

मेहता मोहनलाल -जन रूगन—श्री समतिगानपीठ आगरा, १९५९ ।  
एव हीरालाल जन—जन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ४—  
पाश्चनाथ विद्याभ्रम शाध सस्यान—बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी १९६८ ।

मेहता रतिलाल—श्री बुद्धिस्ट इंडिया—बाम्बे इक्जामिनर प्रस १९३९ ।  
मेहता माहनलाल एण्ड डा० के० रिणभचन्द्र—प्राकृत प्रापर नेम्स पाठ १ एल० डी०—इंस्टीच्यूट आफ इंडोलोजी अहमदाबाद १९७० ।

मकक्रिण्डल—इनवेजन आफ इंडिया—बेस्टमिनिस्टर कांस्टेबुल एण्ड क० १८९३ ।

—रेंसियट इंडिया ऐज डिस्क्राइड बाई टोलेमी कलकत्ता १९२७ ।

रेंसियट इंडिया ऐज डिस्क्राइड बाई मेगस्यनीज एण्ड एरियन कलकत्ता १९६० ।

मक्डोनल ए० ए०—चर्चिक माइयालोजी, स्पेसवग १८९७ ।

मक्डोनल ए० ए० एव कीथ—चर्चिक इंडेक्स आफ नेस एण्ड सव्जवटस, वालूम १ २, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली, पटना वाराणसी १९६७ ।

मिश्र, राजेन्द्र लाल—ऐंटीक्विटीज आफ़ उडासा, बालूम १, बलवत्ता,  
१९६१ ।

मिश्र, गिव शेखर—मानसो लाम एक सांस्कृतिक अध्ययन—चौराम्बा विद्या  
भवन, वाराणसी १९६६ ।

मातीबन्द—मायबाह—बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, १९६३ ।

॥ —प्राचीन भारतीय वेश भूषा, भारती भण्डार, प्रयाग स० २०१२ ।

मूल सर हेनरी—दो बुक आफ़ सर मार्कोपोलो—ट्रास्लेटेड एण्ड एडीटेड  
बाई सर यच्च० मूल २ बालूम लंदन १९०३ तथा लंदन १९२० ।

रम्यन, ई० जे०—बैम्बिज हिस्ट्री आफ़ इंडिया, निलो १९५५ ।

राय चौधरी, एच० सी०—पान्थिकल हिस्ट्री आफ़ इंडिया—कलकत्ता  
१९३८ ।

राव विजय बहादुर—उत्तर बंदि क ममाज एव सांस्कृति भारतीय विद्या  
प्रकाशन, वाराणसी, १९६६ ।

राव, गोपीनाथ—गलीमेन्टस आफ़ हिंदू आइक्नोग्राफी मोनीलाल बनारसी  
नास विल्ला पटना वाराणसी १९६८ ।

रा, बी० सी०—हिरटारिकल एथोग्राफी आफ़ ऐसियट इंडिया, पेरिस  
१९६८ ।

—उपग्राफी आफ़ अर्ली बुद्धिज्म—लंदन १९३२ ।

—उपग्राफिकल एमज—लंदन १९३७ ।

—इंडिया गेज डिस्क्रिप्शंस इन द अर्ली टेक्स्टस आफ़ बुद्धिज्म  
एण्ड जनिज्म—लंदन १९४१ ।

रेगे जे० एच०—ट्रेवरम आफ़ फाहियान—आक्सफोर्ड १८८६ ।

बाबर बेन्जामिन—हिंदू बल्ड, ज्ञान मल्ल एण्ड अनविन लिमिटेड, लंदन  
१९६८ ।

विद्याप्रकाश—सजुराहो—बम्बई १९६७ ।

वामल सी० जे० डी०—ग्रीक फिलामफी—ई० जे० ब्रिल लीडेन १९५९ ।

वाग्म, रामम—ज्ञान युवान प्यामस ट्रेलेम इन ऐसियट इंडिया लंदन  
१९०४५ ।

विटर्निश यम०—हिस्ट्री आफ़ इंडियन लिटरेचर भाग २—नयी दिल्ली  
१९७२ ।

सरकार डी० सी०—दो शक्ति कल्ट एण्ड तारा यूनिवर्सिटी आफ़ कल  
कत्ता १९६७ ।

मरकार डा० सा०—राम्पी एण्ड सरस्वती इन आट एण्ड लिटरेचर—यूनि  
वमिगे आफ बलकता—१९७० ।

मरकार डी० सी०—स्टडीज इन द जयाप्राप्ती आफ ऐसियट एण्ड  
मेडिकल इण्डिया—मानोलाल बनारसीदास निल्ली, पटना वारा  
णसी १९६० ।

मरकार डा० सा०—मलेवट इन्सक्रिप्सन्स, बलकता १९४२ तथा मोनी  
लाल बनारसी दाम निल्ली पटना, वाराणसी १९६६ ।

मरकार डा० सी०—इण्डियन इन्सक्रिप्सन्स ग्लासरी, मातोलाल बनारसी  
नाम १९६१ ।

साराऊ ई० सी०—अलवरनाज इण्डिया बालूम १ २ लदन १९१०  
तथा १९१४ ।

स्पीचमन यम०—ए हू आफ अनिउम मुशीराम मनोहरलाल, नई  
निल्ली १९७० ।

मिकनार ज० सी०—स्टडीज इन ए भगवतीसूत्र रिमष दमटाभ्यूट आफ  
प्राकृत जनानाजी एण्ड अहिमा, मुजवरपुर (बिहार) १९६४ ।

मिहल सी० आर०—विमिनियाप्राफा आफ इडियन क्यापन यम्बई  
१९०० ।

मिह आर० सा० पी०—विमिनिज ए नाल इण्डिया (मन् ६०० १२००)  
मातोलाल बनारसी नाम १९६८ ।

मूयकात—वन्दि का—बनारस हि ५ गुनिवगिटी १९६३ ।

गा, मधू—ए कचरल स्टडी आफ निगीय चूर्णी, पारवनाथ विद्याश्रम  
साध मन्थान, वाराणसी ।

गर्मा, गारय—अली चौहान शायनस्टीज यम० बम एण्ड बमनी निल्ली  
बालूम—लमनऊ १९५० ।

गर्मा आर० यम०—इण्डियन एजुडिउम, यतिवगिटी आर बलकता  
१९६१ ।

गर्मा आर० यम०—भारतीय सामन्तवाद—सामन्तवाद प्रकाशन, निल्ली  
१९७३ ।

गर्मा, ज० पा०—गिर्मायका एर गेमियट इण्डिया ६० ज० ब्रिज लादन  
१९६८ ।

गर्मा, बुद्धनाथयम—गायन ए इडर इन नाल इण्डिया मुजवरपुर मनोहर  
लाल नई मद्रक निल्ली १९६६ ।

गर्मा, कैलाश—ए एम, भारतीय गिर्मायका एर मधू मधुरा १९६६ ।

गर्मा, ब० ए० सी०—गारन गिर्मायका आर गाउय इण्डिया मन्थान  
१९३० ।

गाम्नी, क० ए० नीलकण्ठ—दो चोलाज, यूनिवर्सिटी आफ मद्रास, १९५५।

गाम्नी, नेमिचन्द्र—हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलाचनात्मक परीक्षण प्राकृत जनसाम्प्र और अहिंसा शोध संस्थान, वसाली, मुजफ्फरपुर १९५५।

गास्त्रा नमिचन्द्र—आदि पुराण में प्रतिपादित भारत श्री गणेश प्रसाद वर्णा ग्रंथमाला वाराणसी १९६८।

हय, यफ० एव राकहित, डब्लू० डब्लू०—चारुजू कुआ—सेंटपीटस बग १९११।

हसन, अबू जर्द एण्ड सुलेमान—सेंसियट एकाउंट्स आफ इण्डिया एण्ड चाइना उदन १७३३।

हार्पकिंस, ई० वाशबन—इपिक माइघालाजी, स्ट्रेसबग १९१५।

हडाकी के० के०—यशरिनलक एण्ड इण्डियन कस्चर, सोलापुर, १९६८।

त्रिपाठी हरिहरनाथ—प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड—बीलम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४।

त्रिपाठी हरिहरनाथ—प्राचीन भारत में राज्य और यायपालिका—माती लाल बनारसादास लिटिली पटना वाराणसी १९६५।

## पत्र-पत्रिकाएँ

आकियालोजिकल मर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट।

आरियटल कान्फेरेंस बनारस।

एप्रिप्रफिया इण्डिया।

एप्रिप्रफिया कर्नाटिका।

इण्डियन ऐण्टीक्वेरी।

इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, कलकत्ता।

कापस इस्त्रिप्पानम इण्डिकरम।

कुमार्यु आमाग डिस्ट्रिक्ट गजेटियम।

जनक आफ दो बाम्बे ब्राच आफ रायन एगियाटिक सोसायटी, बाम्बे।

जनल आफ दो नुमिस्मेटिक सोसायटी आफ इण्डिया वाराणसी।

जनल आफ दो रायल एगियाटिक सोसायटी लन्दन।

जनल आफ दो एगियाटिक सोसायटी आफ बंगाल।

जनल आफ इण्डियन रिस्ट्री।

जनल आफ श्री विहार एण्ड उदोसा रिच सोसायटी।



३४० ममराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर पूनिया १९११ ।

पूना आरियण्टल ।

बाम्बे गजेटियर ।

भागलपुर विहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ।

राजस्थान भारती, बीकानेर ।

जैन गेटोबखेरी ।

कोश

संस्कृत हिन्दी काश—आप्टे वामन गिवराम—मोतीलाल बनारसीदास  
दिल्ली पटना वाराणसी ।

संस्कृत इंगलिश काप—आप्ट बी० एस०—पूना १९६७ ।

हलामुध काप—म० जयगकर जाशी, पब्लिकेशन ब्यूरो, लखनऊ ।

पाइअ-मह महण्णवा (प्राकृत शब्द महारावि )—प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी १९६३ ।



## शब्दानुक्रमणिका

अ	अक्षर	८५,१८० २२६
	अनुसूच	२३३
अक्षरपुर	२० ३५,३८ १६३	५
अभियान	१६६	२६
अबूजई	१६६	२०
अन्त पुर	४८,६९ ७०	९२
अमि	१४६	९३,१०५,१०७,१००
अभिनय	१४७,२१५	१९०,२१४
अम	१४९	१७८
अनविधि	५०,१५०	१८६
अपशास्त्र	४६ ५३ ६१ ८६ १५०	१७८
	१५८,१७२	१७८
अट्टावय	५०,१५०	१२,१८,३२
असि लम्पण	१५२	१८६
अक्षर शिन्हा	५०,१५५	१८७
अस्थि युद्ध	५०,१५६	२०३
अग्नि पुराण	१५७	९५,९६,११०
अभ्यञ्जन	११४	००२
अशोक	३९,१८८	१५
अयोध्या	१९,३३,१३७	९७
अवध	१९	४८,५७,६०,६१ ८३
अमोज्ञा	१९	२०१
अभयदेव	५ ६४	१७६
अरह	३४	११२ ३२२
अमोहाइट	२३८	२०१
अक्षर रघु	१८०,२२७	२०६
अभिसिक्त	४९	१८० १८१
अष्टमीचन्द्र महोत्सव	२२३	८७
अभिनय	२२४	१९३,१९६
	अनाय	
	अगह	
	अजा	
	अववाकिल	
	अविपद	
	अविसाद	
	अवन्ति	
	अहि	
	अप्सुज	
	अघ बीनागुक्	
	अल्लवहनी	
	अरुरानागुक्	
	अष्टाध्यायी	
	असद्वीथीय	
	अमात्य	
	अध्ययगुक्	
	असद्विपोषण	
	अतिथि सत्कार	
	अघोवस्त्र	
	अलगणिका	
	अरण्य पशु	
	अधिकरण (विभाग)	
	अन्नाहार	

अल्पाङ्ग	२० ४४	अस्त्र	१९
अमर राज	१०९ ३०८	असुर	३१९
अमरिका	८२	अग्नि पत्र	३१७
अमराव	२८० २०३ ७० ६	अध्यात्म	१०७
अमरा	२७०	अध्यात्म	३१०
अमराव	२९८ २९० ७३ ७०	अग्नि	८१
अमरा	२०८ ९० २७३	अग्नि	८२
अमरा	४० ५३ १७५		
अमरा	१२६	आ	
अग्नि अमरा	१७७	आ	०२, १३
अमरा	१७०	आनन्द	७१
अमरा	२६१	आश्वासिका	५० ०१ ०४ १७४, १७६
अमरा	५४०	आश्वासिका	९२
अमरा	४० ५०	आश्वासिका	५० १५१
अमरा (मगी)	२६१	आश्वासिका	७१५
अग्नि	११७ ७४८ २५९	आश्वासिका	१८ १८० १०५
अमराव	२०, २६	आश्वासिका	२०, २१
अमरा	६२ १८७	आश्वासिका	२१२
अमराव	२	आश्वासिका	१७
अमराव	१३	आश्वासिका	८६ ८७
अमरा	२९१	आश्वासिका	१
अमरा	२८८	आश्वासिका	२८१, २८५
अमरा	५	आश्वासिका	२८३
अमरा	३१८	आश्वासिका	३२१ ३२२
अमरा	२८८	आश्वासिका	२५०
अमरा	३१८, ३७०	आश्वासिका	१७२ २०६
अमरा	१०, २४ २५	आश्वासिका	१२१
अमरा	११४ ११५, ११८	आश्वासिका	२९९, ३०० ३१६
अमरा	११५	आश्वासिका	२९८
अमरा	१४	आश्वासिका	२९५, २९६, २९७ ३१०
अमरा	३३	आश्वासिका	२९५, २९६
अमरा	६१	आश्वासिका	२९३ २९४
अमरा	१४९	आश्वासिका	२६६ २७६ २७७, २७८ २८८
		आश्वासिका	८१

आचरण प्रभाव	२७३	अगराज	४८
आलेख	५०	अग्रप्रसाधन	२१४
आलेख	१४७	अत्यज	१००
आचरण	३१०	अगूर	१०६
आखण्ड	२२१	अगुह	२०१
आनन्द	२१	अजा	२१३, २३३
आकृति	५१	अगुल	९
आश्विन	२२०	अगविज्जा	२४२, २५३, २३८
आमाम	१२९	अकुण्ड	२४९
आमीर हग	२०	अगूरना	१०१
आमरणविधि	१५१	अगुत्तरनिवाय	१५
आर्या	५०, १५०		
आमा	३१५		
आस्पानिका मरुप	६१, ६७, ६०	इहलीकिक	१२१, २८९, २९२
आस्पान मरुप	६८	इलिषपुर	२०
आयना	१५६	इत्माहावाद	१८४४
आध्यात्मिक	११४	इध्वस्त	५०, १५५
ओ		इजिष्ट	१४०
आइ-डीओन	४२	इहोयीक	१०८ २०८ २४६
ओषमियुक्ति	१४	इधु	१७९
ओन्रिया	१६१	इत्तिय	१०१
ओ		इन्नधुरद्व	१६९
ओषधियाँ	५३ १७५	इद्र	१५६, १५० २४३ २४८ २४९
ओषवातिकमूत्र	२३, २५		२५२ २५३, २६३
ओदर	७९	इद्रोत्सव	२५०
ओषध	७७	इद्रध्वज	२४९
ओषधदहिक	११८	इद्रमह	२४९
ओषधि	२७६	इद्रपुरी	२०
ओजार	१७३	इद्रप्रस्थ	३२
अ		इद्रवमन	२७
अग	१४ २५, २१६	इद्राणी	१३१
अगराग	२१२ २१४ २२७	इद्रियनिष्ठा	२८२
		इगालकम्म	१७४

ई		ऐलक	११३
ईशान	२१५ २५२ ३१५	एशिया	९
ईरान	१०७ २४५ २६३	एशियामाइनर	२३९
ईरानी	२००	क	
इधनगाला	१७४	कदमल फल	२८१ २८५
ईश्वर	१६	कम बघ	२९५
उ		कमण्डलु	२८५ २८६
उज्जनी	१२, १३, २१ ४५, ५० १६३	कर्णामूषण	१२५
	१६४	कमसचिव	६०
उत्तरापथ	२० ३१ ३२ ३५, ३६, १६३	कदम्ब	३८
उत्पादन	१५२	कराड	१३
उपभाग	१५८	कर हाटक	१३
उरग	१८७	कलिंग	१३ १४, २६ ३८
उपाध्याय	०४ १७७, २७७	कडाह द्राप	११
उत्सव	२१५ २१६	कटपवासी	३१५
उत्तीसा	२५, २६	कल्पवृक्ष	३०९
उत्तरीय	२०५	कम परिणाम	३१०
उदयगिरि	३९	करिष्यति दान	३०७
उज्जन	२१ २२	कटार	८१
उत्सव महोत्स	२२२, २४१	कम गति	२८८, २९३
उपनयन	११५ १२६	करघना	१२८
उत्तरकाशल	१६	कङ्कन	१२८
उपरातवेश	१६	कला	५१
उत्तरीय प्रतिबधन	१२७	कनौज	४८
उत्तरकुव	१०	कदुक क्रीडा	२१८
उपासक	२५७	कटकछेद्य	५०
उर्ध्वादिगुणव्रत	२६८	करिणीयान	२२६
ए		कम्बोज	२२६
		कटक	२०६
	२१०	कश्मीर	९५
	२०१	कस्तूरी	२१३, २१४
ऐरावत नदी	२०	कपूर	२१३
ऐरावत	९	कटिमूत्र	२११

कङ्कण	२०९	कृमुम्भागुक्	२०२
कम्प	९५	कुक्कुट	१८६
कलिगपाटन	१६०	कुक्कुट लगण	१५२
करवाल्लि	८०	केवल पान	२६४,२८१
कम्प	१८९	केडाह	१०
कवच	१७३	केग वाणिज्य	१७
कटाह	१७८	कासर	१५,३०,३० ९६
कटक कम्प (पदल सिपाहा)	२०८	काटार्या	२८१
कार्तिक पूर्णिमा	२२२,३०६ ३०८	कौरण	१६
काशी	१४,१५,१८,३१	काटुपात्र	७८
कापिल्य	२२	कौशाम्बी	२३
कामसार	२९	कौमुदी महासव	२०२,२२३,२२५
कामरूप जनपद	१४, २०	कौमारवस्था	१११
काम्बरी अटवी	३२	कौशल्य	१७०
काम	९३ १०२,१०५	कष्टक	२११
कादमिकागुक्	२०२	कटाभरण	२११
कारणिक	८९ ९०		ख
कालदण्डपाशिक	८६	करोट्या	१६६
कादम्बरी	१४६ १४८, १५२, १५६	कञ्चर	१६० १७९, १८३, २०८
कामसूत्र	१४२, १४६ १४७, १४८	कर्मगो	१८०
काकिनी लक्षण	५० १५२	कङ्क	८०
किन्नर	२४५ २५४, २५८, २५९	कर्मगार	१७०
किला	२६	कजुराहो	२३६, २४७
किलेवन्ता	७८ ७०	कादिम	२७६
किरात	१०६, १०७	कान्तिर	१९०
कृतदान	३०६	कण्ठगिरि	३०, ४०
कृतज्ञला	२४	कञ्ज	१२०
कुलपति	४६ २८४ २८५		ग
कुलदवता	११६ २६२ २६३	गरुण	१८५
कुलपुत्र	५६ ५७	गदम	१७०
कुण्डल	१२८ २०६	ग्रहचरित	५०, १५२
कुसुमपुर	२३, २८	गज	७२, ८५ १८०
		गज लगण	१५१

	ई	ऐलर	११३
ईगान	२१५ २५२ ३१५	एगिया	९
ईरान	१०७ २४५ २६३	एगियामाइनर	२३९
ईरानी	२००		
इधनगाला	१७४	क	
ईदर	१६	कदमूल फल	२८१ २८५
		कम वध	२९५
		कमण्डलु	२८५, २८९
उज्जना	१२, १३ २१ ४५, ५० १६३	कर्णभूषण	१२५
	१६४	कमसाचिव	६०
उत्तरापथ	२० ३१ ३२ ३५, ३६, १६३	कदम्ब	३८
उत्पादन	१५२	कराह	१३
उपभाग	१५८	कर हाटक	१३
उरग	१८७	कलिय	१३, १४, २६ ३८
उपाध्याय	९४ १७७, २७७	कडाह द्राप	११
उत्तमव	२१५ २१६	कल्पवासी	३१५
उडीसा	२५, २६	कल्पवृक्ष	३०९
उत्तरीय	२०५	कम परिणाम	३१०
उदयगिरि	३९	करिष्यति दान	३०७
उज्जय	२१ २२	कटार	८१
उत्तमव महोत्सव	२२२, २४१	कम गति	२८८ २९३
उपनयन	११५ १२६	करघना	१२८
उत्तरकागल	१६	कङ्कन	१२८
उपरातनेग	१६	कला	५१
उत्तरीय प्रतिवधन	१२७	कनीज	४८
उत्तरकुह	१०	कन्दुक ब्रीडा	२१८
उपासक	२६७	कटवछय	५०
उर्ध्वान्निगुगप्रत	२६८	करिणीयान	२२६
		कम्पाज	२२६
		कम्ब	२०६
ए		कम्पार	०५
एकवर्गी	२१०	कम्पूरा	२१३, २१४
एकवर्ग	२०१	कम्पूर	२१३
ऐगवत नग	२०	कटिगुप्त	२११
ऐरावन	०		

कङ्कण	२०९	कुसुम्भागुक	२०२
कम्ब	९५	कुक्कुट	१८४
कलिंगपाटन	१६९	कुक्कुट लक्षण	१५२
करवालि	८०	केवल ज्ञान	२६४ २८१
कदला	१८९	केडाह	१०
कदव	१७३	केग वाणिज्य	१७५
कटाह	१७८	कोसर	१५ ३०, ३३, ९६
कटक कम्ब (पदल सिपाही)	२०८	कोटार्या	२४१
कार्तिक पूर्णिमा	२२२, ३०६, ३०८	कोकण	१६
काशी	१४ १५, १८, ३१	काट्टपाल	७८
कापिल्य	२२	कौशाम्बी	२३
कामसार	२९	कौमुदी महोत्सव	२२२, २२३, २२५
कामरूप जनपद	१४, २९	कौमारवस्था	१११
काम्बरी अटवी	३२	कौलालक	१७३
कार	९३, १०२, १०५	कण्ठक	२११
कामिकागुक	२०२	कठाभरण	२११
कारणिक	८९ ९०	ख	-
कारणपाणिक	८६	खरोष्ठी	१४६
काम्बरा	१४६ १४८, १५२, १५६	खज्वर	१६० १७९, १८३, २२८
कामसूत्र	१४२, १४६ १४७, १४८	खरगोश	१८९
काकिनी लक्षण	५०, १५२	खडग	८०
किन्नर	२४५, २५४ २५८, २५९	खरसाल	१७९
किला	२६	खजुराहो	२३६ २४७
किन्नरा	७८ ७९	खादिम	२७६
किरात	१०६, १०७	खादिर	१९०
कृत्तान	३०६	खण्डगिरि	३९ ४०
कृतज्ञता	२८	खज्जन	१९०
कृतपति	४६, २८४ २८५	ग	-
कृतवता	११६, २६२ २६३	गद्य	१८५
कृतपुत्र	५६ ५७	गदम	१७९
कुम्हार	१२८ २०६	ग्रहचरित	५०, १५२
कुमुदपुर	२३, २८	गज	७२, ८५, १८२
		गज लक्षण	१५१



३४६ मगराइच्च बहा एक सांस्कृतिक अध्ययन

गढापधान	२०६	गुलाल	२१३
गधव	९३	गैडा	१९९
गर्भान्वय क्रिया	११५	गोचरी	२७५
गणिनी	१४१ २७८	गोदान	११५ ३०७
गजपुर	२४	गोगवरी	२७
गदा	८२	गारोचन	५२
गणघर	२७७, २८०	गोल्सण	५० १५१
गणानाय	२६६	गोष्ठी	२२५ २२६
गर्भाधान	११५	गोत्र	२९३ २९४
गधव	१५४ २५८ २५९	गोंड	१०९
गणित	५०	गौड	९२
गज्जनक	३५	गौतम	११५ १२० १७५, १७६
गन्धाल	२९	गौरवदान	३०७
गणराज्य	४६	गौरवा	१९९
गन्धिलदेश	२०	गुढ	१८६
गधव	१२१	गृहणी	१३३
गधार पवत	४०	गृहस्थ	१११ ११७ १२३ २८६
गारुडिया	१७६	गृह देवता	२६२
गाथापति	१५०	गृह युद्ध	५०
गाधिन	१५०	गृहस्वामिनी	१३८
गाथा	५० १५०	गधसमृद्ध	२४ ४०
गाधार जनपद	१७	गधिलावती	३०
ग्राहक	३०३, ३०४	गधादक	२१२
गिरिपेण	६	गमा	२२ २३ ४१, ४४
गीत	५० १४७ १४८, २१६	गजाम	३३
गीता	१९३ ३१५	गमोत्री	४४
ग्रीक	१२ २८ १६१, २४५	गमदव	५५, १६२
गुजरात	४२ ८७ २२६	घ	
गुणव्रत	२६८ २६९		
गुफा	३९, ७९ २२१		
गुजर प्रतिहार	५५		
गुरु	३२१, ३२२		
गुरुत्व	३२०		
		घट	१७३
		घण्टा	२१७
		घत	१९३ १९४
		घातकी क्षण्ड	१९, २०

व	भाग	१८४
चक्र	८१	विवाहोप
चक्रागण	५०, १५२	विनयना
चक्रपुर	२५	विनयार
चक्रमुह	७८, १५४	विनगाष्टी
चक्रवर्ती	३१८	विनपट्ट
चक्रवाक	१८५ २१८	विमट्टिका
चक्रवालपुर	२५	वीन
चक्रिका	२३७, २३९, २४१	वीनपट्ट
चक्रुराग्निय	३०८	वीनगागर
चक्रव	०९१	वीनगुप्त
चक्रपुरी	२५ ३७, ३८	वीनी रसम
च लक्षण	५०	चुनार
चक्रवर्ति	१५२	चूडामणि
चक्रप्रज्ञप्ति	१५२	चूडारत्न
चक्रलक्षण	१५२	चूडारत्ना
चक्रकार	९२ १०३	चेटी
चदन	१६९, १७२	चेन्वल्न
चक्र	२४८, २५८	चेलादि भाष्य
चक्रग्रहण	३०६	चेत्यालय
चक्रापीठ	५३ १२२	चेतय
चान्दाल	८४, ९२, १०१, १०२	चाटीदार मुकुट
चातक	१८६	चोरी
चातका	१८६	चोल
चातुर्मास	२७५ २७७	चोल
चामर	५२	चौहान अमिलेख
चामुण्डा	२४०, २४१	चदन
चार्वाक	२९५ २९६ ३०१	चदेन
चार	१५४	ज
चारु	२९६	ज्यातिष
चावल	१९३	ज्योतिषि
चाइवासा	३०	ज्यातिष्कनेव
		ज्यातिषघटिका

१८४  
१४, २७, १६९  
१३१, २१८  
१७२  
२१८  
२१८  
२१८  
१०, ११, १६०, १७०  
१७०  
१० ११  
०००  
१०  
३९, ४३  
१२५, २११, २१२  
२१२  
१९१  
१४३  
२०६  
१५०  
३४  
२९६  
२११  
८३, ८४  
८३  
११५, १२६  
८८  
२१२, २१४  
१६२  
६१, १४७, १५२, २६०  
७७  
२६१  
१२७

# ३४८ समराक्षकहा एन सांस्कृतिक अध्ययन

जनवा	५० १४९	जिरजिगा	२७
जवर	२३२,२३३	जियामत्तु	६१
जन्तपीलडवम्म	१७६	जीव	२६४ २८८ २९२
जमोरसव	११४ २१६ ३०५, ३०९	जीवमति	२८८, २९१
जम्बू	२५ १७४ १८९	जीवत स्वामी	१५ २१
जलचर	१८७	जीववलि	१०२
जलयान	१० १२, ९८ १६७, १७०	जुलाहा	१७२
	१७२, २२९	जकोवी	४
जहाज	१७१	जन	१८ ३१, ४३ ५८, १४१ १४३,
जम्बीर	१९५		१४६, ३१३
जलक्रीडा	२१९	जनदशन	२८८
जलीयान	२३३	जनाचाय	२७४
जलोत्तर	२३	जनाधार	११३
जम्बूद्वीप	१०, १३ १७ १९, २० २३	जगम	२९१
	२६ २९ ३५ ४१ ५३	जगल	२५६
जनपद	४, १३ १४ १९ ४६ ५७	झाल	२१४ २१७
जननी	१३२ १३७ १३८	झेलम	२५
जज्जल	१६२	डालेमी	४२
जयपुर	२५ ३२	द्रावनकोर	२४०
जलालाबा	१७	टकनपुर	२६
जागीरदार	५३, ५४	टाणा	१६
जातकम	११५	डोम्बलिक	९२ १०४
जाबालि	२८५	डोल	२१७
जायफल	१६९		
जाति व्यवस्था	९१	त	
जावा	२१४	तत्व प्रवाव	१५५
जिन भट्ट	३	तत्वाय सूत्र	२८०
जिन	३२१	तप	९४ १३८ १३९, २२७
जिनदेव	२७९	तपस्वी	७, २९७
जिनधम	२६७	तपाचरण	२८४
जिनप्रतिमा	१४	तपोभूमि	२४१
जिमसेन	९४	तपोवन	२८१
जिनदत्त	३	तमाल	१९०

तपस	८४	द्रम	२८०
तरुण प्रातिक्रम	५०, १५१	द्रव्यव्युत्सग	२८०, २९३
तापस	२८१ २८४, २८६	द्राविण	१६
तापमी	२८५ २८६	दसावतार	२४४
ताम्बूल	१९१ २१३ २१४	दक्षिणकोसल	१६
ताम्रनिम्बि ११ ३३ ३६ ३७, ३८ ३९		दकमार्तिकम	५०, १४९
	१६४ १६७, १६०	दण्डयुद्ध	५०
तमालि	१६८	दण्डरक्षण	५०, १५२
तारहार	२१०	दशन	२८८
तारात्रुवाट	१६१	दशमहादान	३०९
तियक	२६४, २६८ २८९	दस्यु	२५५
तिलक	२१२	दहेज	१२९
तिरहून	२१९	दशस्मृति	१३२ ३१७
तिनिग	१९०	दक्षिणा	१२९
तिमिर	१९० ५३०	दण्डपाशिक	८५, ८६
तीथकर १४, १८ २० ३१, ५२ ५३ २६,		दण्डभोगिक	८५
	३ २७९ २८०	दण्डयुद्ध	५६
तुम्बा	१७१	दण्डगृह	७८
तुरुष्क	१८९ २१३, २२६	दरबारे आम	६८ ६९
तुला	१६१	दरबारे खास	६८
तुविप्राव	२४९	द्वयगुक	२०१
तूप	२१४	दाता	३०३ ३०४
तुलिका	२१८	दामी	१३०
तत्तिरीय	४४, ११५	दान ५४, ५५ ११५ ११८, १३८ १६५	
तोता	१८५		३०१ ३०२, ३०३ ३०४
तासलिक	१४	दानपत्र	३०५
तत्रमत्र	२५८	दामोदर ताम्रपत्र	१८
तत्रवार्तिक	११४	दावगि दावणयकम्म	१७६
		नाम	५८
		द्राणापनिक	१९६
दण्ड	५७ ५८ ८४ १३६	दिकपाल	२४८ ०५२, २५३
दण्डनाति	६२ ८९ २३६	दियावदान	२६
दधि	१२४	द्विज	९४
दधनावरणीय	२८० २९४	द्विप	१८१

दीनार	१६१, १६२, १६३	घ	
दीनरम	१६	ध्यानयोग	२७४
दीक्षा	२६५, २७७	ध्वजोत्सव	२५०
द्वीद्विय	३०८	घडस	२१७
दुकूल	५२ २००, २०१, २०५	धनुषवाण	८१
दुम्बा	२५३	धनुर्वेद	५०, १२६
दुग	५४ ५६, ५७, ७८	धम	६, ४७, ५९, १२०
दुर्गा	२४०	धमकथा	२७९
दुष्टशीला	१३५ १३६	धमचक्रवर्ती	२७९
दूत	७७	धमकृत्य	३०१
दूताचार	१५३	धमक्रीडा	१५३
दूर्वाकुर	१२४	धमदान	३०७
दृति	१०८	धममहामात्र	६९
द्यूतकार	२२२	धर्मोपग्रह दान	३०६, ३०७, ३०८
द्यूतक्रीडा	२२१, २२२	धातुपाक	१५६
द्यूतफल	२२२	धातुवाद	५० १५६
दष्टि	२८८	धातुपूरक	२७
देनरियस	१६१	धात्री	१२३, १४३ १४४
देव	११७ १९९ २६४, २८८ २९०	धूर्तल्ल्यान	५
देवकुरु	१०	धूम्रपान	२३३
देवगड	२५४	न	
देवता	२४७ ३०३, ३११	दायव्यवस्था	८२
देवताक	२३१	दायपालिका	४६ ८२
देवपुर	२७	दायालय	८२
देवभव	२००	दायाधीन	८९
देवलोक	२१२ २९० ३१५, ३१६	दायघ	१८९
देवविवाह	१२१	नग्न लाक	२८८, २९०, ३१२, ३१३
देवनी	२७	नारवपाल	३१३
देवस्मित	११	नमिनाय	१८
देवपूज्य	२०३	नरपति	४८
देवी नवता	२३१	नगर चचरी	२२४
देह	१३८		

नगर भवता	२४२,२६२	नियमिका	१७१
नलिकाक्रीडा	५०	मालागुप्त	२०२
नहृष्टकम्	१२५	नीवार	१९४
नवाह्वय	२४२	मोतिप्राह्व	८९
नरवलि	१०६,२३९	मातिगात्र	८०
नगर रत्न	८६	नृत्य	१०१ १४७ २१५
नगर गामन	८७	नक्षत्रांग	१४
नगरनिवास	१५४,१५५	नीग्रह	२४८
नगरमान	१५४,१५५		
नार्ड	०३	प	
नाग	* १८७,२०७,२५८	पञ्चिमा	२२६
नागवल्ली	१०१,२१८	पत्रच्छेद्य	५०
नाट्य	५०	प्रक्षिणा	१२९
नाट्यशाला	२१८	प्रश्नया	२७४,३०९
नाट्यशास्त्र	२१५	परलोक	३१४,३१५,३२१
नाटक	२१४,२१५	प्रहेलिका	५०,२२५
नापित	१०३ २६६	परिवर्षा	२२०
नामकरण	११४ ११५,११६	पटह	२१६
नायिका	३१२	पन्नाति	७२ ७३
नारगा	१९०,१९५	प्रतिहारी	७०,७१
नारायण	२४४,२४५	प्रतिष्मूह	१५४ १५६
नलिका क्रीडा	१५३ २१९	प्रहेलिका	१५०
नाव	११ १७१	प्रतिचार	१५४
नारिकेल	२९६ ०७ ९८,	प्रवर्तिनी	२७९
	३०० ३०१	प्रशासन	४६
निग्रन्थ	२७, २७६ २७८	प्रधान सचिव	६१
नियुद्ध	५०	पट्टन	३५
निर्जोष	५०	प्रधान मन्त्री	६१
निपाद	४१ १४६	प्रधान सचिव	६०
निष्क्रमण सस्कार	२६६	प्रधान अमात्य	६० ६१
निगम	९९	परिष्ठाजक	११३
निबध	८९	प्रजापति	१७७,१९३ २८२
निहल ७ ण कम्प	१७५		

# ३५२ समराइचकहा सांस्कृतिक एक अध्ययन

पडिगह	२६६	पुण्ड्र वर्धन	१४
पद्मचैतन	२२०	पुरुष लक्षण	५० १५१
पनस	१९५	पुष्करगत	१४७, १४८, १४९
पवमान	१९४	पुगपादप	१९०
परिब्राजिका	२८५	पुगफल	१९५
पण्डसाला	१७३	पूय विदेह	१०
प्रवहण	१७१	प्रेतवन	३८
पत्नीपति	१०५	प्रेम विवाह	१२१, १२२
प्रथमकुलिक	८८	पैशाच विवाह	१२१
पद्म-गुह	७८	पात	१७१
प्रतिलाम	१०७	पौषधोपवास्त व्रत	२६९
प्रधान महिषी	६९	पञ्चकुल	८७, ८८, ८९
पट्टिकूल	२०१	पञ्चमण्डली	८७
पटवास	२०४	पञ्चकुलिक	८८
पामर	१००	फ	
प्रहारिक	८६		
परिखा	२२०	फल	५३
पारणा	२८६ २८७	फलक	२७६
पालकी	२६६	फलाहार	१०३ १९५, १९६
प्राजापत्य	१२१	काहान	३७ ४५, १०१
पान विधि	५० १५०	फोडियकम्म	१७३
पाशक्रीडा	१४९	फजावाद	१६ १९
पारलौकिक	२९२	ब	
पापाचारी	३१५		
पापाकृत्य	३११	ब्याघ्र	१८१, १८३
प्रासाद	६४	ब्यासक (धूत)	१८४
पाँच महाव्रत	३०३	ब्रह्मा	९३ २३६ २४२, २६३
पिशाचिका	३१७, ४१८	ब्रह्मचर्य	११० १११, २८२
पुनाग	१९०	बबरकाय	१०८
पुरुपाथ	११०, १५७ ३००, ३०१	बल	५७
पुरोहित	४९ ६२ ६३ ७७ १२३ १२५	ब्रह्मस्थल	२४
पुलिस विभाग	८५	वडानगर	२१
पुण्ड जनपद	१८	बनारस	३१
		बलि	२४३

ब्राह्मण ३ ३१, ५३, ५७ ५८ ११७ १२०	मिथु	२६६
ब्राह्म विवाह १२१ १२३	मिथुणी	१४०
बाहुयुद्ध ५०	भूत	२५०, २५८
बाहव ९४	भूतग्रह	२५६
बिल्ली १८७	भेरी	७७, १४९, २१७
बिहार २२ २३ ३८ ४२	भोगोपभाग	२६८
ब्रीहि १९८	भौतिकवाद	२९९
बृक्षमह २६२	स	
बृषभ ३८ ५२ १८२	महाकुम्भकार	१७३
बज-नी ३७	मधुपक	१९९
बैखाना ७८२ २८६	मदिरा	१९७
बीठ ३१, ४३, १४१ १४६	मयूर	१८४
बका ८१	मछुआ	१०४
बगाल ३७ ५४, १६८ २००	महापुत्रपति	७२
ब-रगाह १० ३६, ३७	महामणिविग्रहिक	७३
भ	महाप्रतिहारी	७०, ७१
भम्भानगर २९	महावाधित	७३
भरत क्षेत्र २३, ३०	महावलाधित	७२ ७३
भतु हरि २०९	महाद्वपनि	७४
भटाद्वपति ७४	मणिवाद	१५६
भवन दापिका ६५, ६६	मणिगिद्या	१५६
भवनोद्यान ६५	मणिनूपुर	२०९
भबमवागा २६१ २७९	महावडाह	१७०
भध्म २८६	मण्डलाग्र	८०
भतु हरि १	महापांचकालिक	८८
भवनोद्यान २२४	महामात्य	८८
भरहुत २२ २३८	मन्नोमव	२२८ २२५
भाण्ड १६०	मत्तिसचिव	६०
भाण्डागारा १७	महामन्त्री	५९ ६१
भाण्डागारिक ६३	मध्येनिया	१०७
भाषा १५५	मयुसिचय	५०
भावधुम्भग २०३	मन्त्रिगचिव	६१
भारतह १६१		
भाडिपध्म १७४		



# ३५४ समराइच्चकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन

महान्तर मन्निपात	२३३		
महासामत	४८ ४९	यतिघम	२८४
मणि शिक्षा	५०	यज्ञ	२८१ २८२, ३०३
महादान	५२ ३०९, ३१०	यम	२४३, २५० २५१, २६२
महाकात्तिकी महात्सव	३०५, ३०९	यम	२५४ २५५ २५६
महाव्रत	३०४	यवन	९३ १०७, १०८
मनुष्यत	३०१	यक्षिणी	२५३, २५४
महाराजाधिराज परमेश्वर	५५, ५६	यामिक लोक	८६
महामात्य	६१	यानपात्र	१७०
महाप्रधान	५७	यानपट्ट	१७१
मदनपुर	२९	यनग	११
महाकटाह द्वीप	० १०	युवराज	४९ ५०, ५१ १५७
महपकरण	१२५ १२६	युद्ध	५० ७७
मामपारणा	२८७	युद्ध नियुद्ध	५०, १५६
माण्डलिक	५६	यूनाना	२००
महाविद्या	३१६	योधेय जयपद	२००
मासकरूपविहार	२७५, २७७		
मागधिका	५० १५०	रत्नगिरि	११ ४१
माला	१०२	रत्नद्वीप	० ११ १६७, १६८
माताहार	१९३ १९७	रत्नपुर	३०
भुक्तजीव	२८८	रथ	८५ १७७ १८० २२६ २२८
भुद्रिका	२०८	रथाहरण	२६६
भुम्फड्डोड	९२, १०८	रहस्यगत	५० १५४
भुष्टिमुद्ध	५०	रजक	९२ १०२ १७२ १७४
भृगया	१८१, २२१	रम्यक	९
भृत्यदण्ड	८३ ८४, ८६, ९०	रमवाणिज्य	१७५
भप लक्षण	१५१	रत्नावली	२०९
मेखला	२१० २११	राज्याभिषेक	५२, ५३
माहनीय	२८० २९३, २९४ ३१९	राजधम	६२
माक्ष	२६४ २८० ३०० ३२२	राजीव	१९६
मन्त्रि परिषद	५७, ६२ ६३	राजपद	५१ ५२
मागलिक तूय	७७	राजप्रसाद	६४ ६६, ६९, ७०, ७१, २२०
		राजा	४६ ४७ ४९ ८३ ९५, २५२, २५६, ५७ २५८

समनीनि	४७,४८	लोकधम	११७ ११९ १५७
राजपुराहित	३,६१	लोकाकाश	२८१
राशिबिद्या	१४७	लोकाचार	४७
राहुचरित	५०	लोकायत	२९८
राजाणा	८२	लोक-परलोक	२८८
राजौरी	३०	लोकपाल	२५१
राजपुर	३०	लगर	१७०
राजगह	३२, ०५ ४१	व	
रिहासा	३१	व्यापार वाणिज्य	
रूपक	१६	व्यतरमुर	२६०, २८०
रूपनारायण	३७	व्युत्सग	२८०
रप्सन	१२	व्यूह	५० १५४, १५६
रोम	२४५	याकरण	१४७
राचनेवता	२३९, २४७	वरुण	२५२ २५३
रोहिणी	१८१	वनदेवता	२६१ २६२
	ल	वधिर	२३०
लजादान	१०७	वसन्तात्मव	२२३ २१६
लमा पवत	४२	वत्तदेश	१८
लग्ननिर्धारण	१२६	वत्कल	१०६ १४६, २०४ २८५,
गक्षारस	१२६		२८६ २८७
लक्ष्मी	२९, २३७, २३८, २४५	वण	०१
लवग	१९९, २१३	वनदुग्ध	७९
लम्बहार	२१०	वणिक	९७ १६१
लक्ष बाणिज्य	१७५	वणिजक	९७
लघुरम्य	१६५	वणकम्म	१७४
लक्ष्मी निलय	१६३	वस्त्रशोधक	१७४
लावक	१८२	वज्जुला	१९०
लादा	१७५	वष्टम	११
लुहार	१७२	वस्त्रक्रीडा	५०
लेख	५ ५१ १४६	वम्भवार	२८
लेखाचार	१४५	वल्गभा	१२३
लेखबाहक	६३ ६४	वडहकुमारी	२३१
लोक	२९७ ३११ ३१४ ३२१	वडीकरण	

वनवासी	२८४	विधाता	२४३
ग्रहाक्षय	२७६	विदेह दिन्ना	१८
वतक्रीडा	२१९	विदेह	९
वत्सजनपद	२३ ४३	विद्यागत	५०
वसन्तपुर	३१	विहरन	२७४
व्रत	२८१, २८६ २६७	विधवा	१३०, १३९, १४०, १४१
वानप्रस्थ	११२ ११३, २८४	विमानवासी	२६०
वानप्रस्थी	२८२	विमानछेक प्रासाद	६४
वाद्य	५० १३१, १४७, १४८	विष्णुचिका	२३१ २३२
वाह्याली	६६, ६७ २२०	विप्र	९४
वायु	१५२	विराट पुरुष	९२ १००
वारागनाएँ	१२५ १४२	विष वाणिज्य	७१५
वाण विद्या	८१	वीणा	१४७, १४८ २१७
वानम तर	२१८, २६०	वगवती विद्या	३२०
वाह्लीक	२२६	वेदनीय	२९३, २०४
वाहन	२२६	वेद्या	१३० १४१, १४२, २१५
वाद्यकला	२१५ २१६ २१७	वैष्णवधम	२८१
वाराह	१७९ १८३	वश्वानर	११२
वाहसास	२००	वताद्वय	३०
वाजिवाह्याली	६७	वश्य	९२ ९३
वास्तुनिर्वाण	१५५	वजयन्ती	१६४ १६७ १७०
वास्तुमान	१५४, १५५	श	
विध्यपवत	४२	वताम्बर	७, २७६
विजयपुर	४३	व्येतविका	३३ १६३
विनयस्थितिस्थापक	६०	गक	९२, १०७, २४६ २५०
विभव	११९	शरभ	१८०
विवाह	११५, ११८, ११९	गवट	१७९ १९८ २२६ २२८
विष्णु	२४३ २४४, २४५, २५२	शवर	१०५ १०६
	२५३, २५८	गक्ति	८१
विद्याघर	४० २५७, २ ८, २७८,	गन्तु महासाभन्ना	५६
	३१९ ३२०	शयनविधि	५०, १५०
		गन्तुनस्त	५०, १५३
		गन्तुनशाम्भ	६१

गाकुनिक	९२	स्कन्दग्रह	२५६
शाकम्भनी	१०७	स्कन्धावारमान	१५४, १५५
शिल्प	१५९, १७२	स्कन्धावारनिवेशम	१५४
शिक्षाव्रत	२७९	स्तम्भनी	३१९
शिविका	२२६, २२८	स्थितिबन्ध	२९४
शीषवदना	२२९	स्नेहाम्यवत	३१७
गू	९३, ९४, १००	स्वग	३०३ ३११, ३१२, ३१६
गूल	८१ २३१	स्वरगत	५०, १४७
शवधम	३१९	स्वयवर	१२१ १२२ १३२
शखपुर	३२ ३३	स्वणसिक्के	१६२
धमण	४, ६, २७६, २८६, २८८	स्वस्तिक गान	९४
धमणधम	५१ ११३	स्त्रीलक्षण	५०, १५१
शृगाल	१४९ १८३	सम्यक चरित्र	२६४ २७३, २७४, २८०
धमणी	२६७ २७८	सम्यक दशन	२७४
धमणव्रत	२७५	सप्तपदी	१२७
धमणसध	२७७	सम्यक्त्व	२९५
धतणाचाय	२७४ २७४	सन्निपात	२३२ २३३ २३४
धमणाचार	२७७	सन्निपातज	२३०
धमणत्व	२६४ २७३	मरस्वती	१३ २३५, २३६ २३७
आविका	२७८	समस्यापूर्ति	२२५
आवणपूर्णिमा	३०६	सवतोभद्र	६४
आवक	२६७ २६८	सन्वासी	२६३, २८३
आवस्ती	१६ ३३, ३४, १७३	सन्हन	१२४
घाट	१९९ ३०६	सतदार	१७
आ	२३७ २३८, २६१	मन्त्रि	६०, ९५
श्रीकृष्ण	५३	समतल	५०, १४७, १४९
श्रीपुर	३३, १६३	सहस्रपाकतेल	२१३
श्रीस्थल	३६	सप्ताग	७९
श्रीपाल	२७	सद्यावतन	११५, ३२२
श्रेष्ठी	९७ ९० १००	मम्मक ज्ञान	२७३ २७४, २८०, २९३
श्रोत्रिय	९४	साण्डिक्म	१७६
श्रीतयन	२८३	सामन्त	४४ ४८ ४९ ५२, ५३, ५४, ५५,
पाठसमहाजनपद	१५ १६ १८		
स्कन्द	२५०		

# ३५८ समराइचकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन

साइप्रस	२४०	मन्य शक्ति	५५,२५७
साकेत	१६ १९,३३	मैनिक प्रयाण	२७७
सागदा	३३	सैन्य व्यवस्था	७२
साकल	२८८	सौराष्ट्र	९ १५ १६,८७,८८
साधवाह	९७,९८ ९९,१६३ १६४	समारगति	२८८
साध्वी	४ १३० १३९,१४२ २७९	सध	२७७
साजी	३३	सधाचाय	२७७
सामंत कुदामानया	५४	सधनायक	२७७
सारग	१८१	सन्तारक	२७६
सिधु	१७ २८,४४ ४५	सस्कार	५२,११४,१३१
सितु	४५	सगीत	१३१
सिंहल द्वीप	९ ११,१६७,१७०	सवर	२८१
सिनेर	३९	सदेश वाहक	५७
मिद्धराज जयमिह	१६२	सभव	१५४
सुवणवाद	१५६		
सूयाकार (सूचाकार)	१५३	ह	
सूत्रकीडा	१५३	हूनसाग	१४,१६ १७ २१,२३ २६
सूय चरित	१५२		२८,३७ ९६ १६५,२४७
सूय प्रणप्ति	१५२		२८१ २८२ ३१८
सीतागुरु	२०२	हवन	१२८ १२९
सीधियन	१०७	हवन कुण्ड	१२८
सीमंतान्नयन	११५	हस्तिगाला	५५
सुवणद्वीप	१० ११ १२ १६७,१६८, १६९ १७०	हस्तिनापुर	२४ २०
सुसुमार गिरि	३० ४३	हस्ति रणग	५०
सुगमनगर	३३	हस्ति गिगा	५० १५५
सुमात्रा	१६८ २१४	हरिचन्तन	१०६ २१२
सूय	२४५ २४६,२४७,२४८	हवि	१७८
सूयग्रहण	३०६	हस्तिपत्र	१८१
सनाध्यग	४०	हयलगण	१५१
सेठ	९९	हठ (हाट)	१५० १६०
सेना	४६ ५६	हाटक	१५०
सेनापति	६८ ७२ ७३	हार	१२८,२००,२१०
सैन्य	१८०	हारपट्टि	२१०
		हार रोगर	२१०

हिमवत	४३	प्र	६०
हिमालय	४४ ४५	प्रयोविद्या	२०१
हिरण्यगर्भ	२४२	प्रयगुक्	२९२
हिरण्यपाक	१५६	प्रस	३८
हिरण्यवाद	१५६	प्रावणकार	२८५, २८६ २८७
हारा	१४९	त्रिपुण्ड	८१, ३१३
हुत्का	२१७	त्रिगूल	४९, ९९, १०३, १३८, १५७
हरण्यवत	०	त्रिवर्ग	३५
		त्रिपथ	२३१
क्ष		त्रिफला	२७९
गत्रिय	९२ ०३, ९४, ९५ ९६	त्रिदशनाम	३०६, ३०७ ३२१
गानप	१०८ १०९	गानान	२३६
गन्ध लक्षण	१५२	गानदवी	२८०, २९३ २९४
गिति प्रतिष्ठित	३४ ३५	गानावरणीय	२२२, २३५, २८६, २८५
क्षीर	१९६	ग्रा	१५०
क्षत्तक	११३	ग्राजुगाथा	४५
मेघपाल	२६१	ग्राजुवालुका	९२, ९३, १४७
क्षत्रवत्ता	६, २६० २६२	ग्रापम दव	
क्षौम	२०३, १०४		